TIGHT BINDING BOOK

TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186044

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83| P92 Pr Accession No. H395-

Author प्रेमचन्द

Title प्रेमाश्रम

This book should be returned on or before the date last marked below.

वह इतने शिक्षित होकर भी स्त्रीका आदर उससे अधिक न करते थे, जितना अपने पैरके जूतोंका। अतएव उनका दाम्पत्य जीवन ... जो चित्तकी शांतिका एक प्रधान साधन है, सुखकर न था!

३

मनोहर अक्खड़पनकी बातें तो कर बैठा; किन्तु जब क्रोध शान्त हुआ तो उसे मालूम हुआ कि मुझसे बड़ा भूल हुई। गाँव वाले सबके सब मेरे दुश्मन हैं। वह इस समय चौपालमें बैठे मेरी निन्दा कर रहे होंगे। कारिन्दा न जाने कौनसा उपद्रव मचावे। बेचारे दुर्जनको बातकी बातमें मटियामेट कर दिया, तो फिर मुझे बिगाड़ते क्या देर लगती है? मैं अपनी जबानसे लाचार हूँ। कितना ही उसे बस रखना चाहता हूँ, पर नहीं रख सकता। यही न होता कि जहाँ और सब लेना-देना है वहाँ दस रुपये और हो जाते, नक्कू तो न बनता।

लेकिन इन विचारोंने एक क्षणमें फिर पलटा खाया। मनुष्य जिस कामको हृदयसे बुरा नहीं समझता, उसके कुपरिणामका भय एक गौरवपूर्ण धैर्य्यकी शरण लिया करता है। मनोहर अब इस विचारसे अपनेको शान्ति देने लगा, मैं बिगड़ जाऊँगा तो बलासे, पर किसीकी धौंस तो न सहूँगा, किसीके सामने सिर तो नीचा नहीं करता। जमींदार भी देख ले कि गाँवमें सबके सब भंड ही नहीं हैं। अगर कोई मामला खड़ा किया तो अदालतमें हाकिमके सामने सारा भंडा फोड़ दूँगा, जो कुछ होगा देखा जायगा।

इसी उधेड़बुनमें वह भोजन करने लगा। चौकेमें एक मिट्टीके तेलका चिराग जल रहा था; किन्तु छतमें धुआँ इतना भरा हुआ था कि उसका प्रकाश मंद पड़ गया था। उसकी स्त्री विलासीने एक पीतलकी थालीमें बथुएकी भाजी और जौकी कई मोटी-मोटी रोटियाँ परस दीं। मनोहर इस भाँति रोटियाँ तोड़-तोड़

मुँहमें रखता था, जैसे कोई दवा खा रहा हो। इतनी ही रुचिसे वह घास भी खाता। बिलासीने पूछा, क्या साग अच्छा नहीं? गुड़ दूँ?

मनोहर—नहीं, साग तो अच्छा है।

बिलासी—तो क्या भूख नहीं है?

मनोहर—भूख क्यों नहीं है, खा तो रहा हूँ।

बिलासी—खाते तो नहीं हो, जैसे औंघ रहे हो। किसीसे कुछ कहा सुनी तो नहीं हुई?

मनोहर—नहीं, कहा-सुनी किससे होती?

इतनेमें एक युवक कोठरीमें आकर खड़ा हो गया। उसका शरीर खूब गठीला हृष्ट-पुष्ट था, छाती चौड़ी और भरी हुई थी। आँखोंसे तेज झलक रहा था। उसके गलेमें एक सोनेका यन्त्र था और दाहिनी बाँहमें चाँदीका एक अनन्त। यह मनोहरका पुत्र बलराज था।

बिलासी—कहाँ घूम रहे हो, आओ खा लो, थाली परसूँ?

बलराजने धुएँसे आँखें मलते हुए कहा. काहे दादा, आज गिरधर महाराज तुमसे क्यों बिगड़ रहे थे? लोग कहते हैं कि बहुत लाल-पीले हो रहे थे?

मनोहर—कुछ नहीं, तुमसे कौन कहता था?

बलराज—सभी लोग तो कह रहे हैं, तुमसे घी माँगते थे, तुमने कहा, मेरे पास घी नहीं है, बस इसीपर तन गये।

मनोहर—अरे तो कोई झगड़ा थोड़े ही हुआ। गिरधर महाराजने कहा, तुम्हें घी देना पड़ेगा, हमने कह दिया जब घी हो जायगा तब देंगे, अभी तो नहीं है। इसमें भला झगड़नेकी कौनसी बात थी?

बलराज—झगड़ेकी बात क्यों नहीं है? कोई हमसे क्यों घी माँगे? किसीका दिया खाते हैं कि किसीके घर माँगने जाते हैं? अपना तो एक पैसा नहीं छोड़ते, तो हम क्यों धौंस सहें? न

हुआ मैं, नहीं तो दिखा देता। क्या हमको भी दुर्जन समझ लिया है?

मनोहरकी छाती अभिमानसे फूली जाती थी, पर इसके साथ ही यह चिन्ता भी थी कि कहीं यह कोई उजड्डपन न कर बैठे। बोला, चुपकेसे बैठकर खाना खा लो, बहुत बहकना अच्छा नहीं होता। कोई सुन लेगा तो वहाँ जाकर एककी चार जड़ आयेगा। यहाँ कोई अपना मित्र नहीं है।

बलराज—सुन लेगा तो क्या किसीसे छिपाके कहते हैं? जिसे बहुत घमण्ड हो आकर देख ले। एक-एकका सिर तोड़के रख दें। यही न होगा कैद होकर चला जाऊँगा। इससे कौन डरता है? महात्मा गान्धी भी तो कैद हो आये हैं।

बिलासीने मनोहरकी ओर तिरस्कारके भावसे देखकर कहा, तुम्हारी कैसी आदत है कि जब देखो एक न एक बखेड़ा मचाये ही रहते हो। जब सारा गाँव घी दे रहा है तब हम क्या गाँवसे बाहर हैं? जैसे बन पड़ेगा देंगे। इसमें कोई अपनी हेठी थोड़े ही हुई जाती है? हेठा तो नारायणनेही बना दिया है। तो क्या अकड़नेसे ऊँचे हो जायँगे? थोड़ा-सा घी हाँड़ीमें है, दो-चार दिनमें और बटोर लूँगी, जाकर तौल आना।

बलराज—क्यों दे आयें? किसीके दबैल हैं।

बिलासी—नहीं, तुम तो लाट-गवर्नर हो। घरमें भूनी भाँग नहीं, उसपर इतना घमण्ड!

बलराज—हम दरिद्र सही, किसीसे माँगने तो नहीं जाते?

बिलासी—अरे जा बैठ, आया है बड़ा योधा बनके। ऊँट जबतक पहाड़पर नहीं चढ़ता तबतक समझता है मुझसे ऊँचा और कौन होगा? जमींदारसे बैर करके गाँवमें रहना सहज नहीं है। (मनोहरसे) सुनते हो महापुरुष, कल कारिन्दाके पास जाके कह सुन आओ।

मनोहर—मैं तो अब नहीं जाऊँगा।

बिलासी—क्यों?

मनोहर—क्यों क्या, अपनी खुशी है। जायें क्या, अपने ऊपर तालियाँ लगवायें?

बिलासी—अच्छा, तो मुझे जाने दोगे?

मनोहर—तुम्हें भी न जाने दूँगा। कारिन्दा हमारा कर ही क्या सकता है? बहुत करेगा अपना सिकमी खेत छुड़ा लेगा। न दो हल चलेंगे, एक ही सही।

यद्यपि मनोहर बढ़-बढ़कर बातें कर रहा था, पर वास्तवमें उसका इन्कार अब परास्त तर्कके समान था। यदि बिना दूसरोंकी दृष्टिमें अपमान उठाये बिगड़ा हुआ खेल बन जाय तो उसे कोई आपत्ति नहीं थी। हाँ, वह स्वयं क्षमाप्रार्थना करनेमें अपनी हेठी समझता था। एक बार तनकर फिर झुकना उसके लिये बड़ी लज्जाकी बात थी। बलराजकी उद्दण्डता उसे शान्त करनेमें हानिके भयसे भी अधिक सफल हुई थी।

प्रातःकाल बिलासी चौपाल जानेको तैयार हुई, पर न मनोहर साथ चलनेपर राजी होता था, न बलराज। अकेली जानेकी उसकी हिम्मत न पड़ती थी। इतनेमें कादिरमियाँने घरमें प्रवेश किया। बूढ़े आदमी थे, ठिंगना डील, लम्बी दाढ़ी, घुटनेके ऊपरतक धोती, एक गाढ़ेकी मिरजई पहने हुए थे। गाँवके नातेसे वह मनोहरके बड़े भाई होते थे। बिलासीने उन्हें देखते ही थोड़ा-सा घूँघट निकाल लिया।

कादिरने चिन्तापूर्ण भावसे कहा, अरे मनोहर, कल तुम्हें क्या सूझ गयी? जल्दी जाकर कारिन्दासाहेबको मना लो नहीं तो फिर कुछ करते-धरते न बनेगा। सुना है, वह तुम्हारी शिकायत करने मालिकोंके पास जा रहे हैं। सुक्खू भी साथ जानेको तैयार है। नहीं मालूम, दोनोंमें क्या साँठ-गाँठ हुई है।

बिलासी—भाईजी, यह बूढ़े हो गये, लेकिन इनका लड़कपन अभी नहीं गया। कितना समझाती हूँ, बस अपने ही ...

करते हैं। इन्हींकी देखा-देखी एक लड़का है वह भी हाथसे निकला जाता है। जिससे देखो उसीसे उलझ पड़ता है। भला इनसे पूछा जाय, कि सारे गाँवने घाके रुपये लिये तो तुम्हें नाहीं करनेकी क्या पड़ी थी?

कादिर—इनकी भूल है, और क्या? दस रुपये हमें भी लेने पड़े, क्या करते? और यह कोई नयी बात थोड़े ही है? बड़े सरकार थे तब भी तो एक-न-एक बेगार लगी ही रहती थी।

मनोहर—भैया, तबकी बातें जाने दो। तब साल दो साल-की देन बाकी पड़ जाती थी। मुदा मालिक कभी कुड़की-बेदखली नहीं करते थे। जब कोई कामकाज पड़ता था, तब हमको नेवता मिलता था। लड़कियोंके ब्याहके लिये उनके यहाँसे लकड़ी, चारा और २५) बँधा हुआ था। यह सब जानते हो कि नहीं? जब यह अपने लड़कोंकी तरह पालते थे तो रैयत भी हँसी-खुशी उनकी बेगार करती थी। अब यह बातें तो गयीं, बस एक-न-एक पछाड़ लगा ही रहता है। तो जब उनकी ओरसे यह कड़ाई है तो हम भी कोई मिट्टीके लौंदे थोड़े ही हैं?

कादिर—तबकी बातें छोड़ो, अब जो सामने है उसे देखो। चलो, जल्दी करो, मैं इसीलिये तुम्हारे पास आया हूँ। मेरे बैल खेतमें खड़े हैं।

मनोहर—दादा, मैं तो न जाऊँगा।

बिलासी—इनकी चूड़ियाँ मैली हो जायँगी चलो मैं चलती हूँ।

कादिर और बिलासी दोनों चौपाल चले। वहाँ इस वक्त बहुतसे आदमी जमा थे। कुछ लोग लगानके रुपये दाखिल करने आये थे, कुछ घाके रुपये लेनेके लिये और कुछ केवल तमाशा देखने और ठकुरसुहाती करनेके लिये। कारिन्देका नाम गुलाम-गौसखाँ था। वह वृहदाकार मनुष्य थे, साँवला रङ्ग, लम्बा दाढ़ा चेहरेसे कठोरता झलकती थी। अपनी जवानीमें वह पलटनमें नौकर थे और हवलदारके दरजेतक पहुँचे थे। जब सीमाप्रान्त-

में कुछ छेड़छाड़ हुई तब बीमारीकी छुट्टी लेकर घर भाग आये और यहींसे इस्तीफा पेश कर दिया। वह अब भी अपने सैनिक जीवनकी कथाएँ मजे ले-लेकर कहते थे। इस समय वह तख्त पर बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। सुक्खू और दुखरन तख्तके नीचे बैठे हुए थे।

सुक्खूने कहा, हम मजूर ठहरे, हम घमण्ड करें तो हमारी भूल है। जमींदारकी जमीनमें बसते हैं उसका दिया खाते हैं, उससे बिगड़कर कहाँ जायंगे—क्यों दुखरन ?

दुखरन—हाँ, ठीक ही है।

सुक्खू—नारायण हमें चार पैसे दें, दस मन अनाज दें तो क्या हम अपने मालिकोंसे लड़ें, मारे घमण्डके धरतीपर पैर न रक्खें ?

दुखरन—यही मद तो आदमीको खराब करता है। इसी मदने रावणको मिटाया, इसीके कारण जरासंध और जिरजोधनका सवेनाश हो गया। तो भला हमारी तुम्हारी कौन बात है ?

इतनेमें कादिरमियाँ चौपालमें आये। उनके पीछे-पीछे बिलासी भी आयी। कादिरने कहा, खाँ साहेब, यह मनोहरकी घरवाली आयी है, जितने रुपये चाहें घीके लिए दे दें। बेचारी डरके मारे आती न थी।

गौसखाँने कटु स्वरमें कहा, वह कहाँ है मनोहर, क्या उसे आते शरम आती थी ? बिलासीने दीनतापूर्वक कहा, सरकार, उनकी बातोंका कुछ खयाल न करें। आपकी गुलामी करनेको मैं तैयार हूँ।

कादिर—यों तो गऊ है, किन्तु आज न जाने उसके सिर कैसे भूत सवार हो गया। क्यों सुक्खू महतो, आजतक गाँवमें किसीसे उसकी लड़ाई हुई है ?

सुक्खूने बगलें झाँकते हुए कहा, नहीं भाई, कोई झूठ थोड़े ही कह देगा ?

कादिर—अब बैठा रो रहा है। कितना समझाया कि चलके खाँ साहेबसे कसूर माफ करा ले; लेकिन शरमसे आता नहीं है।

गौसखाँ—शर्म नहीं, शरारत है। उसके सिरपर जो भूत चढ़ा हुआ है उसका उतार मेरे पास है। उसे गरूर हो गया है।

कादिर—अरे खाँ साहेब, बेचारा मजूर गरूर किस बातपर करेगा? मूरख उजड्ड आदमी है, बात करनेका सहूर नहीं है।

गौसखाँ—तुम्हें वकालत करनेकी जरूरत नहीं। मैं अपना काम खूब जानता हूँ। इस तरह दबने लगा तब तो मुझसे कारिन्दागिरी हो चुकी। आज एकने तेवर बदले हैं, कल उसके दूसरे भाई शेर हो जायंगे। फिर जमींदारको कौन पूछता है? अगर पलटनमें किसीने ऐसी शरारत की होती तो उसे गोली मार दी जाती। जमींदारसे आँखें बदलना खालाजीका घर नहीं है।

यह कहकर गौसखाँ टाँगनपर सवार होने चले। विलासी रोती हुई उनके सामने हाथ बाँधकर खड़ी हो गयी और बोली, सरकार कहींकी न रहूँगी। जो डाँड़ चाहे लगा दीजिये, जो सजा चाहे दीजिये, पर मालिकोंके कानमें यह बात न डालिये।

लेकिन खाँ साहेबने सुक्खू महतोको मत्थेपर चढ़ा लिया था। वह सूखी करुणाको अपनी कपट-चालमें बाधक नहीं बनाना चाहते थे। तुरन्त घोड़ेपर सवार हो गये और सुक्खूको आगे-आगे चलनेका हुक्म दिया। कादिर मियाँने धीरेसे गिरधर महराजके कानमें कहा, क्या महाराज, बेचारे मनोहरका सत्यानाश करके ही दम लोगे?

गिरधरने गौरवयुक्त भावसे कहा, जब तुम हमसे आँखें दिखलाओगे तो हम भी अपनीसी करके रहेंगे। हमसे कोई एक अंगुल दबे तो हम उससे हाथभर दबनेको तैयार हैं। जो हमसे जौ भर तनेगा हम उससे गजभर तन जायंगे।

कादिर—यह तो सुपद ही है, तुम हमसे दबने लगोगे तो तुम्हें कौन पूछेगा? मुदा अब मनोहरके लिये कोई राह निकालो।

उसका सुभाव तो जानते हो। गुस्सैल आदमी है, पहले बिगड़ जाता है, फिर बैठकर रोता है। बेचारा मिट्टीमें मिल जायगा।

गिरधर—भाई, अब तो तीर हमारे हाथसे निकल गया।

कादिर—मनोहरकी हत्या तुम्हारे ही ऊपर पड़ेगी।

गिरधर—एक उपाय मेरी समझमें आता है। जाकर मनोहरसे कह दो कि मालिकके पास जाकर हाथ पैर पड़े। वहाँ मैं भी कुछ कह-सुन दूँगा। तुम लोगोंके साथ नेकी करनेका जी तो नहीं चाहता, काम पड़नेपर घिघिआते हो, काम निकल गया तो सीधे ताकते भी नहीं। लेकिन अपनी-अपनी करनी अपने साथ है। जाकर उसे भेज दो।

कादिर और बिलासी मनोहरके पास गये। वह शङ्का और चिन्ताकी मूर्त्ति बना हुआ इसी रास्तेकी ओर ताक रहा था। कादिरने जाते ही यहाँका सब समाचार कहा और गिरधर महराजका आदेश भी सुना दिया। मनोहर क्षणभर सोचकर बोला. वहाँ मेरी और भी दुर्गति होगी। अब तो सिरपर पड़ी ही है, जो कुछ होगा देखा जायगा।

कादिर—नहीं, तुम्हें जाना चाहिये। मैं भी चला चलूँगा।

मनोहर—मेरे पीछे तुम्हारी भी ले-दे होगा।

बिलासीने कादिरकी ओर अत्यन्त विनीत भावसे देखकर कहा, दादाजी, यह न जायंगे, मैं ही तुम्हारे साथ चली चलूँगी।

कादिर—तुम क्या चलोगी, वहाँ बड़े आदमियोंके सामने मुँह तो खुलना चाहिये?

बिलासी—न कुछ कहते बनेगा, रो तो लूँगी।

कादिर—यह जाने देंगे?

बिलासी—जाने क्यों न देंगे, मैं इनसे कुछ माँगती हूँ? इन्हें अपना बुरा-भला न सूझता हो, मुझे तो सूझता है।

कादिर—तो फिर देर न करनी चाहिये, नहीं तो वह लोग पहलेसे ही मालिकोंका कान भर देंगे।

मनोहर ज्योंका त्यों मूरतकी तरह बैठा रहा। बिलासी घरमें गयी, अपने गहने निकालकर पहने, चादर ओढ़ी और बाहर निकलकर खड़ी हो गयी। कादिरमियाँ संकोचमें पड़े हुए थे। उन्हें आशा थी कि अब भी मनोहर उठेगा; किन्तु जब वह अपनी जगहसे ज़रा भी न हिला तब धीरे-धीरे आगे चले। बिलासी भी पीछे-पीछे चली। पर रह-रहकर कातर नेत्रोंसे मनोहरकी ओर ताकती जाती थी। जब वह गाँवके बाहर निकल गये, तो मनोहर कुछ सोचकर उठा और लपका हुआ कादिरमियाँके समीप आकर बिलासीसे बोला, जा, घर बैठ, मैं जाता हूँ।

४

तीसरा पहर था। ज्ञानशङ्कर दीवानखानेमें बैठे हुए एक किताब पढ़ रहे थे कि कहारने आकर कहा, बाबू साहब पूछते हैं, कै बजे हैं। ज्ञानशङ्करने चिढ़कर कहा, जा कहदे, आपको नीचे बुलाते हैं। क्या सारे दिन सोते रहेंगे?

इन महाशयका नाम बाबू ज्वालासिंह था। ज्ञानशंकरके सहपाठी थे और आज ही इस जिलेमें डिप्टी कलेक्टर होकर आये थे। दोपहरतक दोनों मित्रोंमें बातचीत होती रही। ज्वालासिंह रातके जगे थे, सो गये। ज्ञानशंकरको नींद नहीं आई। इस समय उनकी छातीपर साँपसा लोट रहा था। सबके सब बाजी लिये जाते हैं और मैं कहीका न हुआ? कभी अपने ऊपर क्रोध आता, कभी अपने पिता और चचाके ऊपर। पुराना सौहार्द द्वेषका रूप ग्रहण करता जाता था। यदि इस समय अकस्मात् ज्वालासिंहके पदच्युत होनेका समाचार मिल जाता तो शायद ज्ञानशङ्करके हृदयको सच्ची शांति होती। वह इस क्षुद्र भावको मनमें न आने देना चाहते थे। अपनेको समझाते थे कि यह अपना अपना भाग्य है। अपना मित्र कोई ऊँचा पद पाये तो हमें प्रसन्न होना चाहिये, किन्तु उनकी विकलता इन सद्विचारोंसे न मिटती थी

और बहुत यत्न करनेपर भी परस्पर सम्भाषणमें उनकी लघुता प्रकट हो जाती थी। ज्वालासिंहका विदित हो रहा था कि मेरी यह तरक्की इन्हें जला रही है; किन्तु यह सर्वथा ज्ञानशङ्कर की ईर्षावृत्तिका ही दोष न था। ज्वालासिंहके बात-व्यवहारमें वह पहलेकी-सी स्नेहमय सरलता न थी, वरन् उसकी जगह एक अज्ञात सहृदयता, एक कृत्रिम वात्सल्य, एक गौरवयुक्त साधुता पायी जाती थी, जो ज्ञानशङ्करके घावपर नमकका काम कर रही थी। इसमें सन्देह नहीं कि ज्वालासिंहका यह दुस्स्वभाव इच्छित न था, वह इतना नीच प्रकृतिके पुरुष न थे, पर अपनी सफलता-ने उन्हें उन्मत्त कर दिया था। इधर ज्ञानशङ्कर इतने उदास न थे कि इससे मानवचरित्रके अध्ययनका आनन्द उठाते।

कहारके जानेके क्षणभर पीछे ज्वालासिंह ऊपरसे उतर पड़े और बोले, यार बताओ क्या समय है? जरा साहबसे मिलने जाना है। ज्ञानशंकरने कहा, अर्जी मिल लेना ऐसी क्या जल्दी है!

ज्वालासिंह—नहीं भाई, एक बार मिलना जरूरी है, जरा मालूम तो हो जाय किस ढङ्गका आदमी है, खुश कैसे होता है।

ज्ञान—वह इस बातसे खुश होता है कि आप दिनमें तीन बार उसके द्वारपर नाक रगड़ें।

ज्वालासिंहने हँसकर कर कहा, यह तो कुछ मुश्किल नहीं, मैं पाँच बार सिजदे किया करूँगा।

ज्ञान—और वह इस बातसे खुश होता है कि आप कायदे-कानूनको तिलाञ्जलि दीजिये, केवल उसकी इच्छाको कानून समझिये।

ज्वालासिंह—ऐसा ही करूँगा।

ज्ञान—इनकमटैक्स बढ़ाना पड़ेगा, किसी अभियुक्तको भूल-कर भी छोड़ा तो बहुत बुरी तरह खबर लेगा।

ज्वाला—भाई, तुम बना रहे हो, ऐसा भला क्या होगा!

ज्ञान—नहीं, विश्वास मानिये, वह ऐसा ही विचित्र जीव है।

ज्वाला—तब तो उसके साथ मेरा निबाह कठिन है।

ज्ञान—जरा भी नहीं। आज आप ऐसी बातें कर रहे हैं? कलको उसके इशारोंपर नाचेंगे। इस घमण्डमें न रहिये कि आपको अधिकार प्राप्त हुआ है, वास्तवमें आपने गुलामी लिखायी है, यहाँ आपको आत्माकी स्वाधीनतासे हाथ धोना पड़ेगा, न्याय और सत्यका गला घोटना पड़ेगा, यही आपकी उन्नति और सम्मानके साधन हैं। मैं तो ऐसे अधिकारपर लात मारता हूँ। यहाँ तो अल्लाहताला भी आसमानसे उतर आयें और अन्याय करनेको कहें, तो उनका हुक्म न मानूँ।

ज्वालासिंह समझ गये कि यह जले हुए दिलके फफोले हैं। बोले, अभी ऐसी दूनकी ले रहे हो, कलको नामजद हो जाओ, तो यह बातें भूल जायँ।

ज्ञानशङ्कर—हाँ, बहुत सम्भव है, क्योंकि मैं भी तो मनुष्य हूँ, लेकिन संयोगसे मेरे इस परीक्षामें पड़नेकी कोई सम्भावना नहीं है और हो भी तो मैं आत्माकी रक्षा करना सर्वोपरि समझूँ।

ज्वालासिंह गर्म होकर बोले, आपको यह अनुमान करनेका क्या अधिकार है कि और लोग अपनी आत्माका आपसे कम आदर करते हैं? मेरा विचार तो यह है कि संसारमें रहकर मनुष्य आत्माकी जितनी रक्षा कर सकता है, उससे अधिकार उसे वंचित नहीं कर सकता। अगर आप समझते हों कि वकालत या डाक्टरी विशेष रूपसे आत्मरक्षाके अनुकूल है तो आपकी भूल है। मेरे चचासाहेब वकील हैं, बड़े भाईसाहेब डाक्टरी करते हैं, पर वह लोग केवल धन कमानेकी मशीनें हैं, मैंने उन्हें कभी सद्-असद्के झगड़ेमें पड़ते हुए नहीं पाया।

ज्ञानशङ्कर—यह चाहें तो आत्माकी रक्षा कर सकते हैं।

ज्वालासिंह—बस, उतनी ही जितनी कि एक सरकारी नौकर कर सकता है। वकीलको ही ले लीजिये, यदि वह विवेककी रक्षा करे तो रोटियाँ चाहे भले खाय, समृद्धिशाली नहीं हो

सकता। अपने पेशेमें उन्नति करनेके लिये उसे अधिकारियोंका कृपापात्र बनना परमावश्यक है और डाक्टरोंका तो जीवन ही रईसों-की कृपापर निर्भर है। गरीबोंसे उन्हें क्या मिलेगा? द्वारपर सैकड़ों गरीब रोगी खड़े रहते हैं, लेकिन जहाँ किसी रईसका आदमी पहुँचा, वह उनको छोड़कर फिटनपर सवार हो जाते हैं। इसे मैं आत्माकी स्वाधीनता नहीं कह सकता।

इतनेमें गौसखाँ, गिरधर महाराज और सुक्खूने कमरेमें प्रवेश किया। गौसखाँ तो सलाम करके फर्शपर बैठ गये, शेष दोनों आदमी खड़े रहे। लाला प्रभाशङ्कर बरामदेमें बैठे हुए थे। पूछा, असामियोंको घीके रुपये बाँट दिये?

गौसखाँ—जी हाँ, हुजूरके इकबालसे सब रुपये तकसीम हो गये, मगर इलाकेमें चन्द आदमी ऐसे सरकश हो गये हैं कि खुदाकी पनाह। अगर उनकी तंबीह न की गयी तो एकदिन मेरी इज्जतमें फर्क आ जायेगा और क्या अजब है कि जानसे भी हाथ धोऊँ।

ज्ञानशङ्कर—(विस्मित होकर) देहातमें भी यह हवा चली?

गौसखाँने रोनी सूरत बनाकर कहा, हुजूर, कुछ न पूछिये, गिर-धर महाराज भाग न खड़े हों तो इनकी जानकी खैरियत नहीं थी।

ज्ञान—उन आदमियोंको पकड़के पिटवाया क्यों नहीं?

गौस—तो थानेदार साहबके लिये थैली कहाँसे लाता?

ज्ञान—अजी आपलोगोंको तो सैकड़ों हथकण्डे मालूम हैं, किसीको शिकंजेमें कस लीजिये।

गौस—हुजूर मौरूसी असामी है। यह सब जमींदारको कुछ नहीं समझते, उनमें एकका नाम मनोहर है। २० बीघे जोतता है। और कुल ५०) लगान देता है। आज उसी अराजीका किसी दूसरे असामीसे बन्दोबस्त हो सकता तो १००) कहीं नहीं गये थे।

ज्ञानशङ्करने चचाकी ओर देखकर पूछा, आपके अधिकांश असामी दखलकार क्योंकर हो गये?

प्रभाशंकरने उदासीनतासे कहा, जो कुछ किया होगा इन्हीं कारिन्दोंने किया होगा, मुझे क्या खबर !

ज्ञानशंकर—(व्यंगसे) तभी तो इलाका चौपट हो गया !

प्रभाशंकरने झुँझलाकर कहा, अब तो भगवानकी दयासे तुमने हाथ-पैर सँभाले, इलाकेका प्रबन्ध क्यों नहीं करते ?

ज्ञान—आपके मारे जब मेरी कुछ चले तब तो।

प्रभा—मुझसे कसम ले लो, जो तुम्हारे बीचमें कुछ भी बोलूँ, यह काम करते बहुत दिन हो गये, इसके लिये लोलुप नहीं हूँ।

ज्ञान—तो फिर मैं भी दिखा दूँगा कि सुप्रबन्धसे क्या हो सकता है ?

इसी समय कादिर खाँ और मनोहर आकर द्वारपर खड़े हो गये। गौसखाँने कहा, हुजूर यह वही असामी है, जिसका अभी मैं जिक्र कर रहा था।

ज्ञानशंकरने मनोहरकी ओर क्रोधसे देखकर कहा, क्यों रे, जिस पत्तलमें खाता है उसीमें छेद करता है ? १००) की जमीन ५०) में जोतता है, उसपर जब थोड़ासा बल खानेका अवसर पड़ा तो जामेसे बाहर हो गया ?

मनोहरकी जबान बन्द हो गयी। रास्तेमें जितनी बातें कादिरखाँने सिखायी थीं, वह सब भूल गयीं।

ज्ञानशंकरने उसी स्वरमें फिर कहा, दुष्ट कहींका, तू समझता होगा कि मैं दखलकार हूँ, जमींदार मेरा कर ही क्या सकता है ? लेकिन मैं तुझे दिखा दूँ कि जमींदार क्या कर सकता है ? तेरा इतना हियाव है कि तू मेरे आदमियोंपर हाथ उठाये ?

मनोहर निर्बल क्रोधसे काँप और सोच रहा था। मैंने घीके रुपये नहीं लिए, यह कोई पाप नहीं है। मुझे लेना चाहिये था। दबावके भयसे नहीं, केवल इसलिये कि बड़े सरकार हमारे ऊपर दया रखते थे। उसे लज्जा आयी कि मैंने ऐसे दयालु स्वामीकी आत्माके साथ कृतघ्नता की; किन्तु इसका दंड गाली और अप-

मान नहीं है। उसका अपमानाहत हृदय उत्तर देनेके लिये व्यग्र होने लगा। किन्तु कादिरने उसे बोलनेका अवसर न दिया। बोला, हुजूर, हम लोगोकी मजाल ही क्या है कि सरकारके आदमियोंके सामने सिर उठा सकें? हाँ, अपढ़ गँवार ठहरे, बातचीत करनेका सहूर नहीं है, उजड्डपनकी बातें मुँहसे निकल आती हैं। क्या हम नहीं जानते कि हुजूर चाहें तो आज हमारा कहीं ठिकाना न लगे! अब तो यही विनती है कि जो खता हुई उसकी माफी दी जाय।

लाला प्रभाशंकरको मनोहरपर दया आ गयी, सरल प्रकृतिके मनुष्य थे। बोले, तुम लोग हमारे पुराने असामी हो, क्या नहीं जानते हो कि असामियोंपर सख्ती करना हमारे यहाँका दस्तूर नहीं है? ऐसा ही कोई काम आ पड़ता है तो तुमसे बेगार ली जाती है और तुम हमेशा उसे हँसी-खुशी देते रहे हो। अब भी उसी तरह निभाते चलो। नहीं तो भाई, अब जमाना नाजुक है, हमने तो भली-बुरी तरह अपना निभा दिया, मगर इस तरह लड़कोंसे न निभेगी। उनका खून गर्म ठहरा, इसलिये अब सँभलकर रहो, चार बातें सह लिया करो, जाओ फिर ऐसा काम न करना। घरसे कुछ खाकर तो चले न होगे। दिन भी चढ़ आया, यहीं खा-पीकर विश्राम कर, दिन ढले चले जाना।

प्रभाशंकरने अपने निर्द्वन्द्व स्वभावके अनुसार इस मामलेको टालना चाहा, किन्तु ज्ञानशंकरने उनकी ओर तीव्र नेत्रोंसे देखकर कहा, आप मेरे बीचमें क्यों बोलते हैं? इस नरमीने तो इन आदमियोंको शेर बना दिया है। अगर आप इस तरह मेरे कामोंमें हस्तक्षेप करते रहेंगे तो मैं इलाकेका प्रबन्ध कर चुका। अभी आपने वचन दिया है कि इलाकेसे कोई सरोकार न रखूँगा। अब आपको बोलनेका कोई अधिकार नहीं है।

प्रभाशंकर यह तिरस्कार न सह सके। रुष्ट होकर बोले, अधिकार क्यों नहीं है? क्या मैं मर गया हूँ?

ज्ञानशङ्कर—नहीं, आपको कोई अधिकार नहीं है। आपने सारा इलाका चौपट कर दिया, अब क्या चाहते हैं, कि जो बचा-खुचा है, उसे भी धूलमें मिला दें।

प्रभाशङ्करके कलेजेमें चोट लग गयी। बोले, बेटा! ऐसी बातें करके क्यों दिल दुखाते हो? तुम्हारे पूज्य पिता मर गये, लेकिन कभी मेरी बात नहीं टुलखी। अब तुम मेरी जबान बन्द कर देना चाहते हो, किन्तु यह नहीं हो सकता कि अन्याय देखा करूँ और मुँह न खोलूँ। जबतक जीवित हूँ, तुम यह अधिकार मुझसे नहीं छीन सकते।

ज्वालासिंहने दिलासा दिया, नहीं साहब, आप घरके मालिक हैं, यह आपकी गोदके पले हुए लड़के हैं, इनकी अबोध बातोंपर ध्यान न दीजिये। इनकी भूल है जो कहते हैं कि आपका कोई अधिकार नहीं है। आपको सब कुछ अधिकार है, आप घरके स्वामी हैं।

गौसखांने कहा, हुजूरका फर्माना बहुत दुरुस्त है। आप खानदानके सरपरस्त और मुरब्बी हैं। आपके मन्सबसे किसे इनकार हो सकता है?

ज्ञानशङ्कर समझ गये कि ज्वालासिंहने मुझसे बदला ले लिया। उन्हें यह खेद न हुआ कि ऐसी अविनय मैंने क्यों की। खेद केवल यह था कि ज्वालासिंह यहाँ बैठे थे और उनके सामने वह असज्जनता नहीं प्रकट करना चाहते थे। बोले, अधिकारसे मेरा वह आशय नहीं था जो आपने समझा। मैं केवल यह कहना चाहता था कि जब आपने इलाकेका प्रबंध मेरे सुपुर्द कर दिया है तो मुझीको करने दीजिये। यह शब्द अनायास मेरे मुँहसे निकल गया। मैं इसके लिये बहुत लज्जित हूँ, भाई ज्वालासिंह, मैं चचा साहेबका जितना अदब करता हूँ उतना अपने पिताका भी नहीं किया। मैं स्वयं गरीब असामियोंपर सख्ती करनेका विरोधी हूँ। इस विषयमें आप मेरे विचारोंसे भली भाँति परि-

चित हैं। किन्तु इसका यह आशय नहीं है कि हम दीनपालनकी धुनमें इलाकेसे ही हाथ धो बैठें। पुराने जमानेकी बात और थी। तब जीवन-संग्राम इतना भयंकर न था, हमारी आवश्यकताएँ परिमित थीं, सामाजिक अवस्था इतनी उन्नत न थी और सबसे बड़ी बात तो यह है कि भूमिका मूल्य इतना चढ़ा हुआ न था। मेरे कई गाँव जो दो-दो हजारपर बिक गये हैं, उनके दाम आज २०-२० हजार लगे हुए हैं। उन दिनों असामी मुश्किलसे मिलते थे, अब एक टुकड़ेके लिये सौ-सौ आदमी मुँह फैलाये हुए हैं। यह कैसे हो सकता है कि इस आर्थिक दशाका असर जमींदारपर न पड़े ?

लाला प्रभाशङ्करको अपने अप्रिय शब्दोंका बहुत दुःख हुआ। जिस भाईको वह देवतुल्य समझते थे, उसीके पुत्रसे द्वेष करनेपर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई, बोले, भैया, इन बातोंको तुम जितना समझोगे मैं बूढ़ा आदमी उतना क्या समझूँगा ? तुम घरके मालिक हो। मैंने भूल की कि बीचमें कूद पड़ा। मेरे लिये एक टुकड़ा रोटीके सिवा और किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है। तुम जैसे चाहो वैसे घरका संभालो।

थोड़ी देरतक सब लोग चुपचाप बैठे रहे। अन्तमें गौसखाँने पूछा, हुजूर, मनोहरके बारेमें क्या हुक्म होता है ?

ज्ञानशंकर—इजाफा लगानका दावा कीजिये ?

कादिर—सरकार, बड़ा गरीब आदमी है, मर जायगा।

ज्ञानशंकर—अगर इसकी जोतमें कुछ लिकमी जमीन हो तो निकाल लीजिये।

कादिर—सरकार, बेचारा बिना मारे मर जायगा।

ज्ञानशंकर—उसकी परवा नहीं। असामियोंकी कमी नहीं है।

कादिर—हुजूर ..

ज्ञान—चुप रहो, मैं तुमसे हुज्जत नहीं करना चाहता।

कादिर—सरकार जरा·····

ज्ञान—बस, कह दिया कि जबान मत खोलो।

मनोहर अबतक चुपचाप खड़ा था। प्रभाशंकरकी बात सुनकर उसे आशा हुई थी कि यहाँ आना निष्फल नहीं हुआ। उनकी विनयशीलताने उसे वशीभूत कर लिया था। ज्ञानशंकरके कटु व्यवहारके सामने प्रभाशंकरकी नम्रता उसे देवोचित प्रतीत होती थी। उसके हृदयमें उत्कण्ठा हो रही थी कि अपना सर्वस्व लाकर इनके सामने रख दूँ और कह दूँ कि यह मेरी ओरसे बड़े सरकारकी भेंट है। लेकिन ज्ञानशंकरके अन्तिम शब्दोंने इन भावनाओंको पददलित कर दिया। विशेषतः कादिरमियाँका अपमान उसे असह्य हो गया। तेवर बदलकर बोला, दादा, इस दरबारसे अब दया-धर्म उठ गया। चलो, भगवानकी जो इच्छा होगी वह होगा। जिसने मुँह चीरा है वह खानेको भी देगा। भीख नहीं तो परदेश तो कहीं नहीं गया है?

यह कहकर उसने कादिरका हाथ पकड़ा और उसे जबरदस्ती खींचता हुआ दीवानखानेसे बाहर निकल गया। ज्ञानशङ्करको इस समय इतना क्रोध आ रहा था कि यदि कानूनका भय न होता तो वह उसे जीता चुनवा देते। अगर इसका कुछ अंश मनोहरको डाँटने-फटकारनेमें निकल जाता तो कदाचित् उनकी ज्वाला कुछ शान्त हो जाती, किन्तु अब हृदयमें खौलनेके सिवा उसके निकलनेका कोई रास्ता न था। उनकी दशा उस बालककी सी हो रही थी, जिसका हमजोली उसे दाँत काटकर भाग गया हो। इस ज्ञानसे उन्हें शान्ति न होती थी कि मैं इस मनुष्यके भाग्यका विधाता हूँ, आज इसे पैरोंतले कुचल सकता हूँ। क्रोधको दुर्वचनसे विशेष रुचि होती है।

ज्वालासिंह मौनी बने बैठे थे। उन्हें आश्चर्य्य हो रहा था कि ज्ञानशंकरमें इतनी दयाहीन स्वार्थपरता कहाँसे आ गयी। अभी क्षण भर पहले यह महाशय न्याय और लोकसेवाका कैसा महत्वपूर्ण वर्णन कर रहे थे। इतनीही देरमें यह कायापलट!

विचार और व्यवहारमें इतना अन्तर! मनोहर चला गया तो ज्ञानशंकरसे बोले, इजाफा लगानेका दावा कीजियेगा तो क्या उसकी ओरसे उज्रदारी न होगी? आप केवल असामीपर दावा नहीं कर सकते।

ज्ञानशंकर—हाँ, यह आप ठीक कहते हैं। खाँ साहब, आप उन असामियोंकी एक सूची तैयार कीजिये, जिनपर कायदेके अनुसार इजाफा हो सकता है। क्या हरज है, लगे हाथ सारे गाँवपर दावा हो जाय?

ज्वालासिंहने मनोहरकी रक्षाके लिये यह शंका की थी। उसका यह विपरीत फल देखकर उन्हें फिर कुछ कहनेका साहस न हुआ। उठकर ऊपर चले गये।

५

एक महीना बीत गया, गौसखाँने असामियोंकी सूची न तैयार की और न ज्ञानशङ्करने ही फिर ताकीद की। गौसखाँके स्वहित और स्वामिहितमें विरोध हो रहा था और ज्ञानशङ्कर सोच रहे थे कि जब इजाफेसे सारे परिवारका लाभ होगा तो मुझीको क्या पड़ी है कि बैठे बिठाये सिरदर्द मोल लूँ। सैकड़ों गरीबोंका गला तो मैं दबाऊँ और चैन सारा घर करे। वह इस सारे अन्याय-का भार अकेले ही उठाना चाहते थे, और लोग भी शरीक हों, यह उन्हें स्वीकार न था। अब उन्हें रात-दिन यही दुश्चिन्ता रहती थी कि किसी तरह चचा साहबसे अलग हो जाऊँ। यह विचार सर्वथा उनके स्वार्थानुकूल था। उनके ऊपर केवल तीन प्राणियोंके भरण-पोषणका भार था—आप, स्त्री और भावज। लड़का अभी दूध पीता था। इलाकेकी आमदनीका बड़ा भाग प्रभाशङ्करके काम आता था, जिनके तीन पुत्र थे, दो पुत्रियाँ, एक बहू, एक पोता और स्त्री पुरुष आप। ज्ञानशङ्कर अपने पिताके परिवार पालनपर झुँझलाया करते। आजसे तीस साल पहले वह अलग हो गये होते तो आज हमारी दशा ऐसी खराब न होती,

चचाके सिर जो पड़ती उसे झेलते, खाते चाहे उपवास करते, हमसे तो कोई मतलब न रहता। बल्कि उस दशामें हम उनकी कुछ सहायता करते तो वह इसे ऋण समझते, नहीं तो आज भाड़ लीपकर हाथ काला करनेके सिवा और क्या मिला? प्रभाशङ्कर दुनिया देखे हुए थे, भतीजेका यह भाव देखकर दबते थे, अनुचित बातें सुनकर भी अनसुनी कर जाते। दयाशङ्कर उनकी कुछ सहायता करनेके बदले उलटे उन्हींके सामने हाथ फैलाते रहते थे, इसलिये दबकर रहनेमें ही उनका कल्याण था।

ज्ञानशङ्कर दम्भ और द्वेषके आवेगमें बहने लगे। एक नौकर चचाका काम करता तो दूसरेको खामखाह अपने किसी नकिसी काममें उलझा रखते। इसी फेरमें पड़े रहते कि चचाके आठ प्राणियोंपर जितना व्यय होता है उतना मेरे तीन प्राणियोंपर हो। भोजन करने जाते तो बहुतसा खाना जूठा करके छोड़ देते। इतनेपर भी सन्तोष न हुआ तो दो कुत्ते पाले। उन्हें साथ बैठाकर खिलाते। यहाँतक कि प्रभाशङ्कर डाक्टरके यहाँसे कोई दवा लाते तो आप भी उतने ही मूल्यकी कोई औषधि अवश्य लाते, चाहे उसे फेंक ही क्यों न दें! इतने अन्यायपर भी चित्तको शान्ति न होती थी। चाहते थे कि महिलाओंमें भी बमचख मचे। विद्याकी शालीनता उन्हें नागवार मालूम होती, उसे समझाते कि तुम्हें अपने भले-बुरेकी जरा भी परवा नहीं। मरदोंको इतना अवकाश कहाँ कि जरा-जरासी बातपर ध्यान रखें। यह स्त्रियोंका खास काम है, यहाँतक कि इसी कारण उन्हें घरमें आग लगानेका दोष लगाया जाता है, लेकिन तुम्हें किसी बातकी सुधि ही नहीं रहती। आँखोंसे देखती हो कि घीका घड़ा लुढ़का जाता है, पर जबान नहीं हिलाती। विद्यावती यह शिक्षा पाकर भी उसे ग्रहण न करती थी।

इसी बीचमें एक ऐसी घटना हो गयी, जिसने इस विरोधाग्नि को और भी भड़का दिया। दयाशङ्कर यों तो पहलेसे ही अपने

थानेमें अन्धेर मचाये हुए थे, लेकिन जबसे ज्वालासिंह उनके इलाकेके मैजिस्ट्रेट हो गये थे तबसे तो वह पूरे बादशाह बन बैठे थे। उन्हें यह मालूम ही था कि डिप्टी साहेब ज्ञानशङ्करके मित्र हैं। इतना सहारा मेलजोल पैदा करनेके लिये काफी था। कभी उनके पास चिड़िया भेजते, कभी मछलियाँ, कभी दूध, घी। स्वयं उनसे मिलने जाते तो मित्रवत् व्यवहार करते। इधर सम्मान बढ़ा तो भय कम हुआ, इलाकेको लूटने लगे। ज्वालासिंहके पास शिकायतें पहुँचीं, लेकिन वह लेहाजके मारे न तो दयाशङ्करसे और न उनके घरवालोंसे ही इनकी चर्चा कर सके। लोगोंने जब देखा कि डिप्टी साहेब भी हमारी फ़रियाद नहीं सुनते तो हार मानकर चुप हो बैठे। दयाशङ्कर और भी शेर हुए। पहले दाव घात देखकर हाथ चलाते थे, अब निःशङ्क हो गये। यहाँ-तक कि प्याला लबालब हो गया! इलाकेमें एक भारी डाका पड़ा। वह उसकी तहकीकात करने गये। एक जमींदारपर संदेह हुआ, तुरन्त उसके घरकी तलाशी लेना शुरू की, चोरीका कुछ माल बरामद हो गया। फिर क्या था, उसी दम उसे हिरासत-में ले लिया। जमींदारने कुछ दे दिलाकर बला टाली। पर अभिमानी मनुष्य था, यह अपमान न सहा गया। उसने दूसरे दिन ज्वालासिंहके इजलासमें दारोगा साहेबपर मुकदमा दायर कर दिया। इलाकेमें आग सुलग रही थी, हवा पाते ही भड़क उठी। चारो तरफसे झूठ-सच्चे इस्तगासे होने लगे। अन्तमें ज्वालासिंहको विवश होकर इन मामलोंकी छानबीन करना पड़ा। सारा रहस्य खुल गया। उन्होंने पुलिसके अधिकारियोंको रिपोर्ट की। दयाशङ्कर मुअत्तल हो गये, उनपर रिश्वत लेने और झूठे मुकदमे बनानेके अभियोग चलने लगे। पासा पलट गया, उन्होंने जमींदारको हिरासतमें लिया था, अब खुद हिरासतमें आ गये। लाला प्रभाशङ्करके उद्योगसे जमानत तो मंजूर हो गयी, लेकिन अभियोग इतने सप्रमाण थे कि दयाशङ्करके बचनेकी बहुत कम

आशा थी। वह स्वयं निराश थे। सिट्टी-पिट्टी भूल गयी, मानों किसीने बुद्धि हर ली हो। जो जबान थानेकी दीवारोंको कम्पित कर दिया करती थी, वह अब हिलती भी न थी। वह बुद्धि जो हवामें किले बनाती रहती थी, अब इस गुत्थीको भी न सुलझा सकती थी। कोई कुछ पूछता तो शून्य भावसे दीवारकी ओर ताकने लगते। उन्हें खेद न था, लज्जा न थी, केवल विस्मय था कि मैं इस दलदलमें कैसे फँस गया? वह मौन दशामें बैठे सोचा करते—मुझसे यह भूल हो गयी, अमुक बात बिगड़ गयी, नहीं तो कदापि न फँसता। विपत्तिमें भी जिस हृदयमें सद्ज्ञान न उत्पन्न हो वह सूखा वृक्ष है, जो पानी पाकर पनपता नहीं, बल्कि सड़ जाता है। ज्ञानशंकर इस दुरवस्थामें अपने सम्बन्धियोंकी सहायता करना अपना धर्म समझते थे; किन्तु इस विषयमें उन्हें किसीसे कुछ कहते हुए संकोच हो नहीं होता, वरन् जब कोई दयाशंकरके व्यवहारकी आलोचना करने लगता, तब वह उसका प्रतिवाद करनेके बदले उससे सहमत हो जाते थे।

लाला प्रभाशंकरने बेटेको बरी करानेके लिये कोई बात उठा नहीं रखी। वह रात-दिन इसी चिन्तामें डूबे रहते थे। पुत्रप्रेम तो था ही, पर कदाचित् उससे भी अधिक लोकनिन्दाकी लाज थी। जो घराना सारे शहरमें सम्मानित हो, उसका यह पतन हृदयविदारक था। जब वह चारों तरफसे दौड़धूप कर निराश हो गये तब एक दिन ज्ञानशङ्करसे बोले, आज जरा ज्वालासिंहके पास चले जाते, तुम्हारे मित्र हैं, शायद कुछ रियायत करें।

ज्ञानशङ्करने विस्मित भावसे कहा, मेरा इस वक्त उनके पास जाना सर्वथा अनुचित है।

प्रभाशङ्कर—मैं जानता हूँ और इसीलिए अबतक तुमसे जिक्र नहीं किया। लेकिन अब इसके बिना काम नहीं चलता दिखाई देता। डिप्टी साहेब अपने इजलाससे बरी कर दें, फिर आगे हम देख लेंगे। वह चाहें तो सबूतोंको निर्बल बना सकते हैं।

ज्ञान—पर आप इसकी कैसे आशा रखते हैं कि मेरे कहनेसे वह अपने ईमानका खून करनेपर तैयार हो जायँगे।

प्रभाशङ्करने आग्रहपूर्वक कहा, मित्रोंके कहने-सुननेका बड़ा असर होता है।

बूढ़ोंकी बातें बहुधा वर्तमान सभ्य प्रथाके प्रतिकूल होती हैं। युवकगण इन बातोंपर अधीर हो उठते हैं। उन्हें बूढ़ोंका यह अज्ञान अक्षम्य-सा जान पड़ता है। ज्ञानशङ्कर चिढ़कर बोले, जब आपकी समझमें बात ही नहीं आती तो मैं क्या कहूँ। मैं अपने को दूसरोंकी निगाहमें गिराना नहीं चाहता।

प्रभाशङ्करने पूछा, क्या अपने भाईकी सिफारिश करनेसे अपमान होता है?

ज्ञानशङ्करने कटुभावसे कहा, सिफारिश चाहे किसी कामके लिये हो, नीची बात है, विशेष करके ऐसे मामलेमें।

प्रभाशङ्कर बोले, इसका अर्थ तो यह है कि मुसीबतमें भाईसे मददकी आशा न रखनी चाहिये।

"मुसीबत उन कठिनाइयोंका नाम है जो दैवी और अनिवार्य कारणोंसे उत्पन्न हों, जान-बूझकर आगमें कूदना मुसीबत नहीं है।"

"लेकिन जो जान-बूझकर आगमें कूदे, क्या उसकी प्राण-रक्षा न करनी चाहिये?"

इतनेमें बड़ी बहू दरवाजेपर आकर खड़ी हो गयीं और बोलीं, चलकर ललू (दयाशङ्कर) को जरा समझा क्यों नहीं देते? रातको भी खाना नहीं खाया और इस वक्त अभीतक हाथ-मुँह नहीं धोया। प्रभाशङ्कर खिन्न होकर बोले, कहाँतक समझाऊँ? समझाते-समझाते तो हार गया। बेटा! मेरे चित्तकी इस समय जो दशा है, वह बयान नहीं कर सकता। तुमने जो बातें कही हैं वह बहुत माकूल हैं, लेकिन मुझपर इतनी दया करो, आज डिप्टी साहबके पास जरा चले जाओ। मेरा मन कहता है, कि तुम्हारे जानेसे कुछ-न-कुछ उपकार अवश्य होगा।

ज्ञानशङ्कर बगले झाँक रहे थे कि बड़ी बहू बोल उठीं, यह जा चुके। लल्लू कहते थे कि ज्ञानू झूठ भी जाकर कुछ कह दें तो सारा काम बन जाय ; लेकिन इन्हें क्या परवा है, चाहे कोई चूल्हे भाड़में जाय। फँसाना होता तो चाहे दौड़-धूप करते भी, बचाने कैसे जायें हेठी न हो जायेगी ?

प्रभाशङ्करने तिरस्कारके भावसे कहा, क्या बेबातकी बात करती हो ? अन्दर जाकर बैठती क्यों नहीं ?

बड़ी बहूने कुटिल नेत्रोंसे ज्ञानशङ्करको देखते हुए कहा, मैं तो बेलाग बात कहती हूँ, किसीको भला लगे या बुरा। जो बात इनके मनमें है वह मेरी आँखोंके सामने है।

ज्ञानशङ्कर मर्माहत होकर बोले, चचा साहेब ! आप सुनते हैं इनकी बातें ? यह मुझे इतना नीच समझती हैं।

बड़ी बहूने मुँह बनाकर कहा, यह क्या सुनेंगे, कान भी हों ? सारी उम्र गुलामी करते कटी, अब भी वही आदत पड़ी हुई है। तुम्हारा हाल मैं जानती हूँ।

प्रभाशङ्करने व्यथित होकर कहा, ईश्वरके लिये चुप रहो। बड़ी बहू त्योरियाँ चढ़ाकर बोलीं, चुप क्यों रहूँ, किसीका डर है ? यहाँ तो जानपर बनी हुई है और यह अपने घमण्डमें भूले हुए हैं। ऐसे आदमीका तो मुँह देखना पाप है।

प्रभाशंकरने भतीजेकी ओर दीनतासे देखकर कहा, बेटा, यह इस समय आपेमें नहीं हैं। इनकी बातोंको बुरा न मानना। लेकिन ज्ञानशङ्करने बातें न सुनीं, चाचाके कठोर वाक्य उनके हृदयको मथ रहे थे। बोले, तो मैं आप लोगोंके साथ रहकर कौनसा स्वर्गका सुख भोग रहा हूँ ?

बड़ी बहू—जो अभिलाष मनमें हो वह निकाल लो। जब अपनाया ही नहीं तो एक घरमें रहनेसे थोड़े ही एक हो जायेंगे।

ज्ञान—आप लोगोंका यही इच्छा है तो यही सही। मुझे निकाल दीजिये।

बड़ी बहू—हमारी इच्छा है। आज महीनोंसे तुम्हारा रङ्ग देख रही हूँ। ईश्वरने आँखें दी हैं, धूपमें बाल नहीं सफेद किये हैं। हम लोग तुम्हारी आँखोंमें काँटेकी तरह खटकते हैं। तुम समझते हो, यह लोग हमारा सर्वस्व खाये खाते हैं। जब तुम्हारे मनमें इतना कमीनापन आ गया तो फिर—

प्रभाशङ्करने ठंडी साँस लेकर कहा, या ईश्वर, मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती? बड़ी बहूने पतिको कुपित नेत्रोंसे देखकर कहा, तुम्हें यह बहुत प्यारे हैं तो जाकर उनकी जूतियाँ सीधी करो। जो आदमी मुसीबतमें साथ न दे, वह दुश्मन है, उससे दूर रहना ही अच्छा है।

ज्ञान—तो यह धमकी किसे देती हो? कलके बदले आज ही हिस्सा-बाँट कर लो।

बड़ी बहू—क्या तुम समझते हो कि हम तुम्हारा दिया खाती हैं?

ज्ञान—इन बातोंका प्रयोजन ही क्या है?

बड़ी बहू—नहीं, तुम्हें यही घमण्ड है।

ज्ञान—अगर यही घमण्ड है तो क्या अन्याय है। जितना आपका खर्च है उतना मेरा कभी नहीं है।

बड़ी बहूने पतिकी ओर देखकर व्यङ्ग भावसे कहा—कुछ सुन रहे हो सपूतकी बातें? बोलते क्यों नहीं? क्या मुँहमें दही जमा हुआ है? बाप हजारों रुपये साल साधु-भिखारियोंको खिला दिया करते थे, मरते दमतक पालकीके बारह कहार दरवाजेसे नहीं टले। इन्हें आज हमारी रोटियाँ अखर रही हैं। लाला, हमारा जस मानो कि आज रईसोंकी तरह चैन कर रहे हो, नहीं तो मुँहमें मक्खियाँ आतीं-जातीं।

प्रभाशङ्कर यह बातें न सुन सके। उठकर बाहर चले गये। बड़ी बहू मोर्चेपर अकेले ठहर न सकीं, घरमें चली गयीं। लेकिन ज्ञानशङ्कर वहीं बैठे रहे। उनके हृदयमें एक दाह-सी हो रही थी।

इतनी निष्ठुरता ! इतनी कृतघ्नता ! मैं कमीना हूँ, मैं दुश्मन हूँ, मेरी सूरत देखना पाप है ! जिन्दगीभर हमको नोचा-खसोटा और आज यह बातें ! यह घमण्ड ! देखता हूँ यह घमंड कबतक रहता है। इसे तोड़ न दिया तो कहना ! लोग सोचते होंगे, मालिक तो हम हैं, कुञ्जियाँ तो हमारे पास हैं, इसे जो दे देंगे, वह ले लेगा। एक-एक चीजका आधा करा लूँगा। बुढ़ियाके पास जरूर रुपये हैं। पिताजीने सब कुछ इन्हीं लोगोंपर छोड़ दिया था। इसने काट-कपटकर दस-बीस हजार जमा कर लिया है। बस, उसीका घमंड है और कोई बात नहीं ! इसमें दूसरोंको धनी समझनेकी विशेष चेष्टा होती है।

ज्ञानशङ्कर इन कुकल्पनाओंसे भरे हुए बाहर आये तो चचाको दीवानखानेमें मुन्शी ईजादहुसेनसे बातें करते पाया। यह मुन्शी ज्वालासिंहके इजलासके अहलमद थे—बड़े बातूनी, बड़े चलते-पुर्जे। वह कह रहे थे, आप घबरायें नहीं, खुदाने चाहा तो बाबू दयाशङ्कर बेदाग बरी हो जायंगे ! मैंने महरीकी मारफत उनकी बीवीको ऐसा चंगपर चढ़ाया है कि वह दारोगाजीको बिला बरी कराये डिप्टी साहेबका दामन न छोड़ेंगी। सौ-दो-सौ रुपये खर्च हो जायेंगे, मगर क्या मुजायका, आबरू तो बच जायगी। अकस्मात् ज्ञानशङ्करको वहाँ देखकर वह कुछ झेंप गये।

प्रभाशङ्कर बोले, रुपये जितने दरकार हों ले जायँ, आपकी कोशिशसे बात बन गयी तो हमेशा आपका शुक्रगुजार रहूँगा।

ईजादहुसेनने ज्ञानशङ्करको देखते हुए कहा, बाबू ज्वालासिंह दोस्तीका कुछ हक तो जरूर ही अदा करेंगे। जबानसे चाहे कितने ही बेनियाज बनें, लेकिन दिलमें वह आपका बहुत लेहाज करते हैं। मैं भी इसपर खूब रंग चढ़ाता रहता हूँ। कल आपका जिक्र करते हुए मैंने कहा कि वह तो दो-तीन दिनसे दाना-पानी तर्क किये हुए हैं। यह सुनकर कुछ गौर करने लगे, बाद अजाँ उठकर अन्दर चले गये।

प्रभाशङ्करने मुन्शीको श्रद्धापूर्ण नेत्रसे देखा, पर ज्ञानशङ्करने तुच्छ दृष्टिसे देखा और ऊपर चले गये। विद्यावती उनकी राह देख रही थी, बोली आज देर क्यों कर रहे हो? भोजन तो कभीसे तैयार है!

ज्ञानशङ्करने उदासीनतासे कहा, क्या खाऊँ, कुछ मिले भी?

मालिक और मालकिन दोनोंने आजसे मेरा निबटारा कर दिया, उन्हें मेरी सूरत देखनेसे पाप लगता है। ऐसोंके साथ रहनेसे तो मर जाना अच्छा है।

विद्यावतीने संशक होकर पूछा, क्या बात हुई?

ज्ञानशङ्करने इस प्रश्नका उत्तर विस्तारके साथ दिया। उन्हें आशा थी कि इन बातोंसे विद्याकी शान्तिप्रियताको आघात पहुँचेगा, किन्तु उन्हें कितनी निराशा हुई, जब उसने सारी कथा सुननेके बाद कहा, तुम्हें ज्वालासिंहके यहाँ चले जाना चाहिये था, चचाजीकी बात रह जाती। ऐसे ही अवसरोंपर तो अपने-परायेकी पहचान होती है। तुम्हारी ओरसे आना-कानी देखकर उन लोगोंको क्रोध आ गया होगा। क्रोधमें आदमी अपने मनकी बात नहीं कहता। वह केवल दूसरेका दिल दुखाना चाहता है।

ज्ञानशङ्कर खिन्न होकर बोले, तुम्हारी बातें सुनकर जी चाहता है कि अपना और तुम्हारा दोनोंका सिर फोड़ लूं। उन लोगों-के कटु वाक्योंको फूल-पान समझ लिया, मुझीको उपदेश देने लगीं। मुझे तो यह लज्जा आ रही है कि इस गुरगे ईजादहुसेनने मेरी तरफसे न जाने क्या-क्या रद्दे जमाये होंगे और तुम मुझे सिफारिश करनेकी शिक्षा देती हो। मैं ज्वालासिंहको जता देना चाहता हूँ कि इस विषयमें मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ। गरजमन्द बनकर उनकी दृष्टिमें नीचा बना नहीं चाहता।

विद्याने विस्मित होकर पूछा, क्या उनसे यह कहने जाओगे?

ज्ञानशङ्कर—अवश्य जाऊँगा। दूसरेकी आबरूके लिये अपनी प्रतिष्ठा क्यों खोऊँ?

विद्या—भला वह अपने मनमें क्या कहेंगे? क्या इससे तुम्हारा द्वेष न प्रकट होगा?

ज्ञानशङ्कर—तुम मुझे जितना मूर्ख समझती हो, उतना नहीं हूँ। मुझे मालूम है कि कौन बात किस ढङ्गसे करनी चाहिये।

विद्या चिन्तित नेत्रोंसे भूमिकी ओर देखने लगी। उसे पतिकी संकीर्णतापर खेद हो रहा था, लेकिन कुछ और कहते डरती थी कि कहीं उनकी दुष्कामना और भी दृढ़ न हो जाय। इतनेमें दयाशङ्करकी स्त्री भोजन करनेके लिये बुलाने आयी। उधर श्रद्धाने जाकर बड़ी बहूको मनाना शुरू किया। विद्याने लाला प्रभाशङ्करको मनानेके लिये तेजशङ्करको भेजा, पर इनमें कोई भी भोजन करने न उठा। प्रभाशङ्करको यह ग्लानि हो रही थी कि मेरी स्त्रीने ज्ञानशङ्करको अप्रिय बातें सुनायीं, बड़ी बहूको शोक था कि मेरे पुत्रका कोई हितैषी नहीं और ज्ञानशङ्करको यह जलन थी कि यह लोग मेरा खाकर मुझीको आँखें दिखाते हैं। क्षुधाग्निके साथ क्रोधाग्नि भी भड़कती जाती थी।

विवादमें हम बहुधा अत्यन्त नीतिपरायण बन जाते हैं, पर वास्तवमें इससे हमारा अभिप्राय यही होता है, कि विपक्षीकी जबान बन्द कर दें। इन चन्द घण्टोंमें ही ज्ञानशङ्करकी नीतिपरायणता ईर्षाग्निमें भस्म हो चुकी थी। जिस प्राणीके हितके लिये ज्वालासिंहसे कुछ कहना उन्हें असंगत जान पड़ता था, उसीके अहितके लिये वह वहाँ जानेको तैयार हो गये। उन्होंने इस प्रसंगकी सारी बातें मनमें निश्चित कर ली थीं। इस प्रश्नको ऐसी कुशलतासे उठाना चाहते थे कि नीयतका परदा न खुलने पावे।

दूसरे दिन प्रातःकाल ज्योंही नौ बजे, ज्ञानशङ्करने पैरगाड़ी सँभाला और घरसे निकले। द्वारपर लाला प्रभाशङ्कर अपने दोनों पुत्रोंके साथ टहल रहे थे। ज्ञानशङ्करने मनमें कहा, बुड्ढा साठ बरसका हो गया है; पर अभीतक वही जवानीकी ऐंठ है। कैसा अकड़कर चलता है! अब देखता हूँ, मिश्री और मक्खन

कहाँ मिलता है। लौंडे मेरी ओर कैसे घूर रहे हैं, मानों निगल जायँगे। वर्षाका आगमन हो चुका था। घटा उमड़ी हुई थी, मानों समुद्र आकाशपर चढ़ गया हो। सड़कोंपर इतना कीचड़ था कि ज्ञानशङ्करकी पैरगाड़ी मुश्किलसे निकल सकी, छींटोंसे कपड़े खराब हो गये। उन्हें म्युनिसिपैलटीके सदस्योंपर क्रोध आ रहा था कि यह सबके सब स्वार्थी, खुशामदी और उचक्के हैं। चुनावके समय भिखारियोंकी तरह द्वार-द्वार घूमते-फिरते हैं, लेकिन मेम्बर होते ही राजा बन बैठते हैं। उस कठिन तपस्याका फल यह निर्वाणपद प्राप्त हो जाता है। यह बड़ी भूल है कि मेम्बरोंको एक निर्दिष्ट कालके लिये रखा जाता है। वोटरोंको अधिकार होना चाहिए कि जब किसी सदस्यको जी चुराते देखें तो उसे पदच्युत कर दें। यह मिथ्या है कि उस दशामें कोई कर्त्तव्यपरायण मनुष्य मेम्बरीके लिये खड़ा न होगा। जिन्हें राष्ट्रीय उन्नतिकी धुन है, वह प्रत्येक अवस्थामें जातिसेवाके लिये तैयार रहेंगे। मेरे विचारमें जो लोग सच्चे अनुरागसे काम करना चाहते हैं वह इस बन्धनसे और भी खुश होंगे। इससे उन्हें अपनी अकर्मण्यतासे बचनेका एक साधन मिल जायगा। और यदि हमें जातिसेवाका अनुराग नहीं तो म्युनिसिपल हालमें बैठनेकी तृष्णा क्यों हो? क्या इससे इज्जत होती है? सिपाही बनकर कोई लड़नेसे जी चुरावे, यह उसकी कीर्ति नहीं, अपमान है।

ज्ञानशङ्कर इन्हीं विचारोंमें मग्न थे कि ज्वालासिंहका बंगला आ गया। वह घोड़ेपर हवा खाने जा रहे थे। साईस घोड़ा कसे खड़ा था। ज्ञानशङ्करको देखते ही बड़े प्रेमसे मिले और इधर-उधरकी बातें करने लगे। उन्हें भ्रम हुआ कि यह महाशय अपने भाईकी सिफारिश करने आये होंगे। इसलिये उन्हें इस तरह बातोंमें लगाना चाहते थे कि उस मुकदमेकी चर्चा ही न आने पाये। उन्हें दयाशङ्करके विरुद्ध कोई सबल प्रमाण न मिला था। यह वह जानते थे कि दयाशङ्करका जीवन उज्ज्वल नहीं है, परन्तु यह

अभियोग सिद्ध न होता था। उनको बरी करनेका निश्चयकर चुके थे। ऐसी दशामें वह किसीको यह विचार करनेका अवसर नहीं देना चाहते थे कि मैंने अनुचित पक्षपात किया है। ज्ञानशङ्करके आनेसे जनताके सन्देहकी पुष्टि हो सकती थी। जनताको ऐसे समाचार बड़ी आसानीसे मिल जाते हैं। अरदली और चपरासी अपना गौरव बढ़ानेके लिये ऐसी खबरें बड़ी तत्परतासे फैलाते हैं, बोले, कहिये, आपके असामी सीधे हो गये।

ज्ञानशङ्कर—जी नहीं, उन्हें काबूमें करना इतना सहज नहीं है। चचा साहबने उन्हें सिर चढ़ा दिया है। मैं इधर ऐसे झमेलोंमें पड़ा रहा कि उस विषयमें कुछ करनेका अवकाश ही न मिला।

ज्वालासिंह डरे कि भूमिका तो नहीं है, तुरन्त पहलू बदलकर बोले, भाईसाहब, मैंने यह नौकरी क्या कर ली, एक जंजाल सिर ले लिया। प्रातःकालसे सन्ध्या तक सिर उठानेकी फुरसत नहीं मिलती। बहुधा दस-ग्यारह बजे राततक काम करना पड़ता है। और इतना ही होता तो भुगत भी लेता, इसके साथ-साथ यह चिन्ता लगी रहती है कि ऊपरवाले खुश रहें। आप जानते ही हैं अबकी वर्षा बहुत हुई है, मेरे इलाकेके सैकड़ों गाँवोंमें बाढ़ आ गयी। खेतोंका तो कहना ही क्या, किसानोंकी झोपड़ियाँतक बह गयीं। जमींदारोंने आधी मालगुजारीकी छूटकी प्रार्थना की है और यह सर्वथा न्यायानुकूल है। किन्तु हाकिमोंकी यह इच्छा मालूम होती है कि इन दरखास्तोंको दाखिल-दफ्तर कर दिया जाय। यद्यपि वह प्रत्यक्ष ऐसा कहते नहीं, पर हानियोंकी जाँचमें इतनी बाधाएँ डालते हैं कि जाँच व्यर्थ हो जाती है। अब यदि मैं जान कर अनजान बनूँ और स्वच्छन्दतासे जाँच करूँ तो अवश्य ही मुझपर फटकार पड़ेगी। लोग सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगेंगे। यहाँकी हवा ही कुछ ऐसी बिगड़ी हुई है कि मनुष्य इस अन्यायसे किसी भाँति बच नहीं सकता। अपने अन्य सहवर्गियोंकी दशा

देखकर बस यही इच्छा होती है कि इस्तीफा देकर घरकी राह लूँ। मनुष्य कितना स्वार्थप्रिय और कितना चापलूस बन सकता है, इसका यहाँसे उत्तम उदाहरण और कहीं न मिल सकेगा। यदि साहेब बहादुर जरासा इशारा कर दें कि आमदनीके टैक्सकी जाँच अच्छी तरह की जाय तो विश्वास मानिये हमारे मित्रगण दो ही दिनोंमें टैक्सको बढ़ाकर दुगुना तिगुना कर देंगे। यदि इशारा हो जाय कि अबकी तकावा जरा हाथ रोककर दी जाय तो समझ लीजिये कि वह बन्द हो जायगी। इन महानुभावोंकी बातें सुनकर ऐसी घृणा होती है कि इनका मुँह न देखूँ। न कोई वैज्ञानिक निरूपण, न कोई राजनैतिक या आर्थिक बात, न कोई साहित्य की चर्चा, बस मैंने यह किया, साहेबने यह कहा, तो मैंने यह उत्तर दिया। आपसे यथार्थ कहता हूँ, कोई छटा हुआ शोहदा भी अपनी कपटलीलाओंकी डींग यों न मारेगा। खेद तो यह है कि इस रोगसे पुराने विचारके बुड्ढे ही ग्रसित नहीं, हमारा नवशिक्षितवर्ग उनसे कहीं अधिक इस रोगसे जर्जरित देख पड़ता है। मार्ले, मिल और स्पेन्सर सभी इस स्वार्थसिद्धान्तके सामने दब जाते हैं। अजी यहाँ ऐसे-ऐसे भद्र पुरुष पड़े हुए हैं जो खानसामों और अरदलियोंकी पूजा किया करते है, केवल इसलिये कि वह साहेबसे उनकी प्रशंसा किया करे! जिसे अधिकार मिल गया वह समझने लगता है, अब मैं हाकिम हूँ, अब जनतासे, देशबन्धुओंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। अंग्रेज अधिकारियोंके सम्मुख जायँगे तो नम्रता, विनय और शीलके पुतले बन जायँगे, मानों ईश्वरके दरबारमें खड़े हैं, पर जब दौरेपर निकलेंगे तो प्रजा और जमींदारोंपर ऐसा रोब जमायेंगे मानों उनके भाग्यके विधाता हैं।

ज्वालासिंहने स्थितिको खूब बढ़ाकर दर्शाया; क्योंकि इस विषयमें वह ज्ञानशङ्करके विचारोंसे परिचित थे। उनका अभिप्राय केवल यह था कि इस समय दयाशङ्करके अभियोगकी चर्चा न आने पावे।

ज्ञानशङ्करने प्रसन्न होकर कहा, मैंने तो आपसे पहले ही दिन कहा था, किन्तु आपको विश्वास न आता था। अभी तो आपको केवल अपने सहवर्गियोंकी कपट-नीतिका अनुभव हुआ है। कुछ दिनऔर रहिये तो अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंकी चालें देखकर तो आप दंग रह जायेंगे। वह सब आपको कठपुतली बनाकर नचायेंगे। बदनामीसे बचनेका इसके सिवा और उपाय नहीं है कि उन्हें मुँह न लगाया जाय। आपका अलहमद ईजाददुसेन एक ही घाग है उससे होशियार रहियेगा, वह तरह-तरहसे आपको अपने पञ्जे में लानेकी कोशिश करेगा। आज ही मैंने उसके मुँहसे ऐसी बातें सुनी हैं जिनसे विदित होता है कि वह आपको धोखा दे रहा है। उसने आपसे कदाचित् मेरी ओरसे दयाशङ्करकी सिफारिश की है। यद्यपि मुझे दयाशङ्करसे उतनी ही सहानुभूति है जितनी भाईकी भाईके साथ हो सकती है, तथापि मैं ऐसा धृष्ट नहीं हूँ कि मित्रतासे अनुचित लाभ उठाकर न्यायका बाधक बनूँ। मैं कुमार्गका पक्ष कदापि न ग्रहण करूँगा, चाहे मेरे पुत्रके सम्बन्धमें ही क्यों न हो? मैं मनुष्यत्वको भ्रातृप्रेमसे उच्चतर समझता हूँ। मैं उन आदमियोंमें हूँ कि यदि ऐसी दशामें आपको सहृदयताकी ओर झुका हुआ देखूँ तो आपको उससे बाज रक्खूँ।

ज्वालासिंह मनोविज्ञानके ज्ञाता थे। समझ गये कि यह महाशय इस समय अपने चचासे बिगड़े हुए हैं। यह नीतिपरायणता उसीका बुखार है, द्वेष और वैमनस्य कहाँतक जा सकता है, इसका अनुभव हो गया। उनकी दृष्टिमें ज्ञानशङ्करकीजो प्रतिष्ठा थी वह लुप्त हो गयी। भाईका अपने भाईकी सिफारिश करना सर्वथा स्वाभाविक और मानव-चरित्रानुकूल है। इसे वह बहुत बुरा नहीं समझते थे, किन्तु भाईका अहित करनेके लिये नैतिक सिद्धान्तोंका आश्रय लेना वह एक अमानुषिक व्यापार समझते थे। ऐसे दुष्प्रकृति मनुष्योंको जो आठों पहर न्याय और सत्यकी हाँक लगाते फिरते हों मर्माहत करनेका यह अच्छा अवसर

मिला। बोले आपको भ्रम हुआ है। ईजादहुसेनने मुझसे इस विषयमें कोई बातचीत नहीं की और न इसकी जरूरत ही थी; क्योंकि मैं अपने फैसलेमें दयाशङ्करको पहले ही निरपराध लिख चुका हूँ। और सबको यह भली भाँति मालूम है, कि मैं किसीकी नहीं सुनता। मैंने पक्षपातरहित होकर यह धारणा की है और मुझे आशा है कि आप यह सुनकर प्रसन्न होंगे।

ज्ञानशङ्करका मुख पीला पड़ गया, मानों किसीने उनके घरमें आग लगानेका समाचार कह दिया हो। हृदयमें तीरसा चुभ गया। अवाक् रह गये।

ज्वाला—गवाह कमजोर थे। मुकद्दमा बिलकुल बनावटी था।

ज्ञानशङ्कर—यह सुनकर असीम आनन्द हुआ। आपको हजारों धन्यवाद! चचा साहेब तो सुनकर खुशीसे बावले हो जायेंगे।

ज्वालासिंह इस दबी हुई चुटकीसे पीड़ित होकर बोले, यह कानूनकी बात है, मैंने कोई अनुग्रह नहीं किया।

ज्ञानशंकर—आप चाहे कुछ कहें, पर मैं तो इसे अनुग्रह ही समझूँगा। मित्रता कानूनकी सीमाओंको अज्ञात रूपसे विस्तृत कर देती है। इसके सिवा आप लोगोंको भी तो पुलिसका दबाव मानना पड़ता है। उनके द्रोही बननेसे आप लोगोंके मार्गमें कितनी बाधाएँ पड़ती हैं, इसे भी तो विचारना ही पड़ता है।

ज्वालासिंह इस व्यङ्गसे और भी तिलमिला उठे। गर्वसे बोले, यहाँ जो कुछ करते हैं न्यायके बलपर करते हैं। पुलिस क्या, ईश्वरका अनुचित दबाव भी नहीं मान सकते। आपकी इन बातोंमें कुछ वैमनस्यकी गन्ध आती है। मुझे सन्देह होता है कि दयाशंकरका मुक्त होना आपको अच्छा नहीं लगा।

ज्ञानशंकरने उत्तेजित होकर कहा, यदि आपको ऐसा सन्देह है तो यह कहनेके लिये मुझे क्षमा कीजिये कि इतने दिनोंतक साथ रहनेपर भी आप मुझसे सर्वथा अपरिचित हैं। मेरी प्रकृति

कितनी ही दुर्बल हो, पर अभी इस अधोगतिको नहीं पहुँची है कि अपने भाईकी गर्दनपर हाथ उठावे। मगर यह कहनेमें भी मुझे सङ्कोच नहीं है कि भ्रातृस्नेहकी अपेक्षा मेरी दृष्टिमें राष्ट्र-हितका महत्व कहीं अधिक है और जब इन दोनोंमें विरोध होगा तो मैं राष्ट्रहितकी ओर झुकूँगा। यदि आप इसे वैमनस्य या ईर्षा समझें तो यह आपकी सज्जनता है। मेरी नीतिशिक्षाने मुझे यही सिखाया है और यथासाध्य उसका पालन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। जब एक व्यक्ति-विशेषसे जनताका अपकार होता हो तो हमारा धर्म है कि उस व्यक्तिका तिरस्कार करें और उसे सीधे मार्गपर लावें, चाहे वह कितना ही आत्मीय हो। संसारके इतिहासमें ऐसे उदाहरण अप्राप्य नहीं हैं, जहाँ राष्ट्रीय कर्तव्यने कुलहितपर विजय पाया है. ऐसी दशामें जब आप मुझ-पर दुराग्रहका दोषारोपण करते हैं तो मैं इसके सिवा और क्या कह सकता हूँ कि आपकी नीतिशिक्षा और ईथिक्सने आपको कुछ भी लाभ नहीं पहुँचाया।

यह कहकर ज्ञानशङ्कर बाहर निकल आये। जिस मनोरथसे वह इतने सवेरे यहाँ आये थे उसके यों विफल हो जानेसे उनका चित्त बहुत खिन्न हो रहा था। हाँ, यह संतोष अवश्य था कि मैंने इन महाशयके दाँत खट्टे कर दिये, अब यह फिर मुझसे ऐसी बातें करनेका साहस न कर सकेंगे। ज्वालासिंहने भी उन्हें रोकनेकी चेष्टा नहीं की। वह सोच रहे थे कि इस मनुष्यमें बुद्धिबल और दुर्जनताका कैसा विलक्षण समावेश हो गया है। चातुरी कपटके साथ मिलकर दो आतशी शराब बन जाती है। इस फटकारसे कुछ तो आँखें खुलीं होंगी। समझ गये होंगे कि कूटनीतिके परखनेवाले संसारसे लोप नहीं हो गये।

ज्ञानशङ्कर यहाँसे चले तो उनकी दशा उस जुआरीकी-सी थी जो जुएमें हार गया हो और सोचता हो कि ऐसी कौन-सी वस्तु दाँवपर लगाऊँ कि मेरी जीत हो जाय। उनका चित्त

उद्विग्न हो रहा था। ज्वालासिंहको यद्यपि उन्होंने तुर्की-बतुर्की जवाब दिया था फिर भी उन्हें प्रतीत होता था कि मैं कोई गहरी चोट न कर सका। अब ऐसी कितनी ही बातें याद आ रही थीं जिनसे ज्वालासिंहके हृदयपर आघात किया जा सकता था। और कुछ नहीं तो रिश्वतकाही दोष लगा देता। खैर, फिर कभी देखा जायगा। अब उन्हें राष्ट्र-प्रेम और मनुष्यत्वका वह उच्चादर्श भी हास्यास्पद-सा जान पड़ता था, जिसके आधारपर उन्होंने ज्वालासिंहको लज्जित करना चाहा था। वह ज्यों-ज्यों इस सारी स्थितिका निरूपण करते थे, उन्हें ज्वालासिंहका व्यवहार सर्वथा असंगत जान पड़ता था। मान लिया कि उनपर मेरी ईर्षाका रहस्य खुल गया तो सहृदयता और शालीनता इसमें थी कि वह मुझसे सहानुभूति प्रकट करते, मेरे आँसू पोंछते। ईर्षा भी मानवस्वभावका एक अङ्ग ही है, चाहे वह कितनाही अवहेलनीय क्यों न हो? यदि कोई मनुष्य इसके लिये मेरा अपमान करे तो इसका कारण उसकी आत्मिक पवित्रता नहीं, वरन् मिथ्याभिमान है। ज्वालासिंह कोई ऋषि नहीं, देवता नहीं, और न यह संभव है कि ईर्षावेगसे कभी उनका हृदय प्रवाहित न हुआ हो। उनकी यह गर्वपूर्ण नीतिज्ञता और धर्मपरायणता स्वयं उस ईर्षाका फल है, जो उनके हृदयमें अपनी मानसिक लघुताके ज्ञानसे प्रज्ज्वलित हुई है।

यह सोचते हुए वह घर पहुँचे तो अपने दोनों छोटे चचेरे भाइयोंको अपने कमरेमें किताबें उलटते-पलटते देखा। यद्यपि यह कोई असाधारण बात न थी, पर ज्ञानशङ्कर इस समय मानसिक अशान्तिसे पीड़ित हो रहे थे, जल गये और दोनों लड़कोंको डाँटकर भगा दिया। इन लोगोंने अवश्य मुझे छेड़नेके लिये इन शैतानोंको यहाँ भेज दिया है। नीचे इतना बड़ा दीवानखाना है, दो कमरे हैं, क्या उनके लिये इतना काफी नहीं कि मेरे एक छोटेसे कमरेको भी नहीं देख सकते। क्या इसपर भी दाँत है?

मुझे घरसे निकालनेकी ठानी है क्या? इस मामलेको अभीसे साफ कर लेना चाहिये। यह कदापि नहीं हो सकता कि मुझे लोग दबाते जायँ और मैं चूँ न करूँ। मनमें यह निश्चय करके उन्होंने तत्क्षण अपने चचाके नाम यह पत्र लिखा :—

मान्यवर, यह बात मेरे लिये असह्य है कि आपके सुपुत्र मेरी अनुपस्थितिमें मेरे कमरेमें आकर ऊधम मचावें और मेरी वस्तुओंका सर्वनाश करें। मैं चाहता हूँ, कि आज घरका बटवारा हो जाय और लड़कोंको ताकीद कर दी जाय कि वह भूलकर भी मेरे मकानमें पदक्षेप न करें, अन्यथा मैं उनकी ताड़ना करूँ, तो आपको या चाचीजीको मुझसे शिकायत करनेका कोई अधिकार न रहेगा। इसका ध्यान रखियेगा कि मुझे जो भाग मिले वह गार्हस्थ्य आवश्यकताओंके अनुकूल हो, और सबसे बड़ी बात यह है कि वह पृथक् हो, जिसमें मैं उसे अपना समझ सकूँ और आते-जाते, उठते-बैठते, आग्नेय नेत्रों और व्यंग-शरोंका लक्ष्य न बनूँ।

यह पत्र कहारको देकर वह उत्तरका इन्तजार करने लगे। सोच रहे थे कि देखें, बुड्ढा अबकी क्या चाल चलता है? एक क्षणमें कहारने उसका जवाब लाकर उनके हाथमें रख दिया:—

बेटा, मेरे लड़के तुम्हारे लड़के हैं। उन्हें दण्ड देनेका तुमको पूरा अधिकार है, इसकी शिकायत मुझे न कभी हुई है न होगी। बल्कि तुम्हारा मुझपर अनुग्रह होगा, यदि कभी-कभी उनकी खबर लेते रहो। रहा घरका बटवारा, उसे मैं तुम्हारे ही ऊपर छोड़ता हूँ। घर तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारा हूँ, जो टुकड़ा चाहो मुझे दे दो, मुझे कोई आपत्ति न होगी। हाँ, यह ध्यान रखना कि मैं बाहर बैठनेका आदी हूँ, इसलिये दीवानखानेके बरामदेमें मेरे लिये एक चौकीकी जगह दे देना। बस, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरे जीवनकालमें यह विच्छेद न होता, पर तुम्हारी यदि इच्छा है और तुम इसीमें प्रसन्न हो तो मैं क्या कर सकता हूँ!

ज्ञानशङ्करने पुर्जेको जेबमें रख लिया और मुस्कुराये। बुड्ढा कैसा घाग है, इन्हीं नम्रताओंसे तो उसने पिताजीको उल्लू बना लिया था, मुझसे भी वही चाल चल रहा है, पर मैं ऐसा गौखा नहीं हूँ। समझे होंगे कि जरा दब जाऊँ तो वह आप ही दब जायगा। यहाँ ऐसा विषम शालीनताका पाठ नहीं पढ़ा है। विवश होकर दबना तो समझमें आता है, पर किसीकी खातिर-से दबना, केवल मुरौवतके हाथोंकी कठपुतली बनना, यह निरी भावुकता है!

ज्ञानशङ्कर बैठकर सोचने लगे, कैसे इस समस्याकी पूर्ति करूँ, केवल यह एक कमरा नीचेके दीवानखाने और उसके बगलके दोनों कमरोंकी समता नहीं कर सकता। ऊपरके दो कमरोंपर दयाशङ्करका अधिकार है। पर ऊपरके तीनों कमरे मेरे नीचेके तीनों कमरे उनके। यहाँ तो बड़ी सुगमतासे विभाग हो गया; किन्तु जनानेघरमें यह पार्थक्य इतना सुलभ नहीं। परदेकी कमसे कम दो दीवारें खींचना पड़ेगा। पूरबकी ओर निकासके लिये एक द्वार खोलना पड़ेगा, और इसमें झंझट है। म्युनिसिपैलिटी महीनोंका अलसेट लगा देगी। क्या हर्ज है, यदि मैं दीवानखाने-के नीचे-ऊपरके दोनों भागोंपर सन्तोष कर लूँ? जनाना मकान उन्हींके हिस्सेमें डाल दूँ। यहाँ ऊपर स्त्रियाँ भली भाँति रह सकती हैं। जनाना मकान इससे बड़ा अवश्य है, पर न जाने कबका बना हुआ है। थोड़े ही दिनोंमें उसे फिरसे बनवाना पड़ेगा। दीवारें अभीसे गिरने लगी हैं। नित्य मरम्मत होता ही रहता है। छत भी टपकती है। बस, मेरे लिये दीवानखाना ही अच्छा है। चचासाहबका इसमें गुजर नहीं हो सकता, उन्हें विवश होकर जनाना मकान लेना पड़ेगा। यह बात मुझे खूब सूझी, अपना अर्थ भी सिद्ध हो जायगा और उदारताका श्रेय भी हाथ रहेगा।

मनमें यह निश्चय करके वह स्त्रियोंसे परामर्श करनेके लिये अन्दर गये। वह सभ्यताके अनुसार स्त्रियोंकी सम्मति अवश्य

लेते थे, पर "वीटो" का अधिकार अपने हाथमें रखते, और प्रत्येक अवसरपर उसका उपयोग करनेके कारण वह अवाध्य सम्मतिका गला घोंट देते थे। वह अन्दर गये तो उन्हें बड़ा करुणाजनक दृश्य दिखाई दिया। दयाशंकर कचहरी जा रहे थे और बड़ी बहू आँखोंमें आँसू भरे उन्हें विदा कर रही थीं। दोनों बहनें उनके पैरोंसे लिपटकर रो रही थीं। उनकी पत्नी अपने कमरेके द्वारपर घूँघट निकाले उदास खड़ी थी। संकोच-वश पतिके पास न आ सकती थी। श्रद्धा भी खड़ी रो रही थी। आज अभियोगका फैसला सुनाया जानेवाला था। मालूम नहीं, क्या होगा। घर लौटकर आना बदा है या फिर घरका मुँह देखना नसीब न होगा। दयाशंकर अत्यन्त कातर देख पड़ते थे। ज्ञानशंकरको देखते ही उनके नेत्र सजल हो गये, निकट आकर बोले, भैया आज मेरा हृदय शङ्कासे काँप रहा है, ऐसा जान पड़ता है, आप लोगोंके दर्शन न होंगे। मेरे अपराधोंको क्षमा कीजियेगा, कौन जाने फिर भेंट हो या न हो, दयाका क्या आसरा, यह घर अब आपके सुपुर्द है।

ज्ञानशङ्कर उनकी यह बातें सुनकर पिघल गए। अपने हृदय की संकीर्णता और क्षुद्रतापर ग्लानि उत्पन्न हुई। तस्कीन देते हुए बोले, ऐसी बातें मुँहसे न निकालो, तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा। ज्वालासिंह कितने ही निर्दयी बनें, पर मेरे एहसानोंको नहीं भूल सकते। और सच्ची बात तो यह है कि मैं अभी तुम्हारे ही सम्बन्धमें बातें करके उनके पाससे आ रहा हूँ, तुम अवश्य बरी हो जाओगे। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें मुझे इसका विश्वास दिलाया है। चलता तो मैं भी तुम्हारे साथ, किन्तु मेरे जानेसे काम बिगड़ जायगा।

दयाशङ्करने अविश्वासपूर्ण कृतज्ञताके भावसे उनकी ओर देखकर कहा, हाकिमोंकी बातका क्या भरोसा ?

ज्ञानशङ्कर—ज्वालासिंह उन हाकिमोंमें नहीं हैं।

दयाशङ्कर—यह न कहिये, बड़ा बेमुरौवत आदमी है।

ज्ञानशङ्करने उनके हृदयस्थ अविश्वासको ताड़कर कहा, यही हृदयकी निर्बलता हमारे अपराधोंका ईश्वरीय दण्ड है, नहीं तो तुम्हें इतना अविश्वास न होता।

दयाशङ्कर लज्जित होकर वहाँसे चले गये। ज्ञानशङ्करने भी उनसे और कुछ न कहा। उन्होंने हारी हुई बाजीको जीतना चाहा था, पर सफल न हुए। वह इस बातपर मनमें झुंझलाये कि यह लोग मुझे उच्च भावोंके योग्य ही नहीं समझते। मैं इनकी दृष्टिमें विषैला सर्प हूँ। जब मुझपर अविश्वास है तो फिर जो कुछ करना है वह खुल्लमखुल्ला क्यों न करूँ? आत्मीयताका स्वाँग भरना व्यर्थ है। इन भावोंसे यह लोग अब हत्थे चढ़ने वाले नहीं। सद्भावोंका वह अङ्कुर जो एक क्षणके लिये उनके हृदयमें विकसित हुआ था, इन दुष्कामनाओंसे झुलस गया। वह विद्याके पास गये तो उसने पूछा, आज सवेरे कहाँ गये थे?

ज्ञानशङ्कर—जरा ज्वालासिंहसे मिलने गया था।

विद्या—तुम्हारी ये बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।

ज्ञान—कौनसी बातें?

विद्या—यही अपने घरके लोगोंकी हाकिमोंसे शिकायत करना। भाइयोंमें खटपट सभी जगह होती है, मगर कोई इस तरह भाईकी जड़ नहीं काटता।

ज्ञानशङ्करने हाठ चबाकर कहा, तुमने मुझे इतना कमीना, इतना कपटी समझ लिया है?

विद्या दृढ़तासे बोली, अच्छा, मेरी कसम खाओ कि तुम इसलिये ज्वालासिंहके पास नहीं गये थे।

ज्ञानशङ्करने कठोर स्वरमें कहा, मैं तुम्हारे सामने अपनी सफाई देना आवश्यक नहीं समझता।

यह कहकर ज्ञानशङ्कर चारपाईपर बैठ गये। विद्याने पतेकी बात कही थी और इसने उन्हें मर्माहत कर दिया था। उन्हें

इस समय विदित हुआ कि सारे घरके लोग, यहाँतक कि मेरी स्त्री भी मुझे कितना नीच समझती है।

विद्याने फिर कहा, अरे तो यहाँ कोई दूसरा थोड़े ही बैठा हुआ है, जो सुन लेगा।

ज्ञान—चुप भी रहो, तुम्हारी ऐसी बातोंसे बदनमें आग लग जाती है। मालूम नहीं, तुम्हें कब बात करनेकी तमीज आवेगी। क्या हुआ, आज भोजन न मिलेगा क्या? दोपहर तो होनेको आयी।

विद्या—आज तो भोजन बना ही नहीं। तुम्हींने घर बाँटने-के लिये चचाजीको कोई चिट्ठी लिखी थी। तबसे वह बैठे हुए रो रहे है।

ज्ञान—उनका रोनेका जी चाहता है तो रोयें, हमलोगोंको भूखों मारेंगे क्या?

विद्याने पतिको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखकर कहा, घरमें जब ऐसा रार मचा हो तो खाने-पीनेको इच्छा किसे होती है? चचाजीको इस दशामें देखकर किसके घंटके नीचे अन्न जायगा। एक तो लड़केपर यह विपत्ति दूसरे घरमें यह द्वेष। जबसे तुम्हारी चिट्ठी पायी है, सिर नहीं उठाया। तुम्हें अलग होनेकी यह धुन क्यों समायी है?

ज्ञान—इसीलिये कि जो थोड़ी बहुत जायदाद बच रही है वह भी इस भाड़में न जल जाय। पहले घरमें छः हजार सालाना-की जायदाद थी। अब मुश्किलसे दो हजारकी रह गयी है। इन लोगोंने सब खा-पीकर बराबर कर दिया।

विद्या—तो यह लोग कोई पराये तो नहीं हैं।

ज्ञान—तुम जब ऐसी बड़ी-बड़ी बातें करने लगती हो तो मालूम होता है, धन्नासेठकी बेटी हो। तुम्हारे बापके पास तो लाखोंकी सम्पत्ति है, क्यों नहीं उसमेंसे थोड़ीसी हमें दे देते, वह तो कभी बात भी नहीं पूछते और तुम्हारे पैरोंतले गंगा बहती है।

विद्या—पुरुषार्थी लोग दूसरोंकी सम्पत्तिपर मुँह नहीं फैलाते। अपने बाहुबलका भरोसा रखते हैं।

ज्ञान—लजाती तो नहीं हो, ऊपरसे बढ़-बढ़कर बातें करती हो। यह क्यों नहीं कहती कि घरकी जायदाद प्राणोंसे भी प्रिय होती है और उसकी रक्षा प्राणोंसे भी अधिक की जाती है? नहीं तो ढाई लाख सालाना जिसके घरमें आता हो, उसके लिये बेटी दामादपर दो-चार हजार खर्च कर देना कौनसी बड़ी बात है? लाला साहेब तो पैसेको यों दाँतोंसे पकड़ते हैं और तुम इतनी उदार बनती हो, मानों जायदादका कुछ मूल्य ही नहीं।

इतनेमें श्रद्धा आ गयी और ज्ञानशंकर घरके बटवारेके विषयमें उससे बातें करने लगे।

६

लाला प्रभाशंकरका क्रोध ज्योंही शांत हुआ वह अपने कटु वाक्योंपर बहुत लज्जित हुए। बड़ी बहूका तानेकी बातें ज्यों-ज्यों उन्हें याद आती थीं, ग्लानि और भी बढ़ती जाती थी। जिस भाईके प्रेम और अनुरागसे उनका हृदय परिपूर्ण था, जिसके मृत्यु शोकका घाव अभी भरने न पाया था, जिसका स्मरण आते ही आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगती थी, उसके प्राणाधार पुत्रके साथ उन्हें अपना यह बर्ताव बड़ी कृतघ्नताका मालूम होता था। रातका उन्होंने कुछ न खाया। सिर-पीड़ाका बहाना करके लेट रहे। कमरेमें धुँधला प्रकाश था। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानों लाला जटाशंकर द्वारपर खड़े उनकी ओर तिरस्कार-की दृष्टिसे देख रहे हैं। वह घबराकर उठ बैठे, साँस बेगसे चलने लगी। बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि इसी दम चलकर ज्ञानशंकरसे क्षमा माँगूँ, किन्तु रात ज्यादा हो गयी थी, बेचारे एक ठंडी साँस खींचकर फिर लेट रहे। हा! जिस भाईने जिन्दगी भरमें मेरी ओर कड़ी निगाहसे भी नहीं देखा, उसकी आत्माको मेरे

कारण ऐसा विषाद हो ! मैं कितना अत्याचारी, कितना संकीर्ण-हृदय, कितना कुटिल-प्रकृति हूँ !

प्रातःकाल उन्होंने बड़ी बहूसे पूछा, रात ज्ञानूने कुछ खाया था या नहीं ?

बड़ी बहू—रात चूल्हा ही नहीं जला, किसीने भी नहीं खाया।

प्रभाशङ्कर—तुम लोग खाओ या न खाओ, लेकिन उसे क्यों भूखों मारती हो ? भला ज्ञानू अपने मनमें क्या कहता होगा ! मुझे कितना नीच समझ रहा होगा !

बड़ी बहू—नहीं तो अबतक मानों वह तुम्हें देवता समझता था। तुम्हारी आँखोंपर पर्दा पड़ा होगा, लेकिन मैं इस छोकरेका रुख सालभरसे देख रही हूँ। अचरज यही है कि वह अबतक कैसे चुप रहा। आखिर वह क्या समझकर अलग हो रहा है ? यही न कि हमलोग पराये हैं ? उसे इसकी लेशमात्र भी परवाह नहीं कि इन लोगोंका निर्वाह कैसे होगा ? उसे तो बस रुपयेकी हाय-हाय पड़ी हुई है, चाहे चचा, भाई, भतीजे जीयें या मरें। ऐसे आदमीका मुँह देखना पाप है।

फिर वही बात मुँहसे निकालती हो। अगर वह अपना आधा हिस्सा माँगता है तो क्या बुरा करता है ? यही तो संसार-की प्रथा हो रही है।

बड़ी बहू—तुम्हारी तो बुद्धि मारी गयी है, कहाँतक कोई समझाये, जैसे कुछ सूझता ही नहीं। हमारे लड़केकी जानपर बनी हुई है, घर विध्वंस हुआ जाता है, दानापानी हराम हो रहा है, वहाँ आधी राततक हारमोनियम बजता है। मैं तो उसे काला नाग समझती हूँ, जिसके विषका उतार नहीं। यदि कोई हमारे गलेपर छुरी भी चला दे तो उसकी आँखोंमें आँसू न आवे। तुम यहाँ बैठे पछता रहे हो और वह टोले-महल्लेमें घूम-घूम तुम्हें बदनाम कर रहा है। सब तुम्हींको बुरा कह रहे हैं।

प्रभा—यह सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है, उसका हृदय इतना क्षुद्र नहीं है।

बड़ी बहू—तुम इसी तरह बैठे स्वर्गसपना देखते रहोगे और वह एक दिन सब सम्बन्धियोंको बटोरकर बाँट-बखरेकी बात छेड़ देगा, फिर कुछ करते-धरते न बनेगा। राय कमलानन्दसे भी पत्र-व्यवहार कर रहा है। मेरी बात मानो, अपने सम्बन्धियों-को भी सचेत कर दो। पहलेसे सजग रहना अच्छा है।

प्रभाशङ्करने गौरवोन्मत्त होकर कहा, यह हमसे मरते दमतक न होगा। मैं ऐसा निर्लज्ज नहीं हूँ, कि अपने घरकी फूटका ढिंढोरा पीटता फिरूँ। ज्ञानशंकर मुझसे चाहे जो भाव रखे, किन्तु मैं उसे अपना लड़का ही समझता हूँ। हम दोनों भाई एक दूसरेके लिये प्राण देते रहे, आज भैयाके पीछे मैं इतना बेशर्म हो जाऊँ कि दूसरोंसे पञ्चायत कराता फिरूँ। मुझे ज्ञानशंकर-से ऐसे द्वेषकी आशा नहीं, लेकिन यदि उसके हाथों मेरा अहित भी हो जाय तो भी मुझे लेशमात्र भी दुःख न होगा। अगर भैयापर हमारा बोझ न होता तो उनका जीवन बड़े सुखसे व्य-तीत हो सकता था। ज्ञानू उन्हींका लड़का है। यदि उसके सुख और संतोषके लिये हमें थोड़ासा कष्ट भी हो तो हमें बुरा न मानना चाहिये। हमारे सिर उसके ऋणसे दबे हुए हैं। मैं छोटी-छोटी बातोंके लिये उससे रार मचाना अनुचित समझता हूँ।

बड़ी बहूने इसका प्रतिवाद न किया, उठकर वहाँसे चली गयीं। प्रभाशङ्कर उन्हें और भी लज्जित करना चाहते थे। कुछ देरतक वहाँ बैठे रहे कि आ जाय तो दिलका बुखार निकालूँ, लेकिन जब देर हुई तो उकताकर बाहर चले आये। वह पहले कितनी ही बार बड़ी बहूसे ज्ञानशङ्करकी शिकायत कर चुके थे। उनके फैशन और ठाटके लिये वह कभी खुशीसे रुपये न देते थे; किन्तु जब वह बड़ी बहू या अपने घरके किसी अन्य व्यक्तिको ज्ञानशङ्करसे विरोध करते देखते, तो उनकी न्यायप्रवृत्ति प्रज्ज्व-

लित हो जाती थी और वह उमंगमें आकर सज्जनता और उदारताकी ऐसी डींग मारने लगते थे, जिसको व्यवहारमें लानेका कदाचित् उन्हें कभी साहस न होता।

बाहर आकर वह आँगनमें टहलने लगे और तेजशङ्करको यह देखनेको भेजा कि ज्ञानशङ्कर क्या कर रहे हैं। वह उनसे क्षमा माँगना चाहते थे, किन्तु जब उन्हें पैरगाड़ीपर सवार कहीं जाते देखा, तो कुछ न कह सके। ज्ञानशङ्करके तेवर कुछ बदले हुए थे, आँखोंमें क्रोध झलक रहा था। प्रभाशङ्करने सोचा, इतने सवेरे यह कहाँ जा रहे हैं, अवश्य कुछ दालमें काला है। उन्होंने अपनी चिड़ियोंके पिंजरे उतार लिये और दाने चुगाने लगे। पहाड़ी मैनेके हरिभजनका आनन्द उठानेमें वह अपनेको भूल जाया करते थे। इसके बाद स्नान करके रामायणका पाठ करने लगे। इतनेमें दस बज गये और कहारने ज्ञानशङ्करका पत्र लाकर उनके सामने रख दिया। उन्होंने तुरन्त पत्रको उठा लिया और पढ़ने लगे। उनकी ईश-वन्दनामें व्यावहारिक कामोंसे कोई बाधा न पड़ती थी। इस पत्रको पढ़कर उनके शरीरमें ज्वालासी लग गयी। उसका एक-एक शब्द चिनगारीके समान हृदयपर लगता था। ज्ञानशङ्कर कितना दंभी और ईर्षालु है, इसका कुछ अनुमान हुआ, ज्ञात हुआ कि बड़ी बहूने उसकी प्रकृतिके विषयमें जो आलोचना की थी वह सर्वथा सत्य थी। यह दुस्साहस! यह पत्र उसकी कलमसे कैसे निकला! उसने मेरी गर्दनपर तलवार भी चला दी होती तो भी मैं इतना द्वेष न कर सकता। इतना योग्य और चतुर होनेपर भी उसका हृदय इतना संकीर्ण है। विद्याका फल तो यह होना चाहिये कि मनुष्यमें धैर्य्य और सन्तोषका विकास हो, ममत्वका दमन हो, हृदय उदार हो, न कि स्वार्थपरता, क्षुद्रता और शीलहीनताका भूत सिर चढ़ जाय। लड़कोंने शरारत की थी, डाँट देते, झगड़ा मिटता, क्यों जरासी बातका बतंगड़ बनाया। अब स्पष्ट विदित हो रहा है कि साथ निबाह न होगा।

मैं कहाँतक दबा करूँगा, कहाँतक सिर झुकाऊँगा। खैर, उनकी जैसी इच्छा हो, करें। मैं अपनी ओरसे ऐसी कोई बात न करूँगा जिससे मेरी पीठमें धूल लगे। मकान बाँटनेको कहते हैं। इससे बड़ा अनर्थ और क्या होगा? घरका परदा खुल जायगा, सम्बन्धियोंमें घर-घर इसकी चर्चा होगी। हा दुर्भाग्य! घरमें दो चूल्हे जलेंगे, जो बात कभी न हुई थी, वह अब होगी! मेरे और मेरे प्रिय भाईके पुत्रके बीच केवल पड़ोसीका नाता रह जायगा। वह जो जीवनपर्यन्त साथ रहे, साथ खेले साथ रोये, साथ हँसे, अब अलग हो जायँगे। किन्तु इसके सिवा और उपाय ही क्या है! लिख दूँ कि तुम जैसे चाहे घरको बाँट लो? क्यों कहूँ कि मैं यह मकान लूँगा, यह कोठा लूँगा। जब अलग ही होते हैं तो जहाँतक हो सके आपसमें मनमोटाव न होने दें। यह सोच लाला प्रभाशङ्करने ज्ञानशङ्करके पत्रका उत्तर लिख दिया। उन्हें अब भी आशा थी कि मेरे उत्तरकी नम्रताका ज्ञानशङ्करपर अवश्य कुछ न कुछ असर होगा। क्या आश्चर्य है कि अलग होनेका विचार ही उसके दिलसे अलग हो जाय! यह विचार करके उन्होंने पत्रका उत्तर लिख दिया और जवाबका इन्तजार करने लगे।

११ बजेतक कोई जवाब न आया। दयाशङ्कर कचहरी जाने लगे। बड़ी बहू आकर बोलीं, लल्लूके साथ तुम भी चले जाओ। आज तजवीज सुनायी जायगी। जाने कैसा पड़े कैसी न पड़े। प्रभाशङ्करने अपने जीवनमें कभी कचहरीके अन्दर कदम न रखा था। दोनों भाइयोंकी प्रतिज्ञा थी कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, कचहरीका मुँह न देखेंगे। यद्यपि इस प्रतिज्ञाके कारण उन्हें कितनी ही बार हानियाँ उठानी पड़ी थीं, कितनी ही बार बल खाना पड़ा था, विरोधियोंके सामने झुकना पड़ा था, तथापि उन्होंने अबतक प्रतिज्ञाका पालन किया था। बड़ी बहूकी बात सुनकर प्रभाशङ्कर बड़े असमंजसमें पड़े। न तो जाते ही बनता था, न इनकार ही करते बनता था। बगलें झाँकने लगे। दयाशङ्करने उन्हें

द्विविधामें देखकर कुछ उदासीन भावसे कहा, आपका जी न चाहता हो न चलिये, मुझपर जो कुछ पड़ेगी देख लूँगा।

बड़ी बहू—नहीं, चले जायेंगे। हरज क्या है?

दयाशङ्कर—जब कभी कचहरी न गये तो अब कैसे जा सकते हैं? प्रतिज्ञा न टूट जायगी?

बड़ी बहू—भला, ऐसी प्रतिज्ञा बहुत देखी है। लाऊँ कपड़े?

दयाशङ्कर—नहीं, मैं अकेले ही चला जाऊँगा, आपके चलनेकी जरूरत नहीं।

यह कहकर दयाशङ्कर चले गये। बड़ी बहू भी पतिको अश्रद्धा की दृष्टिसे देखते हुए घरमें चली गयी। प्रभाशङ्कर मनमें बड़ी बहूपर झुँझला रहे थे कि इसने मेरे कचहरी जानेका प्रश्न क्यों उठाया। मैं वहाँ जाकर क्या बना लेता, हाकिमकी कलम तो पकड़ नहीं लेता, न उससे कुछ विनय-प्रार्थना ही कर सकता। और फिर जब कभी न गया तो आज क्यों जाऊँ? जिसने काँटे बोये हैं, वह उनके फल खायगा, इस फिक्रमें कहाँतक जान दूँ?

वह इसी खिन्नावस्थामें बैठे थे कि ज्ञानशङ्करका दूसरा पत्र पहुँचा। उन्होंने सम्पूर्ण दीवानखाना लेनेका निश्चय किया था। प्रभाशङ्करने सोचा था मेरी नम्रता उनके क्रोधको शांत कर देगी। उस आशाके प्रतिकूल जब यह प्रस्ताव सामने आया तो उनका चित्त अस्थिर हो गया। पत्रके निश्चयात्मक शब्दोंने उन्हें संज्ञाहीन कर दिया। बौखला गये। क्रोधकी जगह उनके हृदयमें एक विवशताका संचार हुआ। क्रोध प्रत्याघातकी सामर्थ्यका द्योतक है। उनमें यह शक्ति निर्जीव हो गयी थी। उस प्रस्तावकी भयंकर मूर्तिने संग्रामकी कल्पनातक मिटा दी। उस बालककी सी दशा हो गयी जो हाथीको सामने देखकर मारे भयके रोने लगे, उसे भागनेतककी सुधि न रहे। उनका समस्त जीवन भातृ-प्रेमकी सुखद छायामें व्यतीत हुआ था। वैमनस्य और विरोधकी यह ज्वालासम धूप असह्य हो गयी! एक दिन प्रार्थीकी भाँति

ज्ञानशङ्करके पास गये और करुण स्वरमें बोले, ज्ञानू, ईश्वरके लिये इतनी बेमुरौवती न करो। मेरी वृद्धावस्थापर दया करो। मेरी आत्मापर ऐसा निर्दय आघात मत करो। तुम सारा मकान ले लो, मेरे बाल-बच्चोंके लिये जहाँ चाहो थोड़ा सा स्थान दे दो। मैं उसीमें अपना निर्वाह कर लूँगा। मेरे जीवनभर इसी प्रकार चलने दो। जब मर जाऊँ तो जो इच्छा हो करना। एक थाली-में न खाओ, एक घरमें तो रहो, इतना सम्बन्ध तो बनाये रखो। मुझे दीवानखानेकी जरूरत नहीं है। भला सोचो तो तुम दीवान खानेमें आकर रहोगे तो बिरादरीके लोग क्या कहेंगे। नगरवाले क्या कहेंगे। सब कुछ हो गया है, पर अभीतक तुम्हारे कुलकी मर्य्यादा बनी हुई है। हम दोनों भाई नगरमें रामलखनकी जोड़ी कहलाते थे। हमारे प्रेम और एकताकी सारे शहरमें उपमा दी जाती थी। किसीको यह कहने का अवसर मत दो कि एक भाई-को आँखें बन्द होते ही आपसमें ऐसी अनबन हो गयी कि अब एक घरमें रह भी नहीं सकते। मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करो।

ज्ञानशङ्करपर इन विनयपूर्ण शब्दोंका कुछ भी असर न हुआ। उनके विचारमें यह विकृत भावुकता थी, जो मानसिक दुर्बलता का चिह्न है। हाँ, उसपर कृत्रिमताका सन्देह नहीं हो सकता था। उन्हें विश्वास हो गया कि चचा साहेबको इस समय हार्दिक वेदना हो रही है। वृद्धजनोंका हृदय कुछ कोमल हुआ करता है। इन्होंने जन्मभर कुल-प्रतिष्ठा तथा मान-मर्यादाके देवताकी उपा-सना की है। इस समय अपकीर्तिका भय चित्तको अस्थिर कर रहा है। बोले, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर यह तो विचार कीजिये कि इस पुराने घरमें दो परिवारोंका निर्वाह हो भी सकता है। रसोईका मकान केवल एक ही है। ऊपर सोनेके लिये केवल तीन कमरे हैं। आँगन कहनेको तो है, किन्तु वायु और प्रकाशका प्रवेश केवल एकमें ही होता है। स्नानगृह भी एक ही है। इन कष्टोंको नित्य नहीं झेला जा सकता।

हमारी आयु इतनी दीर्घ नहीं है कि उसका एक भाग कष्टोंके ही भेंट किया जाय। आपकी कोमल आत्माको इस परिवर्त्तनसे दुःख अवश्य होगा और मुझे आपसे पूर्ण सहानुभूति है, किन्तु भावुकताके फेरमें पड़कर अपने शारीरिक सुख और शान्तिका बलिदान करना मुझे पसन्द नहीं। यदि आप भी इस विषयपर निष्पक्ष होकर विचार करेंगे तो मुझसे सहमत हो जायँगे।

प्रभाशङ्कर—मुझे तो इस बदनामीके सामने यह असुविधाएँ कुछ भी नहीं मालूम होतीं। जैसे अबतक काम चलता आ रहा है, उसी भाँति अब भी चल सकता है।

ज्ञानशङ्कर—आपके और मेरे जीवन-सिद्धान्तोंमें बड़ा अन्तर है। आप भावोंकी आराधना करते हैं,मैं विचारका उपासक हूँ। आप निन्दाके भयसे प्रत्येक आपत्तिके सामने सिर झुकावेंगे, मैं अपनी विचार-स्वतन्त्रताके सामने लोकमतकी लेशमात्र भी परवा नहीं करता। जीवन आनन्दसे व्यतीत हो, यह हमारा अभीष्ट है। यदि संसार स्वार्थपरता कहकर इसकी हँसी उड़ाये, निन्दा करे, तो मैं उसकी सम्मतिको पैरोंतले कुचल डालूँगा। आपकी शिष्टताका आधार ही आत्मघात है। आपके घरमें चाहे उपवास होता हो, किन्तु कोई मेहमान आ जाय तो आप ऋण लेकर उसका सत्कार करेंगे। मैं ऐसे मेहमानको दूरसे ही प्रणाम करूँगा। आपके यहाँ जाड़ोंमें मेहमान लोग प्रायः बिना ओढ़ना-बिछौना लिये ही चले आते हैं। आप स्वयं जाड़ा खाते हैं, पर मेहमानोंके ओढ़ने-बिछौनेका प्रबन्ध अवश्य करते हैं। मेरे लिये यह अवस्था दुस्सह है। किसी मनुष्यको, चाहे वह हमारा निज सम्बन्धी ही क्यों न हो, यह अधिकार नहीं है कि वह इस प्रकार मुझे असमञ्जसमें डाले। मैं स्वयं किसीसे यह आशा नहीं रखता। मैं तो इसे भी सर्वथा अनुचित समझता हूँ, कि कोई असमर्थ और बिना पूर्व सूचनाके मेरे घर आये, चाहे वह मेरा भाई ही क्यों न हो। आपके यहाँ नित्य दो-चार निठल्ले नातेदार

पड़े खाट तोड़ा किये, आपकी जायदाद मटियामेट हो गयी, पर आपने कभी इशारेसे भी उनकी अवहेलना नहीं की। मैं ऐसी घास-पातको कदापि न जमने दूँगा, जिससे जीवनके पौधेका ह्रास हो। लेकिन वह प्रथा अब काल-विरुद्ध हो गयी। यह जीवन-संग्रामका युग है, और यदि हमको संसारमें जीवित रहना है तो हमें विवश होकर नवीन और पुरुषोचित सिद्धान्तोंके अनुकूल बनना पड़ेगा।

ज्ञानशङ्करने नयी सभ्यताकी जिन विशेषताओंका उल्लेख किया, उनका वह स्वयं व्यवहार न कर सकते थे। केवल उनमें मानसिक भक्ति रखते थे। प्राचीन प्रथाको मिटाना उनकी सामर्थ्य-से परे था। निन्दा और परिहाससे सिद्धान्तमें चाहे न डरते हों, पर प्रत्यक्ष उसका अवज्ञा न कर सकते थ। आतिथ्य-सत्कार और कुटुम्बपालनको मनमें चाहे अपव्यय समझते हों, पर उनके मित्रों तथा सम्बन्धियोंको कभी उनकी असज्जनताका शिकायत नहीं हुई। किन्तु, साधारणतः उनका समाधान विवादका रूप धारण कर लिया करता था, इसलिये वह आवेशमें ऐसे सिद्धान्तोंका समर्थन करने लगते थे, जिनका समुसरण करनेका उन्हें कभी साहस न होता। लाला प्रभाशङ्कर समझ गये कि इसके सामने मेरी कुछ न चलेगी, इसके मनमें जो बात ठन गयी है उसे पूरा करके छोड़ेगा। जिसे कुल-मर्य्यादकी परवा नहीं, उससे उदारताकी आशा रखनी व्यर्थ है। दुःखित भावसे बोले, बेटा, मैं पुराने जमानेका आदमी हूँ, तुम्हारी इन नयी-नयी बातोंको नहीं समझता। हम तो अपनी मान-मर्य्यादको प्राणोंसे भी प्रिय समझते थे। यदि घरमें एक दूसरेका सिर काट लेते तो भी अलग होनेका नाम नहीं लेते। लेकिन तुम्हारी इसमें हानि हो रही है तो जो इच्छा हो करो; मुझे कोई आपत्ति नहीं है। हाँ, इतना फिर भी कहूँगा कि अभी दो-चार दिन रुक जाओ। जहाँ इतने दिनों तकलीफ उठायी है, दो-चार दिन और उठा लो। आज लल्लूके मुकद्दमेका फैसला

सुनाया जायगा। हमलोगोंके हाथ-पैर फूले हुए हैं, दाना-पानी हराम हो रहा है, जरा यह आग ठंढी हो जाने दो।

ज्ञानशङ्करमें आत्मश्लाघाकी मात्रा अधिक थी। उन्हें स्वभावतः तुच्छतासे घृणा थी। पर यही ममत्व अपना गौरव और सम्मान बढ़ानेके लिये उन्हें कभी-कभी धूर्तताकी प्रेरणा किया करता था, विशेषतः जब उसके प्रकट होनेकी कोई सम्भावना न होती थी। सहानुभूतिपूर्ण भावसे बोले इस विषयमें आप निश्चिन्त रहें, दयाशङ्कर केवल मुक्त ही नहीं, बरी हो जायँगे। उधरके गवाह जैसे बिगड़े हैं, वह आपको मालूम ही है, तिसपर भी सबको शङ्का थी कि ज्वालासिंह जरूर दबावमें आ जायंगे। ऐसी दशामें मुझे कैसे चैन आ सकता था। मैं आज प्रातःकाल उनके पास गया और परमात्माने मेरी लाज रख ली। यह कोई कहनेकी बात नहीं है, पर मैंने अपने सामने फैसला लिखवाकर पढ़ लिया, तब उनका पिंड छोड़ा। पहले तो महाशय देरतक बगलें झाँकते रहे, टालमटोल करते रहे, पर मैंने ऐसा फटकारा कि अन्तमें लज्जित होकर उन्हें फैसला लिखना ही पड़ा। मैंने कहा, महाशय, आपने मेरी ही बदौलत बी० ए० की डिगरी पायी है, इसे मत भूलिये। यदि आप मेरा इतना भी लेहाज न करेंगे तो मैं समझूँगा कि एहसान संसारसे उठ गया।

प्रभाशङ्करने ज्ञानबाबूको श्रद्धापूर्ण नेत्रोंसे देखा। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि भैया साक्षात् सामने खड़े हैं और मेरे सिरपर रक्षाका हाथ रखे हुए हैं। अगर अवस्था बाधक न होती तो वह ज्ञानशङ्करके पैरोंपर गिर पड़ते और उसे आँसूकी बूँदोंसे तरकर देते। उन्हें लज्जा आयी कि मैंने ऐसे कर्तव्यपरायण, ऐसे न्यायशील, ऐसे दयालु, ऐसे देवतुल्य पुरुषका तिरस्कार किया! यह मेरी उद्दंडता थी कि मैंने उससे दयाशङ्करकी सिफारिश करनेका आग्रह किया। यह सर्वथा अनुचित था। आजकलके सुशिक्षितगण अपना कर्तव्य स्वयं समझते हैं और अपने इच्छानुकूल उसका

पालन करते हैं यही कारण है, कि उन्हें किसीकी प्रेरणा अप्रिय लगती है। बोले, बेटा, यह समाचार सुनकर मुझे कितना हर्ष हो रहा है, वह प्रकट नहीं कर सकता। तुमने मुझे प्राण दान दिया और कुलकी मर्य्याद रख ली। मेरा रोम-रोम तुम्हारा अनुगृहीत है। मुझे अब विश्वास हो गया है कि भैया देवलोकमें बैठे हुए भी मेरी रक्षा कर रहे हैं। मुझे अत्यन्त खेद है, कि मैंने तुम्हें कटु शब्द कहे; परमात्मा मुझे इसका दण्ड दे, मेरे अपराध क्षमा करो। बुड्ढे आदमी चिड़चिड़े हुआ करते हैं, उनकी बातोंका बुरा न मानना चाहिये। मैंने अबतक तुम्हारा अन्तरस्वरूप न देखा था। तुम्हारे उच्चादर्शोंसे अनभिज्ञ था। मुझे यह स्वीकार करते हुए खेद होता है कि मैं तुम्हें अपना अशुभचिन्तक समझने लगा था। पर अब मुझे तुम्हारी सज्जनता, तुम्हारा भातृस्नेह और तुम्हारी उदारताका अनुभव हुआ। मुझे इस मतिभ्रमका सदैव पछतावा रहेगा।

यह कहते-कहते लाला प्रभाशङ्करका गला भर आया। हृदय पर जमा हुआ बर्फ पिघल गया, आँखोंसे जलबिन्दु गिरने लगे। किन्तु ज्ञानशङ्करके मुखसे सान्त्वनाका एक शब्द भी न निकला। वह इस कपटाभिनयका रङ्ग भी गहरा न कर सके। प्रभाशङ्कर-की सरलता, श्रद्धालुता और निर्मलताके आकाशमें उन्हें अपनी स्वार्थान्धता, कपटशीलता और मलिनता अत्यन्त कालिमापूर्ण और ग्लानिमय दिखाई देने लगी। वह स्वयं अपनी ही दृष्टिमें गिर गये, इस कपटकाण्डका आनन्द न उठा सके। शिक्षित आत्मा इतनी दुर्बल नहीं हो सकती, इस विशुद्ध वात्सल्य ध्वनि-ने उनकी सोयी हुई आत्माको एक क्षणके लिये जगा दिया। उसने आँखें खोलीं, देखा कि मन मुझे काँटोंमें घसीटे लिये चला जाता है। वह अड़ गयी, धरतीपर पैर जमा दिये और निश्चय कर लिया कि इससे आगे न बढ़ूँगी।

सहसा सैयद ईजादहुसेन मुस्कराते हुए दीवानखानेमें आये;

प्रभाशङ्करने उनकी ओर आशाभरे नेत्रोंसे देखकर पूछा, कहिये, कुशल तो है?

ईजाद—सब खुदाका फ़ज़लोकरम है। लाइये, मुँह मीठा कराइये। खुदा गवाह है कि सुबहसे अबतक पानीका एक कतरा भी हलकके नीचे गया हो। बारे खुदाने आबरू रख ली, बाजी अपनी रही, बेदाग छुड़ा लाये, आँचतक न लगी। हक़ यह है कि जितनी उम्मीद थी उससे कुछ ज्यादा ही कामयाबी हुई। मुझे ज्वालासिंहसे ऐसी उम्मीद न थी।

प्रभाशङ्कर—ज्ञानू, यह तुम्हारी सद्प्रेरणाका फल है। ईश्वर तुम्हें चिरंजीवी करे।

ईजाद – बेशक, बेशक, इस कामयाबीका सेहरा आपके ही सिर है। मैंने भी जो कुछ किया है आपकी ही बदौलत किया है। आपका आज सुबहको उनके पास जाना काम कर गया। कल मैंने इन्हीं हाथोंसे तजवीज लिखी थी। वह सरासर हमारे खिलाफ थी। आज जो तजवीज उन्होंने सुनायी, वह कोई और ही चीज है, यह सब आपकी मुलाक़ातका नतीजा है। आपने उनसे जो बातें कीं और जिस तरीकेसे उन्हें राहे रास्तपर लाये उसकी हर्फबहर्फ इत्तला मुझे मिल चुकी है। अगर आपने इतनी साफगोईसे काम न लिया होता तो वह हजरत पंजेमें आनेवाले न थे।

प्रभाशङ्कर—बेटा, आज भैया होते तो तुम्हारा यह सदुपयोग देखकर उनकी गजभरकी छाती हो जाती। तुमने उनका सिर ऊँचा कर दिया।

ज्ञानशङ्कर देख रहे थे कि ईजादहुसेन चचासाहबके साथ कैसे दाँव खेल रहा है और मेरा मुँह बन्द करनेके लिये कैसे कपटनीतिसे काम ले रहा है। मगर कुछ बोल न सकते थे। चोर-चोर मौसेरे भाई हो जाते हैं। उन्हें अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि मैंने ऐसे दुर्बल प्रकृतिके मनुष्यको उसके कुटिल स्वार्थ-

साधनमें योग देनेपर बाध्य हो रहा हूँ। मैंने कीचड़में पैर रखा और प्रतिक्षण नीचेकी ओर फिसलता चला जाता हूँ।

७

जबतक इलाकेका प्रबन्ध लाला प्रभाशङ्करके हाथोंमें था, वह गौसखाँको अत्याचारसे रोकते रहते थे। अब ज्ञानशङ्कर मालिक और मुख्तार थे। उनकी स्वार्थप्रियताने खाँसाहेबको अपनी अभिलाषाएँ पूर्ण करनेका अवसर प्रदान कर दिया था। वर्षान्तपर उन्होंने बड़ी निर्दयतासे लगान वसूल किया। एक कौड़ी भी बाकी न छोड़ी। जिसने रुपये न दिये या न दे सका, उसपर नालिश की, कुर्की करायी और एकके डेढ़ वसूल किया। शिकमी असामियोंको समूल उखाड़ दिया और उनकी भूमिपर लगान बढ़ाकर दूसरे असामियोंको सौंप दिया। मौरूसी और दखीलकार असामियोंपर भी करवृद्धिके उपाय सोचने लगे। वह जानते थे कि करवृद्धि भूमिकी उत्पादक शक्तिपर निर्भर है और इस शक्तिको घटाने-बढ़ानेके लिये केवल थोड़ीसी वाक्यचतुरताकी आवश्यकता होती है। सारे इलाकेमें हाहाकार मच गया। करवृद्धिके पिशाचको शान्त करनेके लिये लोग नाना प्रकारके अनुष्ठान करने लगे। प्रभातसे सन्ध्यातक खाँसाहेबका दरबार लगा रहता! वह स्वयं मसनद लगाकर विराजमान होते। मुन्शी मौजीलाल पटवारी उनके दाहिनी ओर बैठते और सुक्खू चौधरी बायीं ओर। यह महानुभाव गाँवके मुखिया सबसे बड़े किसान और सामर्थी पुरुष थे। असामियोंपर उनका बहुत दबाव था; इसलिये नीतिकुशल खाँसाहेबने उन्हें अपना मन्त्री बना लिया था। यह त्रिमूर्त्ति समस्त इलाकेकी भाग्यविधायक थी।

खाँसाहेब पहले अपने अवकाशका समय भोग-विलासमें व्यतीत किया करते थे। अब यह समय कुरानका पाठ करनेमें व्यतीत होता था। जहाँ कोई फकीर या भिक्षुक द्वारपर खड़ा भी न होने पाता था, वहाँ अब अभ्यागतोंका उदारतापूर्ण सत्कार

किया जाता। कभी-कभी वस्त्रदान भी होता। लोकसिद्धिने परलोक बनानेकी सदिच्छा उत्पन्न कर दी थी।

अब खाँसाहेबको विदित हुआ कि इस इलाकेको विद्रोही समझनेमें मेरी भूल थी। ऐसा विरलाही कोई असामी था जिसने उनके चौखटपर मस्तक न नवाया हो। गाँवमें दस बारह घर ठाकुरोंके थे। उनसे लगान बड़ी कठिनाईसे वसूल होता था। किन्तु इजाफा लगानेकी खबर पाते ही वह भी दब गये। डपटसिंह उनके नेता थे। वह दिनमें दस-पाँच बार खाँसाहेबको सलाम करने आया करते। दुखरन भगत शिवजीको जल चढ़ाने जाते समय पहले चोपालका दर्शन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। बस, अब समस्त इलाकेमें कोई द्रोही था तो मनोहर था और उसका कोई बन्धु था तो कादिर। वह खेत से लौटता तो कादिरके घर जा बैठता और अपने दिनोंको रोता। इन दोनों मनुष्योंको साथ बैठे देखकर सुक्खू चौधरीकी छातीपर साँप लोटने लगता था। वह यह जानना चाहते थे कि इन दोनोंमें क्या बातें हुआ करती हैं! अवश्य दोनों मेरी ही बुराई करते होंगे। उन्हें देखते ही दोनों चुप हो जाते थे, इससे चौधरीके सन्देहकी और भी पुष्टि हो जाती थी। खाँसाहबने कादिरका नाम शैतान रख छोड़ा था और मनोहरको काला नाग कहा करते थे। काले नागका तो उन्हें बहुत भय नहीं था; क्योंकि एक चोटसे उसका काम तमाम कर सकते थे, मगर शैतानसे डरते थे। क्योंकि उसपर चोट करना दुस्तर था। उस जवारमें कादिरका बड़ा मान था। वह बड़ा नातिकुशल, उदार और दयालु था। इसके अतिरिक्त उसे जड़ी-बूटियोंका अच्छा ज्ञान था। यहाँ हकीम, वैद्य, डाक्टर, जो कुछ था वही था। रोगनिदानमें भी उसे पूर्ण अभ्यास था। इससे जनताकी उसमें विशेष श्रद्धा थी। एक बार लाला जटाशंकर कठिन नेत्ररोगसे पीड़ित थे। बहुत कुछ प्रयत्न किये, पर कुछ लाभ न हुआ। कादिरकी जड़ी-

बूटियोंने एक ही सप्ताहमें इस असाध्य रोगका निवारण कर दिया। खाँसाहेबको भी एक बार कादिरके ही नुस्खेने प्लेगसे बचा लिया था। खाँसाहेब इस उपकारसे तो नहीं, पर कादिरकी सर्वप्रियतासे सशंक रहते थे। वह सदैव इसी उधेड़बुनमें रहते थे, कि इस शैतानको कैसे पंजेमें लाऊँ।

किन्तु कादिर निश्चिन्त और निश्शंक अपने काममें लगा रहता था। उसे एक क्षणके लिये भी यह भय न होता था कि गाँवके जमींदार और कारिन्दा मेरे शत्रु हो रहे हैं और उनकी शत्रुता मेरा सर्वनाश कर सकती है। यदि इस समय भी दैवयोगसे खाँसाहेब बीमार पड़ जाते, तो वह उनका इशारा पाते ही तुरन्त उनके उपचार और सेवा-शुश्रूषामें दत्तचित्त हो जाता। उसके हृदयमें राग और द्वेषके लिये स्थान न था और न इस बातकी ही परवा थी कि मेरे विषयमें कैसे-कैसे मिथ्यालाप हो रहे हैं। वह गाँवमें विद्रोहाग्नि भड़का सकता था, खाँसाहेब और उनके सिपाहियोंकी खबर ले सकता था। गाँवमें ऐसे कई उद्दण्ड नवयुवक थे, जो इस अनिष्टके लिये आतुर थे। किन्तु कादिर उन्हें सम्भाले रहता था। दीनरक्षा उसका लक्ष्य था, किन्तु क्रोध और द्वेषको उभारकर नहीं, वरन् सद्व्यवहार तथा सत्प्रेरणासे।

मनोहरकी दशा इसके प्रतिकूल थी। जिस दिनसे वह ज्ञानशङ्करकी कठोर बातें सुनकर लौटा था, उसी दिनसे विकृत भावनाएँ उसके हृदय और मस्तिष्कमें गूँजती रहती थीं। एक मर्माहत पक्षी था, जो घावोंसे तड़प रहा हो। वह अपशब्द उसे एक क्षण भी न भूलते थे। वह ईंटका जवाब पत्थरसे देना चाहता था। वह जानता था कि सबलोंसे बैर बढ़ानेमें मेरा ही सर्वनाश होगा; किन्तु इस समय उसकी अवस्था उस मनुष्यकीसी हो रही थी, जिसके झोपड़ेमें आग लगी हो और वह उसके बुझानेमें असमर्थ होकर शेष भागोंमें भी आग लगा दे कि किसी प्रकार

इस विपत्तिका अन्त हो। रोगी अपने रोगको असाध्य देखता है, तो पथ्यापथ्यकी बेड़ियोंको तोड़कर मृत्युकी ओर दौड़ता है। मनोहर चौपालके सामनेसे निकलता तो अकड़कर चलने लगता। अपनी चारपाईपर बैठे हुए कभी खाँ साहेब या गिरधर महाराजको आते देखता, तो उठकर सलाम करनेके बदले पैर फैला कर लेट जाता। सावनमें उसके पेड़ोंके आम पके, उसने सब आम तोड़कर घरमें रख लिये, जमींदारका चिरकालसे बधा हुआ चतुर्थांश न दिया, और जब गिरधर महाराज माँगने आये तो उन्हें दुत्कार दिया। वह सिद्ध करना चाहता था कि मुझे तुम्हारी धमकियोंकी जरा भी परवा नहीं है। कभी-कभी ९-१० बजे रात तक उसके द्वारपर गाना होता, जिसका अभिप्राय केवल खाँसाहेब और सुक्खू चौधराको जलाना था। बलराज को अब वह स्वेच्छाचार प्राप्त हो गया, जिसके लिये पहले उसे झिड़कियाँ खानी पड़ती थीं। उसके रंगीले सहचरोंका यहाँ खूब आदर-सत्कार होता, भङ्ग छनती, लकड़ीके खेल होते, लावनी और ख्यालकी तानें उड़तीं, डफली बजती। मनोहर जवानीके जोशके साथ इन जमघटोंमें सम्मिलित होता। ये ही दोनों पक्षोंके विचार विनिमयके माध्यम थे। खाँसाहेबकी एक-एक बातकी सूचना यहाँ हो जाती थी। यहाँका एक-एक शब्द वहाँ पहुँच जाता था। यह गुप्त चालें आगपर तेल छिड़कती रहती थीं। खाँसाहेबने एक दिन कहा, आजकल तो उधर खूब गुलछर्रे उड़ रहे हैं, बेदखलीका सम्मन पहुँचेगा तो होश ठिकाने हो जायगा। मनोहरने उत्तर दिया, बेदखलीकी धमकी दूसरोंको दें, यहाँ हमारे खेतोंके मेड़ोंपर कोई आया तो उसके बाल-बच्चे उसके नामको रोयेंगे।

एक दिन संध्या समय, मनोहर द्वारपर बैठा हुआ बैलोंके लिये कड़वी छाँट रहा था और बलराज अपनी लाठीमें तेल लगाता था, कि ठाकुर डपटसिंह आकर माँचेपर बैठ गये, और बोले, सुनते हैं डिप्टी ज्वालासिंह हमारे बाबूसाहेबके पुराने

दोस्त हैं। छोटे सरकारके लड़के जो थानेदार थे, उनका मुकद्दमा उन्हींके इजलासमें था। वह आज बरी हो गये।

मनोहर—रिसवत तो साबित हो गयी थी न?

डपटसिंह—हाँ, साबित हो गयी थी। किसीको उनके बरी होनेकी आशा न थी। पर बाबूज्ञानशङ्करने ऐसी सिफारिश पहुँचायी कि डिप्टी साहेबको मुकद्दमा खारिज करना पड़ा!

मनोहर—हमारे परगनेका हाकिम भी तो वही डिप्टी है।

डपट—हाँ, इसीकी तो चिन्ता है। इजाफा लगानका मामला उसीके इजलासमें जायगा और ज्ञानबाबू अपना पूरा जोर लगावेंगे।

मनोहर—तब क्या करना होगा?

डपट—कुछ समझमें नहीं आता।

मनोहर—ऐसा कोई कानून नहीं बन जाता कि वेसीका मामला इन हाकिमोंके इजलासमें न पेश हुआ करे। हाकिम लोग आप भी तो जमींदार होते हैं, इसीलिये वह जमींदारोंका पक्ष करते हैं। सुनते हैं, लाटसाहेबके यहाँ कोई पंचायत होती है। यह बातें उस पञ्चायतमें कोई नहीं कहता?

डपट—वहाँ भी तो सब जमींदार ही होते हैं, काश्तकारों-की फरियाद कौन करेगा?

मनोहर—हमने तो ठान लिया है कि एक कौड़ी भी वेसी न देंगे।

बलराजने लाठी कन्धेपर रखकर कहा, कौन इजाफा करेगा, सिर तोड़के रख दूँगा।

मनोहर—तू क्यों बीचमें बोलता है? तुझसे तो हम नहीं पूछते। यह तो न होगा कि साँझ हो गयी है, लाओ भैंस दूह लूँ, बैलोंकी नादमें पानी डाल दूँ। बेबातकी बात बकता है। (ठाकुरसे) यह लौंडा घरका रत्तीभर भी काम नहीं करता, बस खानेभरका घरसे नाता है। मटरगस्त किया करता है।

डपट—मुझसे क्या कहते हो, मेरे यहाँ तो तीन-तीन मूसल-चन्द हैं।

मनोहर—मैं तो एक कौड़ी बेसी न दूँगा, और न खेत ही छोड़ूँगा। खेतोंके साथ जान भी जायगी और दो-चारको साथ लेकर जायगी।

बलराज—किसीने हमारे खेतोंकी ओर आँख भी उठायी तो कुशल नहीं।

मनोहर—फिर बीचमें बोला?

बलराज—क्यों न बोलूँ, तुम तो चार दिनके मेहमान हो, जो कुछ पड़ेगी वह तो हमारे ही सिर पड़ेगी। जमींदार कोई बादशाह नहीं है कि चाहे जितनी जबरदस्ती करे और हम मुँह न खोलें। इस जमानेमें तो बादशाहोंका भी इतना अख्तियार नहीं, जमींदार किस गिनतीमें है! कचहरी-दरबारमें कहीं सुनायी नहीं है तो (लाठी दिखाकर) यह तो कहीं नहीं गयी है।

डपट—कहीं खाँ साहेब यह बातें सुन लें तो गजब हो जाय।

बलराज—तुम खाँ साहेबसे डरो, यह उनके दबैल नहीं हैं। खेतमें चाहे कुछ उपज हो या न हो, बेसी होती चली जाय, ऐसा क्या अंधेर है? सरकारके घर कुछ तो न्याय होगा, किस बात-पर बेसी मंजूर करेगा?

डपट—अनाजका भाव नहीं चढ़ गया है?

बलराज—भाव चढ़ गया है तो मजदूरोंकी मजदूरी भी तो चढ़ गयी है, बैलोंका दाम भी तो चढ़ गया है, लोहे-लकड़का दाम भी तो चढ़ गया है, यह किसके घरसे आवेगा?

इतनेमें कादिर मियाँ घासका गट्ठर सिरपर रक्खे हुए आकर खड़े हो गये। बलराजकी बातें सुनीं तो मुस्कुराकर बोले, भाँग का दाम भी तो चढ़ गया है। चरस भी तो महँगी हो गयी है, कत्था-सुपारी भी तो दूने दामों बिकती है, इसे क्यों छोड़े जाते हो?

मनोहर—हाँ, कादिर दादा, तुमने हमारे मनकी कही।

बलराज—तो क्या अपनी जवानीमें तुम लोगोंने बूटी-भाँग न पी होगी, या सदा इसी तरह एक जून चबेना और दूसरा जून रोटी-साग खाकर दिन काटे हैं? और फिर तुम जमींदारके गुलाम बने रहे तो उस जमानेमें और करही क्या सकते थे? न अपने खेतमें काम करते, किसी दूसरेके खेतमें मजूरी करते। अब तो शहरोंमें मजूरोंकी माँग है, रुपया रोज खानेको मिलता है, रहनेको पक्का घर अलग। अब हम जमींदारकी धौंस क्यों सहें, क्यों भर पेट खानेको तरसें?

कादिर—क्यों मनोहर, क्या इसे खानेको नहीं देते?

बलराज—यह भी कोई खाना है कि एक आदमी खाय और घरके सब आदमी उपास करें? गाँवमें मुक्खू चौधरीको छोड़के और किसके घर दोनों बेला चूल्हा जलता है? किसीको एक जून चबेना मिलता है, कोई चुटकी भर सत्तू फाँककर रह जाता है। दूसरी बेला भी पेटभर रोटी नहीं मिलती।

कादिर—भाई, बलराज बात तो सच्ची कहता है। इस खेतीमें कुछ रह नहीं गया, मजदूरी भी नहीं पड़ती। अब मेरे ही घर देखो, कुल छोटे-बड़े मिलाकर दस आदमी हैं, पाँच-पाँच रुपये भी कमाते तो छः सौ रुपये सालभरके होते। खा-पीकर सौ-पचास रुपये बच ही रहते। लेकिन इस खेतीमें रात-दिन लगे रहते हैं; फिर भी किसीको भरपेट दाना नहीं मिलता।

डपट—बस, एक मरजाद रह गयी है, दूसरेकी मजूरी नहीं करते बनती। इसी बहानेसे किसी तरह निबाह हो जाता है। नहीं तो बलराजकी उमिरमें हम लोग खेतके डाँड़पर न जाते थे। न जाने क्या हुआ कि जमीनकी बरकत ही उठ गयी। जहाँ बीघा पीछे २०-२० मन होते थे, वहाँ अब ४ ५ मनसे आगे नहीं जाता।

मनोहर—सरकारको यह हाल मालूम होता तो जरूर काश्तकारोंपर निगाह करती।

कादिर—मालूम क्यों नहीं है? रत्ती-रत्तीका पता लगा लेती है।

डपट—(हँसकर) बलराजसे कहो, सरकारके दरबारमें हम लोगोंकी ओरसे फरियाद कर आये।

बलराज—तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़ाते हो, जानो कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदारकी बेगार ही भरनेके लिये बनाया गया है; लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देशमें कास्तकारोंहीका राज है, वह जो चाहते हैं, करते हैं। उसीके पास कोई और देश बलगारी है। वहाँ अभी हालकी बात है, कास्तकारोंने राजाको गद्दीसे उतार दिया है और अब किसानों और मजूरोंकी पञ्चायत राज करती है।

कादिर—(कुतूहलसे) तो चलो ठाकुर! उसी देशमें चलें, वहाँ मालगुजारी न देनी पड़ेगी।

डपट—वहाँके कास्तकार बड़े चतुर और बुद्धिमान होंगे तभी तो राज सम्भालते होंगे!

कादिर—मुझे तो विश्वास नहीं आता।

मनोहर—हमारे पत्रमें झूठी बातें नहीं होतीं।

बलराज—पत्रवाले झूठी बातें लिखें तो सजा पा जायँ।

मनोहर—जब उस देशके किसान राजका बन्दोबस्त कर लेते हैं, तो क्या हमलोग लाट साहेबसे अपना रोना भी न रो सकेंगे?

कादिर—तहसीलदार साहेबके सामने तो मुँह खुलता नहीं, लाट साहेबसे कौन फरियाद करेगा?

बलराज—तुम्हारा मुँह न खुले, मेरी तो लाट साहेबसे बातचीत हो, तो सारी कथा कह सुनाऊँ।

कादिर—अच्छा, अबकी हाकिम लोग दौरेपर आवेंगे, तो हम तुम्हींको उनके सामने खड़ा कर देंगे।

यह कहकर कादिरखाँ घरकी ओर चले। बलराजने भी लाठी कन्धेपर रखी और उनके पीछे चला। जब दोनों कुछ दूर

निकल गये तब बलराजने कहा, दादा, कहो तो खाँ साहेबकी (घूँसेका इशारा करके) कर दी जाय।

कादिरने चौंककर उसकी ओर देखा, क्या गाँवभरको बँधवानेपर लगे हो? भूलकर भी ऐसा काम न करना।

बलराज--सब मामला ठीक है, तुम्हारे हुकुमकी देर है।

कादिर--(कान पकड़कर) न! मैं तुम्हें आगमें कूदनेकी सलाह न दूँगा। जब अल्लाहको मंजूर होगा तब वह आप ही यहाँसे चले जायँगे।

बलराज—अच्छा तो बीचमें न पड़ोगे न?

कादिर—तो क्या तुमलोग सचमुच मार-पीटपर उतारू हो क्या? हमारी बात न मानोगे तो मैं जाकर थानेमें इत्तला कर दूँगा। यह मुझसे नहीं हो सकता कि तुम लोग गाँवमें आग लगाओ और मैं देखता रहूँ।

बलराज - तो तुम्हारी यही सलाह है कि नित यह अन्याय सहते जायें!

कादिर—जब अल्लाहको मंजूर होगा तो आप-ही-आप सब उपाय हो जायगा।

८

जिस भाँति सूर्यास्तके पीछे एक विशेष प्रकारके जीवधारी, जो न पशु हैं न पक्षी, जीविकाकी खोजमें निकल पड़ते हैं, अपनी लम्बी श्रेणियोंसे आकाश-मण्डलको आच्छादित कर देते हैं, उसी भाँति कार्तिकका आरम्भ होते ही एक अन्य प्रकारके जन्तु देहातोंमें निकल पड़ते हैं और अपने खेमों तथा छोलदारियोंसे समस्त ग्राम मण्डलको उज्ज्वल कर देते हैं। वर्षाके आदिमें राजसिक कीट और पतंगका उद्भव होता है, उसके अन्तमें तामसिक कीट और पतंगका। उनका उत्थान होते ही देहातोंमें भूकम्प-सा आ जाता है और लोग भयसे प्राण छिपाने लगते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि अधिकारियोंके यह दौरे सदिच्छाओंसे

प्रेरित होकर होते हैं। उनका अभिप्राय है जनताकी वास्तविक दशाका ज्ञान प्राप्त करना, न्याय-प्रार्थीके द्वारतक पहुँचाना प्रजाके दुःखोंको सुनना, उनकी आवश्यकताओंको देखना, उनके कष्टोंका अनुमान करना, उनके विचारोंसे परिचित होना। यदि यह अर्थ सिद्ध होते तो यह दौरे बसंतकालसे भी अधिक प्राण-पोषक होते, लोग वीणा और पखावजसे, ढोल-मजीरेसे उनका अभिवादन करते। किन्तु जिस भाँति प्रकाशकी रश्मियाँ पानीमें वक्रगामी हो जाती हैं, उसी भाँति सदिच्छायें भी बहुधा मानवी दुर्बलताओंके सम्पर्कसे विषम हो जाया करती हैं। सत्य और न्याय पैरोंके नीचे आ जाता है, लोभ और स्वार्थकी विजय हो जाती है। अधिकारिवर्ग और उनके कर्मचारी विरहिणीकी भाँति इस सुखकालके दिन गिना करते हैं। शहरोंमें तो उनकी दाल नहीं गलती, या गलती है तो बहुत कम। वहाँ प्रत्येक वस्तुके लिये उन्हें जेबमें हाथ डालना पड़ता है; किन्तु देहातोंमें जेबकी जगह उनका हाथ अपने सोटेपर होता है या किसी दीन किसानकी गर्दनपर। जिस घी, दूध, शाकभाजी, माँस मछली आदिके लिये शहरमें तरसते थे, जिनका स्वप्नमें भी दर्शन नहीं होता था, उन पदार्थोंकी यहाँ केवल जिह्वा और बाहुके बलसे रेल-पेल हो जाती है। जितना खा सकते हैं, खाते हैं, बार-बार खाते हैं, और जो नहीं खा सकते, वह घर भेजते हैं। घीसे भरे हुए कनस्टर, दूधसे भरे हुए मटके, उपले और लकड़ी, घास और चारेसे लदी हुई गाड़ियाँ शहरोंमें आने लगती हैं। घरवाले हर्षसे फूले नहीं समाते, अपने भाग्यको सराहते हैं; क्योंकि अब दुःखके दिन गये और सुखके दिन आये। उनकी तरी वर्षाके पीछे आती है, वह खुरकीमें तरीका आनन्द उठाते हैं। देहात वालोंके लिये यह बड़े सङ्कटके दिन होते हैं, उनकी शामत आ जाती है, मार खाते हैं, बेगारमें पकड़े जाते हैं, दासत्वके दारुण निर्दय आघातोंसे आत्माका भी ह्रास हो जाता है।

द्वारपर अलाव लगी हुई थी। कई आदमी उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए बातें कर रहे थे। कादिरने बाजारके तम्बाकूकी निन्दा की, दुखरन भगतने उनका अनुमोदन किया। इसके बाद डपटसिंह पत्थर और बेलनके कोल्हुओंके गुण-दोषकी विवेचना करने लगे। अन्तमें लोहेने पत्थरपर विजय पायी।

दुखरन बोले, आजकल रातको मटरमें सियार और हरिन बड़ा उपद्रव मचाते हैं। जाड़ेके मारे उठा नहीं जाता।

कादिर—अबकी ठण्ड बहुत पड़ेगी, दिनको पछुआ चलता है, मेरे पास तो कोई कम्बल भी नहीं, वही एक दोहर लपेटे पड़ा रहता हूँ। पुवाल न हो गया होता तो रातको अकड़ जाता।

डपट—यहाँ किसके पास कम्बल है? उसी एक पुराने धुस्से की भुगुत है। लकड़ी भी इतनी नहीं मिलती कि रातभर तापें।

मनोहर—अबकी बेटीके ब्याहमें इमलीका पेड़ कटवाया था। क्या सब जल गयी?

डपट—नहीं, बची तो बहुत थी, पर कल डिप्टी ज्वालासिंह के लस्करमें चली गयी। खाँसाहबसे कितना कहा कि इसे मत ले जाइये, पर उनकी बला सुनती है। चपरासियोंको ढेर दिखा दिया। बात-की-बातमें सारी लकड़ी उठ गयी।

मनोहर—तुमने चपरासियोंसे कुछ कहा नहीं?

डपट—क्या कहता, दस-पाँच मन लकड़ीके पीछे अपनी जान सासतमें डालता, गालियाँ खाता, लस्करमें पकड़ जाता, मार पड़ती ऊपरसे, तब तुम भी पास न फटकते। दोनों लड़के और झपट तो गरम पड़े थे, लेकिन मैंने उन्हें डाँट दिया। जबरदस्तका ठेंगा सिरपर।

कादिर—हाकिमोंका दौरा क्या है, हमारी मौत है। बकरीदमें कुर्बानीके लिये जो बकरा पाल रखा था, वह कल लस्करमें पकड़ गया। रब्बी बूचड़ पाँच रुपये नगद देता था, मगर मैंने न दिया था। इस बखत सातसे कमका माल न था।

मनोहर—यह लोग बड़ा अन्धेर मचाते हैं। आते हैं इन्तजाम करने, इन्साफ करने; लेकिन हमारे गलेपर छुरी चलाते हैं। इससे कहीं अच्छा तो यही था कि दौरे बन्द हो जाते। यही न होता कि मुकद्दमेवालोंको सदर जाना पड़ता, इस सासतसे तो जान बचती।

कादिर—इसमें हाकिमोंका कसूर नहीं। यह सब उनके लस्करवालोंकी धाँधली है। वही सब हाकिमोंको भी बदनाम कर देते हैं।

मनोहर—कैसी बात कहते हो दादा! यह सब मिली भगत है। हाकिमका इशारा न हो तो मजाल है कि कोई लस्करी पराया चीजपर हाथ डाल सके। सब कुछ हाकिमोंकी मर्जीसे होता है और उनकी मर्जी क्यों न होगी? सेंतका माल किसको बुरा लगता है?

डपट—ठीक बात है। जिसकी जितनी आमद होती है, वह उतना ही और मुँह फैलाता है।

दुखरन—परमात्मा यह अन्धेर देखते हैं, और कोई जतन नहीं करते। देखें, बिसेसर साहको अब कितनी घटी आती है।

डपट—परसाल तो पूरे तीन सौकी चपत पड़ी थी। वही अबका भी समझो, अगर जिन्स ही तक रहे तो इतना घाटा न पड़े, मगर वहाँ तो इलायची, कत्था, सुपारी, मेवा और मिश्री सभी कुछ चाहिये और सब टके सेर। लोग खानेके इतने शौकीन बनते हैं, पर यह नहीं होता कि ये सब चीजें अपने साथ रखें।

मनोहर—शहरमें खरे दाम लगते हैं, यहाँ कौन, जीमें आया दिया न दिया।

कादिर—कल लस्करका एक चपरासी बिसेसरके यहाँ सागूदाना माँग रहा था। बिसेसर हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था कि मेरे यहाँ नहीं है; लेकिन चपरासी एक न सुनता था, कहता था, जहाँसे चाहो मुझे लाकर दो। गालियाँ देता था,

डंडा दिखाता था। बारे बलराज पहुँच गया। जब वह कड़ा पड़ा तो चपरासी मियाँ नरम पड़े, और भुनभुनाते चले गये।

दुखरन—बिसेसरकी एक बार मरम्मत हो जाती तो अच्छा होता। गाँवभरका गला मरोड़ता है, यह उसीकी सजा है।

डपट—और हम-तुम किसका गला मरोड़ते हैं?

मनोहरने चिन्तित भावसे कहा, बलराज अब सरकारी आदमियोंके मुँह आने लगा। कितना समझाके हार गया, मानता ही नहीं।

कादिर—यह उमिर ही ऐसी होती है।

यही बातें हो रही थीं कि एक बटोही आकर अलावके पास खड़ा हो गया। उसके पीछे-पीछे एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आयी और अलावसे जरा दूर सिर झुकाकर बैठ गयी।

कादिरने पूछा—कहो भाई, कहाँ घर है?

घर तो है देवरी पार, अपनी बुढ़िया माताको लिये अस्पताल जाता था, मगर वह जो सड़कके किनारे बगीचेमें डिपटी साहेबका लस्कर उतरा है, वहाँ पहुँचा तो चपरासियोंने गाड़ी रोक ली और हमारे कपड़े-लत्ते फेंक-फाँककर लकड़ी लादने लगे। कितनी अरज बिनती की, बुढ़िया बीमार है, भर रातका चला हूँ, आज अस्पताल नहीं पहुँचा तो कल न जाने इसका क्या हाल हो? मगर कौन सुनता है? मैं रोता ही रहा, वहाँ गाड़ी लद गयी। तब मुझसे कहने लगे, गाड़ी हाँक। क्या करूँ, अब गाड़ी हाँककर सदर जा रहा हूँ। बैल और गाड़ी उनके भरोसे छोड़कर आया हूँ। जब लकड़ी पहुँचाके लौटूँगा तब अस्पताल जाऊँगा। तुम लोगोंसे हो सके तो बुढ़ियाके लिये एक खटिया दे दो और कहीं पड़ रहनेका ठिकाना बता दो। इतना पुण्य करो, मैं बड़ी विपत्तियोंमें हूँ।

दुखरन—यह बड़ा अन्धेर है। यह लोग आदमी काहेके, पूरे राक्षस हैं, जिन्हें दया-धरमका विचार नहीं।

डपट—दिनभरके थके-माँदे बैल हैं, न जाने कहाँ गाड़ी ले जानी पड़ेगी और न जाने कब लौटोगे। तबतक बुढ़िया अकेली पड़ी रहेगी? जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े। हम लोग कितने भी हों तो पराये ही , घरके आदमीकी और बात है।

मनोहर—मेरा तो ऐसा जी चाहता है कि इसी दम डिप्टी साहेबके सामने चला जाऊँ और ऐसी खरी-खरी सुनाऊँ कि वह भी याद करें। बड़े हाकिमकी पोंछ बने हैं। इन्साफ तो क्या करेंगे, उल्टे और गरीबोंको पीसते हैं। खटियाकी तो कोई बात नहीं और न जगहकी ही कोई कमी है, लेकिन यह अकेली रहेंगी कैसे?

बटोही—कैसे बताऊं? जो भाग्यमें लिखा है वही होगा।

मनोहर—यहाँसे कोई तुम्हारी गाड़ी हाँक ले जाय तो कोई हरज है?

बटोही—ऐसा हो जाय तो क्या पूछना। है कोई आदमी?

मनोहर—आदमी बहुत हैं, कोई-न-कोई चला जायगा।

कादिर—तुम्हारा हलवाहा तो खाली है, उसे भेज दो।

मनोहर—हलवाहेसे बैल सधें न सधें, मैं ही चला जाऊँगा।

कादिर—तुम्हारे ऊपर मुझे विश्वास नहीं आता। कहीं झगड़ा कर बैठो तो और बन जाय। दुखरन भगत, तुम चले जाओ तो अच्छा हो।

दुखरनने नाक सिकोड़कर कहा, मुझे तो जानते हो, रातको कहीं नहीं जाता। भजन-भावकी यही बेला है।

कादिर—चला तो मैं जाता, लेकिन मेरा मन कहता है कि बूढ़ीकी अच्छा करनेका जस मुझीको मिलेगा। कौन जाने अल्लाह-को यही मंजूर हो। मैं उन्हें अपने घर लिये जाता हूँ। जो कुछ बन पड़ेगा करूँगा। गाड़ी हसनूसे हंकवाये देता हूँ। बैलोंको चारा-पानी देना है, बलराजको थोड़ा देरके लिये भेज देना।

कादिरके बरौठेमें वृद्धाकी चारपाई पड़ गयी। कादिरका

लड़का हसनू गाड़ी हाँकनेके लिये पड़ावकी तरफ चला। इतनेमें सुक्खू चौधरी और गौसखाँ दो चपरासियोंके साथ आते दिखाई दिये। दूसरी ओरसे बलराज भी आकर खड़ा हो गया।

गौसखाँने कहा, सब लोग यहाँ बैठे गलचौड़ कर रहे हो, कुछ लश्करकी भी खबर है? देखो, यह चपरासी लोग दूधके लिये आये हैं, उसका बन्दोबस्त करो।

कादिर—कितना दूध चाहिये?

एक चपरासी—कमसे कम १० सेर।

कादिर—दस सेर! इतना दूध तो चाहे गाँवभरमें न निकले। दोही चार आदमियोंके पास तो भैंसें हैं और वह भी दुधार नहीं हैं। मेरे यहाँ तो दोनों जूनमें सेर भरसे ज्यादा नहीं होता।

चपरासी—भैंसें हमारे सामने लाओ, दूध तो हमारा चपरास निकालता है। हम तो पत्थरसे दूध निकाल लें, चोरोंकी पेटकी बाततक निकाल लेते हैं, भैंसें तो फिर भैंसें हैं। इस चपरासमें वह जादू है, कि चाहें तो जङ्गलमें मङ्गल कर दें। लाओ, भैंसें यहाँ खड़ी करो।

गौसखाँ—इतने तूल-कलामकी क्या जरूरत है? दूधका इन्तजाम हो जायगा। दो सेर सुक्खू देनेको कहते हैं। कादिरके यहाँ भी दो सेर मिलही जायगा, दुखरन भगत दो सेर दे देंगे, मनोहर और डपटसिंह भी दो-दो सेर दे देंगे। बस, हो गया।

कादिर—मैं दो सेर चार सेरका बोझा नहीं लेता। यह दोनों भैंसें खड़ी हैं। जितना दूध दे दें उतना ले लिया जाय।

दुखरन—मेरी तो दोनों भैंसें गाभिन हैं। बहुत देंगी तो आध सेर। पुवाल तो खानेको पाती हैं और वह भी आध पेट। कहीं चराई है नहीं, दूध कहाँसे हो?

डपटसिंह—सुक्खू चौधरी जितना देते हैं उसका आधा मुझसे ले लीजिये। हैसियतके ही हिसाबसे न लीजियेगा?

गौसखाँ—तुम लोगोंकी यह निहायत बेहूदी आदत है कि हर

बातमें लाग-डाँट करने लगते हो। शराफत और नरमीसे आधा भी न दोगे, लेकिन सख्तीसे पूरा लिये हाजिर हो जाओगे। मैंने तुमसे दो सेर कह दिया है, इतना तुम्हें देना होगा।

डपट—इस तरह आप मालिक हैं, भैंसे खोल ले जाइये, लेकिन दो सेर दूध मेरे यहाँ न होगा।

गौसखाँ मनोहर, तुम्हारी भैंसें तो दुधार हैं?

मनोहरने अभी जवाब न दिया था कि बलराज बोल उठा, मेरी भैंसें बहुत दुधार हैं, मनभर दूध देती हैं, लेकिन बेगारके नामसे छटाँकभर भी न देंगी।

मनोहर तू चुपचाप क्यों नहीं रहता? तुझसे कौन पूछता है? हमसे जितना हो सकेगा देंगे, तुमसे मतलब?

चपरासीने बलराजकी ओर अपमानजनक क्रोधसे देखकर कहा, महतो, अभी हमलोगोंके पंजेमें नहीं पड़े हो। एक बार पड़ जाओगे तो आटे-दालका भाव मालूम हो जायगा। मुँहसे बात न निकलेगी।

दूसरा चपरासी—मालूम होता है, सिरपर गरमी चढ़ गयी है, तभी इतना ऐंठ रहा है। इसे लश्कर ले चलो, तो गरमी उतर जाय।

बलराजने मर्माहत होकर कहा, मियाँ हमारी गरमी पाँच-पाँच रुपल्लीके चपरासियोंके मानकी नहीं है, जाओ, अपने साहब बहादुरके जूते सीधे करो, जो तुम्हारा काम है, हमारी गरमीके फेरमें न पड़ो, नहीं तो हाथ जल जायँगे। इस जन्मके पापोंका दण्ड भोग रहे हो, लेकिन अब भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं।

बलराजने यह शब्द ऐसे सगर्व गम्भीरतासे कहे कि दोनों चपरासी खिसियासे गये। इस घोर अपमानका प्रतिकार करना कठिन था। यह मानों बादको वाणीकी परिधिसे निकालकर कर्मके क्षेत्रमें लानेकी ललकार थी। व्यङ्गाघात शाब्दिक कलहकी चरम सीमा है। उसका प्रतिकार मुँहसे नहीं, हाथोंसे होता है।

लेकिन बलराजकी चौड़ी छाती और पुष्ट भुजदण्ड देखकर चपरासियोंको हाथापाई करनेका साहस न हो सका। गौसखाँसे बोले, खाँसाहेब, आप इस लौंडेका देखते हैं, कैसा बढ़ा जाता है, इसे समझा दीजिये, हमारे मुँह न लगे। ऐसा न हो शामत आ जाय और ६ महीनेतक चक्की पीसनी पड़े। हम आप लोगोंका मुलाहिजा करते हैं, नहीं तो इस हेकड़ीका मजा चखा देते।

गौसखाँ—सुनते हो मनोहर, अपने बेटेकी बातें। भला सोचा तो, डिपटी साहबके कानोंमें यह बात पड़ जाये तो तुम्हारा क्या हाल हो? कहीं एक पत्तीका साया भी न मिलेगा।

मनोहरने दीनतासे खाँसाहेबकी ओर देखकर कहा, खाँसाहेब, मैं तो इसे सब तरहसे समझा-बुझाके हार गया। न जाने क्या हाल करनेपर तुला हुआ है। (बलराजसे) अरे, तू यहाँसे जायगा कि नहीं?

बलराज—क्यों जाऊँ, मुझे किसीका डर नहीं है। यह लोग डिपटी साहेबसे मेरी शिकायत करनेकी धमकी देते हैं, मैं आप ही उनके पास जाता हूँ। इन लोगोंको उन्होंने कभी ऐसा नादिरशाही हुक्म न दिया होगा कि जाकर गाँवमें आग लगा दो। और मान लें कि वह ऐसा कड़ा हुक्म दे भी दें, तो इन लोगोंको तो सोचना चाहिये कि गरीब किसान हमारे भी भाई-बन्द हैं, इन्हें व्यर्थ न सतायें। लेकिन इन लोगोंको तो पैसेके लोभ और चपरासके मदने ऐसा अन्धा बना दिया है कि कुछ सूझता ही नहीं। आज उस बेचारी बुढ़ियाका क्या हाल होगा, मरेगी कि जियेगी। नौकरी तो की है पाँच रुपयेकी, काम है बस्ते ढोना, मेज साफ करना साहेबके पीछे-पीछे खिदमतगारोंकी तरह चलना और बनते हैं रईस।

मनोहर—तू चुप होगा कि नहीं?

एक चपरासी—नहीं, इसे खूब गालियाँ दे लेने दो, जिसमें

इसके दिलकी हवस निकल जाय। इसका मजा कल मिलेगा। खाँसाहेब, आपने सुना है। आपका गवाही देनी पड़ेगी। आपका इतना मुलाहिजा बहुत किया। लाइये, दूधका कुछ इन्तजाम करते हैं कि हम लोग जायँ?

गौसखाँ—नहीं जी दूध ला, और दस सेरसे सेरभर ज्यादा। यहीं लोग झख मारेंगे और देंगे। क्या बतायें, आज इन छोकरे की बदौलत हमको तुम लोगोंके सामने इतना शरमिन्दा होना पड़ा! इस गाँवका कुछ हवा ही बिगड़ी हुई है। मैं खूब समझता हूँ। यह लोग जो भीगी बिल्ली बने बैठे हुए हैं, इन्हींके सह देनेसे इस लौंडेको इतनी जुर्अत हुई है, नहीं तो इसकी मजाल था कि यों टर्राता। बछड़ा खूँटेकेही बल कूदता है। खैर, अगर मेरा नाम गौसखाँ है तो एक-एकसे समझूँगा।

इस तिरस्कारका आशातीत प्रभाव हुआ। सब दहल उठे। वह आत्मनयशीलता जो पहले सबके चेहरोंसे झलक रही थी, लुप्त हो गयी। मनोहर तो ऐसा सिटपिटा गया, मानों सैकड़ों जूते पड़े हों। इस खटाईने सबके नशे उतार दिये।

कादिरखाँ बोले—मनोहर, जाओ, जितना दूध हो सब यहाँ भेज दो।

गौसखाँ—हमको मनोहरके दूधकी जरूरत नहीं है।

बलराज—यहाँ देता ही कौन है?

मनोहर खिसिया गया। उठ खड़ा हुआ और बोला, अच्छा, ले अब तू ही बोल, जो तेरे जीमें आये, कर, मैं जाता हूँ। अपना घर-द्वार संभाल, मेरा निबाह तेरे साथ न होगा। चाहे घरको रख चाहे आग लगा दे।

यह कहकर वह सशंक क्रोधसे भरा हुआ वहाँसे चल दिया। बलराज भी धीरे-धीरे अपने अखाड़ेकी ओर चला। वहाँ इस समय सन्नाटा था। मुगदरकी जोड़ी रखी हुई थी। एक पत्थरकी नाल जमीनपर पड़ी हुई थी, और लेजीम आमकी डालसे लटक रहा

था। बलराजने कपड़े उतारे और लंगोट कसकर अखाड़ेमें उतरा, लेकिन आज व्यायाममें उसका मन न लगा। चपरासियोंकी बातें एक फोड़ेकी भाँति उसके हृदयमें टीस रही थीं। यद्यपि उसने चपरासियोंको निर्भय होकर उत्तर दिया था, लेकिन उसे इसमें तनिक भी सन्देह न था कि गाँवके अन्य पुरुषोंको, यहाँतक कि मेरे पिताको भी, मेरी बातें उद्दण्ड प्रतीत हुई। सबके सब कैसा सन्नाटा खींचे बैठे रहे। मालूम होता था किसीके मुँहमें जीभ ही नहीं है। तभी तो यह दुर्गति हो रही है! अगर कुछ दम हो तो आज इतने पीसे-कुचले क्यों जाते? और तो और, दादाने भी मुझीको डाँटा। न जाने इनके मनमें इतना डर क्यों समा गया है। पहले तो यह इतने कायर न थे। कदचित् अब मेरी चिन्ता इन्हें सताने लगी। लेकिन मुझे अवसर मिला तो स्पष्ट कह दूँगा, कि तुम मेरी ओरसे निश्चिन्त रहो। मुझे परमात्माने हाथ-पैर दिये हैं। मिहनतकर सकता हूँ और दोको खिलाकर खा सकता हूँ। तुम्हें अगर अपने खेत इतने प्यारे हैं कि उनके पीछे तुम अत्यचार और अपमान सहनेपर तैयार हो तो शौकसे सहो, लेकिन मैं ऐसे खेतोंपर लात मारता हूँ। अपने पसीनेकी रोटी खाऊँगा और अकड़कर चलूँगा। अगर कोई आँख दिखायेगा तो उसकी आंख निकाल लूँगा। यह बुड्ढा गौसखाँ कैसा लाल पीली आँखें कर रहा था, मालूम होता है इनकी मृत्यु मेरे ही हाथों लिखी हुई है। मुझपर दो चोटें कर चुके हैं। अब देखता हूँ कौन हाथ निकालते हैं। इनका क्रोध मुझीपर उतरेगा। कोई चिन्ता नहीं,देखा जायगा। दोनों चपरासी मनमें फूले न समाये होंगे कि सारा गाँव कैसा रावमें आ गया, पानी भरनेको तैयार है। गाँववालोंने भी लल्ला-चप्पो की होगी। कोई परवाह नहीं। चपरासी मेरा कर ही क्या सकते हैं? लेकिन मुझे कल प्रातःकाल डप्टी साहेबके पास जाकर उनसे सब हाल कह देना चाहिये। विद्वान् पुरुष हैं। दीन जनोंपर उन्हें अवश्य दशा आवेगी। अगर

वह गाड़ियोंके पकड़नेकी मनाही कर दें तो क्या पूछना ? उन्हें यह अत्याचार कभी पसन्द न आता होगा। यह चपरासी लोग छिपाकर यों जबरदस्ती करते हैं। लेकिन कहीं उन्होंने मुझे अपने इजलाससे खड़े-खड़े निकलवा दिया तो ? बड़े आदमियों-को घमण्ड बहुत होता है। कोई हरज नहीं। मैं सड़कपर खड़ा हो जाऊँगा और देखूँगा कि कैसे कोई मुसाफिरोंकी गाड़ी पकड़ता है। या तो दो-चारका सिर तोड़के रख दूँगा या आप भी वहीं मर जाऊँगा। अब बिना गरम पड़े काम नहीं चल सकता। वह दादा बुलाने आ रहे हैं।

बलराज अपने बापके पीछे-पीछे घर पहुँचा। रास्तेमें कोई बातचीत नहीं हुई। बिलासी बलराजको देखकर बोली, कहाँ जाके बैठ रहे ? तुम्हारे दादा कबसे खोज रहे हैं। चलो, रोटी तैयार है।

बलराज—अखाड़ेकी ओर चला गया था।

बिलासी—तुम अखाड़े मत जाया करो।

बलराज—क्यों ?

बिलासी—क्यों क्या, देखते नहीं हो, सबकी आँखोंमें कैसे चुभते हो। जिन्हें तुम अपना हितू समझते हो यह सबके सब तुम्हारी जानके घातक हैं। तुम्हें आगमें ढकेलकर आप तमाशा देखेंगे। आज ही तुम्हें सरकारी आदमियोंसे भिड़ाकर कैसा दबक गये ?

बलराजने इस उपदेशका कुछ उत्तर न दिया। चौकेपर जा बैठा। उसके एक ओर मनोहर था और दूसरी ओर जरा हटकर उसका हलवाहा रंगी चमार बैठा हुआ था। बिलासीने जौकी मोटी-मोटी रोटियाँ, बथुएका शाक और अरहरकी दाल तीनों थालियोंमें परस दी। तब एक फूलके कटोरेमें दूध लाकर बल-राजके सामने रख दिया।

बलराज—क्या और दूध नहीं है ?

बिलासी—दूध कहाँ है, बेगारमें नहीं चला गया ?

बलराज—अच्छा, यह कटोरा रंगीके सामने रख दो।

बिलासी—तुम खा लो, रंगी एक दिन दूध न खायेगा तो दुबला न हो जायेगा।

बलराज बेगारका हाल सुनकर क्रोधसे आग हो रहा था। कटोरेको उठाकर आँगनकी ओर जोरसे फेंक दिया। वह तुलसीके चबूतरेसे टकराकर टूट गया। बिलासीने दौड़कर कटोरा उठा लिया और पछताते हुए बोली, तुम्हें क्या हो गया है? राम, राम, ऐसा सुन्दर कटोरा चूरकर दिया। कहीं सनक तो नहीं गये हो?

बलराज—हाँ, सनक ही गया हूँ।

बिलासी—यह किस बातपर कटोरेको पटक दिया?

बलराज—इसलिये कि जो हमसे अधिक काम करता है उसे हमसे अधिक खाना चाहिये। हमने तुमसे बार-बार कह दिया है कि रसोईमें जो कुछ थोड़ा बहुत हो, वह सबके सामने आना चाहिये। अच्छा खायँ तो सब खायँ, बुरा खायँ तो सब खायँ; लेकिन तुम्हें न जाने क्यों यह बात भूल जाती है? अब याद रहेगी। रङ्गी कोई बेगारका आदमी नहीं है, घरका आदमी है। वह मुँहसे चाहे न कहे, पर मनमें अवश्य कहता होगा कि छाती फाड़कर काम मैं करूँ और मूछोंपर ताव देकर खायँ यह लोग। ऐसा दूध-घी खानेपर लानत है।

रङ्गीने कहा—भैया, नित्त तो दूध खाता हूँ, एक दिन न सही। तुम हक-नाहक इतने खफा हो गये।

इसके बाद तीनों आदमी चुपचाप खाने लगे। खा-पीकर बलराज और रङ्गी ऊखकी रखवाली करने मण्डियाकी तरफ चले। वहाँ बलराजने चरस निकाली और दोनोंने खूब दम लगाये। जब दोनों ऊखके छिलकेके बिछावनपर कम्बल ओढ़कर लेटे तो रङ्गी बोला, काहे भैया, आज तुमसे लस्करके चपरासियोंसे कुछ कहा-सुनी हो गयी थी क्या?

बलराज—हाँ, हुज्जत हो गयी। दादाने मने न किया होता तो दोनोंको मारता।

रङ्गी—तभी दोनों तुम्हें बुरा-भला कहते चले जाते थे। मैं उधरसे क्यारीमें पानी खोलकर आता था। मुझे देखकर दोनों चुप हो गये। मैंने इतना सुना, 'अगर यह लौंडा कल सड़कपर गाड़ियाँ पकड़नेमें कुछ तकरार करे तो बस चोरीका इलजाम लगाकर गिरफ्तार कर लो। एक पचास बेंत पड़ जायँ तो इसकी शेखी उतर जाय।'

बलराज—अच्छा, यह सब यहाँतक मेरे पीछे पड़े हुए हैं! तुमने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया। मैं कल सबेरे ही डिप्टी साहेबके पास जाऊँगा।

रङ्गी—क्या करने जाओगे भैया? सुनते हैं, अच्छा आदमी नहीं है। बड़ी कड़ी सजा देता है। किसीको छोड़ना तो जानता ही नहीं। तुम्हें क्या करना है? जिसकी गाड़ियाँ पकड़ी जायँगी वह आप निबट लेगा।

बलराज—वाह, लोगोंमें इतना ही बूता होता तो किसीकी गाड़ी पकड़ी ही क्यों जाती? सीधेका मुँह कुत्ता चाटता है। यह चपरासी तो आदमी ही हैं।

रङ्गी—तो तुम काहेको दूसरोंके बीचमें पड़ते हो? तुम्हारे दादा आज बहुत उदास थे और अम्मा रोती रहीं।

बलराज—क्या जाने क्यों रङ्गी, जबसे दुनियाका थोड़ा-बहुत हाल जानने लगा हूँ, मुझसे अन्याय नहीं देखा जाता। जब किसी जबरेको किसी गरीबका गला दबाते देखता हूँ तो मेरे बदनमें आगसी लग जाती है। यही जी चाहता है कि चाहे अपनी जान रहे या जाय, इस जबरेका सिर नीचा कर दूँ। सिर-पर एक भूतसा सवार हो जाता है। जानता हूँ, कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता; पर मन काबूसे बाहर हो जाता है!

इसी तरहकी बातें करते दोनों सो गये। प्रातःकाल बलराज

घर गया, कसरत की, दूध पीया और अपना ढीला कुर्ता पहन, पगड़ी बाँध डिप्टी साहेबके पड़ावकी ओर चला। मनोहर अबतक उससे रूठे बैठे थे। अब जब्त न कर सके। पूछा, कहाँ जाते हो?

बलराज—जाता हूँ डिप्टी साहेबके पास।

मनोहर—क्यों सिरपर भूत सवार है? अपना काम क्यों नहीं देखते?

बलराज—देखूँगा कि पढ़े-लिखे लोगोंका मिजाज कैसा होता है।

मनोहर—धक्के खाओगे, और कुछ नहीं।

बलराज—धक्के तो चपरासियोंके खाते हैं, इसकी क्या चिन्ता? कुत्तेकी जात तो पहचानी जायेगी।

मनोहरने उसकी ओर निराशापूर्ण स्नेहकी दृष्टिसे देखा और कन्धेपर कुदाल रखकर हारकी ओर चल दिया। बलराजको मालूम हो गया कि अब यह मुझे छोड़ा हुआ साँड़ समझ रहे हैं; पर वह अपनी धुनमें मस्त था। मनोहरका यह विचार कि इस समय समझानेका उतना असर न होगा जितना विरक्ति-भावका, निष्फल हो गया। वह ज्योंही घरसे बाहर निकला, बलराजने भी लट्ठ कन्धेपर रखा और कैम्पकी ओर चला। किसी हाकिमके सम्मुख जानेका उसको यह पहला ही अवसर था। मनमें अनेक विचार आते थे। मालूम नहीं, मिलें या न मिलें; कहीं मेरी बातें सुनकर बिगड़ न जायँ, मुझे देखते ही सामनेसे निकलवा न दें। चपरासियोंने मेरी शिकायत अवश्य की होगी। क्रोधमें भरे बैठे होंगे। बाबू ज्ञानशङ्करसे इनकी दोस्ती भी तो है। उन्होंने भी हमलोगों की ओरसे उनके कान खूब भरे होंगे। मेरी सूरत देखते ही जल जायँगे। उँह, जो कुछ हो, एक नया अनुभव तो हो जायगा। यही पढ़े-लिखे लोग तो हैं जो सभाओंमें और लाटसाहबके दरबारमें हमलोगोंकी भलाईकी रट लगाया करते हैं, हमारे नेता बनते हैं। देखूँगा कि यह लोग अपनी बातोंके कितने धनी हैं।

बलराज कैम्पमें पहुँचा तो देखा कि जगह-जगह लकड़ीके अलाव जल रहे हैं, कहीं पानी गर्म हो रहा है, कहीं चाय बन रही है। एक ओर बूचड़ बकरेका माँस काट रहा है, दूसरी ओर बिसेसर साह बैठे जिन्स तौल रहे हैं। चारों ओर घड़े और हाँड़ियाँ टूटी पड़ी थीं। एक वृक्षकी छाँहमें कितने ही आदमी सिकुड़े बैठे थे, जिनके मुकद्दमोंकी आज पेशी होनेवाली थी। बलराज पेड़ोंकी आड़में होता हुआ ज्वालासिंहके खेमेके पास जा पहुँचा। उसे यह धड़क लगा हुआ था, कि कहीं उन दोनों चपरासियोंकी निगाह मुझपर न पड़ जाय। वह खड़ा सोचने लगा कि डिप्टी-साहेबके सामने कैसे जाऊँ ? उसपर इस समय एक रोब छाया हुआ था। खेमेके सामने जाते हुए पैर काँपते थे। अचानक उसे गौसखाँ और सुक्खू चौधरी एक पेड़के नीचे आग तापते हुए दिखाई पड़े। अब वह खेमेके पीछे खड़ा न रह सका। उनके सामने धक्के खाना या डाँट सुनना मर जानेसे भी बुरा था। वह जी कड़ा करके खेमेके सामने चला गया और ज्वालासिंहको सलाम करके चुपचाप खड़ा हो गया।

बाबू ज्वालासिंह एक न्यायशील और दयालु मनुष्य थे, किन्तु इन दो-तीन महीनोंके दौरेमें उन्हें अनुभव हो गया था कि बिना कड़ाईके मैं सफलताके साथ अपने कर्तव्यका पालन नहीं कर सकता। सौजन्य और शालीनता निजके कामोंमें चाहे कितनी ही सराहनीय हों, लेकिन शासन-कार्यमें यह सद्गुण अवगुण बन जाते हैं। लोग उनसे अनुचित लाभ उठाने लगते हैं, उन्हें अपनी स्वार्थसिद्धिका साधन बना लेते हैं। अतएव न्याय और शीलमें परस्पर विरोध हो जाता है। रसद और बेगारके विषयमें भी अधीनस्थ कर्मचारियोंकी चापलूसियाँ उनकी न्याय-नीतिपर विजय पा गयी थीं, और वह अज्ञात भावसे स्वेच्छाचारी अधिकारियोंके वर्त्तमान साँचेमें ढल गये थे। उन्हें अपने विवेकपर पहलेसेही गर्व था, अब इसने आत्मश्लाघाका रूप धारण कर

लिया था। वह जो कुछ कहते या करते थे उसके विरुद्ध एक शब्द भी न सुनना चाहते थे। इससे उनकी रायपर कोई असर न पड़ता था। वह निस्पृह मनुष्य थे और न्याय-मार्गसे जौ भर भी न टलते थे। उन्हें स्वाभाविक रूपसे यह विचार होता था कि किसीको मुझसे शिकायत न होनी चाहिये। अपने औचित्य-पालनका विश्वास और अपनी गौरवशील प्रकृति उन्हें प्रार्थियोंके प्रति अनुदार बना देती थी। बलराजको सामने देख कर बोले, कौन है? यहाँ क्यों ?

बलराजने झुककर सलाम किया। उसकी उद्दण्डता लुप्त हो गयी थी। डरता हुआ बोला, हजूरसे कुछ बोलना चाहता हूँ। ताबेदारका घर इसी लखनपुरमें है।

ज्वालासिंह—क्या कहता है?

बलराज—कुछ नहीं, इतना ही पूछना चाहता हूँ कि सरकारको आज कितनी गाड़ियोंकी जरूरत होगी?

ज्वाला—क्या तुम गाड़ियोंके चौधरी हो?

बलराज—जी नहीं, चपरासी लोग सड़कपर जाकर मुसाफिरोंकी गाड़ियाँ रोकते हैं और उन्हें दिक करते हैं। मैं चाहता हूँ कि सरकारको जितनी गाड़ियाँ दरकार हों, उतनी आस-पासके गाँवोंसे खोज लाऊँ। उनका सरकारसे जो किराया मिलता हो वह दे दिया जाय तो मुसाफिरोंको रोकना न पड़े।

ज्वालासिंहने अपना सामान लादनेके लिये ऊँट रख लिये थे, किन्तु यह जानते थे कि मातहतों और चपरासियोंको अपना असबाब लादनेके लिये गाड़ियोंकी जरूरत होती है। उन्हें इसका खर्च सरकारसे नहीं मिलता। अतएव वे लोग गाड़ियाँ न रोकें, तो उनका काम ही न चले। यह व्यवहार चाहे प्रजाको कष्ट पहुँचावे, पर क्षम्य है। उनके विचारमें यह कोई ऐसी ज्यादती न थी। संभव था कि यही प्रस्ताव किसी सम्मानित पुरुषने किया होता, तो वह उसपर विचार करते, लेकिन एक अक्खड़, गँवार

मूर्ख देहातीको उनसे यह शिकायत करनेका साहस हो, यह उन्हें न्यायका पाठ पढ़ानेका दावा करे, यह उनके आत्माभिमानके लिये असह्य था। चिढ़कर बोले, जाकर सरिश्तेदारसे पूछो।

बलराज—हजूर ही उन्हें बुलाकर पूछ लें, मुझे वह न बतायेंगे।

ज्वालासिंह—मुझे इस दर्दसरकी फुर्सत नहीं है।

बलराजके नीचरपर बल पड़ गये। शिक्षित समुदायकी नीतिपरायणता और सज्जनतापर उसकी जो श्रद्धा थी, वह क्षणमात्रमें भंग हो गयी। इन सद्भावोंकी जगह उसे अधिकार और स्वेच्छाचारका अहंकार अकड़ता दीख पड़ा। अहंकारके सामने सिर झुकाना उसने न सीखा था। उसने निश्चय किया कि जो मनुष्य इतना अभिमानी हो, और मुझे इतना नीच समझे, वह आदरके योग्य नहीं है। इनमें और गौसखाँ या मामूली चपरासीमें अन्तर ही क्या रहा? ज्ञान और विवेककी ज्योति कहाँ गयी? निश्शंक होकर बोला सरकार इसे सिरदर्द समझते हैं और यहाँ हम लोगोंकी जानपर बनी हुई है। हजूर यहाँ धर्मके आसनपर बैठे हैं, और चपरासी लोग परजाको लूटते फिरते हैं। मुझे आपसे यह विनती करनेका हौसला हुआ, तो इसलिये कि मैं समझता था, आप दीनोंकी रक्षा करेंगे। अब मालूम हो गया कि हम अभागोंका सहायक परमात्माके सिवा और कोई नहीं।

यह कहकर वह बिना सलाम किये ही वहाँसे चल दिया। उसे एक नशा-सा हो गया था। बातें अवज्ञापूर्ण थीं, पर उनमें स्वाभिमान और सदिच्छा कूट-कूटकर भरी हुई थी। ज्वालासिंहमें अभीतक सहृदयताका सम्पूर्णतः पतन न हुआ था, क्रोधकी जगह उनके मनमें सद्भावनाका विकास हुआ। अबतक इनके यहाँ स्वार्थी और खुशामदी आदमियोंका ही जमघट रहता था। ऐसे एक भी स्पष्टवादी मनुष्यसे उनका सम्पर्क न हुआ था। जिस प्रकार मीठे पदार्थ खानेसे ऊबकर हमारा मन कड़वी वस्तु-

ओंकी ओर लपकता है, उसी भाँति ज्वालासिंहको ये कड़वी बातें प्रिय लगीं। उन्होंने उनके हृदय-नेत्रोंके सामनेसे पदाभिमानका परदा हटा दिया। जीमें तो आया कि इस युवकको बुलाकर उससे खूब बातें करूँ, किन्तु अपनी स्थितिका विचार करके रुक गये। वह बहुत देरतक बैठे हुए इन बातोंपर विचार करते रहे। अन्तिम शब्दोंने उनकी आत्माको एक ठोंका दिया था, और वह जाग्रत हो गया थी। मनमें अपने कर्त्तव्यका निश्चय कर लेनेके बाद उन्होंने अहलमद साहेबको बुलाया। सैयद ईजाद-हुसेनने बलराजको जाते देख लिया था। कलका सारा वृत्तान्त उन्हें मालूम ही था। ताड़ गये, कि यह लौंडा डिप्टी साहेबके पास फरियाद लेकर आया होगा। पहले तो शङ्का हुई, कहीं डिप्टी साहेब इसकी बातोंमें न आ गये हों। लेकिन जब उसकी बातोंसे ज्ञात हुआ कि डिप्टी साहेबने उल्टे और फटकार सुनायी तो धैर्य हुआ। बलराजको डाँटने लगे। वह अपने अफसरोंके इशारेके गुलाम थे और उन्हींके इच्छानुसार अपने कर्त्तव्यका निर्णय किया करते थे।

बलराज इस समय ऐसा हताश हो रहा था कि पहले थोड़ी देरतक वह चुपचाप खड़ा ईजाद हुसेनकी कठोर बातें सुनता रहा। अन्तमें गम्भीर भावसे बोला, आप क्या चाहते हैं कि हम लोगोंपर अन्याय भी हो और हम फरियाद भी न करें?

ईजाद हुसेन—फरियादका मजा तो चख लिया। अब चालान होता है, तो देखें कहाँ जाते हो। सरकारी आदमियोंसे मजाहिम होना काई खालाजीका घर नहीं है। डिप्टी साहेबको तुम लोगोंकी सरकशीका रत्ती रत्ती हाल मालूम है। बाबू ज्ञानशङ्करने सारा कच्चा चिट्ठा उनसे बयान कर दिया है। वह तो मौकेकी तलाशमें थे। आज शामतक सारा गाँव बँधा जाता है। गौसखाँको सीधा पा लिया है, इसीसे शेर हो गये हो। अब सारी कसर निकली जाती है। इतने बेंत पड़ेंगे, कि धाज्जियाँ उड़ जायेंगी।

बलराज—ऐसा कोई अंधेर है कि हाकिम लोग बेकसूर किसीको सजा दे दें।

ईजादहुसेन—हाँ हाँ, ऐसा ही अंधेर है। सरकारी आदमियोंको हमेशा बेगार मिली है और हमेशा मिलेगी। तुम गाड़ियाँ न दोगे तो वह क्या अपने सिरपर असबाब लादेंगे। हमें जिन-जिन चीजोंकी जरूरत होगी; तुम्हींसे ली जायेंगी। हँसकर दो या रोकर दो। समझ गये……!

इतनेमें एक चपरासीने आकर कहा, चलिये, आपको सरकार याद करते हैं। ईजादहुसेन पान खाये हुए थे। तुरन्त कुल्ली की, पगड़ी बाँधी और ज्वालासिंहके सामने जाकर सलाम किया।

ज्वालासिंहने कहा, मीर साहब, चपरासियोंको ताकीद कर दीजिये कि अबसे कैम्पके लिये बेगार गाड़ियाँ न पकड़ा करें। आप लोग अपना सामान मेरे ऊँटोंपर रख लिया कीजिये। इससे आप लोगोंको चाहे थोड़ीसी तकलीफ हो, लेकिन यह मुनासिब नहीं मालूम होता कि अपनी आसाइशके लिये दूसरोंपर जब्र किया जाय।

ईजादहुसेन—हुजूर बहुत बजा फरमाते हैं। आजसे गाड़ियाँ पकड़नेकी सख्त मुमानियत कर दी जायेगी। बेशक यह सरासर जुल्म है।

ज्वालासिंह—चपरासियोंसे कह दीजिये कि मेरे इजलासके खेमेमें रातको सो रहा करें। बेगारमें पुआल लेनेकी जरूरत नहीं। गरीब किसान यहां पुआल काट-काटकर जानवरोंको खिलाते हैं, इसलिये उन्हें इसका देना बहुत नागवार गुजरता है।

ईजादहुसेन—हुजूरका फर्माना बजा है। हुक्कामको ऐसा ही गरीबपरवर होना चाहिये। लोग जमींदारोंकी सख्तियोंसे योंही परेशान रहते हैं, उसपर हुक्कामकी बेगार तो और भी सितम हो जाती है।

ज्वालासिंहके हृदयमें ज्ञानशंकरके ताने अभीतक खटक रहे

थे। यदि थोड़ेसे कष्टसे उनपर छींटें उड़ानेकी सामग्री हाथ आ जाय तो क्या पूछना! ज्वालासिंह इस द्वेषके आवेगको न रोक सके। एक बार गाँवमें जाकर उनकी दशा आँखोंसे देखनेका निश्चय किया।

८ बज चुके थे, किन्तु अभीतक चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। लखनपुरके किसान आज छुट्टीसी मना रहे थे। जगह-जगह अलावके पास बैठे हुए लोग कलकी घटनाकी आलोचना कर रहे थे। बलराजकी धृष्टतापर टिपणियाँ हो रही थीं। इतने-में ज्वालासिंह चपरासियों और कर्मचारियोंके साथ गाँवमें आ पहुँचे। गौसखाँ और उनके दोनों चपरासी पीछे-पीछे चले आते थे। उन्हें देखते ही स्त्रियाँ अपने अधमँजे बर्तन छोड़-छोड़ कर घरोंमें घुसीं। बालक वृद्ध भी इधर-उधर दबक गये। कोई द्वारपरका कूड़ा उठाने लगा, कोई रास्तेमें पड़ी हुई खाक उठाने लगा। ज्वालासिंह गाँवका भ्रमण करते हुए सुक्खू चौधरीके कोल्हुआड़ेमें आकर खड़े हो गये। सुक्खू चारपाई लेने दौड़े। गौसखाँने एक आदमीको कुरसी लानेके लिये चौपाल दौड़ाया। लोगोंने चारों ओरसे आ-आकर ज्वालासिंहको घेर लिया। अमंगलके भयसे सबके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

ज्वालासिंह तुम्हारी खेती इस साल कैसी है?

सुक्खू चौधरीको नेतृत्वका पद प्राप्त था। ऐसे अवसरों-पर वही अग्रसर हुआ करते थे। पर वह अभीतक घरमेंसे चारपाई निकाल रहे थे, जो वृहदाकार होनेके कारण द्वारोंसे निकल न सकती थी। इसलिये कादिरखाँको प्रतिनिधिका आसन ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने विनीत भावसे उत्तर दिया, हजूर अभीतक अच्छी है, आगे अल्लाह मालिक हैं।

ज्वालासिंह—यहाँ मुझे आसपासीके कुएँ बहुत कम नजर आते हैं, क्या जमींदारकी तरफसे इसका कोई इन्तजाम नहीं है?

कादिर—हमारे जमींदार तो हजूर हम लोगोंकी बड़ी परवस्ती

करते हैं, अल्लाह उन्हें सलामत रक्खे। हमलोग आप ही आलत-के मारे कोई फिकर नहीं करते।

ज्वालासिंह—मुंशी गौसखाँ तुमलोगोंकी सरकशीकी बहुत शिकायत करते हैं। बाबू ज्ञानशङ्कर भी तुम लोगोंसे खुश नहीं हैं, यह क्या बात है? तुम लोग वक्तपर लगान नहीं देते और जब तकाजा किया जाता है, तो फिसादपर आमादा हो जाते हो। तुम्हें मालूम है, कि जमींदार चाहे तो तुमसे एकके दो वसूल कर सकता है।

गजाधर अहीरने दबी जबानसे कहा, तो कौन कहे कि छोड़ देते हैं।

ज्वालासिंह—क्या कहते हो? सामने आकर कहो।

कादिर—कुछ नहीं हजूर, यही कहता है कि हमारी क्या मजाल है, जो अपने मालिकोंके सामने सिर उठावें। हम तो उनके ताबेदार हैं, उनका दिया खाते हैं, उनकी जमीनमें बसते हैं, भला उनसे सरकशी करके अल्लाहको क्या मुँह दिखावेंगे? रही बकाया, सो हजूर जहाँतक होता है साल तमामतक कौड़ी-कौड़ी चुका देते हैं। हाँ, जब कोई काबू नहीं चलता तो कभी थोड़ी बहुत बाकी रह भी जाती है।

ज्वालासिंहने इसी प्रकारसे और भी कई प्रश्न किये; किन्तु उनका अभीष्ट पूरा न हो सका। किसीकी जबानसे गौसखाँ या बाबू ज्ञानशङ्करके विरुद्ध एक शब्द भी न निकला। अन्तमें हार मानकर वह एक पड़ावको चल दिये।

६

अपनी पारिवारिक सदिच्छाका ऐसा उत्तम प्रमाण देनेके बाद ज्ञानशङ्करको बटवारेके विषयमें अब कोई असुविधा न रही। लाला प्रभाशङ्करने उन्हींके इच्छानुसार करनेका निश्चय कर लिया। दीवानखाना उनके लिये खाली कर दिया, लखनपुर मौसलुम उनके हिस्सेमें दे दिया, और घरकी अन्य सामग्रियाँ भी उन्हींकी

मरजीके मुताबिक बाँट दीं। बड़ी बहूकी ओरसे विरोधकी शङ्का थी, लेकिन इस एहसानने उनकी जबान ही नहीं बन्द कर दी, वरन् उनके मनोमालिन्यको भी मिटा दिया। प्रभाशङ्कर अब बड़ी बहूसे, नौकरोंसे, मित्रोंसे, सम्बन्धियोंसे ज्ञानशङ्करकी प्रशंसा किया करते और प्रायः अपनी आत्मीयताको किसी न किसी उपहारके स्वरूपमें प्रकट करते। एक दुशाला, एक चाँदीका थाल, कई सुन्दर चित्र, एक बहुत अच्छा ऊनी कालीन और ऐसी ही विविध वस्तुएँ उन्हें भेंट कीं। उन्हें स्वादिष्ट पदार्थोंसे बड़ी रुचि थी। नित्य नाना प्रकारके मुरब्बे, चटनियाँ, अचार बनाया करते थे। इस कलामें प्रवीण थे। आप भी शौकसे खाते थे और दूसरोंको खिलाकर आनन्दित होते थे। ज्ञानशङ्करके लिये नित्य कोई न कोई स्वादिष्ट पदार्थ बनाकर भेजते। यहाँतक कि ज्ञानशङ्कर इन सद्भावोंसे तङ्ग आ गये। उनकी आत्मा अभीतक उनको कपट-नीतिपर उनको लज्जित किया करती थी। यह खातिरदारियाँ उन्हें अपनी कुटिलताकी याद दिलाती थीं और इससे उनका चित्त दुःखी होता था। अपने चाचाकी सरल हृदयता और सज्जनताके सामने अपनी धूर्तता और मलिनता अत्यन्त घृणित दीख पड़ती थी।

लखनपुर ज्ञानशङ्करकी चिरअभिलाषाओंका स्वर्ग था। घरकी सारी सम्पत्तिमें ऐसा उपजाऊ, ऐसा समृद्धिपूर्ण और कोई गाँव नहीं था जो शहरसे मिला हुआ, पक्की सड़कके किनारे, जलवायु उत्तम, यहाँ कई हलोंकी सीर थी, एक कच्चा पर सुन्दर मकान भी था और सबसे बड़ी बात यह है कि यहाँ एजाफा लगानकी बड़ी गुंजाइश थी। थोड़े उद्योगसे उसका नक्शा दूना हो सकता था। दो-चार कच्चे कुएँ खुदवाकर एजाफेकी कानूनी शर्तें पूरी की जा सकती थीं। बटवारेको एक सप्ताह भी न हुआ था कि ज्ञानशङ्करने गौसखाँको बुलाया, जमाबन्दीकी जाँच की, एजाफा बेदखलीकी परत तैयार की और असामियोंपर मुकदमा दायर करने-

का हुक्म दे दिया। अबतक सीर बिलकुल न होती थी। इसका भी प्रबन्ध किया। वह चाहते थे कि अपने हल, बैल, हलवाहे रखे जायँ और विधि-पूर्वक खेती की जाय, किन्तु खाँ साहेबने कहा, इतने आडम्बरकी जरूरत नहीं, बेगारमें बड़ी सुगमतासे सीर हो सकती है। सीरके लिये बेगार जमींदारका हक़ है, उसे क्यों छोड़िये ?

लेकिन इस सुव्यवस्थारूपी मधुर गानमें एक कटुस्वर भी था, जिससे उसका लालित्य भङ्ग हो जाता था। यह विद्यावती-का असहयोग था। उसे अपने पतिकी स्वार्थपरता एक आँख न भाती थी। कभी-कभी यह मतभेद विवाद और कलहका भी रूप धारण कर लेता था।

फागुनका महीना था। लाला प्रभाशङ्कर धूमधामसे होली मनाया करते थे। अपने घरवालोंके लिये नये कपड़े लाये, तो ज्ञानशङ्करके परिवारके लिये भी लेते आये थे। लगभग पचास वर्षोंसे वह घरभरके लिये नये वस्त्र लानेके आदी हो गये थे। अब अलग हो जानेपर भी वह उस प्रथाको निभाते रहना चाहते थे। ऐसे आनन्दके अवसरपर द्वेष-भावको जाग्रत रखना उनके लिये अत्यन्त दुःखकर था। विद्याने यह कपड़े तो रख लिये, पर इसके बदलेमें प्रभाशङ्करके लड़कों, लड़कियों और बहूके लिये एक-एक जोड़े धोतीकी व्यवस्था की। ज्ञानशङ्करने यह प्रस्ताव सुना तो चिढ़कर बोले, यही करना है, तो उनके कपड़े लौटा क्यों नहीं देती ?

विद्या—भला कपड़े लौटा दोगे, तो वह अपने मनमें क्या कहेंगे ? वह बेचारे तो तुमसे मिलनेको दौड़ते हैं और तुम भागे भागे फिरते हो। तुम्हें रुपयोंका ही खयाल है न ? तुम कुछ मत देना; मैं अपने पाससे दूँगी।

ज्ञान—जब तुम धन्नासेठोंकी तरह बातें करने लगती हो तो बदनमें आग-सी लग जाती है। उन्होंने कपड़े भेजे तो कोई

एहसान नहीं किया। दूकानोंका सालभरका किराया पेशगी लेकर हड़प कर चुके हैं। यह चाल इसलिये चलरहे हैं कि मैं मुँह भी न खोल सकूँ और उनका बड़प्पन भी बना रहे। अपनी गाँठसे करते तो मालूम होता।

विद्या—तुम दूसरोंकी कीर्तिको कभी-कभी ऐसा मिटाने लगते हो कि मुझे तुम्हारी अनुदारतापर दुःख होता है। उन्होंने अपना समझकर उपहार दिया, तुम्हें इसमें उनकी चाल सूझ गयी।

ज्ञान—मुझे भी घरमें बैठे सुखभोगकी सामग्रियाँ मिलतीं तो मैं तुमसे अधिक उदार बन जाता। तुम्हें क्या मालूम है कि मैं आजकल कितनी मुश्किलसे गृहस्थीका प्रबन्ध कर रहा हूँ? लखनपुरसे जो थोड़ा बहुत मिला उसीमें गुजर हो रहा है। किफायतसे न चलाता तो अबतक सैकड़ोंका कर्ज हो गया होता। केवल अदालतके लिये सैकड़ों रुपयेकी जरूरत है। बेदखली और एजाफेके कागज-पत्र तैयार हैं, पर मुकदमे दायर करनेके लिये हाथमें कुछ भी नहीं। उधर गाँववाले भी बिगड़े हुए हैं। ज्वालासिंहने अबकी दौरेमें उन्हें ऐसा सिर चढ़ा दिया कि मुझे कुछ समझते ही नहीं। मैं तो इन चिन्ताओंमें मरा जाता हूँ और तुम्हें एक-न-एक खुराफात सूझा करती है।

विद्या—मैं तुमसे रुपये तो नहीं माँगती!

ज्ञान—मैं अपने और तुम्हारे रुपयोंमें कोई भेद नहीं समझता। हाँ, जब रायसाहब तुम्हारे नाम कोई जायदाद लिख देंगे तो समझने लगूँगा।

विद्या—मैं तुम्हारा एक पैसा नहीं जानती।

ज्ञान—माना, लेकिन वहाँसे भी तुम रोकड़ नहीं लाती हो। सालमें सौ-पचास रुपये मिल जाते होंगे, इतनेपर ही तुम्हारे पैर जमीनपर नहीं पड़ते। छिछले तालकी तरह उबलने लगती हो।

विद्या—तो क्या चाहते हो कि वह तुम्हें अपना घर उठाकर दे दें।

ज्ञान—वह बेचारे आप तो अघा लें, मुझे क्या देंगे ? मैं तो ऐसे आदमीको पशुसे भी गया-गुजरा समझता हूँ, जो आप तो लाखों उड़ावे और अपने निकटतम सम्बन्धियोंकी बात भी न पूछे। वह तो अगर मर भी जायें तो मेरी आँखोंमें आँसू न आवे।

विद्या—तुम्हारा आत्मा इतना संकुचित है, यह मुझे आज मालूम हुआ।

ज्ञान—ईश्वरको धन्यवाद दो कि मुझसे विवाह हो गया, नहीं तो कोई बात भी न पूछता। लाला बरसोंतक दही-दही हाँक लगाते रहे, पर कोई सेंत भी न पूछता था।

विद्यावती इस मर्माघातको न सह सकी, क्रोधके मारे उसका चेहरा तमतमा उठा। वह झमककर वहाँसे चली जानेको उठी, कि इतनेमें महरीने एक तारका लिफाफा लाकर ज्ञानशङ्करके हाथ रख दिया। लिखा था:—

"पुत्रका स्वर्गवास हो गया, जल्द आओ।

—कमलानन्द"

ज्ञानशङ्करने तारका काग़ज़ ज़मीनपर फेंक दिया और लम्बी साँस खींचकर बोले, हा! शोक! परमात्मा, यह तुमने क्या किया!

विद्या ठिठक गयी।

ज्ञानशङ्करने विद्यासे कहा, विद्या, हमलोगोंपर वज्र गिर पड़ा, हमारा.....

विद्याने कातर नेत्रोंसे देखकर कहा, मेरे घरपर तो कुशल है

ज्ञानशङ्कर हाय प्रिये, किस मुँहसे कहूँ कि सब कुशल है, वह घर उजड़ गया, उस घरका दीपक बुझ गया। बाबू रामानन्द अब इस संसारमें नहीं हैं। हा, ईश्वर!!

विद्याके मुँहसे सहसा एक चीख निकल गयी। विह्वल होकर भूमिपर गिर पड़ी और छाती पीट-पीटकर विलाप करने लगी। श्रद्धा दौड़ी हुई आयी। महरियाँ जमा हो गयीं। बड़ी बहूने रोना

सुना तो वह अपनी बहू और पुत्रियोंके साथ आ पहुँची। कमरेमें स्त्रियोंकी भीड़ लग गयी। मायाशङ्कर माताको रोते देखकर चिल्लाने लगा। सभी स्त्रियोंके मुखपर शोकको आभा थी और नेत्रोंमें करुणाका जल। कोई ईश्वरको कोसती थी, कोई समयको निन्दा करती थी। अकालमृत्यु कदाचित् हमारी दृष्टिमें ईश्वरका सबसे बड़ा अन्याय है। यह विपत्ति हमारी श्रद्धा और भक्तिका नाश कर देती है, हमें ईश्वरद्रोही बना देती है। संसारमें हम नित्य घोर-से-घोर और विषम-से-विषम अन्याय देखा करते हैं। हमें उसका सहन पड़ गया है। लेकिन हमारी अन्याय पीड़ित आँखें भी यह दारुण दृश्य सहन नहीं कर सकतीं। अकालमृत्यु हमारे हृदयपर सबसे कठोर दैवी आघात है। यह हमारे न्याय-ज्ञानपर सबसे भयङ्कर बलात्कार है।

पर हा स्वार्थ-संग्राम! यह निर्दय वज्रप्रहार ज्ञानशङ्करको सुखद पुष्प-वर्षाके तुल्य जान पड़ा। उन्हें क्षणिक शोक अवश्य हुआ, किन्तु तुरन्त ही हृदयमें नयी-नयी आकांक्षाएँ तरंगें मारने लगीं। अबतक उनका जीवन लक्ष्यहीन था। अब उसमें एक महान् लक्ष्यका विकास हुआ। विपुल सम्पत्तिका मार्ग निश्चित हो गया। ऊसरभूमिमें हरियाली लहरें मारने लगीं। राय कमलानन्दके अब और कोई पुत्र न था। दो पुत्रियोंमें एक विधवा और निस्सन्तान थी। विद्याको ही ईश्वरने सन्तान दी थी और मायाशङ्कर अब रायसाहबका वारिस था। कोई आश्चर्य नहीं कि ज्ञानशंकरको यह शोकमय व्यापार अपने सौभाग्यकी ईश्वरकृत व्यवस्था जान पड़ती थी। वह मायाशङ्करको गोदमें लेकर नीचे दीवानखानेमें चले आये और विरासतके सम्बन्धमें स्मृतिकारोंकी व्यवस्थाका अवलोकन करने लगे। वह अपनी आशाओंकी पुष्टि और शङ्काओंका समाधान करना चाहते थे। कुछ दिनोंतक कानून पढ़ा था, कानूनी किताबोंका उनके पास अच्छा संग्रह था। पहले मनुस्मृति खोली, सन्तोष न हुआ। मिताक्षराका

विधान देखा, शङ्का और भी बढ़ी, याज्ञवल्क्यने भी विषयका कुछ संतोषप्रद स्पष्टीकरण न किया। किसी वकीलकी सम्मति आवश्यक जान पड़ी। यह इतने उतावले हो रहे थे कि तत्काल कपड़े पहनकर चलनेको तैयार हो गये। कहारसे कहा, साथीको ले जा बाजारकी सैर करा ला। कमरेसे बाहर निकले ही थे कि याद आया, तारका जवाब नहीं दिया। फिर कमरेमें गये, समधेदनाका तार लिखा। इतनेमें लाला प्रभाशङ्कर और दयाशङ्कर आ पहुंचे। ज्ञानशङ्करको इस समय उनका आना ज़हर-सा लगा। प्रभाशङ्कर बोले, मैंने तो अभी सुना। सन्नाटेमें आ गया। बेचारे रायसाहेबको बुढ़ापेमें यह बुरा धक्का लगा। घर ही वीरान हो गया।

ज्ञानशङ्कर—ईश्वरका लीला विचित्र है!

प्रभाशङ्कर—अभी उम्र ही क्या थी! बिलकुल लड़का था। तुम्हारे विवाहमें देखा था, चेहरेसे तेज बरसता था। ऐसा प्रतापी लड़का मैंने नहीं देखा।

ज्ञानशङ्कर—इसीसे तो ईश्वरके न्याय-विधानपरसे विश्वास उठ जाता है।

दयाशङ्कर—आपकी बड़ी सालीके तो कोई लड़का नहीं है न?

ज्ञानशङ्करने विरक्त भावसे कहा, नहीं।

दयाशङ्कर—तब तो चाहे माया ही वारिस हो।

ज्ञानशङ्करने उनका तिरस्कार करते हुए कहा, कैसी बात करते हो? कहाँ कौन-सी बात, कहाँ कौन-सी बात? ऐसी बातोंका यह समय नहीं है।

दयाशङ्कर लज्जित हो गये। ज्ञानशङ्करको अब यह विलम्ब असह्य होने लगा। पैरगाड़ी उठायी और दोनों आदमियोंको बरामदेमें ही छोड़कर डाक्टर इरफ़ानअलीके बँगलेकी ओर चल दिये, जो नामी बैरिस्टर थे।

बैरिस्टर साहेबका बंगला खूब सजा हुआ था। शाम हो

गयी थी, वह हवा खाने जा रहे थे। मोटर तैयार थी, लेकिन मुवक्किलोंसे जान न छूटती थी। वह इस समय अपने आफिसमें आराम-कुर्सीपर लेटे हुए सिगार पी रहे थे और अपने छोटे टेरियरको गोदमें लिये उसके सिरमें थपकियाँ देते जाते थे। मुवक्किल लोग दूसरे कमरेमें बैठे थे। वह बारी-बारीसे डाक्टर साहेबके पास आकर अपना वृत्तान्त कहते जाते थे। ज्ञानशङ्करको बैठे-बैठे ८ बज गये। तब जाकर उनकी बारी आयी। उन्होंने आफिसमें जाकर अपना मामला सुनाना शुरू किया। क्लर्कने उनकी सब बातें नोट कर लीं। इसकी फीस ५) हुई। डाक्टर साहेबकी सम्मतिके लिये दूसरे दिन बुलाया। उसकी फीस ५००) थी। यदि उस सम्मतिपर कुछ शंकाएँ हों तो उनके समाधानके लिये प्रति घण्टा २००) देने पड़ेंगे। ज्ञानशङ्करको मालूम न था कि डाक्टर साहेबके समयका मूल्य इतना अधिक है। मनमें पछताये कि नाहक इस झमेलेमें फँसा। क्लर्ककी फीस तो उसी दम दे दी और घरसे रुपये लानेका बहाना करके वहाँसे निकल आये। लेकिन रास्तेमें सोचने लगे, इनकी राय जरूर पक्की होती होगी, तभी तो उसका इतना मूल्य है। नहीं तो इतने आदमी उन्हें घेरे क्यों रहते? कदाचित् इसीलिये कल बुलाया है, खूब छान-परताल करके तब राय देंगे। अटकलपच्चू बातें कहनी होतीं तो अभी न कह देते। अंग्रेजी नीतिमें यही तो गुण है कि दाम चौकस लेते हैं, पर माल खरा देते हैं। सैकड़ों नजीरें देखनी पड़ेंगी, हिन्दू-शास्त्रोंका मथन करना पड़ेगा, तब जाके तत्व हाथ आयेगा। रुपयेका कोई प्रबन्ध करना चाहिये। उनका मुँह देखनेसे काम न चलेगा। एक बात निश्चित रूपसे मालूम तो हो जायगी। यह नहीं कि मैं तो धोखेमें निश्चिन्त बैठा रहूँ और वहाँ दाल न गले, सारी आशाएँ नष्ट हो जायँ, मगर यह व्यवसाय है उत्तम। आदमी चाहे तो सोनेकी दीवार खड़ी कर दे। मुझे शामत सवार हुई कि इसे छोड़ बैठा, नहीं तो आज क्या मेरी आमदनी दो हजार मासिकसे कम होती?

जब निरे काठके उल्लूतक हजारोंपर हाथ साफ करते हैं तो क्या मेरी ही न चलती? इस जमींदारीका बुरा हो! इसने मुझे कहींका न रक्खा!

वह घर पहुँचे तो ६ बज चुके थे। विद्या अपने कमरेमें अकेले उदास पड़ी थी, महरियाँ काम-धन्धेमें लगी हुई थीं और पड़ोसिनें विदा हो गयी थीं। ज्ञानशङ्करने विद्याका सिर उठाकर अपनी गोदमें रख लिया और गद्गद स्वरसे बोले, मुँह देखना भी न बदा था।

विद्याने रोते हुए कहा, उनकी सूरत एक क्षणके लिये भी आँखोंसे नहीं उतरता। ऐसा जान पड़ता है, वह मेरे सामने खड़े मुस्कुरा रहे हैं।

ज्ञान—मेरा तो अब सांसारिक वस्तुओंपर भरोसा ही नहीं रहा। यही जी चाहता है कि सब कुछ छोड़छाड़के कहीं चल दूँ।

विद्या—कल शामकी गाड़ीसे चलो। कुछ रुपये लेते चलने होंगे। मैं उनके पोड़शेमें कुछ दान करना चाहती हूँ।

ज्ञान हाँ, हाँ, जरूर। अब उनकी आत्माको सन्तुष्ट करनेका हमारे पास यही तो एक साधन रह गया है।

विद्या—उन्हें घोड़ेकी सवारीका बहुत शौक था। मैं एक घोड़ा उनके नामपर देना चाहती हूँ।

ज्ञान—बहुत अच्छी बात है। दो-ढाई सौमें घोड़ा मिल जायेगा।

विद्यावतीने डरते-डरते यह प्रस्ताव किया था। ज्ञानशंकरने उन्हें सहर्ष स्वीकार करके उसे मुग्ध कर दिया।

ज्ञानशंकर इस अपव्ययको इस समय काटना अनुचित समझते थे। यह अवसर ही ऐसा था। अब वह विद्याका निरादर तथा अवहेला न कर सकते थे।

१०

राय कमलानन्द बहादुर लखनऊके एक बड़े रईस और ताल्लुकेदार थे। वार्षिक आय एक लाखके लगभग थी। अमीनाबादमें उनका विशाल भवन था। शहरमें उनकी और भी कई कोठियाँ थीं, पर वह अधिकांश नैनीताल या मसूरीमें रहा करते थे। यद्यपि उनकी पत्नीका देहान्त उनकी युवावस्थामें हो गया, पर उन्होंने दूसरा विवाह न किया था। मित्रों और हितसाधकोंने बहुत घेरा, पर वह पुनर्विवाहके बन्धनमें न पड़े। विवाहका उद्देश्य सन्तान है और जब ईश्वरने उन्हें एक पुत्र और दो पुत्रियाँ प्रदान कर दीं तो फिर विवाह करनेकी क्या जरूरत? उन्होंने अपनी बड़ी लड़की गायत्रीका विवाह गोरखपुरके एक बड़े रईससे किया। उत्सवमें लाखों रुपये खर्च कर दिये। पर जब विवाहके दो ही साल पीछे गायत्री विधवा हो गयी—उसके पतिको किसी घरकेही प्राणीने लोभवश विष दे दिया—तो रायसाहबने विद्याको किसी साधारण कुटुम्बमें ब्याहनेका निश्चय किया, जहाँ जीवन इतना कंटकमय न हो। यही कारण था कि ज्ञानशंकरको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वर्गीय बाबू रामानन्द अभीतक कुंवारेही थे। उनकी अवस्था २०वर्षसे अधिक हो गयी थी, पर रायसाहब उनका विवाह करनेके कभी उत्सुक न हुए। वह उनके मानसिक तथा शारीरिक विकासमें कोई कृत्रिम बाधा न डालना चाहते थे। पर शोक! रामानन्द घुड़दौड़में सम्मिलित होनेके लिये पूना गये हुए थे। वहाँ घोड़ेपरसे गिर पड़े, मर्मस्थानोंपर कड़ा चोट आ गया। लखनऊ पहुँचनेके दो ही दिन बाद उनका प्राणान्त हो गया। रायसाहबकी सारी सदुकल्पनाएँ विनष्ट हो गयीं, आशाओंका दीपक बुझ गया।

किन्तु रायसाहब उन प्राणियोंमें न थे, जो शोक-सन्तापके ग्रास बन जाते हैं। इसे विराग कहिये, चाहे प्रेमशिथिलता, या

चित्तकी स्थिरता। दो ही चार दिनमें उनका पुत्रशोक जीवनकी अविश्रान्त कर्मधारामें विलिन हो गया।

रायसाहेब बड़े रसिक पुरुष थे। घुड़दौड़ और शिकार, सरोद और सितारसे उन्हें समान प्रेम था। साहित्य और राजनीतिके भी ज्ञाता थे। अवस्था ६० वर्षके लगभग थी, पर इन विषयोंमें उनका उत्साह लेशमात्र भी क्षीण न हुआ था। अस्तबलमें दस बारह चुने हुए घोड़े थे, विविध प्रकारकी कई बग्गियाँ, दो मोटरकार, दो हाथी। दरजनों कुत्ते पाल रखे थे। इनके अतिरिक्त बाज, शिकरे आदि शिकारी चिड़ियोंकी एक हवाई सेना भी थी। उनके दीवानखानेमें अस्त्र-शस्त्रोंकी शृङ्खला देखकर जान पड़ता था, मानों शस्त्रालय है। घुड़दौड़में वह अच्छे-अच्छे शहसवारोंसे पाला मारते थे। शिकारमें उनके निशाने अचूक पड़ते थे। पोलोके मैदानमें उनकी चपलता और हाथोंकी सफाई देखकर आश्चर्य होता था। दिव्य कलाओंमें भी वह इससे कम प्रवीण न थे। शामको जब वह सितार लेकर बैठते तो उनकी सिद्धिपर अच्छे-अच्छे उस्ताद भी चकित हो जाते थे। उनके स्वरमें अलौकिक माधुर्य था, संगीतके सूक्ष्म तत्वोंके वेत्ता थे। उनके ध्रुपदकी अलाप सुनकर बड़े-बड़े कलावन्त भी सिर धुनने लगते थे। काव्य-कलामें भी उनकी कुशलता और मार्मिकता कवियोंको लज्जित कर देती थी, उनकी रचनाएँ अच्छे-अच्छे कवियोंसे टक्कर लेती थीं। संस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, सभी भाषाओंके वे पंडित थे। स्मरण-शक्ति विलक्षण थी। कविजनोंके सहस्रों शेर, दोहे, कवित्त, पद्य कण्ठस्थ थे और बातचीतमें वह उनका बड़ा सुरुचिसे उपयोग करते थे। इसीलिये उनकी बातें सुनेमें लोगोंको आनन्द मिलता था। इधर १०-१२ वर्षोंसे राजनीतिमें भी प्रविष्ट हो गये थे। कौंसिल भवनमें उनका स्थान प्रथम श्रेणीमें था। उनकी राय सदैव निर्भीक होती थी। वह अवसर या

समयके भक्त न थे। राष्ट्र या शासनके दास न बनकर सर्वदा अपनी विचार-शक्तिसे काम लेते थे। इसी कारण कौंसिलमें उनकी बड़ी शान थी। यद्यपि वह बहुत कम बोलते थे और राजनीति-भवनसे बाहर उनकी आवाज कभी न सुनाई देती थी, किन्तु जब बोलते थे तो अच्छे ही बोलते थे। ज्ञानशङ्करको उनके बुद्धि-चमत्कार और ज्ञान-विस्तारपर अचम्भा होता था। यदि आँखों देखी बात न होती तो किसी एक व्यक्तिमें इतने गुणोंकी चर्चा सुनकर उन्हें विश्वास न होता। इस सत्संग-से उनकी आँखें खुल गयीं। उन्हें अपनी योग्यता और चतुरता-पर बड़ा गर्व था। इन सिद्धियोंने उसे चूर-चूर कर दिया। पहले दो सप्ताहतक तो उनपर श्रद्धाका एक नशा-सा छाया रहा। रायसाहेब जो कुछ करते, जो कुछ कहते, वह सब उन्हें प्रामा-णिक जान पड़ते थे। पग-पगपर, बात-बातमें, उन्हें अपनी त्रुटियाँ दिखाई देतीं और लज्जित होना पड़ता। यहाँतक कि साहित्य और दर्शनमें भी, जो उनके मुख्य विषय थे, रायसाहेबके विचारोंपर मनन करनेके लिये उन्हें बहुत कुछ सामग्री मिल जाती थी। सबसे बड़े कुतूहलकी बात तो यह थी कि ऐसे दारुण शोकके बोझके नीचे रायसाहेब क्योंकर सीधे खड़े रह सकते थे। उनके विलास-उपवनपर इस दुस्सह झोंकेका जरा भी असर न दिखाई देता था।

किन्तु शनैः शनैः ज्ञानशंकरको रायसाहेबकी इस बहुज्ञतासे अश्रद्धा होने लगी। आठों पहर अपनी हीनताका अनुभव करना असह्य था। उनके विचारमें अब रायसाहेबका इन आमोदप्रद विषयोंमें लिप्त रहना शोभा नहीं देता था। यावज्जीवन विला-सितामें लीन रहनेके बाद अब उन्हें विरक्त हो जाना चाहिये था। इस आमोद-लिप्साकी भी कोई सीमा है? इसे सजीविता नहीं कह सकते, यह निश्चलता नहीं, इसे धैर्य्य कहना ही उपयुक्त है। धैर्य्य कभी सजीविता और वासनाका रूप नहीं धारण

करता। वह हृदयपर विरक्ति, उदासीनता और मलिनताका रंग फेर देता है। वह केवल हृदयदाह है, जिससे आँसूतक सूख जाता है। वह शोककी अन्तिम अवस्था है। कोई योगी, सिद्ध, महात्मा भी जवान बेटेका दाग दिलपर रखते हुए इतना अविचलित नहीं रह सकता। यह लग्न इन्द्रियोपासना है। अहंकारने आत्माका दमन कर दिया है, ममत्वने हृदयके कोमल भावोंका सर्वनाश कर दिया है। ज्ञानशङ्करको अब रायसाहबकी एक-एक बातमें क्षुद्र-विलासिताकी झलक दिखाई देती। वह उनके प्रत्येक व्यवहारको तीव्र समालोचनाकी दृष्टिसे देखते।

परन्तु एक महीना गुजर जानेपर भी ज्ञानशङ्करने कभी बनारस जानेकी इच्छा नहीं प्रकट की। यद्यपि विद्यावतीका उनके साथ जानेपर राजी न होना उनके यहाँ पड़े रहनेका अच्छा बहाना था, पर वास्तवमें इसका एक दूसरा ही कारण था, जिसे अन्तःकरणमें भी व्यक्त करनेका उन्हें साहस न होता था। गायत्रीके कोमल भाव और मृदुल रसमय बातोंका उनके चित्तपर आकर्षण होने लगा था। उसका विकसित लावण्यमय सौंदर्य अज्ञात रूपसे उनके हृदयको खींचता जाता था, और वह पतंगकी भाँति, परिणामसे बेखबर इस दीपककी ओर बढ़ते चले आते थे। उन्हें गायत्री प्रेमाकांक्षा और प्रेमानुरोधकी मूर्ति दिखाई देती थी, और यह भ्रम उनकी लालसाको और भी उत्तेजित करता रहता था। घरमें किसी बड़ी बूढ़ी स्त्रीके न होनेके कारण उनका आदर सत्कार गायत्री ही करती थी और ऐसे स्नेह और अनुरागके साथ कि ज्ञानशङ्करको इसमें प्रेमादेशका रसमय आनन्द मिलता था। सुखद कल्पनाएँ मनोहर रूप धारण करके उनकी दृष्टिके सामने नृत्य करने लगती थीं। उन्हें अपना जीवन कभी इतना सुखमय न मालूम हुआ था। हृदय-सागरमें कभी ऐसी प्रबल तरंगें न उठी थीं। उनका मन केवल प्रेमवासनाओंका आनन्द न उठाता था। वह गायत्रीकी अतुल सम्पत्तिका भी सुख भोग

करता था। उनकी भावी उन्नतिका भवन निर्माण हो चुका था, यदि वह इस उद्यानसे सुसज्जित हो जाय, तो उसकी शोभा कितनी अपूर्व होगी! उसका दृश्य कितना विस्तृत, कितना मनोहर!

ज्ञानशङ्करकी दृष्टिमें आत्मसंयमका महत्व बहुत कम था। उनका विचार था कि संयम और नियम मानव-चरित्रके स्वाभाविक विकासके बाधक हैं। वही पौधा सघन वृक्ष हो सकता है जो सर्दी और लू, वर्षा और पालेमें समान रूपसे खड़ा रहे। उसकी वृद्धिके लिये अग्निमय प्रचण्ड वायु उतनी ही आवश्यक है, जितनी शीतल मन्द समीर, शुष्कता उतनी ही प्राणपोषक है, जितनी आर्द्रता। चरित्रोन्नतिके लिये भी विविध प्रकारकी परिस्थितियाँ अनिवार्य हैं। दरिद्रताको काला नाग क्यों समझें? चरित्र-संगठनके लिये यह सम्पत्तिसे कहीं महत्वपूर्ण है। यह मनुष्यमें दृढ़ता और संकल्प, दया और सहानुभूतिके भाव उदय करती है। प्रत्येक अनुभव चरित्रके किसी-न-किसी अंगकी पुष्टि करता है, यह प्राकृतिक नियम है। इसमें कृत्रिम बाधाओंके डालनेसे चरित्र विषम हो जाता है। यहाँतक कि क्रोध और ईर्षा-असत्य और कपटमें भी बहुमूल्य शिक्षाके अंकुर छिपे रहते हैं। जबतक सितारका प्रत्येक तार चोट न खाय, सुरीली ध्वनि नहीं निकल सकती। मनोवृत्तियोंको रोकना ईश्वरीय नियमोंमें हस्तक्षेप करना है। इच्छाओंका दमन करना आत्महत्याके समान है। इससे चरित्र संकुचित हो जाता है। बन्धनोंके दिन अब नहीं रहे; यह अबाध, उदार, विराट उन्नतिका समय है। त्याग और बहिष्कार उस समयके लिये उपयुक्त था, जब लोग संसारको असार, स्वप्नवत् समझते थे। यह सांसारिक उन्नतिका काल है। धर्माधर्मका विचार संकीर्णताका द्योतक है। सांसारिक उन्नति हमारा अभीष्ट है। प्रत्येक साधन जो अभीष्ट सिद्धिमें हमारा सहायक हो, ग्राह्य है। इन विचारोंने ज्ञानशङ्करको विवेक-शून्य बना दिया था। हाँ, वर्त्तमान अवस्थाका यह

प्रभाव था कि वह निन्दा और उपहाससे डरते थे, हालाँकि यह भी उनके विचारमें मानसिक दुर्बलता थी।

गायत्री उन स्त्रियोंमें न थी, जिनके लिये पुरुषोंका हृदय एक खुला हुआ पृष्ठ होता है। उसका पति एक दुराचारी मनुष्य था, पर गायत्रीको कभी उसपर सन्देह नहीं हुआ, उसके मनोभावोंकी तहतक कभी नहीं पहुँची और यद्यपि उसे मरे हुए तीन साल बीत चुके थे, पर वह अभीतक आध्यात्मिक श्रद्धासे उसकी स्मृतिकी आराधना किया करती थी। उसका निष्कपट हृदय वासनायुक्त प्रेमके रहस्योंसे अनभिज्ञ था। किन्तु इसके साथही सगर्वता उसके स्वभावका प्रधान अङ्ग थी। वह अपनेको उससे कहीं ज्यादा विवेकशील और मर्मज्ञ समझती थी, जितनी वह वास्तवमें थी। उसके मनोवेग और विचार जलके नीचे बैठनेवाले रोड़े नहीं, सतहपर तैरनेवाले बुलबुले थे। ज्ञानशङ्कर एक रूपवान सौम्य, मृदुमुख मनुष्य थे। गायत्री सरलभावसे इन गुणोंपर मुग्ध थी। वह उनसे मुस्कुराकर कहती, तुम्हारी बातोंमें जादू है, तुम्हारी बातोंसे कभी मन तृप्त नहीं होता। वह ज्ञानशङ्करके सम्मुख विद्यासे कहती, ऐसा पति पाकर भी तू अपने भाग्यको नहीं सराहती? यद्यपि ज्ञानशङ्कर उससे दो-चार ही मास छोटे थे, पर उसकी छोटी बहनके पति थे, इसलिये वह उन्हें छोटे भाईके तुल्य समझती थी। वह उनके लिये अच्छे-अच्छे भोज्यपदार्थ आप बनाती, दिनमें कई बार जलपान करनेके लिये घरमें बुलाती थी। उसे धार्मिक और वैज्ञानिक विषयोंसे विशेष रुचि थी। ज्ञानशङ्करसे इसी विषयकी बातें करने और सुननेमें उसे हार्दिक आनन्द प्राप्त होता था। वह सालेके नातेसे प्रथानुसार उनसे दिल्लगी भी करती, उनपर भावमय चोटें करती और हँसती थी। मुँह लटका कर उदास बैठना उसकी आदत न थी। वह हँसमुख, विनयशील, सरल-हृदय, विनोदप्रिय रमणी थी, जिसके हृदयमें लीला और क्रीड़ाके लिये कहीं जगह न थी।

किन्तु उसका यह सरल सीधा व्यवहार ज्ञानशङ्करकी मलिन दृष्टिमें परिवर्तित हो जाता था, उज्ज्वलतामें वैचित्र्य और समतामें विषमता दीख पड़ती थी। उन्हें गायत्री संकेत द्वारा कहती हुई मालूम होती, "आओ, इस उजड़े हुए हृदयको आबाद करो, आओ, इस अन्धकारमय कुटीरको आलोकित करो।" इस प्रेमाह्वानका अनादर करना उनके लिये असाध्य था। परन्तु स्वयं उनके हृदयने गायत्रीको यह निमंत्रण नहीं दिया, कभी अपना प्रेम उसपर अर्पण नहीं किया। उन्हें बहुधा क्लबमें देर हो जाती, ताशकी बाजी अधूरी न छोड़ सकते थे, कभी सैर-सपाटेमें विलम्ब हो जाता; किन्तु वह स्वयं विकल न होते, यही सोचते कि गायत्री विकल हो रही होगी। अग्नि गायत्रीके हृदयमें जलती थी, उन्हें केवल उसमें हाथ सेंकना था। उन्हें इस प्रयासमें वही उल्लास होता था, जो किसी शिकारीको शिकारमें, किसी खिलाड़ीको बाज़ीकी जीतमें होता है। यह प्रेम न था, वशीकरणकी इच्छा थी। इस इच्छा और प्रेममें बड़ा भेद है, इच्छा अपनी ओर खींचती है, प्रेम स्वयं खिंच जाता है। इच्छामें ममत्व है, प्रेममें आत्मसमर्पण। ज्ञानशङ्करके हृदयस्थलमें यही वशीकरण चेष्टा किलोलें कर रही थी।

गायत्री भोली सही, अज्ञान सही, पर शनैः शनैः उसे ज्ञानशङ्करसे लगाव होता जाता था। यदि कोई भूलकर भी विष खा ले, तो उसका असर क्या कुछ कम होगा? ज्ञानशङ्करको बाहरसे आनेमें देर होती, तो उसे बेचैनी होने लगती, किसी काममें जी न लगता, वह अटारीपर चढ़कर उनकी बाट जोहती। वह पहले विद्यावतीके सामने हँस-हँसकर उनसे बातें करती थी, कभी अकेले उनसे भेंट हो जाती,तो उसे कोई बात ही न सूझती थी। अब वह अवस्था न थी। उसकी बातें अब एकान्तकी खोजमें रहतीं। विद्याकी उपस्थिति उन दोनोंको मौन बना देती थी, अब वह केवल वैज्ञानिक तथा धार्मिक चर्चाओंपर आबद्ध न होते।

बहुधा स्त्री-पुरुषके पारस्परिक सम्बन्धकी मीमांसा किया करते और कभी-कभी ऐसे मार्मिक प्रसंगोंका सामना करना पड़ता कि गायत्री लज्जासे सिर झुका लेती।

एक दिन संध्या समय गायत्री बगीचेमें आराम-कुरसी-पर लेटी हुई एक पत्र पढ़ रही थी, जो अभी डाकसे आया था। यद्यपि लूका चलना बन्द हो गया था, पर गरमीके मारे बुरा हाल था, प्रत्येक वस्तुसे ज्वाला-सी निकल रही थी। वह पत्र-को उठाती थी और फिर गरमीसे विकल होकर रख देती थी। अन्तमें उसने एक परिचारिकाको पंखा झलनेके लिये बुलाया और अब पत्रको पढ़ने लगी। उसके मुख्तार-आमने लिखा था, सरकार यहाँ जल्द आवें। यहाँ कई ऐसे मामले आ पड़े हैं जो आपकी अनुमतिके बिना तै नहीं हो सकते। हरिहरपुरके इलाके-में बिलकुल वर्षा नहीं हुई, यह आपको ज्ञात ही है। अब वहाँके असामियोंसे लगान वसूल करना अत्यन्त कठिन हो रहा है। वह सोलहों आने छूटकी प्रार्थना करते हैं। मैंने जिलाधीशसे इस विषयमें अनुरोध किया, पर उसका कुछ फल न हुआ। वह अवश्य छूट कर देंगे। यदि आप आकर स्वयं जिलाधीशसे मिलें तो शायद सफलता हो। यदि श्रीमान् रायसाहेब यहाँ पधारनेका कष्ट उठावें तो निश्चय ही उनका प्रभाव कठिनको सुगम कर दे। असामियोंके इस आन्दोलनसे अधिकारियोंमें हलचल मची हुई है। शङ्का है कि छूट न हुई, तो उत्पात होने लगेगा। इस-लिये आपका जिलाधीशसे साक्षात् करना परमावश्यक है।

गायत्री सोचने लगी, यह जमींदारी क्या है, जीका जञ्जाल है। महीने आध महीनेके लिये भी कहीं जाऊँ तो हाय-हाय-सी होने लगती है। असामियोंमें यह धुन न जाने कैसे समा गयी, कि जहाँ देखो वहीं उपद्रव करनेपर तत्पर दिखाई देते हैं। सर-कारको इनपर कड़ा हाथ रखना चाहिये। जरा भी शह मिली और यह काबूसे बाहर हुए। अगर इस इलाकेमें असामियोंकी

छूट हो गयी तो मेरा २०, २५ हजारका नुकसान हो जायगा। इसी तरह और इलाक़ोंमें भी उपद्रवके डरसे छूट हो जाय, तो मैं तो कहींकी न रहूँ। कुछ वसूल न होगा तो मेरा खर्च कैसे चलेगा? माना कि मुझे उस इलाकेकी मालगुजारी न देनी पड़ेगी पर और भी तो कितने ही रुपये पृथक्-पृथक् नामोंसे देने पड़ते हैं। वह तो देने ही पड़ेंगे। वह किसके घरसे आवेंगे? छूट भी हो जाय, मगर लूँगी असामियोंसेही।

पर मेरा जी वहाँ कैसे लगेगा! यह बातें वहाँ कहाँ सुननेको मिलेंगी, अकेले पड़े-पड़े जी उकताया करेगा। जबतक ज्ञानशङ्कर यहाँ रहेंगे तबतक तो मैं गोरखपुर जाती नहीं। हाँ, जब वह चले जायँगे तो मजबूरी है। नुकसान ही न होगा? बलासे, जीवनके दिन आनन्दसे तो कट रहे हैं, धर्म और ज्ञानकी चर्चा तो सुननेमें आती है। कल बाबूसाहब मुझसे चिढ़ गये होंगे. लेकिन मेरा मन तो अब भी स्वीकार नहीं करता कि विवाह केवल एक शारीरिक सम्बन्ध और सामाजिक व्यवस्था है। वह स्वयं कहते हैं कि मानव-शरीरका कई सालोंमें सम्पूर्णतः रूपान्तर हो जाता है। शायद ८ वर्ष कहते थे। यदि विवाह केवल दैहिक सम्बन्ध हो तो इस नियमित समयके बाद उसका अस्तित्व ही नहीं रहता। इसका तो यह आशय है कि ८ वर्षोंके बाद पति और पत्नी इस धर्म-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं; एकका दूसरे पर कोई अधिकार नहीं रहता। आज फिर यही प्रश्न उठाऊँगी। लो, आपही आ गये। कहिये, कहीं जानेको तैयार हैं क्या?

ज्ञान—आज यहाँ थियेट्रिकल कम्पनीका तमाशा होनेवाला है। आपसे पूछने आया हूँ कि आपके लिये भी जगह रिजर्व करता आऊँ? आज बड़ी भीड़ होगी।

गायत्री—विद्यासे पूछा, वह जायगी?

ज्ञान—वह तो कहता है कि मायाको साथ लेकर जानेमें तकलीफ होगी। मैंने भी आग्रह नहीं किया।

गायत्री—तो अकेले पर मुझे भी कुछ आनन्द न आयेगा।

ज्ञान—आप न जायँगी तो मैं भी न जाऊँगा।

गायत्री—तब तो मैं कदापि न जाऊँगी। आपकी बातोंमें मुझे थियेटरसे अधिक आनन्द मिलता है। आइये, बैठिये। कलकी बात अधूरी रह गयी थी। आप कहते थे, स्त्रियोंमें आकर्षण-शक्ति पुरुषोंसे अधिक होती है; पर आपने इसका कोई कारण नहीं बताया था।

ज्ञान—इसका कारण तो स्पष्ट ही है। स्त्रियोंका जीवन-क्षेत्र परिमित होता है और पुरुषोंका विस्तृत। इसीलिये स्त्रियोंकी सारी शक्तियाँ केन्द्रस्थ हो जाती हैं और पुरुषोंकी विच्छिन्न।

गायत्री—लेकिन ऐसा होता तो पुरुषोंको स्त्रियोंके अधीन रहना चाहिये था। वह उनपर शासन क्योंकर करते?

ज्ञान—तो क्या आप समझती हैं कि मर्द स्त्रियोंपर शासन करते हैं? ऐसी बात नहीं है। वास्तवमें मर्द ही स्त्रियोंके अधीन होते हैं। स्त्रियाँ उनके जीवनकी विधाता होती हैं। देहपर उनका शासन चाहे न हो, हृदयपर उन्हींका साम्राज्य होता है।

गायत्री—तो फिर मर्द इतने निष्ठुर क्यों हो जाते हैं?

ज्ञान—मर्दोंपर निष्ठुरताका दोष लगाना न्याय-विरुद्ध है। वह उस समयतक सिर नहीं उठा सकते, जबतक या तो स्त्री स्वयं उन्हें मुक्त न कर दे, अथवा किसी दूसरी स्त्रीकी प्रबल विद्युत-शक्ति उनपर प्रभाव न डाले।

गायत्री—(हँसकर) आपने तो सारा दोष स्त्रियोंके ही सिर रख दिया।

ज्ञानशङ्करने भावुकतासे उत्तर दिया, अन्याय तो वह करती हैं, फरियाद कौन सुनेगा?

इतनेमें विद्यावती मायाशङ्करको गोदमें लिये आकर खड़ी हो गयी। माया चार वर्षका हो चुका था, पर अभीतक कोई और बच्चा न होनेके कारण वह शैशवावस्थाके आनन्द भोगता था।

गायत्रीने पूछा, क्यों विद्या, आज थियेटर देखने चलती हो ?

विद्या—कोई अनुरोध करेगा तो चली चलूँगी, नहीं तो मेरा जी नहीं चाहता।

ज्ञान—तुम्हारी इच्छा हो तो चलो, मैं अनुरोध नहीं करता।

विद्या—तो फिर मैं भी नहीं जाती।

गायत्री—मैं अनुरोध करती हूँ, तुम्हें चलना पड़ेगा। बाबूजी, आप जगहें रिजर्व करा लीजिये।

नौ बजे रातको तीनों एक फिटनपर बैठकर थियेटरको चले। माया भी साथ था। फिटन कुछ दूर चली आयी तो वह पानी-पानी चिल्लाने लगा। ज्ञानशङ्करने विद्यासे कहा, लड़केको लेकर चली थीं तो पानीकी एक सुराही क्यों न रख ली ?

विद्या—क्या जानती थी कि घरसे निकलते ही इसे प्यास लग जायगी ?

ज्ञान—पानदान रखना तो न भूल गयीं।

विद्या—इसीसे तो मैं कहती थी कि मैं न चलूँगी।

गायत्री—थियेटरके हातेमें बर्फ, पानी सब कुछ मिल जायगा।

माया यह सुनकर और भी अधीर हो गया। रो-रोकर दुनिया सिरपर उठा ली। ज्ञानशङ्करने उसे बढ़ावा दिया। वह और भी गला फाड़-फाड़कर बिलबिलाने लगा।

ज्ञान—जब अभीसे यह हाल है, तो दो बजे राततक न जाने क्या होगा !

गायत्री—कौन जागता रहेगा ? जाते-ही-जाते तो सो जायेगा।

ज्ञान—गोदमें आरामसे तो सो सकेगा नहीं, रह-रहकर चौंकेगा और रोयेगा। सारी सभा घबरा जायेगी। लोग कहेंगे, यह पुछल्ला अच्छा साथ लेते आये।

विद्या—कोचवानसे कह क्यों नहीं देते कि गाड़ी लौटा दे, मैं न जाऊँगी।

ज्ञान—यह सब बातें पहले ही सोच लेनी चाहिये थीं न? गाड़ी यहाँसे लौटेगी तो आते-आते दस बज जायँगे। आधा तमाशा ही गायब हो जायेगा। वहाँ पहुँच जायँ तो जी चाहे मजेसे तमाशा देखना, मायाको इसी गाड़ीमें पड़े रहने देना, या उचित समझना तो लौट आना।

गायत्री वहाँतक जाकर तो लौटना अच्छा नहीं लगता।

ज्ञान—मैंने तो सब कुछ इन्हींकी इच्छापर छोड़ दिया।

गायत्री—क्या वहाँ कोई आरामकुरसी न मिल जायगी?

विद्या—यह सब झंझट करनेकी जरूरत ही क्या है? मैं लौट जाऊँगी। मैं तमाशा देखनेके लिये ऐसी उत्सुक न थी, तुम्हारी खातिरसे चली आयी थी।

थियेटरका पण्डाल आ गया। खूब जमाव था। ज्ञानशंकर उतर पड़े। गायत्रीने विद्यासे उतरनेको कहा, पर वह बहुत आग्रह करनेपर भी न उठी। कोचवानको पानी लानेको भेजा। इतनेमें ज्ञानशंकर लपके हुए आये, और बोले, भाभी, जल्दी कीजिये, घण्टी हो गई, तमाशा आरम्भ होनेवाला है। जबतक यह माया-को पानी पिलाती है, आप चलकर बैठ जाइये, नहीं तो शायद जगह ही न मिले।

यह कहकर वह गायत्रीको लिये हुए पण्डालमें घुस गये। पहले दरजेके मरदाने और जनाने भागोंके बीचमें केवल एक चिकका परदा था। चिकके बाहर ज्ञानशंकर बैठे और चिकके पास ही भीतर गायत्रीको बैठाया। यही दोनों जगहें उन्होंने रिज़र्व (स्वरक्षित) करा रखी थीं।

गायत्री जल्दीमें गाड़ीसे उतरकर ज्ञानशंकरके साथ चली आयी थी। विद्या अभी आवेगी, यह उसे निश्चय था। लेकिन जब उसे बैठे कई मिनट हो गये, विद्या न दिखाई दी और अन्त-में ज्ञानशंकरने आकर कहा, वह चली गयी, तो उसे बड़ा क्षोभ हुआ। समझ गयी कि वह रूठकर चली गयी। अपने मनमें

मुझे ओछी, निठुर समझ रही होगी। मुझे भी उसीके साथ लौट जाना चाहिये था। उसके साथ तमाशा देखनेमें हर्ज नहीं था। लोग यही अनुमान करते कि मैं उसकी खातिरसे आयी हूँ; किन्तु उसके लौट जानेपर मेरा यहाँ रहना सर्वथा अनुचित है। घरकी लौंडिया और महरियाँतक हँसेंगी और उनका हँसना यथार्थ है। दादाजी न जानें मनमें क्या सोचेंगे। मेरे लिये अब तीर्थयात्रा, गंगास्नान, पूजापाठ, दान और व्रत है। यह विहार और विलास सोहागिनके लिये है। मुझे अवश्य लौट जाना चाहिये। लेकिन बाबूजीसे इतना जल्द लौटनेको कहूँगी तो वह मुझपर अवश्य झुँझलायेंगे, पछतायेंगे, कि नाहक इसके साथ आया। बुरी फँसी। कुछ देर यहाँ बैठे बिना अब किसी तरह छुटकारा न मिलेगा।

यह निश्चय करके वह बैठी। लेकिन जब अपने आगे पीछे दृष्टि पड़ी, तो उसे वहाँ एक पलभर भी बैठना दुस्तर जान पड़ा। समस्त जनाना भाग वेश्याओंसे भरा हुआ था। एकसे एक सुन्दर, एकसे एक रंगीन, चारों ओरसे खस और मेंहदीकी लपटें आ रही थीं। उनकी आभरण और शृंगार, उनका ठाट-बाट, उनके हाव-भाव, उनकी मंद मुस्कान, सब गायत्रीको घृणोत्पादक प्रतीत होते थे। उसे अपने रूप-लावण्यपर भी घमंड था, पर इस सौन्दर्य्य-सरोवरमें वह एक जल-कणके समान विलीन हो गयी थी। अपनी तुच्छताका ज्ञान उसे और भी व्यतिव्यस्त करने लगा। यह कुलटाएँ कितनी ढीठ, कितनी निर्लज्ज हैं। इसकी शिकायत नहीं, कि इन्होंने क्यों ऐसे पापमय, ऐसे नारकीय पथपर पग रखा। यह अपने पूर्व कर्मोंका फल है। दुरवस्था जो न कराये थोड़ा है; लेकिन यह अभिमान क्यों? ये अठिलाती किस बिरतेपर हैं? मालूम होता है, सबकी सब नवाबजादियाँ हों। इन्हें तो शर्मसे सिर झुकाये रहना चाहिये था। इनके रोम-रोमसे दीनता और लज्जा टपकनी चाहिये थी। पर

यह ऐसी प्रसन्न हैं मानों संसारमें इनसे सुखी और कोई है ही नहीं। पाप एक करुणाजनक वस्तु है, मानवीय विवशताका द्योतक है। उसे देखकर दया आती है; लेकिन पापके साथ निर्लज्जता और मदान्धता एक पैशाचिक लीला है, दया और धर्मकी सीमासे बाहर।

गायत्री अब पलभर भी न ठहर सकी। ज्ञानशङ्करसे बोली, मैं बाहर जाती हूँ, यहाँ नहीं बैठा जाता. मुझे घर पहुँचा दीजिये।

उसे संशय था कि ज्ञानशङ्कर वहाँ ठहरनेके लिये आग्रह करेंगे। चलेंगे भी तो क्रुद्ध होकर। पर यह बात न थी। ज्ञानशङ्कर सहर्ष उठ खड़े हुए। बाहर आकर एक बग्गी किराये की और घर चले।

गायत्रीने इतना जल्द थियेटरसे लौट आनेके लिये क्षमा माँगी। फिर वेश्याओंकी बेशरमीकी चर्चा की, पर ज्ञानशङ्करने कुछ उत्तर न दिया। उन्होंने आज मनमें एक विषम कल्पना की थी और इस समय उसे कार्यरूपमें लानेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंको इस प्रकार एकाग्र कर रहे थे मानों किसी नदीमें कूद रहे हों। उनका हृदयाकाश मनोविकारकी काली घटाओंसे आच्छादित हो रहा था, जो इधर महीनोंसे जमा हो रही थीं। वह ऐसे ही अवसरकी ताकमें थे। उन्होंने अपना कार्यक्रम स्थिर कर लिया। लक्षणोंसे उन्हें गायत्रीके सहयोगका भी निश्चय होता जाता था। उसका थियेटर देखनेपर राजी हो जाना, विद्याके साथ घर न लौटना, उनके साथ अकेले बग्गीमें बैठना इसके प्रत्यक्ष प्रमाण थे। कदाचित् उन्हें अवसर देनेके ही लिये वह इतनी जल्द लौटी थी; क्योंकि घरकी फिटनपर लौटनेसे काममें विघ्न पड़नेका भय था। ऐसी अनुकूल दशामें आगा-पीछा करना उनके विचारमें वह कापुरुषता थी, जो अभीष्टसिद्धिकी घातक है। उन्होंने किताबोंमें पढ़ा था कि पुरुषोचित उद्दण्डता वशीकरणका सिद्ध-मन्त्र है। तत्क्षण उनकी विकृत-चेष्टा प्रज्ज्वलित हो गयी, आँखो-

से ज्वाला निकलने लगी, रक्त खौलने लगा, साँस वेगसे चलने लगी। उन्होंने अपने घुटनेसे गायत्रीकी जाँघमें एक ठोंका दिया। गायत्रीने तुरत पैर समेट लिये, उसे कुचेष्टाकी लेशमात्र भी शङ्का न हुई। किन्तु एक क्षणके बाद ज्ञानशङ्करने अपने जलते हुए हाथसे उसकी कलाई पकड़कर धीरेसे दबा दी। गायत्रीने चौंककर हाथ खींच लिया, मानों किसी विषधरने काट खाया हो, और भयभीत नेत्रोंसे ज्ञानशङ्करको देखा। सड़कपर बिजली-की लालटेनें जल रही थीं। उनके प्रकाशमें ज्ञानशङ्करके चेहरेपर एक संतप्त उग्रता, एक प्रदीप्त दुस्साहस दिखाई दिया। उसका चित्त अस्थिर हो गया, आँखोंमें अन्धेरा छा गया। सारी देह पसीनेसे तर हो गयी। उसने कातर नेत्रोंसे बाहरकी ओर झाँका। समझ न पड़ा कि कहाँ हूँ, कब घर पहुँचूँगी। निर्बल क्रोधकी एक लहर नसोंमें दौड़ गयी और आँखोंसे बह निकली। उसे फिर ज्ञानशङ्करकी ओर ताकनेका साहस न हुआ। उनसे कुछ कह न सकी। उसका क्रोध भी शान्त हो गया। वह संज्ञा-शून्य हो गयी, सारे मनोवेग शिथिल पड़ गये। केवल आत्म-वेदनाका ज्ञान आरेके समान हृदयको चीर रहा था। उसकी वह वस्तु लुट गयी, जो उसे जान पड़ा भी अधिक प्रिय थी, जो उसके मानकी रक्षक, उसके आत्मगौरवकी पोषक, उसके धैर्य्य-का आधार और उसके जीवनका अवलम्ब थी। उसका जी डूबा जाता था। सहसा उसे जान पड़ा कि अब मैं किसीको मुँह दिखानेके योग्य नहीं रही। अबतक उसका ध्यान अपने अपमान-के इस बाह्य स्वरूपकी ओर नहीं गया था। अब उसे ज्ञात हुआ कि यह केवल मेरा आत्मिक पतन ही नहीं है, इसने केवल मेरी आत्माको ही कलुषित नहीं किया, वरन् मेरी बाह्य प्रतिष्ठाका भी सर्वनाश कर दिया। इस अवगतिने उसके डूबते हुए हृदयको थाम लिया। गोली खाकर दम तोड़ता हुआ पक्षी भी छुरीको देखकर तड़प जाता है।

गायत्री जरा सम्भल गयी, उसने ज्ञानशङ्करकी ओर सजल आँखोंसे देखा। कहना चाहती थी, जो कुछ तुमने किया उसका बदला तुम्हें परमात्मा देंगे। लेकिन यदि सौजन्यका अल्पांश भी रह गया है तो मेरी लाज रखना, सतीत्वका नाश तो हो ही गया, पर लोकसम्मानकी रक्षा करना ·····किन्तु शब्द न निकले, अश्रु-प्रवाहमें विलीन हो गये।

ज्ञानशङ्करको भी मालूम हो गया कि मैंने धोखा खाया। मेरी उद्विग्नताने सारा काम चौपट कर दिया। अभीतक उन्हें अपनी अधोगतिपर लज्जा न आयी थी। पर गायत्रीकी सिसकियाँ सुनीं तो हृदयपर चोट-सी लगी। अन्तरात्मा जाग्रत हो गयी। शर्मसे गर्दन झुक गयी। कुवासना लुप्त हो गयी। अपने पापकी अधमताका ज्ञान हुआ। ग्लानि और अनुतापके भी शब्द मुँहतक आये, पर व्यक्त न हो सके। गायत्रीकी ओर देखनेका भी हौसला न पड़ा। अपनी मलिनता और दुष्टता अपनी ही दृष्टिमें घृणित मालूम होने लगी। हा! मैं कैसा दुरात्मा हूँ। मेरे विवेक, ज्ञान और सद्विचारने आत्महिंसाके सामने सिर झुका दिया। मेरी उच्च शिक्षा और उच्चादर्शका यही परिणाम होना था! अपने नैतिक पतनके ज्ञानने आत्मवेदनाका सञ्चार कर दिया। उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा प्रवाहित हो गयी।

दोनों प्राणी खिड़कियोंसे सिर निकाले रोते रहे, यहाँतक कि गाड़ी घरपर पहुँच गयी।

११

आँधीका पहला वेग जब शान्त हो जाता है, तब वायुके प्रचण्ड झोंके, बिजलीकी चमक और कड़क भी बन्द हो जाती है और मूसलधार वर्षा होने लगती है। गायत्रीके चित्तकी शान्ति भी द्रवीभूत हो गयी थी। हृदयमें रुधिरकी जगह आँसुओंका सञ्चार हो रहा था।

आधी रात बीत गयी, पर उसके आँसू न थमे। उसका

आत्मगौरव आज नष्ट हो गया। पतिवियोगके बाद उसकी सुदृढ़ स्मृति ही गायत्रीके जीवन-सुखकी नींव थी। वही साधु कल्पना उसकी उपास्य थी। वह इस हृदयकोषको, जहाँ यह अमूल्य रत्न सञ्चित था, कुटिल अकांक्षाओंकी दृष्टिसे बचाती रहती थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह वस्त्राभूषणोंसे प्रेम रखती थी, उत्तम भोजन करती थी, और सदैव प्रसन्नचित्त रहती थी, किन्तु इसका कारण उसकी विलासप्रेयता नहीं, वरन् अपने सतीत्वका अभिमान था। उसे संयम और आचारका स्वांग भरनेसे घृणा थी। वह थियेटर भी देखती थी, आनन्दोत्सवोंमें भी शरीक होती थी। आभरण सुरुचि और मनोरञ्जनकी सामग्रियोंका त्याग करनेकी वह आवश्यकता न समझती थी, क्योंकि उसे अपनी चित्तस्थितिपर विश्वास था। वह एकाग्र होकर अपने इलाकेका प्रबन्ध करती थी।

जब उसके आँसू थमे, तो वह इस दुर्घटनाके कारण और उत्पत्तिपर विचार करने लगी, और शनैः शनैः उसे विदित होने लगा कि इस विषयमें मैं सर्वथा निरपराध नहीं हूँ। ज्ञानशङ्कर कदापि यह दुस्साहस न कर सकते, यदि उन्हें मेरी दुर्बलतापर विश्वास न होता। उन्हें यह विश्वास क्योंकर हुआ? मैं इन दिनों उनसे बहुत स्नेह करने लगी थी। यह अनुचित था। कदाचित् इसी सम्पर्कने उनके मनमें यह भ्रम अंकुरित किया। तब उसे वह बातें याद आतीं जो उन संगतोंमें हुआ करती थीं। उनका झुकाव उन्हीं विषयोंकी ओर होता था, जिन्हें एकान्त और सङ्कोचकी जरूरत है! उस समय वह बातें सर्वथा दोषरहित जान पड़ती थीं, पर अब उनके विचारसे ही गायत्रीको लज्जा आती थी। उसे अब ज्ञान हुआ कि मैं अज्ञान दशामें धीरे-धीरे ढालकी ओर चली जाती थी, और अगर यह गहरी खाई सहसा सामने न आ पड़ती, तो मुझे अपने पतनका अनुभव ही न होता। उसे आज मालूम हुआ कि मेरा पतिप्रेम-बन्धन जर्जर हो गया,

नहीं तो मैं इन वार्ताओंके आकर्षणसे सुरक्षित रहती। वह अधीर होकर उठी, और अपने पतिके चित्रके सम्मुख जाकर खड़ी हो गयी। इस चित्रको वह सदैव अपने कमरेमें लटकाये रहती थी। उसने ग्लानिमय नेत्रोंसे चित्रको देखा, और तब काँपते हुए हाथोंसे उतारकर उसे छातीसे लगाये देरतक खड़ी रोती रही। इस आत्मिक आलिङ्गनसे उसे एक विचित्र संतोष प्राप्त हुआ। ऐसा मालूम हुआ मानों कोई तड़पते हुए हृदयपर मरहम रख रहा है और कितने कोमल हाथोंसे। वह उस चित्रको अलग न कर सकी, उसे छातीसे लगाये हुए बिछावनपर लेट गयी। उसका हृदय इस समय पतिप्रेमसे आलोकित हो रहा था। वह एक समाधिकी अवस्थामें थी। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि यद्यपि पतिदेव यहाँ अदृश्य हैं,तथापि उनकी आत्मा अवश्य यहाँ भ्रमण कर रही है। शनैः शनैः उसको कल्पनाएँ सचित्र हो गयीं। वह भूल गयी कि मेरे स्वामीको मरे तीन वर्ष व्यतीत हो गये। वह अकुलाकर उठ बैठी। उसे ऐसा जान पड़ा कि उनके वक्षसे रक्त स्रावित हो रहा है और वह कह रहे हैं, "यह तुम्हारी कुटिलताका घाव है। तुम्हारी पवित्रता और सत्यता मेरे लिये रक्षास्त्र थी। वह ढाल आज टूट गयी और बेवफाईकी कटार हृदयमें चुभ गयी। मुझे तुम्हारे सतीत्वपर अभिमान था। वह अभिमान आज चूर-चूर हो गया। शोक! मेरी हत्या उन्हीं हाथोंसे हुई जो कभी मेरे गलेमें पड़े थे। आज तुमसे नाता टूटता है, भूल जाओ कि मैं कभी तुम्हारा पति था।" गायत्री स्वप्न-दशामें उसी कल्पित व्यक्तिके सम्मुख हाथ फैलाये हुए विनय कर रही थी। शङ्कासे उसके हाथ-पाँव फूल गये और वह चीख मारकर भूमिपर गिर पड़ी।

वह कई मिनटतक बेसुध पड़ी रही। जब होश आया तो देखा कि विद्या, लौंड़ियाँ, महरियाँ सब जमा हैं और डाक्टरको बुलानेके लिये आदमी दौड़ाया जा रहा है।

उसे आँखें खोलते देखकर विद्या झपटकर उसके गलेसे लिपट गयी और बोली, बहन, तुम्हें क्या हो गया था ? और तो कभी ऐसा न होता था ?

गायत्री—कुछ नहीं, एक बुरा स्वप्न देख रही थी। लाओ, थोड़ा सा पानी पीऊँगी, गला सूख रहा है।

विद्या—थियेटरमें कोई भयावना दृश्य देखा होगा।

गायत्री—नहीं, मैं भी तुम्हारे आनेके थोड़ी ही देर पीछे चली आयी थी। जी न लगा। अभी थोड़ी ही रात गयी है क्या ? बाबूजी ध्रुपद अलाप रहे हैं।

विद्या—बारह तो कबके बज चुके, पर उन्हें किसीके मरने-जीनेकी क्या चिन्ता। उन्हें तो अपने राग-रङ्गसे मतलब है। महरीने जाकर तुम्हारा हाल कहा, तो एक आदमीको डाक्टरके यहाँ दौड़ा दिया और फिर गाने लगे।

गायत्री—यह तो उनकी पुरानी आदत है, कोई नयी बात थोड़ी ही है। रम्मन बाबूका यहाँ बुरा हाल हो रहा था, और वह डिनरमें गये हुए थे। जब दूसरे दिन मैंने बातों-बातों इसकी चर्चा की तो बोले, मैं वचन दे चुका था और जाना मेरा कर्त्तव्य था। मैं अपने व्यक्तिगत विषयोंको सार्वजनिक जीवनसे बिल-कुल पृथक् रखना चाहता हूँ।

विद्या—उस साल जब अकाल पड़ा और प्लेग भी फैला, तब हम लोग इलाकेपर गये। तुम गोरखपुर थीं। उन दिनों बाबूजी-की निर्दयता देखकर मेरे रोयें खड़े हो जाते थे। असामियोंसे रुपये वसूल न होते और हमारे यहाँ नित्य नाच-रङ्ग होता रहता था। बाबूजीको उड़ानेके लिये रुपये न मिलते तो वह चिढ़ कर असामियोंपर गुस्सा उतारते। सौ-सौ मनुष्योंको एक पाँतिमें खड़ा करके हन्टरसे मारने लगते। बेचारे तड़प-तड़प कर रह जाते; पर उन्हें तनिक भी दया न आती थी। इसी मार-पीटने उन्हें निर्दय बना दिया है। जीवन मरण तो परमात्माके हाथ

है, लेकिन मैं इतना अवश्य कहूँगी कि भैयाकी अकाल मृत्यु इन्हीं दीनोंकी हायका फल है।

गायत्री—तुम बाबूजीपर अन्याय करती हो। उनका कोई कसूर नहीं। आखिर रुपये कैसे वसूल होते? निर्दयता अच्छी बात नहीं, किन्तु जब इसके बिना काम ही न चले तो क्या किया जाय? तुम्हारे जीजा कैसे सज्जन थे, द्वारपरसे किसी भिक्षुकको निराश न लौटने देते। सत्कार्य्योंमें हजारों रुपये खर्च कर डालते थे। कोई ऐसा दिन न जाता कि सौ-पचास साधुओंको भोजन न कराते हों। हजारों रुपये तो चन्दोंमें दे डालते थे। लेकिन उन्हें भी असामियोंपर सख्ती करनी पड़ती थी। मैंने स्वयं उन्हें असामियोंको मुश्कें कसके पिटवाते देखा है। जब कोई और उपाय न सूझता तो उनके घरोंमें आग लगवा देते थे और अब मुझे भी वही करना पड़ता है। उस समय मैं समझती थी कि यह व्यर्थ इतना जुल्म करते हैं। उन्हें समझाया करती थी, पर जब अपने माथे पड़ गयी तो अनुभव हुआ कि यह नीच बिना मार खाये रुपये नहीं देते। घरमें रुपये रखे रहते हैं; पर जबतक दो-चार लात, घूँसे न खा लें, या गालियाँ न सुन लें, देनेका नाम नहीं लेते। यह उनकी आदत है।

विद्या—मैं यह न मानूँगी। किसीको मार खानेकी आदत नहीं हुआ करती।

गायत्री—लेकिन किसीको मारनेकी भी आदत नहीं होती। यह सम्बन्ध ही ऐसा है कि एक ओर तो प्रजामें भय, अविश्वास और आत्महीनताके भावोंको पुष्ट करता है और दूसरी ओर जमींदारोंको अभिमानी, निर्दय और निरंकुश बना देता है।

विद्याने इसका कुछ जवाब न दिया। दोनों बहनें एक ही पलंगपर लेटीं। गायत्रीके मनमें कई बार इच्छा हुई कि आजकी घटनाको विद्यासे बयान कर दूँ। उसके हृदयपर एक बोझसा रखा हुआ था। इसे वह हल्का करना चाहती थी। ज्ञानशङ्करको

विद्याकी दृष्टिमें गिराना भी अभीष्ट था। यद्यपि उसका स्वयं अपमान होता था, लेकिन ज्ञानशङ्करको लज्जित और निन्दित करनेके लिये वह इतना मूल्य देनेपर तैयार थी; किन्तु बात मुँह तक आकर लौट गयी। थोड़ी देरतक दोनों चुपचाप पड़ी रहीं। विद्याकी आँखें तो नींदसे झपकी जाती थीं और गायत्रीको कोई बात न सूझती थी। अकस्मात् उसे एक विचार सूझ पड़ा। उसने विद्याको हिलाकर कहा, क्या सोने लगी? मेरा जी चाहता है कि कल-परसोंतक यहाँसे चली जाऊँ।

विद्याने कहा, इतना जल्द! भला जबतक मैं रहूँ, तबतक तो रहो।

गायत्री—नहीं अब यहाँ जी नहीं लगता। वहाँका काम-काज भी तो देखना है।

विद्या—लेकिन अभीतक तो तुमने बाबूजीसे इसकी चर्चा भी नहीं की।

गायत्री—उनसे क्या कहना है? जाऊँ चाहे रहूँ, दोनों एक ही है।

विद्या—तो फिर मैं भी न रहूँगी, तुम्हारे साथ ही चली जाऊँगी।

गायत्री—तुम कहाँ जाओगी? अब यही तुम्हारा घर है तुम्हीं यहाँकी रानी हो। ज्ञानबाबूसे कहो, इलाकेका प्रबन्ध करें। दोनों प्राणी यहीं सुखपूर्वक रहो।

विद्या—समझा तो मैंने भी यही था, लेकिन विधाताकी इच्छा कुछ और ही जान पड़ती है। कई दिनसे बराबर देख रही हूँ कि पण्डित परमानन्द नित्य आते हैं। चिन्तारामभी आते-जाते रहते हैं। ये लोग कोई-न-कोई षड्यन्त्र रच रहे हैं। तुम्हारे चले जानेसे इन्हें और भी अवसर मिल जायगा।

गायत्री—तो क्या बाबूजीको फिर विवाह करनेकी सूझी है क्या?

विद्या—मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है।

गायत्री–अगर यह विचार उनके मनमें आया है तो वह किसीके रोके न रुकेंगे। मेरा लिहाज वह करते हैं, पर इस विषयमें वह शायद ही मेरी राय लें। उन्हें मालूम है, कि मैं उन्हें क्या राय दूँगी।

विद्या—तुम रहती तो उन्हें कुछ-न कुछ संकोच अवश्य होता।

गायत्री–मुझे इसकी आशा नहीं। वहाँ रहूँगी तो कम-से-कम वहाँकी देखरेख तो करती रहूँगी। तीन महीने हो गये, लोगोंने न जाने क्या-क्या उपद्रव खड़े किये होंगे। एक दर्जन नातेदार द्वारपर डटे पड़े रहते हैं। एक महाशय नातेमें मेरे मामू होते हैं, वह सुबहसे शामतक मछलियोंका शिकार किया करते हैं। दूसरे महाशय मेरी फूफीके सुपुत्र हैं, वह मेरे ससुरके समयसेही वहाँ रहते हैं। उनका काम मुहल्लेभरकी स्त्रियोंको घूरना और उनसे दिल्लगी करना है। एक तीसरे महाशय मेरी ननदके छोटे देवर हैं, वह रिश्वतके बाजारके दलाल हैं। इस कामसे जो समय बचता है वह भङ्ग पीने पिलानेमें लगाते हैं। इन लोगोंमें बड़ा भारी गुण यह है कि संतोषी हैं। आनन्दसे भोजन-वस्त्र मिलता जाय इसके सिवा उन्हें कोई चिन्ता नहीं। हाँ, जमींदारीका घमंड सबको है, सभी असामियोंपर रोब जमाना चाहते हैं, उनक गला दबानेके लिये सब तत्पर रहते हैं। बेचारे किसानोंको जो अपने परिश्रमकी रोटियाँ खाते हैं, इन निठल्लोंका अत्याचार केवल इसलिये सहना पड़ता है, कि वह मेरे दूरके नातेदार है। मुफ्तखोरीने उन्हें इतना आत्मशून्य बना दिया है कि चाहे जितनी रुखाईसे पेश आओ; टलनेका नाम न लेंगे। अधिक नहीं तो दस परिवार ऐसे होंगे जो मेरी मृत्युका स्वप्न देखनेमें जीवनके दिन काट रहे हैं। उनका बस चले तो मुझे विष दे दें। किसीके यहाँसे कोई सौगात आये, मैं उसे हाथतक नहीं लगाती। उन-

का काम बस यही है कि बैठे-बैठे उत्पात किया करें, मेरे काममें विघ्न डाला करें। कोई असामियोंको फोड़ता है, कोई मेरे नौकरोंको तोड़ता है, कोई मुझे बदनाम करनेपर तुला हुआ है। तुम्हें सुनकर हँसी आयेगी, कई महाशय तो विरासतकी आशामें डेवढ़े-दूने सूदपर ऋण लेकर पेट पालते हैं, कुछ नहीं बन पड़ता तो उपवास करते हैं, किन्तु विरासतका अभिमान जीविकाकी कोई आयोजना नहीं करने देता। इन लोगोंने मेरी अनुपस्थितिमें न जाने क्या-क्या गुल खिलाये होंगे। अभी मुझे जाने दो। बाबूजी भी जल्दही पहाड़पर चले जायेंगे। यदि ऐसीही कोई जरूरत आ पड़े तो मुझे पत्र लिखना, चली आऊँगी।

दो दिन गायत्रीने किसी प्रकार काटे। ज्ञानशंकरसे फिर बात चीतकी नौबत नहीं आयी। तीसरे दिन वह विदा हुई। रायसाहब स्टेशनतक उसे पहुँचाने आये। ज्ञानशंकर भी साथ थे। गायत्री गाड़ीमें बैठी। रायसाहब खिड़कीपर झुके हुए आम और खबूजे, लीचियाँ और अँगूर ले लेकर गाड़ीमें भरते जाते थे। गायत्री बार-बार कहती थी कि इतने फल क्या होंगे, कौनसी बड़ी यात्रा है, किन्तु राय साहब एक न सुनते थे। यह भी रियासतकी एक आन थी। ज्ञानशंकर एक बेञ्चपर उदास बैठे हुए थे। गायत्रीको उनपर दया आ गयी। वियोगके समय हम सहृदय हो जाते हैं। चलते-चलाते हम किसीपर अपना ऋण चाहे छोड़ जायँ, किन्तु ऋण लेकर जाना नहीं चाहते। जब गाड़ीने सीटी दी, तो ज्ञानशंकर चौंककर बेञ्चपरसे उठे और गायत्रीके सम्मुख आकर उसे लज्जित और प्रार्थी नेत्रोंसे देखा, उनमें आँसू भरे हुए थे। पश्चात्तापकी सजीव मूर्ति थी। गायत्री भी खिड़कीपर आयी, कुछ कहना चाहती थी, पर गाड़ी चलने लगी।

ज्ञानशंकरकी विनयमूर्ति रास्तेभर उसकी आँखोंके सामने फिरती रही।

—•—

१२

गायत्रीके जानेके बाद ज्ञानशङ्करको भी वहाँ रहना दूभर हो गया ; सौभाग्य उन्हें हवाके घोड़ेपर बैठाये ऋद्धि और सिद्धिके स्वर्गमें लिये जाता था, किन्तु एक ही ठोकरमें वह चमकते हुए नक्षत्र अदृश्य हो गये; वह प्राणपोषक शीतल वायु, वह विस्तृत नभमण्डल और सुखद कामनाएँ लुप्त हो गयीं; और वह फिर उसी अन्धकारमें निराश और विडम्बित पड़े हुए थे। उन्हें लक्षणोंसे विदित होता जाता था कि रायसाहब विवाह करनेपर तुले हुए हैं और उनका दुर्बल क्रोध दिनोंदिन अदम्य होता जाता था। वह रायसाहबकी इन्द्रिय-लिप्सापर, क्षुद्रतापर झल्ला-झल्लाकर रह जाते थे। कभी-कभी अपनेको समझाते कि मुझे बुरा माननेका कोई अधिकार नहीं, रायसाहब अपनी जायदादके मालिक हैं, उन्हें विवाह करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता है, वह अभी हृष्ट-पुष्ट हैं, उम्र भी ज्यादा नहीं। उन्हें ऐसी क्या पड़ी है कि मेरे लिये इतना त्याग करें। मेरे लिये यह कितनी लज्जाकी बात है कि अपने स्वार्थके लिये उनका बुरा चेतूँ, उनके कुलमें अन्त होनेकी अमङ्गल-कामना करूँ। यह मेरी घोर नीचता है। लेकिन विचारोंको इस उद्देश्यसे हटानेका प्रयत्न एक प्रतिक्रियाका रूप धारण कर लेता था, जो अपने बहावमें धैर्य्य और सन्तोषके बाँधको तोड़ डालता था। तब उनका हृदय उस शुभ मुहूर्त्तके लिये विकल हो जाता था, जब यह अतुल सम्पत्ति अपने हाथोंमें आ जायगी, जब वह यहाँ मेहमानके अस्थायी रूपसे नहीं, स्वामीके स्थायी रूपसे निवास करेंगे। वह नित्य इसी कल्पित सुखके भोगनेमें मग्न रहते थे। प्रायः रात रातभर जागते रह जाते और आनन्दके स्वप्न देखा करते। उन्नति और सुधारके कितने ही प्रस्ताव उनके मस्तिष्कमें चक्कर लगाया करते। सैर करनेमें उनको अब कुछ आनन्द न मिलता, अधिकतर अपने कमरेमें ही पड़े रहते। यहाँतक कि आशा

और भयकी अवस्था उनके लिये असह्य हो गयी। इस दुविधामें पड़े जेठका महीना भी बीत गया और आषाढ़ आ पहुँचा।

रायसाहबको अबकी पुत्रशोकके कारण पहाड़पर जानेमें विलम्ब हो गया था। पहला छींटा पड़ते ही उन्होंने सफरकी तैयारी शुरू कर दी। ज्ञानशङ्करसे अब जब्त न हो सका। सोचा, कौन जाने यह नैनीतालमें ही किसी नये विचारोंकी लेडीसे विवाह कर लें। यहाँ कानोंकान किसीको खबर भी न हो। अतएव उन्होंने इस शङ्काका अन्त करनेका निश्चय कर लिया।

संध्या हो गयी थी। वह मनको दृढ़ किये हुए रायसाहबके कमरेमें गये, किन्तु देखा तो वहाँ एक और महाशय विद्यमान थे। यह किसी कम्पनीका प्रतिनिधि था और रायसाहबसे उसके हिस्से लेनेका अनुरोध कर रहा था। किन्तु रायसाहबकी बातोंसे ज्ञात होता था कि वह हिस्से लेनेको तैयार नहीं हैं। अन्तमें एजेण्टने पूछा, आखिर आपको इतनी शङ्का क्यों है? क्या आपका विचार है कि कम्पनीकी जड़ मजबूत नहीं है?

रायसाहब—जिस काममें सेठ जगतराम और मिस्टर मनचुरजी शरीक हों, उसके विषयमें यह सन्देह नहीं हो सकता।

एजेण्ट—तो क्या आप समझते हैं कि कम्पनीका संचालन उत्तम रीतिपर न होगा?

रायसाहब—कदापि नहीं।

एजेण्ट—तो फिर आपको उसका साझीदार बननेमें क्या आपत्ति है? मैं आपकी सेवामें कम-से-कम ५०० हिस्सोंकी आशा लेकर आया था। जब आप जैसे विचारशील सज्जन व्यापारिक उद्योगसे पृथक् रहेंगे तो इस अभागे देशकी उन्नति सदैव एक मनोहर स्वप्न ही रहेगी।

रायसाहब—मैं ऐसी व्यापारिक संस्थाओंको देशोद्धारकी कुञ्जी नहीं समझता।

एजेण्ट—(आश्चर्य्यसे) क्यों?

राय—इसलिये कि सेठ जगतराम मिस्टर मनचूरजीका विभव देशका विभव नहीं है। आपकी यह कम्पनी धनवानोंको और भी धनवान बनायेगी, जनताको इससे बहुत लाभ पहुँचने की सम्भावना नहीं। निस्सन्देह आप कई हजार कुलियोंको काममें लगा देंगे, पर यह मजूरे अधिकांश किसान ही होंगे और मैं किसानोंको कुली बनानेका कट्टर विरोधी हूँ। मैं नहीं चाहता कि वह लोभके वश अपने बाल-बच्चोंको छोड़कर कम्पनीकी छावनियोंमें जाकर रहें और अपना आचरण भ्रष्ट करें। अपने गाँवमें उनकी एक विशेष स्थिति होती है। उनमें आत्मप्रतिष्ठा-का भाव जाग्रत रहता है। बिरादरीका भय उन्हें कुमार्गसे बचाता है। कम्पनीकी शरणमें जाकर वह अपने घरके स्वामी नहीं, दूसरेके गुलाम हो जाते हैं, और बिरादरीके बन्धनोंसे मुक्त होकर नाना प्रकारकी बुराइयाँ करने लगते हैं। कम-से-कम मैं अपने किसानोंको इस परीक्षामें नहीं डालना चाहता।

एजेण्ट—क्षमा कीजियेगा, आपने एक ही पक्षका चित्र खींचा है। कृपा करके दूसरे पक्षका भी अवलोकन कीजिये। हम कुलियोंको जैसे वस्त्र, जैसा भोजन, जैसे घर देते हैं, वैसे गाँवमें रहकर उन्हें कभी नसीब नहीं हो सकते। हम उनकी दवा दारूका, उनकी सन्तानोंकी शिक्षाका, उन्हें बुढ़ापेमें सहारा देनेका उचित प्रबन्ध करते हैं। यहाँतक कि हम उनके मनोरंजन और व्यायामकी भी व्यवस्था कर देते हैं। वह चाहें तो टेनिस और फुटबाल खेल सकते हैं, चाहें तो पार्कोंमें सैर कर सकते हैं। सप्ताहमें एक दिन गाने-बजानेके लिये समयसे कुछ पहले ही छुट्टी दे दी जाती है। जहाँतक मैं समझता हूँ कि पार्कोंमें रहनेके बाद कोई कुली फिर खेती करनेकी परवा न करेगा।

रायसाहब—नहीं, मैं इसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। किसान कुली बनकर कभी अपने भाग्यविधाताको धन्यवाद नहीं दे सकता, उसी प्रकार जैसे कोई आदमी व्यापारका स्वतन्त्र

सुख भोगनेके बाद नौकरीकी पराधीनताको पसन्द नहीं कर सकता। सम्भव है, कि अपनी दीनता उसे कुली बने रहनेपर मजबूर करे, पर मुझे विश्वास है कि वह इस दासतासे मुक्त होनेका अवसर पाते ही तुरन्त अपने घरकी राह लेगा और फिर उसी टूटे-फूटे झोपड़ेमें अपने बाल-बच्चोंके साथ रहकर संतोषके साथ कालक्षेप करेगा। आपको इसमें कुछ सन्देह हो तो आप कृषक-कुलियोंसे एकान्तमें पूछकर अपना समाधान कर सकते हैं। मैं अपने अनुभवके आधारपर यह बात कहता हूँ कि आप लोग इस विषयमें योरोपवालोंका अनुकरण करके हमारे जातीय जीवनके सद्गुणोंका सर्वनाश कर रहे हैं। योरोपमें industrial ism की जो उन्नति हुई उसके विशेष कारण थे। वहाँके किसानोंकी दशा उस समय गुलामोंसे भी गयी गुजरी थी, वह जमींदारके बन्दी होते थे। इस कठिन कारावासके देखते हुए धनपतियोंकी कैद गनीमत थी। हमारे किसानोंकी आर्थिक दशा चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो, पर वह किसीके गुलाम नहीं हैं। अगर कोई उनपर अत्याचार करे तो वह अदालतोंमें उससे मुक्त हो सकते हैं। नीतिकी दृष्टिमें किसान और जमींदार दोनों बराबर हैं।

एजेण्ट—मैं श्रीमानसे विवाद करनेका इच्छा तो नहीं रखता, पर मैं स्वयं छोटा-मोटा किसान हूँ और मुझे किसानोंकी दशाका यथार्थ ज्ञान है। आप योरोपके किसानोंको गुलाम कहते हैं, लेकिन यहाँके किसानोंकी दशा उससे अच्छी नहीं है। नैतिक बन्धनोंके होते हुए भी जमींदार कृषकोंपर नाना प्रकारके अत्याचार करते हैं और यदि कृषकोंको जीविकाका और कोई द्वार हो, तो वह इन आपत्तियोंको भी कभी न झेल सकें।

रायसाहब—जब नैतिक व्यवस्थाएँ विद्यमान हैं तो विदित है कि उनका उपयोग करनेके लिये किसानोंको केवल उचित शिक्षा की जरूरत है। और शिक्षाका प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है। मैं

मानता हूँ कि जमींदारके हाथों किसानोंकी बड़ी दुर्दशा होती है, मैं स्वयं इस विषयमें सर्वथा निर्दोष नहीं हूँ, बेगार लेता हूँ, डाँड़बाँध भी लेता हूँ, बेदखली या एजाफाका कोई अवसर हाथसे नहीं जाने देता, असामियोंपर अपना रोब जमानेके लिये अधिकारियोंकी खुशामद भी करता हूँ, साम, दाम, दण्ड, भेद सभीसे काम लेता हूँ, पर इसका कारण क्या है? वही पुरानी प्रथा, किसानोंकी मूर्खता और नैतिक अज्ञान। शिक्षाका यथेष्ट प्रचार होते ही जमींदारोंके हाथोंसे यह सब मौके निकल जायँगे। मनुष्य स्वार्थी जीव है और यह असंभव है कि जबतक उसे धींगाधींगी के मौके मिलते रहें, वह उनसे लाभ न उठाये। आपका यह कथन सत्य है कि किसानोंको यह विडम्बनाएँ इसलिये सहनी पड़ती हैं कि उनके लिये जीविकाके और सभी द्वार बन्द हैं। निश्चय उनके लिये जीवन-निर्वाहके अन्य साधनोंका अवतरण होना चाहिये, नहीं तो उनका पारस्परिक द्वेष और संघर्ष उन्हें हमेशा जमींदारोंका गुलाम बनाये रखेगा; चाहे कानून उनकी कितनी ही रक्षा और सहायता क्यों न करे; किन्तु यह साधन ऐसे होने चाहिये, जो उनके आचार और व्यवहारको भ्रष्ट न करें। उन्हें घरसे निर्वासित करके दुर्व्यसनोंके जालमें न फँसाएँ, उनके आत्माभिमानका सर्वनाश न करें और यह उसी दशामें हो सकता है जब घरेलू शिल्पका प्रचार किया जाय और वह अपने गाँवमें कुल और बिरादरीकी तीव्र दृष्टिके सम्मुख अपना-अपना काम करते रहें।

एजेण्ट—आपका अभिप्राय (Cottage industry) से है। समाचार-पत्रोंमें कहीं-कहीं इनकी चर्चा भी हो रही है; किन्तु इसका सबसे बड़ा पक्षपाती भी यह दावा नहीं कर सकता कि इसके द्वारा आप विदेशी वस्तुओंका सफलताके साथ अवरोध कर सकते हैं।

रायसाहब—इसके लिये हमें विदेशी वस्तुओंपर कर लगाना

पड़ेगा। योरोपवाले दूसरे देशोंमें कच्चा माल ले जाते हैं, जहाज़ किराया देते हैं, उन्हें मजूरोंको कड़ी मजूरी देनी पड़ती है, उसपर हिस्सेदारोंको नफा भी खूब चाहिये। हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओंसे मुक्त रहेगा और कोई कारण नहीं कि उचित सङ्गठनके साथ वह विदेशीय व्यापारपर विजय न पा सके। वास्तवमें हमने कभी इस प्रश्नपर ध्यान ही नहीं दिया। पूँजीवाले लोग इस समस्यापर विचार करते हुए डरते हैं। वे जानते हैं कि घरेलू शिल्प हमारे प्रभुत्वका अन्त कर देगा, इसीलिये वह इसका विरोध करते रहते हैं।

ज्ञानशङ्करने इस बादमें भाग न लिया। रायसाहबकी युक्तियाँ अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंके प्रतिकूल थीं, पर इस समय उन्हें उनका खण्डन करनेका अवकाश न था। जब एजेण्ट साहबने अपनी दाल गलते न देखी तो विदा हो गये। रायसाहब ज्ञानशङ्करको उत्सुक देखकर समझ गये कि यह कुछ कहना चाहते हैं, पर सङ्कोचवश चुप हैं। बोले, आप कुछ कहना चाहते हैं, तो कहिये, मुझे फुर्सत है।

ज्ञानशङ्करकी ज़बान न खुल सकी। उन्हें अब ज्ञात हो रहा था कि मैं जो कथन करने आया हूँ, वह सर्वथा असङ्गत है, सज्जनताके बिलकुल विरुद्ध। रायसाहबको कितना दुःख होगा और वह मुझे मनमें कितना लोभी और क्षुद्र समझेंगे। बोले, कुछ नहीं, मैं केवल यह पूछने आया था कि आप नैनीताल जानेका कबतक विचार करते हैं?

रायसाहब—आप मुझसे उड़ रहे हैं, आपकी आँखें कह रही हैं कि आपके मनमें कोई और बात है, साफ कहिये। मैं आपसमें बिलकुल सचाई चाहता हूँ।

ज्ञानशङ्कर बड़े असमञ्जसमें पड़े। अन्तमें सकुचाते हुए बोले, यही तो मेरी भी इच्छा है, पर वह बात ऐसी नहीं है कि आपसे कहते हुए लज्जा आती है।

रायसाहब—मैं समझ गया। आपके कहनेकी जरूरत नहीं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिन गप्पोंको सुनकर आपको यह शङ्का हुई है, वह बिलकुल निस्सार है। मैं स्पष्टवादी अवश्य हूं, पर अपने मुँह देखे हितैषियोंकी अवज्ञा करना मेरी सामर्थ्यसे बाहर है। पर जैसा आपसे कह चुका हूँ वह कि-बदन्तियाँ सर्वथा असार हैं। यह तो आप जानते हैं कि मैं पिण्डे पानीका कायल नहीं और न यही समझता हूँ कि मेरी संतानके बिना संसार सूना हो जायगा। रहा इन्द्रिय सुखभोग, उसके लिये मेरे पास इतने साधन हैं कि मैं पैरोंमें लोहेकी बेड़ियाँ डाले बिना ही उसका आनन्द उठा सकता हूँ। और फिर मैं कभी कामवासनाका गुलाम नहीं रहा, नहीं तो इस अवस्थामें आप मुझे इतना हृष्ट-पुष्ट न देखते। मुझे लोग कितना ही विलासी समझें, पर वास्तवमें मैंने युवावस्थासे ही संयमका पालन किया है। मैं समझता हूँ कि इन बातोंसे आपकी शङ्का निवृत्त हो गयी होगी। लेकिन बुरा न मानियेगा, उड़ती खबरोंको सुनकर इतना व्यस्त हो जाना, मेरी दृष्टिमें आपका सम्मान नहीं बढ़ाता। मान लीजिये, मैंने विवाह करनेका निश्चय ही कर लिया हो तो यह आवश्यक नहीं कि उससे सन्तान भी हो और हो भी तो पुत्र ही और पुत्र भी हो तो जीवित रहे। फिर मायाशङ्कर अभी अबोध बालक है। विधाताने उसके भाग्यमें क्या लिख दिया है, इसे हम या आप नहीं जानते। यह भी मान लीजिये कि वह वयस्क होकर मेरा उत्तराधिकारी भी हो जाय तो यह आवश्यक नहीं कि वह इतना कर्त्तव्यपरायण और सच्चरित्र हो जितना आप चाहते हैं। यदि वह समझदार होता और उसके मनमें यह शङ्काएँ पैदा होतीं तो मैं क्षम्य समझता, लेकिन आप जैसे बुद्धिमान मनुष्यका एक निर्मूल और कल्पित सम्भावनाके पीछे अपने ऊपर दाना-पानी हराम कर लेना बड़े खेदकी बात है।

इस कथनके पहले भागसे, ज्ञानशङ्करको सन्तोष न हुआ था

अन्तिम भागको सुनकर निराशा हुई। समझ गये कि यह चर्चा इन्हें अच्छी नहीं लगती और यद्यपि युक्तियोंसे यह मुझे शान्त करना चाहते हैं, पर वास्तवमें इन्होंने विवाह करनेका निश्चय कर लिया है। इतना ही नहीं, इन्हें यहाँ मेरा रहना अखर रहा है। मुझे यह अपना आश्रित न समझते तो मुझे कदापि इस तरह आड़े हाथों न लेते। उनका गौरवशील हृदय प्रत्युत्तर देनेके लिये विकल हो उठा, पर उन्होंने जब्त किया। इस कड़वी दवाको पान कर लेना ही उचित समझा। मनमें कहा, आप मेरे साथ दोरङ्गी चाल चल रहे हैं। मैं साबित कर दूँगा कि कम-से-कम इस व्यवहारमें मैं आपसे हेठा नहीं हूँ।

उन्होंने कुछ जवाब न दिया। रायसाहबको भी इन बातोंके कहनेका खेद हुआ। ज्ञानशङ्करका मन रखनेके लिये इधर-उधरकी बातें करने लगे, नैनीतालका भी जिक्र आ गया। उन्हें अपने साथ चलनेको कहा। ज्ञानशङ्कर राजी हो गये। इसमें दो लाभ थे। एक तो वह रायसाहबको नजरबन्द कर सकेंगे, दूसरे वह उच्चाधिकारियोंपर अपनी योग्यताका सिक्का बिठा सकेंगे। सम्भव है, रायसाहबकी सिफारिश उन्हें किसी ऊंचे पदपर पहुँचा दे। यात्राकी तैयारियाँ करने लगे।

१३

यद्यपि गाँववालोंने गौसखाँपर जरा भी आँच न आने दी थी, लेकिन ज्वालासिंहका उनके बर्तावके विषयमें पूछताछ करना उनके शांतिहरणके लिये काफी था। चपरासी, नाजिर, मुंशी सभी चकित हो रहे थे कि इस अक्खड़ लौंडेने डिप्टी साहबपर न जाने क्या जादू कर दिया कि उनकी काया ही पलट गयी। ईंधन, पुआल, हाँड़ी, बर्तन, दूध, दही, माँस, मछली, साग-भाजी सभी चीजें बेगारमें लेनेको मना करते हैं। तब तो हमारा गुजर हो चुका। ऐसा भत्ता हो कौन बहुत मिलता है? यह लौंडा एक ही पाजी निकला। एक तो हमें फटकारें सुनायीं, उसपर यह और

रद्दा जमा गया। चलकर डिप्टी साहबसे सब माजरा कह देना चाहिये। आज यह दुर्दशा हुई है, दूसरे गाँवोंमें इससे भी बुरा हाल होगा। हम लोग पानीको तरस जायँगे। अतएव ज्योंही ज्वालासिंह लौटकर आये, सब-के-सब उनके सामने जाकर खड़े हो गये। ईजादहुसेनको फिर उनका मुखपात्र बनाना पड़ा।

ज्वालासिंहने रुष्ट भावसे उन्हें देखकर पूछा, कहिये आप लोग कैसे चले? कुछ कहना चाहते हैं? मोरसाहब, आपने इन लोगोंको मेरा हुक्म सुना दिया है न?

ईजादहुसेन—जी हाँ, यही हुक्म सुनकर तो यह लोग घबराये हुए आपकी खिदमतमें हाजिर हुए हैं। कल इस गाँवमें एक सख्त वारदात हो गयी। गाँवके लोग चपरासियोंसे लड़नेपर आमादा हो गये। ये लोग जान बचाकर चले न आये होते तो फौजदारी हो जाती। इन लोगोंने इसकी इत्तला करके हुजूरके आराममें खलल डालना मुनासिब नहीं समझा, लेकिन आजकी मुमानियत सुनकर इनके होश उड़ गये हैं। पहले ही बेगार आसानीसे न मिलती थी, अब जो लोग इस हुक्मकी खबर पायेंगे तो और भी शेर हो जायँगे। कल जो हंगामा हुआ उसका बानी मबानी वही नौजवान था, जो सुबह हुजूरकी खिदमतमें हाजिर हुआ था। उसकी कुछ तम्बीह होनी निहायत जरूरी है।

ज्वालासिंह—उसकी बातोंसे मालूम होता था कि चपरासियोंने ही उसके साथ सख्ती की थी।

एक चपरासी—यह तो कहेगा ही, लेकिन खुदा गवाह है, हम लोग भाग न आये होते तो जानकी खैर न थी, ऐसी जिल्लत आजतक कभी न हुई थी। हमलोग चार-चार पैसेके मुलाजिम हैं, पर हाकिमोंके इकबालसे बड़े-बड़ोंकी कोई हकीकत नहीं समझते।

गौसखाँ—हुजूर, वह लौंडा इन्तहा दर्जेका शरीर है। उसके मारे हम लोगोंका गाँवमें रहना दुश्वार हो गया है, रोज एक-न-एक तूफान खड़ा किये रहता है।

दूसरा चपरासी—हुजूर ही लोगोंकी गुलामीमें उम्र कटी, लेकिन कभी ऐसी दुर्गति न हुई थी।

ईजादहुसेन—हुजूरकी रिआयापरवरीमें कोई शक नहीं। हुक्कामको रहमदिल होना ही चाहिये, लेकिन हक तो यह है कि बेगार बन्द हो जाय तो इन टकेके आदमियोंका किसी तरह गुजर ही न हो।

ज्वालासिंह—नहीं, मैं इन्हें तकलीफ नहीं देना चाहता। मेरा मन्शा सिर्फ यह है कि रिआयापर बेजा सख्ती न हो। मैंने इन लोगोंको जो हुक्म दिया है, उसमें इनकी जरूरतोंका काफी लिहाज रखा है। मैं यह मुनासिब नहीं समझता कि सदरमें यह लोग जिन चीजोंके बगैर गुजर कर सकते हैं उनकी देहातमें आकर क्यों जरूरत पड़ती है।

चपरासी—हुजूर, हम लोगोंको जैसे चाहे रखें, आपके गुलाम हैं, पर इसमें हुजूरकी बेरोबी होती है।

गौसखाँ—जी हाँ, यह देहाती लोग उसे हाकिम ही नहीं समझते, जो इनके साथ नरमीसे पेश आये। हुजूरको हिन्दुस्तानी समझकर ही यह लोग ऐसी दिलेरी करते हैं। अंगरेज हुक्काम आते हैं तो कोई चूँ भी नहीं करता। अभी दो हफ्ते होते हैं, पादरी साहब तशरीफ लाये थे और हफ्ते भर रहे, लेकिन सारा गाँव हाथ बाँधे खड़ा रहता था।

ईजादहुसेन—आप बिलकुल दुरुस्त फरमाते हैं, हिन्दुस्तानी हुक्कामको यह लोग हाकिम ही नहीं समझते, जबतक वह इनके साथ सख्ती न करें।

ज्वालासिंहने अपनी मर्यादा बढ़ानेके ही लिये अंगरेजी रहन-सहन ग्रहण किया था। वह अपनेको किसी अंगरेजसे कम न समझते थे। अंगरेजोंसे मिलने जाते तो टोपी हाथमें ले लेते। जूते उतारनेके अपमानसे बच जाते। रेलगाड़ीमें अंगरेजोंके ही साथ बैठते थे। लोग अपनी बोलचालमें उन्हें साहब ही कहा

करते थे। हिन्दुस्तानी समझना उन्हें गाली देना था। गौसखाँ और ईजादहुसेनकी बातें निशानेपर बैठ गयीं। अकड़कर बोले, अच्छा, यह बात है तो मैं भी दिखा देता हूँ कि मैं किसी अंगरेजसे कम नहीं हूँ। यह लोग भी क्या समझेंगे कि किसी हिन्दुस्तानी हाकिमसे काम पड़ा था। अबतक तो मैं यही समझता था कि सारी खता हमीं लोगोंकी है। अब मालूम हुआ कि यह देहातियोंकी शरारत है। अहलमद साहब, आप हलकेके सब-इन्सपेक्टरका रूबकार लिखिये कि वह फौरन इस मामलेकी तहकीकात करके अपनी रिपोर्ट पेश करें।

चपरासी—ज्यादा नहीं तो हुजूर, इन लोगोंसे मुचलका तो जरूर ही ले लिया जाय।

गौसखाँ—इस लौंडेको गोशमाली जरूरी है।

ज्वालासिंह—जबतक रिपोर्ट न आ जाय मैं कुछ नहीं करना चाहता।

परिणाम यह हुआ कि सन्ध्या समय बाबू दयाशङ्कर जो फिर बहाल होकर इसी हलकेमें नियुक्त हुए थे, लखनपुर आ पहुँचे। कई कान्सटेबल भी साथ थे। इन लोगोंने चौपालमें आसन जमाये। गाँवके सब आदमी जमा किये गये। मगर बलराजका पता न था। वह और रङ्गी दोनों नील गायोंको भगाने गये थे। दारोगाजीने बिगड़कर मनोहरसे कहा, तेरा बेटा कहाँ है? सारे फिसादकी जड़ तो वही है, तूने कहीं भगा तो नहीं दिया? उसे जल्द हाजिर कर, नहीं तो मैं वारण्ट जारी कर दूँगा।

मनोहरने अभी उत्तर न दिया था कि किसीने कहा, वह बलराज आ गया। सबकी आँखें उसकी ओर उठ गयीं। दो कान्सटेबलोंने लपककर उसे पकड़ लिया और दूसरे दो कान्सटेबलोंने उसकी मुश्कें कसनी चाहीं। बलराजने दीन भावसे मनोहरकी ओर देखा। उसकी आँखोंमें भयङ्कर संकल्प तिलमिला रहा था।

वह कह रही थीं कि यह अपमान मुझसे नहीं सहा जा

सकता। मैं अब जानपर खेलता हूँ। आप क्या कहते हैं? मनोहरने बेटेकी यह दशा देखी तो रक्त खौल उठा। बावलासा हो गया। कुछ न सूझा कि मैं क्या कर रहा हूँ। बाजकी तरह टूटकर बलराजके पास पहुँचा और दोनों कान्सटेबलोंको धक्का देकर बोला, छोड़ दो, नहीं तो अच्छा न होगा।

इतना कहते-कहते उसकी जबान बन्द हो गयी और आँखोंसे आँसू निकल पड़े। सुक्खू चौधरी मनमें फूले न समाते थे। उन्हें वह दिन निकट दिखाई दे रहा था, जब मनोहरके दसों बीघे खेतपर उनके हल चलेंगे। दुखरन भगत काँप रहे थे कि मालूम नहीं क्या आफत आयगी। डपटसिंह सोच रहे थे कि भगवान करे मारपीट हो जाय तो इन लोगोंकी खूब कुन्दी कीजाय और बिसेसर साह थरथर काँप रहे थे, केवल कादिरखाँको मनोहरसे सच्ची सहानुभूति थी। मनोहरकी उद्दण्डतासे उसके हृदयपर एक चोटसी लगी। सोचा मारपीट हो गयी तो फिर कुछ बनाये न बनेगी। तुरंत जाकर,दयाशङ्करके कानमें कहा,हुजूर हमारे मालिक हैं। हमलोग आपहीकी रिआया हैं। सिपाहियोंको मने कर दें, नहीं तो खून हो जायेगा। आप जो हुक्म देंगे उसके लिये मैं हाजिर हूँ। दयाशङ्कर उन आदमियोंमें न थे, जो खोकर भी कुछ नहीं सीखते। उन्हें अपने अभियोगने एक बड़ी उपकारी शिक्षा दी थी। पहले वह यथासंभव रिश्वत अकेले ही हजम कर लिया करते थे। इससे थानेके अन्य अधिकारी उनसे द्वेष किया करते थे। अब उन्होंने बाँटकर खाना सीखा था। इससे सारा थाना उनपर जान देता था। इसके अतिरिक्त अब वह पहलेकी भाँति अश्लील शब्दोंका व्यवहार न करते थे। उन्हें अब अनुभव हो रहा था कि सज्जनता केवल नैतिक महत्वकी वस्तु नहीं है, उसका आर्थिक महत्व भी कम नहीं है, सारांश यह कि अब उनके स्वभावमें अनर्गलताकी जगह गम्भीरताका समावेश हो गया था। वह इस झमेलेमें सारे गाँवको समेटकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना

चाहते थे। कान्सटेबलोंका अत्याचार इस उद्देश्यमें बाधक हो सकता था। अतएव उन्होंने सिपाहियोंको शान्त किया और बयान लिखने लगे। पहले चपरासियोंके बयान हुए। उन्होंने अपना सारा क्रोध बलराजपर उतारा। गौसखाँ और उनके दोनों शहनोंने भी इसीसे मिलता-जुलता बयान दिया। केवल बिन्दा महाराजका बयान कुछ कमजोर था। अब गाँववालोंके इजहारकी बारी आयी। पहले तो इन लोगोंने समझा था कि सारे गाँवपर आफत आनेवाली है, लेकिन विपक्षियोंके बयानसे विदित हुआ कि सब उद्योग बलराजको फँसानेके लिये किये जा रहे हैं। बलराजपर उसकी सहृदयताके कारण समस्त गाँव जान देता था। पारस्परिक स्नेह और सहृदयता भी ग्राम्य जीवनका एक शुभ लक्षण है। उस अवसरपर केवल सच्ची बात कहनेसेही बलराजकी जान बचती थी, अपनी ओरसे कुछ घटाने या बढ़ानेकी जरूरत न थी। अतएव लोगोंने साहससे काम लिया और सारी घटना सच-सच कह सुनायी, केवल बलराजके कठोर शब्दोंपर परदा डाल दिया। विपक्षियोंने उन्हें फोड़नेमें कोई बात उठा नहीं रखी, पर कादिरखाँकी दृढ़ताने किसीको विचलित न होने दिया।

आठ बजते-बजते तहक़ीकात समाप्त हो गयी। बलराजको हिरासतमें लेनेके लिये प्रमाण न मिले। गौसखाँ दाँत पीसकर रह गये। दारोगाजी चौपालसे उठकर अन्दरके कमरेमें जा बैठे। गाँवके लोग एक-एक करके सरकने लगे। डपटसिंहने अकड़कर कहा, गाँवमें फूट न हो तो कोई कुछ नहीं कर सकता। दारोगाजी कैसी जिरह करते थे कि कोई फूट जाय।

दुखरन—भगवान चाहेंगे तो अब कुछ न होगा। मेल बड़ी चीज है।

मनोहर—भाई, तुम लोगोंने मेरी आबरू रख ली, नहीं तो कुशल नहीं थी।

डपटसिंह—लस्करवालोंने समझा था जैसे दूसरे गाँववालों को दबा लेते हैं, वैसे ही इन लोगोंको दबा लेंगे।

दुखरन -इस गाँवपर महावीर स्वामीका साया है, इसे कोई क्या खाक दबायेगा ?

मनोहर—कादिर भैया, जब दोनों कान्सटेबलोंने बालूका हाथ पकड़ा तो मेरे बदनमें जैसे आग लग गयी। अगर वह छोड़ न दें तो चाहे जानसे जाता पर एककी तो जान ही लेकर छोड़ता।

डपट—अचरज तो यह है कि बलराजसे इतना जब्त कैसे हुआ

बलराज—मेरी तो जैसे सिट्टी-पिट्टी भूल गयी थी। मालूम होता था हाथोंमें दम ही नहीं है। हाँ, जब वह सब दादासे हाथापाई करने लगे तब मुझसे जब्त न हो सका।

दुखरन—चलो, भगवानकी दयासे सब अच्छा ही हुआ। अब कोई चिन्ता नहीं।

यह बातें करते हुए लोग अपने-अपने घर गये। मनोहर अभी भोजन करके चिलम पी ही रहा था कि बिन्दा महाराज आकर बैठ गये। यह बड़ा सहृदय मनुष्य था। था तो जमींदारका नौकर, पर उसकी सहानुभूति सदैव असामियोंके साथ रहती थी। मनोहर उसे देखते ही खाटपरसे उठ बैठा, बिलासी घरमेंसे निकल आयी और बलराज, जो ऊखकी गंडेरियाँ काट रहा था, हाथमें गड़ासा लिये आकर खड़ा हो गया। आजकल ऊख पेरी जाती थी। पहर रात रहे कोल्हू खड़े हो जाते थे।

मनोहरने पूछा, कहो महाराज कैसे चले ? चौपालमें क्या हो रहा है ?

बिन्दा—तुम्हारा गला रेतनेकी तैयारियाँ हो रही हैं। दारोगा जीने गाँवके मुखिया लोगोंको बुलाया और सबसे अपना-अपना बयान बदलनेके लिये कहा है। धमका रहे हैं कि बयान न बदलोगे तो सबसे मुचलका ले लेंगे। उसपर सौ रुपयेकी थैली अलग माँगते हैं। डरके मारे सबकी नानी मर रही है। बयान

बदलनेपर तैयार हैं। मैंने सोचा चलकर तुम्हें खबर तो दे दूँ। जमींदारके चाकर हैं तो क्या, पर हैं तो हम और तुम एक।

मनोहरके पाँव तलेसे जमीन निकल गयी। बिलासी सन्नाटेमें आ गयी, बलराजके भी होश उड़ गये। गरीबोंने समझा था, बला टल गयी। अपने काम धन्धमें लगे हुए थे। इस समाचारने आँधीके झोंकेकी तरह आकर नौकाको डाँवाडोल कर दिया। किसीके मुँहसे आवाज न निकली।

बिन्दाने फिर कहा, सबोंने कैसा अच्छा बयान दिया था। मैंने समझा था, यह अपनी बातपर अड़े रहेंगे, पर सब कायर निकले। एक ही धमकीमें पानी हो गये।

मनोहर—मेरे ऊपर कोई गरह दशा आयी हुई है और क्या? इस लौंडेके पीछे देखें क्या-क्या दुर्गति होती है।

बिन्दा—रात तो बहुत हो गयी है, पर बन पड़े तो लोगोंके पास जाओ। अरज बिनती करो। कौन जाने मान ही जायँ।

बलराजने तनकर कहा, न! किसी भकुयेके पास जानेका काम नहीं। यही न होगा, मेरी सजा हो जायेगी। ऐसे कायरोंसे भगवान बचावें। मुचलकेके नामसे जिनके प्राण सूख जाते हैं, उनका कोई भरोसा नहीं। यहाँ मर्द हैं, सजासे नहीं डरते, कोई चोरी नहीं की है, डाका नहीं मारा है, सच्ची बातके पीछे सजा नहीं गला कट जाय तब भी डरनेवाले नहीं हैं।

मनोहर—अरे बाबा, चुप भी रह, आया है बड़ा मर्द बनके। जब तेरी उमिर थी तो हम भी आकासपर दिया जलाते थे, पर अब वह कलेजा कहाँसे लायें?

बिन्दा—इन लड़कोंकी बातें ऐसी ही होती हैं। यह क्या जाने, माँ-बापके दिलपर क्या गुजरती है। जाओ, कहो-सुनो, धिक्कारो, आँखें चार होनेपर कुछ-न-कुछ मुरौअत आ जाती है।

बिलासी—हाँ, अपनी वाली कर लो। आगे जो भागमें बदा है वह तो होगा ही।

नौ बज चुके थे। प्रकृति कुहरेके—सागरमें डूबी हुई थी। घरोंके द्वार बन्द हो चुके थे। अलाव भी ठंढे हो गये थे। केवल सुक्खू चौधरीके कोल्हाड़ेमें गुड़ पक रहा था। कई आदमी भट्ठे के सामने आग ताप रहे थे। गाँवकी गरीब स्त्रियाँ अपने-अपने घड़े लिये गर्म रसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। इतनेमें मनोहर आकर सुक्खूके पास बैठ गया। चौधरी अभी चोपालसे लौटे थे और अपने मेलियोंसे दारोगाजीकी सज्जनताकी प्रशंसा कर रहे थे। मनोहरको देखते ही बात बदल दी और बोले, आओ मनोहर, बैठो. मैं तो आपही तुम्हारे पास आनेवाला था। कड़ाहकी चासनी देखने लगा। इन लोगोंको चासनीकी परख नहीं है। कल एक पूरा ताव बिगड़ गया। दारोगाजी तो बहुत मुँह फैला रहे हैं। कहते हैं, सबसे मुचलका लेंगे। उसपर सौकी थैली अलग माँगते हैं। हाकिमोंके बीचमें बोलना जान जोखिम है। जरासी सुईका पहाड़ हो गया। मुचलकाका नाम सुनते ही सब लोग थरथरा रहे हैं, अपने-अपने बयान बदलनेपर तैयार हो रहे हैं।

मनोहर—तब तो बल्लूके फँसनेमें कोई कसर ही न रही।

सुक्खू—हाँ, बयान बदल जायँगे तो उसका बचना मुश्किल है। इसी मारे मैंने अपना बयान न दिया था। खाँ साहब बहुत दम-भरोसा देते रहे; पर मैंने कहा, मैं न इधर हूँ, न उधर हूँ। न आपसे बिगाड़ करूँगा, न गाँवसे बुरा बनूँगा। इसपर बुरा मान गये। सारा गाँव समझता है कि मैं खाँ साहबसे मिला हुआ हूँ, पर कोई बता दे कि उनसे मिलकर गाँवकी क्या बुराई की। हाँ, उनके पास उठता-बैठता हूँ। इतनेसे ही जब मेरा बहुत-सा काम निकलता है तब व्यवहार क्यों तोड़ूँ? मेलसे जो काम निकलता है, वह बिगाड़ करनेसे नहीं निकलता। हमारा सिर जमींदारके पैरों तले रहता है। ऐसे देवताको राजी रखनेमें ही अपनी भलाई है।

मनोहर—तो अब मेरे लिये कौनसी राह निकालते हो ?

सुक्खू—मैं क्या कहूँ, गाँवका हाल तो जानते ही हो। तुम्हारी खातिर मोचलका देनेपर कौन राजी होगा ? कोई न मानेगा। बस, या तो भगवानका भरोसा है या अपनी गाँठका।

मनोहरने सुक्खूसे ज्यादा बातचीत नहीं की। समझ गया कि यह मुझे मुँड़वाना चाहते हैं। कुछ दारोगाको देंगे, कुछ गौसखाँके साथ मिलकर आप खा जायेंगे। इन दिनों उसका हाथ बिलकुल खाली था। नयी गोईं लेनी पड़ीं, सब रुपये हाथसे निकल गये। खाँ साहबने सिकमी खेत निकाल लिये थे। इसलिये रब्बीकी भी आशा कम थी। केवल ऊखका भरोसा था, लेकिन बिसेसर साहके रुपये चुकाने थे और लगान भी बेबाक करना था। गुड़में इससे अधिक और कुछ न हो सकता था। दूसरा ऐसा कोई महाजन न था जिससे रुपये उधार मिल सकते। वह यहाँसे उठकर डपटसिंहके घरकी ओर चला, पर अभीतक कुछ निश्चय न कर सका था कि उनसे क्या कहूँगा। वह भटके हुए पथिककी भाँति एक पगडंडीपर चला जा रहा था, बिलकुल बेखबर कि यह रास्ता मुझे कहाँ लिये जाता है, केवल इसलिये कि एक जगह खड़े रहनेसे चलते रहना अधिक सन्तोषप्रद था। क्या हानि है, यदि लोग मुचलका देनेपर राजी हो जायँ। यह विधान इतना दूरस्थ था कि वहाँतक उसका विचार भी न पहुँच सकता था।

डपटसिंहके दालानमें एक मिट्टीके तेलकी कुप्पी जल रही थी। भूमिपर पुआल बिछी हुई थी और कई आदमी और लड़के एक मोटे टाटका टुकड़ा ओढ़े सिमटे पड़े थे। एक कोनेमें एक कुतिया बैठी हुई पिल्लोंको दूध पिला रही थी, दूसरेमें एक गाय खड़ी जुगाली कर रही थी। डपटसिंह अभी सोये न थे। सोच रहे थे कि सुक्खूके कोल्हाड़ेसे गर्म रस आ जाय तो पीकर सोयें। उनके छोटे भाई झपटसिंह कुप्पीके सामने रामा-

यण लिये आँखें गड़ा-गड़ाकर पढ़नेका उद्योग कर रहे थे। मनोहरको देखकर बोले, आओ महतो, तुम तो बड़े झमेलेमें पड़ गये।

मनोहर—अब तो तुम्हीं लोग बचाओ तो बच सकते हैं।

डपट—तुम्हें बचानेके लिये हमने कौन-सी बात उठा रखी? ऐसा बयान दिया कि बलराजपर कोई दाग ही न आ सकता था, पर भाई अब मुचलका तो नहीं दे सकते। आज मुचलका दे दें, कलको गौसखाँ झूठों कोई सवाल दे दें तो सजा हो जाय।

मनोहर—नहीं भैया, मुचलका देनेको मैं आप ही न कहूँगा। डपटसिंह मनोहरके सदिच्छुक थे; पर इस समय उसे प्रकट न कर सकते थे। बोले, परमात्मा बैरीको भी कपूत सन्तान न दे। बलराजने कल झूठ-मूठ बतबढ़ाव न किया होता तो तुम्हें क्यों इस तरह लोगोंकी चिरौरी करनी पड़ती।

हठात् कादिरखाँकी आवाज यह कहते हुए सुनाई दी, बड़ा न्याय करते हो ठाकुर। बलराजने झूठ-मूठ बतबढ़ाव किया था तो उसी घड़ी डाँट क्यों न दिया? तब तो तुम भी बैठे मुस्कुराते रहे और आँखोंसे इस्तालुक देते रहे। आज जब बात बिगड़ गयी है तो कहते हो, झूठ-मूठ बतबढ़ाव किया था। पहले तुम्हींने अपनी लकड़ीका रोना रोया था, मैंने अपनी रामकहानी कही थी। यही सब सुन-सुनकर बलराज भरा बैठा था। ज्योंही मौका मिला, खुल पड़ा। हमने और तुमने रो-रोकर बेगार दी, पर डरके मारे मुँह न खोल सके। वह हिम्मतका जवान है उससे बरदास न हुई। जब वह हम सभी लोगोंकी खातिर आगे बढ़ा तो यह कहाँका न्याय है कि मुचलकेके डरसे आगमें झोंक दें।

डपटसिंहने विस्मित होकर कहा, तो क्या तुम्हारी सलाह है कि मुचलका दे दिया जाय?

कादिर—नहीं, मेरी यह सलाह नहीं है। मेरी सलाह है कि हम लोग अपने-अपने बयानपर डटे रहें। अभी कौन जानता है

कि मुचलका देना ही पड़ेगा। लेकिन अगर ऐसा हो तो हमें पीठ न फेरनी चाहिये। भला सोचो, कितना बड़ा अन्धेर है, कि हम लोग मुचलकेके डरसे अपने बयान बदल दें और अपने ही लड़केको कुएँ में ढकेल दें।

मनोहरने कादिरमियाँको अग्निपूर्ण नेत्रोंसे देखा। उसे ऐसा जान पड़ा मानों यह कोई देवता है। कादिरकी सम्मति जो साधारण न्यायपर स्थिर थी उसे अलौकिक प्रतीत हुई। डपट-सिंहको भी यह सलाह सयुक्तिक ज्ञात हुई। मुचलकेकी शंका कुछ कम हुई। मनमें अपनी स्वार्थपरतापर लज्जित हुए, तिसपर भी मनसे यह विचार न निकल सका कि प्रस्तुत विषयका सारा भार बलराजके सिर है। बोले, कादिर भाई, यह तो तुम नाहक कहते हो कि मैंने बलराजको इस्तालुक दिया। मैंने बलराजसे कब कहा कि तुम लस्करवालोंसे तूल-कलाम करना। यह राह तो उसने आप ही बढ़ाया। उसका सुभाव ही ऐसा कड़ा ठहरा। आजको सिपाहियोंसे उलझा है, कलको किसीपर हाथ ही चला दे तो हमलोग कहाँतक उसकी हिमायत करते फिरेंगे।

कादिर—तो मैं तुमसे कब कहता हूँ कि उसकी हिमायत करो। वह बुरी राह चलेगा ता आप ठोकर खायेगा। मेरा कहना यही है कि हमलोग अपनी आँखोंकी देखी और कानों-की सुनी बातोंमें किसीके भयसे उलट-फेर न करें। सचाईपर रहें। अपनी जान बचानेके लिये फरेब न करें। मुचलकेकी तो बात ही क्या, हमारा धरम है कि अगर सच कहनेके लिये जेहल भी जाना पड़े तो सचसे मुँह न मोड़ें।

डपटसिंहको अब निकलनेका कोई रास्ता न रहा, किन्तु फिर भी इस निश्चयके व्यावहारिक रूपमें भागनेका कोई सम्भा-वित मार्ग निकल आनेकी आशा बनी हुई थी। बोले, अच्छा मान लो हम और तुम अपने बयानपर अड़े, लेकिन बिसेसर और दुखरनको क्या करोगे? वह किसी विध न मानेंगे।

कादिर—उनको भी खींचे लाता हूँ। मानेंगे कैसे नहीं? अगर अल्लाहका डर है तो कभी निकल ही नहीं सकते।

यह कहकर कादिर खाँ चले गये और थोड़ी देरमें दोनों आदमियोंको साथ लिये हुए आ पहुँचे। बिसेसर साहने आते ही डपटसिंहकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टिसे आँखें नचाकर देखा, मानो पूछना चाहते थे कि तुम्हारी क्या सलाह है, और दुखरन भगत, जो दोनों जून मंदिरमें पूजा करने जाया करते थे और जिन्हें रामचर्चासे कभी तृप्ति न होती थी, इस तरह सिर झुकाकर बैठ गये, मानों उनपर वज्रपात हो गया है या कादिरखाँ उन्हें किसी गहरी खोहमें गिरा रहे हैं।

इन्हें यहाँ बैठाकर कादिरखाँने अपनी पगड़ीसे थोड़ीसी तमाखू निकाली, अलावसे आग रख लाये और दो तीन दम लगाकर चिलमको डपटसिंहकी ओर बढ़ाते हुए बोले, कहो भगत, कल दारोगाजीके पास चलकर क्या करना होगा?

दुखरन—जो तुम लोग करोगे वही मैं भी करूँगा। हाँ, मुचलका न देना पड़े। कादिरने फिर उसी युक्तिसे काम लिया, जो डपटसिंहको समाधान करनेमें सफल हुई थी। सीधे किसान बितण्डावादी नहीं होते। वास्तवमें इन लोगोंके ध्यानमें यह बात ही न आयी थी, कि बयानका बदलना प्रत्यक्ष जाल है। कादिरखाँने इस विषयका निदर्शन किया तो उन लोगोंकी सरल सत्यभक्ति जाग्रत हो गयी। दुखरन शीघ्र ही उनसे सहमत हो गये। लेकिन बिसेसरपर उनके भाषणका कुछ असर न हुआ। साहजीके यहाँ शक्कर और अनाजका कारबार होता था। डेवढ़ी सवाई चलती थी, लेन-देन करते थे, दो हलकी खेती होती थी; गाँजा, भङ्ग, चरस आदिका ठीका भी ले लिया था, पर उनका भेषभाव उन्हें कराधिकारियोंके पञ्जेसे बचाता रहता था। बोले, भाई तुम लोगोंका साथ देनेमें मैं कहींका न रहूँगा, चार पैसेका लेन-देन है। नरमी,गरमी, डाँट-डपट किये बिना काम नहीं चल सकता।

रुपये लेते समय तो लोग सगे बन जाते हैं, पर देनेकी बारी आती है तो कोई सीधे मुँह बात नहीं करता। यह रोजगार ही ऐसा है कि अपने घरका जमा देकर, दूसरोंसे बैर मोल लेना पड़ता है। आज मुचलका हो जाय, कलको कोई मामला खड़ा हो जाय, तो गाँवमें सफाईके गवाहतक न मिलेंगे और फिर संसारमें रहकर अधर्मसे कहाँतक बचेंगे? यह तो कपटलोक है। अपने मतलबके सिये दङ्गा, फरेब, जाल सभी कुछ करना पड़ता है। आज धरमका विचार करने लगूँ, तो कल ही सौ रुपये सालका टिकट बँध जाय, असामियोंसे कौड़ी न वसूल हो और सारा कारबार मिट्टीमें मिल जाय। इस जमानेमें जो रोजगार रह गया है इसी बेईमानीका रोजगार है। क्या हम हुए, क्या तुम हुए—सबका एक ही हाल है, सभी सनकी गाँठोंमें मिट्टी और लकड़ी भरते हैं, तेलहन और अनाजमें मिट्टी और कङ्कर मिलाते हैं। क्या यह बेईमानी नहीं है? अनुचित बात कहता होऊँ तो मेरे मुँहपर थप्पड़ मारो। तुम लोगोंको जैसा गौं पड़े वैसा करो, पर मैं मुचलका देनेपर किसी तरह राजी नहीं हो सकता।

स्वार्थनीतिका जादू निर्बल आत्माओंपर खूब चलता है! दुखरन और डपटसिंहको यह बातें अतिशय न्यायसंगत जान पड़ीं। यही विचार उनके हृदयमें भी थे, पर किसी कारणसे व्यक्त न हो सके थे। दोनोंने एक-दूसरेको मार्मिक दृष्टिसे देखा। डपटसिंह बोले, भाई, बात तो सच्ची कहते हो, संसारमें रहकर सीधी राहपर कोई नहीं चल सकता। अधर्मसे बचना चाहे तो किसी जङ्गल-पहाड़में जाकर बैठे। यहाँ निबाह नहीं।

कादिरखाँ—समझ गये कि साहुजीपर धर्म और न्यायका कुछ बस न चलेगा। यह उस वक्ततक काबूमें न आयेंगे जबतक इन्हें यह न सूझेगा कि बयान बदलनेमें कौन-कौनसी बाधाएँ उपस्थित हो सकती हैं। बोले, साहुजी तुम जो बात कहते हो बेलाग कहते हो। संसारमें रहकर अधर्मसे कहाँतक कोई

बचेगा ? रात-दिन तो छल-कपट करते रहते हैं। जहाँ इतने पापोंका दण्ड भोगना है, एक पाप और सही। लेकिन यहाँ धर्मका ही विचार नहीं है न ? डर तो यह है कि बयान बदलकर हम लोग और किसी संकटमें न फस जायँ। पुलिसवाले किसीके नहीं होते। हम लोगोंका पहला बयान दारोगाजीके पास रखा हुआ है। उसपर हमारे दसखत और अंगूठेके निशान भी मौजूद हैं। दूसरा बयान लेकर वह हम लोगोंको जालसाजीमें गिरफ्तार कर लें तो सोचो कि क्या हो। सात बरससे कमकी सजा न होगी। न भैया, इससे तो मुचलका ही अच्छा। आँखसे देखकर मक्खी क्यों निगलें!

बिसेसर साहकी आँखें खुलीं। और लोग भी चकराये। कादिरखाँकी यह युक्ति काम कर गयी। लोग समझ गये कि हम लोग बुरे फँस गये हैं और किसी तरह निकल नहीं सकते। बिसेसरका मुँह ऐसा लटक गया मानो रुपयेकी थैली गिर गयी हो। बोले, दारोगाजी ऐसे आदमी तो नहीं जान पड़ते। कितना ही है तो हमारे मालिक हैं, कुछ-न-कुछ मुलाहिजा तो करेंगे ही; लेकिन किसीके मनका हाल परमात्मा ही जान सकता है। कौन जाने, उनके मनमें कपट समा जाये। तब तो हमारा सत्यानास ही हो जाये। तो यही सलाह पक्की कर लो न कि न बयान बदलेंगे, न दरोगाजीके पास जायेंगे। अब तो जालमें फँस गये हैं। फड़फड़ानेसे फन्दे और भी बन्द हो जायेंगे। चुपचाप राम आसरे बैठे रहना ही अच्छा है।

इस प्रकार आपसमें सलाह करके लोग अपने-अपने घर गये। कादिरखाँकी व्यवहारपटुताने विजय पायी।

बाबू दयाशंकर नियमानुसार आठ बजे सोकर उठे और रातकी खुमारी उतारनेके बाद इन लोगोंकी राह देखने लगे। जब नौ बजेतक किसीकी सूरत न दिखाई दी तो गौसखाँसे बोले, कहिये खाँसाहब, यह सब न आयेंगे क्या ? देर बहुत हुई।

गौसखाँ—क्या जाने कल सबोंमें क्या मिस्कौट हुई। क्यों सुक्खू, रात मनोहर तुम्हारे पास आया था न ?

सुक्खू - हाँ, आया तो था, पर कुछ मामलेकी बातचीत नहीं हुई। कादिर मियाँ बड़ी राततक सबके घर-घर घूमते रहे। उन्होंने सभोंको मंत्र दिया होगा।

गौसखाँ जरूर उसीकी शरारत है। कल पहर राततक सब लोग बयान बदलनेपर आमादा थे। मालूम होता है जब लोग यहाँसे गये हैं तो उसे पट्टी पढ़ानेका मौका मिल गया। मैं जानता तो सबोंको यहीं सुलाता। यह मलऊन कभी अपनी हरकतसे बाज नहीं आता। हमेशा भाँजी मारा करता है !

दया अच्छी बात है, तो मैं अब रिपोर्ट लिख डालता हूँ। मुझे गाँववालोंकी तरफसे किसी किस्मकी ज्यादतीका सबूत नहीं मिलता।

गौसखाँ - हुजूर खुदाके लिये ऐसी रिपोर्ट न लिखें, वरना यह सब और शेर हो जायेंगे। हुजूर, महज अफसर नहीं हैं। मेरे आका भी तो हैं। गुलामने बहुत दिनोंतक हुजूरका नमक खाया है। ऐसा कुछ कीजिये कि यहाँ मेरा रहना दुश्वार न हो जाय। मैं तो हुजूर और बाबू ज्ञानशङ्करको एक ही समझता हूँ। मैं यही चाहता हूँ कि बलराजका कम-से-कम एक माहकी सजा हो जाय और बाकीसे मुचलका ले लिया जाय। यह इनायत खास मुझपर होगी। मेरी धाक बँध जायेगी और आइन्दासे हुक्कामकी बेगारमें जरा भी दिक्कत न होगी।

दयाशङ्कर - आपका फरमाना बजा है, पर मैं इस वक्त न आपकी आकाकी हैसियतमें हूँ और न मेरा काम हुक्कामके लिये बेगार पहुँचाना है। मैं तसफीस करने आया हूँ और किसीके साथ रू-रिआयत नहीं कर सकता। यह तो आप जानते ही हैं कि मैंने मुफ्तमें कलम उठानेका सबक नहीं पढ़ा। किसीपर जब्र नहीं करता, सख्ती नहीं करता, सिर्फ कामकी मजदूरी चाहता हूँ और

खुशीसे जो मुझसे काम लेना चाहे मेरी उजरत पेश करे। और मुझे महज अपनी फिक्र तो नहीं, मेरी मातहत और भी तो कितने ही छोटी-छोटी तनखाहोंके लोग हैं। उनका गुजर कैसे हो? गाँवमें आपकी धाक बँध जायेगी, इससे मेरा फायदा? आप असामियोंको लूटेंगे, मेरी गरज़? गाँववालोंसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं, बल्कि वह गरीब तो मेरे पुराने वफादार असामी हैं। मच्छर नहीं कि डङ्क मारता फिरूँ। कसम खा चुका हूँ, कि अब एक सौसे कमकी तरफ निगाह न उठाऊँगा, यह रकम चाहे आप दें या काला चोर दे। मेरे सामने रकम आनी चाहिये। गुनाह बेलज़्ज़त नहीं कर सकता।

गौसखाँने बहुत मिन्नत समाअत की, अपनी हीन दशाका रोना रोया, अपनी दुरवस्थाका पचड़ा गाया, पर दारोगाजी टससे मस न हुए। खाँसाहबने लोगोंको नीचा दिखानेका निश्चय किया था, इसीमें उनका कल्याण था। दारोगाजीके पूजार्पणके सिवा अन्य कोई उपाय न था। सोचा, जब मेरी धाक जम जायगी तो ऐसे-ऐसे कई सौका वारा न्यारा कर दूँगा। कुछ रुपये अपने सन्दूकसे निकाले, कुछ सुक्खू चौधरीसे लिये और दारोगाजी-की खिदमतमें पेश किये। यह रुपये उन्होंने अपने गाँवमें एक मसजिद बनवानेके लिये जमा किये थे। निकालते हुए हार्दिक वेदना हुई, पर समस्याने विवश कर दिया था। दयाशङ्करने काले-काले रुपयोंका ढेर देखा तो चेहरा खिल उठा। बोले, अब आपकी फतह है, वह रिपोर्ट लिखता हूँ कि मिस्टर ज्वालासिंह भी फड़क जायें। मगर आपने यह रुपये जमीनमें दफन कर रखे थे क्या?

गौसखाँ—अब हुजूर कुछ न पूछें। बरसोंकी कमाई है। ये पसीनेके दाग हैं।

दयाशङ्कर—(हँसकर) आपके पसीनेके दाग तो न होंगे, हाँ असामियोंके खूनेजिगरके दाग हैं।

१० बजे रिपोर्ट तैयार हो गयी, दो दिनतक सारे गाँवमें कुह-

राम मचा रहा। लोग तलब हुए, फिर सबके बयान हुए। अन्तमें सबसे सौ-सौ रुपयेके मुचलके ले लिये गये। कादिरखाँका घरसे बाहर निकलना मुश्किल हो गया।

शाम हो गयी थी। बाबू ज्वालासिंह शिकार खेलने गये हुए थे। फैसला कल सुनाया जानेवाला था। गौसखाँ ईजादहुसेनके पास आकर बैठ गये और बोले, क्या डिप्टी साहब अभी शिकारसे वापस नहीं आये?

ईजादहुसेन—कहीं घड़ी राततक लौटेंगे। हुकूमतका मजा तो दौरेमें ही मिलता है। घण्टे आध घण्टे कचहरी की, बाकी सारे दिन मटरगश्त करते रहे। रोजनामचा भरनेको लिख दिया, परताल करते रहे।

गौसखाँ—आपको तो मालूम ही हुआ होगा, दारोगाजीने मुझे आज खूब पथा।

ईजाद—इन हिन्दुओंसे खुदा समझे। यह बलाके मतअस्सिब होते हैं। हमारे साहब बहादुर भी बड़े मुन्सिफ बनते हैं, मगर जब कोई जगह खाली होती है तो वह हिन्दूको ही देते हैं। अदेलीके चपरासी मजीदको आप जानते होंगे। अभी हालमें उसने जिल्दबन्दीकी दूकान खोल ली, नौकरीसे इस्तीफा दे दिया। आपने उसकी जगहपर एक गँवार अहीरको मुकर्रर कर लिया। है तो अदेलीका चपरासी, पर उसका काम है गायें दुहना, उन्हें चारा-पानी देना। दौरेके चौकीदारोंमें दो कहार रख लिये हैं। उनसे खिदमतगारीका काम लेते हैं। जब इन हथकण्डोंसे काम चले तो बेगारकी जरूरत ही क्या? हमलोगोंको अलबत्ता हुक्म मिला है, कि बेगार न लिया करो।

सूर्य्य अस्त हुए, खाँसाहबको याद आ गया कि नमाज़का वक्त गुजरा जाता है। वजू किया और एक पेड़के नीचे नमाज़ पढ़ने लगे।

इतनेमें बिसेसर साहने रावटीके द्वारपर आकर अहलमद

साहबको अदबसे सलाम किया। स्थूल शरीर, गाढ़ेकी मिर्जई, उसपर गाढ़ेका दोहर, सिरपर एक मैलीसी पगड़ी, नँगे पाँव, मुख मलीन, स्वार्थपूर्ण विनयकी मूर्त्ति बने हुए थे। एक चपरासी ने डाँटकर कहा, यहाँ कहाँ घुसे चले आते हो? कुछ अफसरोंका अदब-लिहाज़ भी है?

बिसेसर साह दो-तीन पग पीछे हट गये और हाथ बाँधकर बोले, सरकार, मेरी एक बिनती है। हुक्म हो तो अरज करूँ।

ईजाद—क्या कहते हो? तुम लोगोंके मारे तो दम मारनेकी भी फुर्सत नहीं। जब देखो, एक न एक आदमी शैतानकी तरह सिरपर सवार रहता है।

बिसेसर—हुजूर, बड़ी देरसे खड़ा हूँ।

ईजाद—अच्छा, खैर अपना मतलब कहो।

बिसेसर—यही अरज है हुजूर, कि मुझसे मुचलका न लिया जाय। बड़ा गरीब हूँ सरकार, मिट्टीमें मिल जाऊँगा।

अहलमद साहबके यहाँ ऐसे गरजके बावले, आँखके अन्धे गाँठके पूरे, नित्य ही आया करते थ। वह उनके कल-पुरजे खूब जानते थे। पहले मुँह फेरा, फिर अपनी विवशता प्रकट की, पर भाव ऐसा शीलपूर्ण बनाये रखा कि शिकार हाथसे निकल न जाये। अन्तमें मामलेपर आये। रुपये लेते हुए ऐसा मुँह बनाया, मानों दे रहे हों। साहजीको दिलासा देकर बिदा किया।

चपरासीने पूछा, क्या इससे मुचलका न लिया जायगा?

ईजाद—लिया क्यों न जायगा? फैसला लिखा हुआ तैयार है। इसके लिये जैसे सौ, वैसे एक सौ बीस। मैंने उससे यह हर्गिज नहीं कहा कि तुम्हें मुचलकेसे निजात दिला दूँगा। महज इतना कह दिया कि तुम्हारे लिये अपने इमकानभर कोशिश करूँगा। उसकी तसकीन इतनेसेही हो गयी तो मुझे ज्यादा दर्द-सरकी क्या जरूरत थी? रिश्वतको लोग नाहक बदनाम करते हैं। इस वक्त मैं इससे रुपये न लेता, तो इसकी न जाने क्या

हालत होती। मालूम नहीं, कहाँ-कहाँ दौड़ता और क्या-क्या करता? रुपये देकर इसके सिरका बोझ हलका हो गया और दिलपरसे बोझ उतर गया। इस वक्त आरामसे खायेगा और मीठी नींद सोयेगा। कल कह दूँगा, भाई क्या करूँ, बहुत हाथ-पैर मारे, पर डिप्टीसाहब राजी ही न हुए। मौका देखूँगा तो एक चाल और चलूँगा। कहूँगा, डिप्टी साहबको कुछ नजर दिये बिना काम पूरा न होगा। सौ रुपये पेश करो तो तुम्हारा मुचलका रद्द करा दूँ। यह चाल चल गया तो पौ बारह है। इसीका नाम हम खुर्मा वहम सवाब है। मैंने कोई ज्यादती नहीं की, कोई जब्र नहीं किया। यह गैबी इमदाद है। इसीसे मैं हिन्दुओंके मसलये तनासुखका कायल हूँ। जरूर इससे पहलेकी जिन्दगीमें इस आदमीपर मेरे कुछ रुपये आते होंगे, खुदाने उसके अदा होनेकी यह सूरत पैदा कर दी। देखते तो हो, आये दिन ऐसे शिकार फँसा करते हैं, गोया उन्हें रुपयोंसे कोई चिढ़ है। दिलमें उनकी हिमाकतपर हँसता हूँ और अल्लाहका शुक्र अदा करता हूँ कि ऐसे बन्दे न पैदा करता तो हम जैसोंका गुजर क्योंकर होता?

१४

रायसाहबको नैनीताल आये हुए एक महीना हो गया है। एक सुरम्य झालके किनारे हरे-भरे वृक्षोंके कुञ्जमें उनका बङ्गला स्थित है, जिसका एक हजार रुपया मासिक किराया देना पड़ता है। कई घोड़े हैं, कई मोटरगाड़ियाँ, बहुतसे नौकर। यहाँ वह राजाओंकी भाँति शानसे रहते हैं। कभी हिमराशियोंकी सैर कभी शिकार, कभी झालमें बजरोंकी बहार, कभी पोलो और गल्फ, कभी सरोद और सितार, कभी पिकनिक और पार्टियाँ नित्य नये जल्से, नये प्रमोद होते रहते हैं। रायसाहब बड़ी उमंग के साथ इन विनोदोंकी बहार लूटते हैं। उनके बिना किसी महफिल, किसी जल्सेका रंग नहीं जमता। वह सभी बरातोंके दूल्हे हैं। व्यवस्थापक सभाकी बैठकें नियमित समयपर हुआ करती

है, पर मेम्बरोंके राग-रङ्गको देखकर यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि वह आमोदको अधिक महत्वका विषय समझते हैं या व्यवस्थाओंके सम्पादनको।

किन्तु ज्ञानशङ्करके हृदयकी कली यहाँ भी न खिली। राय-साहबने उन्हें यहाँके समाजसे परिचित करा दिया, उन्हें नित्य-दावतों और जलसोंमें अपने साथ ले जाते, अधिकारियोंसे उनके गुणोंकी प्रशंसा करते, यहाँतक कि उन्हें लेडियोंसे भी इन्ट्रोड्यूस कराया। इससे ज्यादा वह और क्या कर सकते थे? इस भित्तिपर दीवार उठाना उनका काम था, पर उनकी दशा उस पौधेकी-सी थी, जो प्रतिकूल परिस्थितिमें जाकर मालीके सुव्यवस्था करनेपर भी दिनोंदिन सूखता जाता है। ऐसा जान पड़ता था कि वह किसी गहन घाटीमें रास्ता भूल गये हैं। रत्नजटित लेडियोंके सामने वह शिष्टाचारके नियमोंके ज्ञाता होनेपर भी झेंपने लगते थे। रायसाहब उन्हें प्रायः एकान्तमें सभ्य व्यवहारके उपदेश किया करते, स्वयं नमूना बनकर उन्हें दिखाते, पुरुषोंसे क्योंकर बिना प्रयोजन ही मुस्कुराकर बातें करनी चाहिये। महिलाओंके रूप लावण्यकी क्योंकर सराहना करनी चाहिये; किन्तु अवसर पड़नेपर ज्ञानशङ्करका मतिहरण हो जाता था। उन्हें आश्चर्य होता था, कि रायसाहब इस वृद्धावस्थामें भी लेडियोंके साथ कैसे घुल-मिल जाते हैं, किस अन्दाजसे बातें करते हैं कि बनावटका ध्यान भी नहीं हो सकता, मानो इसी जलवायुमें उनका पालन-पोषण हुआ है।

एक दिन वह झीलके किनारे एक बेंचपर बैठे हुए थे। कई लेडियाँ एक बजरेपर जल-क्रीड़ा कर रही थीं। इन्हें पहचानकर उन्होंने इशारेसे बुलाया और सैर करनेका दावत दी। इस समय ज्ञानशङ्करकी मुखाकृति देखते ही बनती थी। उन्हें इन्कार करनेके शब्द न मिले। भय हुआ कि कहीं असभ्यता न समझी जाय। झेंपते हुए बजरेमें जा बैठे, पर सूरत बिगड़ी हुई, खेद और ग्लानि

की सजीव मूर्ति। हृदयपर एक पहाड़का बोझ रखा हुआ था। लेडियोंने उनकी यह दशा देखी,तो आड़े हाथों लिया और इतनी फबतियाँ उड़ायीं,इतना बनाया कि इस समय कोई ज्ञानशंकरको देखता तो पहचान न सकता। मालूम होता था, आकृति ही बिगड़ गयी है, मानों कोई बन्दरका बच्चा नटखट लड़कोंके हाथों पड़ गया हो। आँखोंमें आँसू भरे एक कोनेमें दबके सिमटे बैठे हुए अपने दुर्भाग्यको रो रहे थे। बारे किसी तरह इस विपत्तिसे मुक्ति हुई, जान-में-जान आयी। कान पकड़े कि फिर लेडियोंके निकट न जाऊँगा।

शनैः-शनैः ज्ञानशङ्करको इन खेल-तमाशोंसे अरुचि होने लगी। अंगूर खट्टे हो गये। ईर्षा, जो अपनी क्षुद्रताओंकी स्वीकृति है, हृदयका काँटा बन गयी। रात-दिन इसकी टीस रहने लगी। उच्चाकांक्षाएँ उन्हें पर्वतके पादस्थलतक ले गयीं, लेकिन ऊपर न ले जा सकीं। वहीं हिम्मत हारकर बैठ गये और उन धुनके पूरे, साहसी पुरुषकी निन्दा करने लगे, जो गिरते-पड़ते ऊपर चढ़ते चले जाते थे। यह क्या पागलपन है! लोग ख्वाहमख्वाह अङ्गरेजियतके पीछे लट्ठ लिये फिरते हैं। थोड़ी-सी ख्याति और सत्ताके लिये इतना झंझट और इतने रंगरोगनपर भी असलियतका कहीं पता नहीं। सब-के-सब बहुरुपिये मालूम होते हैं। अङ्गरेज लोग इनके मुँहपर चाहे न हँसें,पर मित्रमण्डलीमें इनपर सब तालियाँ बजाते होंगे। और तो और, लोग लेडियोंके साथ नाचनेपर भी मरते हैं। कैसी निर्लज्जता है, कैसी बेहयाई, जातिके नामपर धब्बा लगानेवालो! रायसाहब भी विचित्र जीव हैं, इस अवस्थामें आपको भी नाचनेकी धुन है। ऐसा मालूम होता है, मानों उच्छृङ्खलता सदेह होकर दूसरोंका मुँह चिढ़ा रही है। डाक्टर चन्द्रशेखर कहनेको तो दर्शनके ज्ञाता हैं, पुरुष और प्रकृति जैसे गहन विषयोंपर लच्छेदार वक्तृताएं देते हैं, लेकिन नाचने लगते हैं तो सारा पाण्डित्य धूलमें मिल जाता है। वह जो राजासाहब

हैं इन्द्रकुमारसिंह मटकेकी भाँति तोंद निकली हुई है लेकिन आप भी अपना नृत्य-कौशल दिखानेपर उधार खाये हुए हैं। और तुर्रा यह कि सबके सब जातिके सेवक और देशके भक्त बनते हैं। जिसे देखिये, भारतकी दुर्दशापर आँसू बहाता नजर आता है। यह लोग विलासमय होटलोंमें शराब और लेमोनेड पीते हुए देश-की दरिद्रता और अधोगतिका रोना रोते हैं। यह भी फेशनमें दाखिल हो गया है।

इस भाँति ज्ञानशंकरकी ईर्षा देशानुरागके रूपमें प्रकट हुई। असफल लेखक समालोचक बन बैठा। अपनी असमर्थताने साम्य-वादी बना दिया। यह सभी रंगे हुए सियार हैं, लुटेरोंका जत्था है, किसीको खबर नहीं कि गरीबोंपर क्या बीत रही है, किसीके हृदयमें दया नहीं; कोई राजा है, कोई ताल्लुकेदार, कोई महाजन। सभी गरीबोंका खून चूसते हैं, गरीबोंके झोपड़ोंमें सेंद मारते हैं और यहाँ आकर देशकी अवनतिका पचड़ा गाते हैं. भला ही है कि अधिकारिवर्ग इन महानुभावोंको मुँह नहीं लगाते। कहीं वह इनकी बातोंमें आ जायँ और देशका भाग्य इनके हाथोंमें दे दें, तो जातिका कहीं नाम-निशान भी न रहे। यह सब दिनदहाड़े लूट खायँ। कोई इन भलेमानसोंसे पूछे, आप जो यहाँ लाखों रुपये सैर-सपाटोंमें उड़ा रहे हैं, उससे जातिको क्या लाभ हो रहा है? यही धन यदि जातिपर अर्पण करते तो जाति तुम्हें धन्यवाद देती और तुम्हें पूजती, नहीं तो उसे खबर भी नहीं, कि तुम कौन हो और क्या करते हो? उसके लिये तुम्हारा होना न होना दोनों बराबर है। प्रार्थीको इस बातसे संतोष नहीं होता कि तुम दूसरों से सिफारिश करके उसे कुछ दिला दोगे, उसे संतोष होगा जब तुम स्वयं अपने रासे थोड़ा-सा निकालकर उसे दे दो।

ये द्रोहात्मक विचार ज्ञानशङ्करके चित्तको मथने लगे। वाणी उन्हें प्रकट करनेके लिये व्याकुल होने लगी। एक दिन वह डाक्टर चन्द्रशेखरसे उलझ पड़े। इसी प्रकार एक दिन राजा इन्द्रकुमारसे

विवाद कर बैठे और मिस्टर हरिदास बैरिस्टरसे तो एक दिन हाथापाईकी नौबत आ गयी। परिणाम यह हुआ कि लोगोंने ज्ञानशङ्करका बहिष्कार करना शुरू किया यहाँतक कि राय-साहबके बँगलेपर आना भी छोड़ दिया; किन्तु जब ज्ञानशङ्करने अपने विचारोंको एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिकामें प्रकाशित कराया तो सारे नैनीतालमें हलचल मच गयी। जिसके मस्तिष्कसे ऐसे उत्कृष्ट भाव प्रकट हो सकते थे, उसे झक्की या बक्की समझना असम्भव था। शैली ऐसी सजीवन, चुटकियाँ ऐसी तीव्र, व्यंग्य ऐसे मीठे और उक्तियाँ ऐसा मार्मिक थीं कि लोगोंको उसकी चोटोंमें भी आनन्द आता था। नैतीताल समाजका एक वृहद् चित्र था। चित्रकारने प्रत्येक चित्रके मुखपर उसका व्यक्तित्व ऐसी कुशलतासे अङ्कित कर दिया था कि लोग मन-ही-मन कटकर रह जाते थे। लेखमें ऐसे कटाक्ष थे कि उसके कितने ही वाक्य लोगोंकी जबानपर चढ़ गये।

ज्ञानशंकरको शङ्का थी कि यह लेख छपते ही समस्त नैनीताल उनके सिर हो जायगा; किन्तु यह शङ्का निस्सार सिद्ध हुई। जहाँ लोग उनका निरादर और अपमान करते थे, वहाँ अब उनका आदर और मान करने लगे। एक-एक करके लोगोंने उनके पास आकर अपना अविनयकी क्षमा माँगी। सब-के-सब एक दूसरेपर की गयी चोटोंका आनन्द उठाते थे। डाक्टर चन्द्रशेखर और राजा इन्द्रकुमारमें बड़ी घनिष्ठता थी, किन्तु राजा साहबपर दो-मुँहे साँपकी फबती डाक्टर महोदयको लोट-पोट कर देती थी। राजा साहब भी डाक्टर महाशयकी प्रौढ़ासे उपमापर मुग्ध हो जाते थे। उनकी घनिष्ठता इस द्वेषमय आनन्दमें बाधक न होती थी। यह चोटें और चुटकियाँ सर्वथा निष्फल हुईं। सैर-तमाशोंमें लोगोंका उत्साह कुछ कम हो गया। अगर अन्तःकरणसे नहीं तो केवल ज्ञानशङ्करको खुश करनेके लिये लोग उनसे सार्व-जनिक प्रस्तावोंमें सम्मति लेने लगे। ज्ञानशंकरका साहस

और भी बढ़ा। वह खुल्लमखुल्ला लोगोंको फटकारें सुनाने लगे। निन्दकसे उपदेशक बन बैठे। उनमें आत्मगौरवका भाव उदय हो गया। अनुभव हुआ कि इन बड़े-बड़े उपाधिधारियों और अधिकारियोंपर कितनी सुगमतासे प्रभुत्व जमाया जा सकता है। केवल एक लेखने उनकी धाक बिठा दी। सेवा और दयाके जो पवित्र भाव उन्होंने चित्रित किये थे, उनका स्वयं उनकी आत्मापर भी असर हुआ। पर शोक! इस अवस्थाका शीघ्र ही अंत हो गया। क्वारका आरम्भ होते ही नैनीतालसे डेरे कूच होने लगे। और आधे क्वारतक वह बस्ती उजाड़ हो गयी। ज्ञानशङ्कर फिर उसी कुटिल स्वार्थकी उपासना करने लगे। उनका हृदय दिनोंदिन कृपण होने लगा। नैनीतालमें भी वह मन ही-मन रायसाहबकी फजूलखर्चियोंपर कुढ़बुड़ाया करते थे। लखनऊ आकर उनकी संकीर्णता शब्दोंमें व्यक्त होने लगी। जुलाहेका क्रोध दाढ़ीपर उतरता। कभी मुख्तारसे, कभी मुहर्रिरसे, कभी नौकरोंसे उलझ पड़ते। तुम लोग रियासत लूटनेपर तुले हुए हो, जैसे मालिक वैसे नौकर, सभीकी आँखोंमें सरसों फूली हुई है, मुफ्तका माल उड़ाते क्या लगता है? जब पसीना मारकर कमाते तो खर्च करते भी अखर होती। रायसाहब रामलीलासभाके प्रधान थे। इस अवसरपर हजारों रुपये खर्च करते, नौकरोंको नयी-नयी वरदियाँ मिलतीं, रईसोंकी दावत की जाती, राजगद्दीके दिन ब्रह्मभोज किया जाता। ज्ञानशङ्कर धनका यह अपव्यय देखकर जलते रहते थे। दीपमालिकाके उत्सवकी तैयारियाँ देखकर वह ऐसे हताश हुए कि एक सप्ताहके लिये इलाकेकी सैर करने चले गये।

दिसम्बरका महीना था और क्रिसमसके दिन। रायसाहब अंग्रेज अधिकारियोंको डालियाँ देनेकी तैयारियोंमें तल्लीन हो रहे थे। ज्ञानशङ्कर उन्हें डालियाँ सजाते देखकर इस तरह मुँह बनाते, मानों वह कोई महाघृणित काम कर रहे हैं। कभी-कभी दबी जबानसे उनकी चुटकी भी ले लेते। उन्हें छेड़कर तर्क-वितर्क

करना चाहते। रायसाहबपर इन भावोंका जराभी असर न होता। वह ज्ञानशंकरकी मनोवृत्तियोंसे परिचित जान पड़ते थे। शायद उन्हें जलानेके लियेही वह इस समय इतने उत्साहशील हो गये थे!

यह चिन्ता ज्ञानशङ्करकी नींद हराम करनेके लिये काफी थी। उसपर जब उन्हें विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुआ कि रायसाहबपर कई लाखका कर्ज है तो वह नैराश्यसे विह्वल हो गये। एक उद्विग्न दशामें विद्याके पास आकर बोले, मालूम होता है यह मरते दमतक कौड़ी-कफनको न छोड़ेंगे। मैं आज ही इस विषयमें इनसे साफ-साफ बातें करूँगा और कह दूँगा कि यदि आप अपना हाथ न रोकेंगे तो मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा कर डालूँगा।

विद्या—उनकी जायदाद है, तुम्हें रोक-टोक करनेका क्या अधिकार है? कितना ही उड़ायेंगे तब भी हमारे खानेभरको बच ही रहेगा। भाग्यमें जितना बदा है, उससे अधिक थोड़े ही मिलेगा!

ज्ञान—भाग्यके भरोसे बैठकर अपनी तबाही तो नहीं देखी जाती।

विद्या—भैया जीते होते तब?

ज्ञान—तब दूसरी बात थी। मेरा इस जायदादसे कोई सम्बन्ध न रहता। मुझको उसके बनने-बिगड़नेकी चिन्ता न रहती। किसी चीजपर अपनेकी छाप लगते ही हमारा उससे आत्मिक सम्बन्ध हो जाता है।

किन्तु हा दुर्दैव! ज्ञानशङ्करकी विषाद-चिन्ताओंका यहींतक अन्त न था। अभीतक उनकी स्थिति एक आक्रमणकारी सेना-की सी थी। अपने घरका कोई खटका न था। अब दुर्भाग्यने उनके घरपर छापा मारा। उनकी स्थिति रक्षाकारिणी सेनाकी सी हो गयी। उनके बड़े भाई प्रेमशङ्कर कई वर्षसे लापता थे। ज्ञानशङ्करको निश्चय हो गया था कि वह अब संसारमें नहीं है। फाल्गुनका महीना था। अनायास प्रेमशङ्करका एक पत्र अमेरि-

कासे आ पहुँचा कि मैं पहली अप्रेलको बनारस पहुँच जाऊँगा। यह पत्र पाकर पहले तो ज्ञानशङ्कर प्रेमोल्लासमें मग्न हो गये। इतने दिनोंके वियोगके बाद भाईसे मिलनेकी आशाने चित्तको गद्गद् कर दिया। पत्र लिये हुए विद्याके पास आकर यह शुभ समाचार सुनाया। विद्या बोली, धन्य भाग! भाभीजीकी मनोकामना ईश्वरने पूरी कर दी। इतने दिनों कहाँ थे?

ज्ञान वहीं अमेरिकामें कृषिशास्त्रका अभ्यास करते रहे। दो साल तक एक कृषिशालामें काम भी किया है।

विद्या—तो आज अभी २५ तारीख है। हमलोग कल-परसों तक यहाँसे चल दें। ज्ञानशङ्करने केवल इतना कहा,—"हाँ, और क्या" और बाहर चले गये। उनकी प्रफुल्लता एक ही क्षणमें लुप्त हो गयी थी और नयी चिन्ताएँ आँखोंके सामने फिरने लगी थीं, जैसे कोई जीर्ण रोगी किसी उत्तेजक औषधिके असरसे एक क्षणके लिये चेतन्य होकर फिर उसी जीर्णावस्थामें विलीन हो जाता है। उन्होंने अबतक जो मन्सूबे बाँधे थे, जीवनका जो मार्ग स्थिर किया था। उसमें अपने सिवा किसी अन्य व्यक्तिके लिये जगह न रखी थी। वह सब कुछ अपने लिये चाहते थे। अब इन व्यवस्थाओंमें बहुत कुछ काट-छाँट करनेकी आवश्यकता मालूम होती थी। संभव है, जायदादका फिरसे बँटवारा करना पड़े; दीवानखानेमें दो परिवारोंका निर्वाह होना कठिन था। लखनपुरके भी दो हिस्से करने पड़ेंगे। ज्यों ज्यों वह इस विषयपर विचार करते थे, समस्या और भी जटिल होती जाती थी, चिन्ताएँ और भी विषम होती जाती थीं। यहाँतक कि शाम होते-होते उन्हें अपनी अवस्था असह्य प्रतीत होने लगी। वह अपने कमरेमें उदास बैठे हुए थे कि राय साहब आकर बोले, वाह तुमने तो अभी कपड़े भी न पहने, क्या सैर करने न चलोगे?

ज्ञान—जी नहीं, आज जी नहीं चाहता।

राय—कैसरबागमें आज बैंड होगा। हवा कितनी प्यारी है?

ज्ञान—मुझे आज क्षमा कीजिये।

राय—असली बात है, मैं भी न जाऊँगा। आजकल कोई लेख लिख रहे हो या नहीं?

ज्ञानजी—नहीं, इधर तो कुछ नहीं लिखा।

राय—तो अब कुछ लिखो। विषय और सामग्री मैं देता हूँ। सिपाहीकी तलवारमें मोरचा न लगना चाहिये। पहला लेख तो इस सालके बजटपर लिख दो और दूसरा गायत्रीपर।

ज्ञान—मैंने तो आजतक कोई बजट-सम्बन्धी लेख आद्योपांत पढ़ातक नहीं। उसपर कलम क्योंकर उठाऊँ?

राय—अजी, तो उसमें करना ही क्या है। बजटको कौन पढ़ता है और कौन समझता है। आप केवल शिक्षा लिये और धनकी आवश्यकता दिखाइये और शिक्षाके महत्वका थोड़ा-सा उल्लेख कीजिये, स्वास्थ्य-रक्षाके लिये और धन माँगिये और उसके मोटे-मोटे नियमोंपर दो-चार टिप्पणियाँ कर दीजिये। पुलिसके व्ययमें वृद्धि अवश्य ही हुई होगी, मानी हुई बात है। आप उसमें कमीपर जोर दीजिए और नयी नहरें निकालनेकी आवश्यकता दिखाकर लेख समाप्त कर दीजिये। बस, अच्छी खासी बजटकी समालोचना हो गयी। लेकिन यह बातें ऐसे विनम्र शब्दोंमें लिखिये और अर्थसचिवकी योग्यता और कार्य्यपटुताकी ऐसी प्रशंसा कीजिये कि वह उलबुल हो जाय और समझें कि मैंने उसके मन्तव्योंपर खूब विचार किया है। शैली तो आपकी सजीव है ही, इतना यत्न और कीजियेगा कि एक-एक शब्दसे मेरी बहुज्ञता और पांडित्य टपके। इतना बहुत है। हमारा कोई प्रस्ताव माना तो जायेगा नहीं, फिर बजटके लेखोंको पढ़ना और उसपर विचार करना व्यर्थ है।

ज्ञान—और गायत्री देवीके विषयमें क्या लिखना होगा?

राय—बस, एक संक्षिप्तसा जीवनवृत्तान्त हो। कुछ मेरे कुल का कुछ उसके कुलका हाल लिखिये, उसकी शिक्षाका जिक्र

कीजिये। फिर उसके पतिकी मृत्युका वर्णन करनेके बाद उसके सुप्रबन्ध और प्रजारंजनका जरा बढ़ाकर विस्तारके साथ उल्लेख कीजिये। गत तीन वर्षोंमें विविध कर्मोंमें उसने जितने चन्दे दिये हैं; और अपने असामियोंकी सुदशाके लिये जो व्यवस्थायें की हैं, उनके नोट मेरे पास मौजूद हैं। उनसे आपको बहुत मदद मिलेगी। उस ढाँचेको सजीव और सुन्दर बनाना आपका काम है। अन्तमें लिखियेगा, कि ऐसी सुयोग्य और विदुषी महिलाका अबतक किसी पदसे सम्मानित न होना, शासनकारियोंकी गुणग्राहकताका परिचय नहीं देता है। सरकारका कर्तव्य है कि उन्हें किसी उचित उपाधिसे विभूषित करके सत्काय्योंमें प्रोत्साहित करे, लेकिन जो कुछ लिखिए, जल्द लिखिए, विलम्बसे काम बिगड़ जायेगा।

ज्ञान—बजटकी समालोचना तो मैं कलतक लिख दूँगा, लेकिन दूसरे लेखमें अधिक समय लगेगा। मेरे बड़े भाई, जो बहुत दिनोंसे गायब थे पहली तारीखको घर आ रहे हैं। उनके आनेसे पहले हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिये।

राय—वह तो अमेरिका चले गये थे?

ज्ञान—जी हाँ, वहींसे पत्र लिखा है।

राय—कैसे आदमी हैं?

ज्ञान—इस विषयमें क्या कह सकता हूँ? आनेपर मालूम होगा कि उनके स्वभावमें क्या परिवर्तन हुआ है। यों तो बहुत शान्तप्रकृति और विचारशील थे।

राय—लेकिन आप जानते हैं न, कि अमेरिकाकी जलवायु बन्धु-प्रेमके भावकी पोषक नहीं है। व्यक्तिगत स्वार्थ वहाँके जीवनका मूल तत्व है और आपके भाई साहबपर उसका असर जरूर ही पड़ा होगा।

ज्ञान—देखना चाहिये, मैं अपनी तरफसे तो उन्हें शिकायत का कोई मौक़ा न दूँगा।

राय—आप दें या न दें, वह स्वयं ढूँढ़ निकालेंगे। सम्भव है, मेरी शङ्का निर्मूल हो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि निर्मूल हो, पर मेरा अनुभव है कि विदेशमें बहुत दिनोंतक रहनेसे प्रेमका बन्धन शिथिल हो जाता है।

ज्ञानशङ्कर अब अपने मनोभावोंको छिपा न सके। खुलकर बोले—मुझे भी यही भय है। जब छः सालमें उन्होंने घरपर एक पत्र तक नहीं लिखा, तो विदित ही है कि उनमें आत्मीयताका आधिक्य नहीं है। आप मेरे पिता-तुल्य हैं, आपसे क्या परदा है? इनके आनेसे मेरे सारे मन्सूबे मिट्टीमें मिल गये। मैंने समझा था चचासाहबसे अलग होकर दो-चार वर्षोंमें मेरी दशा कुछ सुधर जायेगी। मैंने ही चचासाहबको अलग होनेपर मजबूर किया, जायदादको बाँट भी अपनी इच्छाके अनुसार की, जिसके लिये चचासाहबकी सन्तान मुझे सदैव कोसती रहेगी; किन्तु सब किया-कराया बेकार गया।

रायसाहब—कहीं उन्होंने गत वर्षोंके मुनाफेका दावा कर दिया तो आप बड़ी मुश्किलमें फँस जायेंगे। इस विषयमें वकीलों की सम्मति लिये बिना आप कुछ न कीजियेगा।

इस भाँति ज्ञानशङ्करकी शङ्काओंको उत्तेजित करनेसे रायसाहबका आशय क्या था, इसका समझना कठिन है। शायद वह उनके हृद्गत भावोंकी थाह लेना चाहते थे, अथवा उनकी क्षुद्रता और स्वार्थपरताका तमाशा देखनेका विचार था। वह तो यह चिनगारी दिखाकर हवा खाने चल दिये, बेचारे ज्ञानशङ्कर अग्नि-दाहमें जलने लगे। उन्हें इस समय नाना प्रकारकी शङ्काएँ हो रही थीं। उनका वह तत्क्षण समाधान करना चाहते थे। क्या भाई साहब गत वर्षोंके मुनाफेका दावा कर सकते हैं? यदि वह ऐसा करें, तो मेरे लिये भी निकासका कोई उपाय है या नहीं। क्या रायसाहबको अधिकार है कि वह रियासतपर ऋणोंका बोझ लादते जायँ? उनकी फजूलखर्चीको रोकनेकी कोई कानूनी

तदबीर हो सकती है या नहीं ? इन प्रश्नोंसे ज्ञानशङ्करके चित्तमें घोर अशान्ति हो रही थी, उनकी मानसिक वृत्तियाँ जल गयीं। वह उठकर रायसाहबके पुस्तकालयमें गये और एक कानूनकी किताब निकालकर देखने लगे। इस किताबसे शङ्का निवृत्त न हुई। दूसरी किताब निकाला, यहाँतक कि थोड़ी देरमें मेजपर किताबोंका ढेर लग गया। कभी इस पोथीके पन्ने उलटते, कभी उस पोथीके ; किन्तु किसी प्रश्नका सन्तोषप्रद उत्तर न मिला। हताश होकर वे इधर-उधर ताकने लगे। घड़ीपर निगाह पड़ी। दस बजा चाहते थे। किताबें समेटकर रख दीं,भोजन किया, लेटे।

किन्तु नींद कहाँ ! चित्तकी चञ्चलता निद्राका बाधक है। अबतक वह स्वयं अपने जीवन-सागरके रक्षातट थे। उनकी सारी आकांक्षाएँ और कामनाएँ इसी तटपर विश्राम किया करती थीं। प्रेमशङ्करने आकर इस रक्षातटको विध्वंस कर दिया था और उन नौकाओंको डवाँडोल। भैया क्योंकर काबूमें आयेंगे ? खुशामदसे ? कठिन है, वह एक ही घाघ हैं। नम्रता और विनयसे ? असंभव। नम्रताका जवाब सद्व्यवहार हो सकता है, स्वार्थ-त्याग नहीं। फिर क्या कलह और अपवादसे ? कदापि नहीं, इससे मेरा पक्ष और भी निर्बल हो जायेगा। इस प्रकार भटकते-भटकते सहसा ज्ञानशङ्करको एक मार्ग दीख पड़ा और वह हर्षोन्मत्त होकर उछल पड़े। वाह ! मैं भी कितना मंद-बुद्धि हूँ। बिरादरी इन महाशयको घरमें पैर तो रखने देगी नहीं, यह बेचारे मुझसे क्या छेड़-छाड़ करेंगे ? आश्चर्य है, अबतक यह मोटीसी बात भी मेरे ध्यानमें न आयी। रायसाहबको भी न सूझा। बनारस आते ही लालापर चारों ओरसे बौछारें पड़ने लगेंगी, उनके वहाँ पैर हो न जमने पायेंगे। प्रकटमें मैं उनसे भ्रातृवत् व्यवहार करता रहूँगा, बिरादरीकी सङ्कीर्णता और अन्यायपर आँसू बहाऊँगा, लेकिन परोक्षमें उसकी कील घुमाता रहूँगा। महीने दो महीनेमें आप ही भाग खड़े होंगे। शायद श्रद्धा भी

उनसे खिंच जाय। उसे कुछ उत्तेजित करना पड़ेगा। धार्मिक प्रवृत्तिकी स्त्री है। लोकमतका असर उसपर अवश्य पड़ेगा। बस, मेरा मैदान साफ है। इन महाशयोंसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं। अब मैं निर्भय होकर भ्रातृस्नेहका आचरण कर सकता हूँ।

इस विचारसे ज्ञानशङ्कर इतने उत्फुल्ल हुए कि जी चाहा चलकर विद्याको जगाऊँ, पर जब्तसे काम लिया। इस चिन्ता-सागरसे निकलकर अब उन्हें शंका होने लगी कि गायत्रीकी अप्रसन्नता भी मेरा भ्रम है। मैं स्त्रियोंके मनोभावोंसे सर्वथा अपरिचित हूँ। संभव है, मैंने उतावलापन किया हो, पर यह कोई ऐसा अपराध न था कि गायत्री उसे क्षमा न करती। मेरे दुस्साहसपर अप्रसन्न होना उसके लिये स्वाभाविक बात थी। कोई गौरवशील रमणी इतनी सहज रीतिसे वशीभूत नहीं हो सकती। अपनी सतीत्व-रक्षाका विचार स्वभावतः उसकी प्रेम-वासनाको दबा देता है। ऐसा न हो,तो भी वह अपनी उदासीनता और अनिच्छा प्रकट करनेके लिये कठोरताका स्वाँग भरना आवश्यक समझता है। शायद इससे उसका अभिप्राय प्रेमपरीक्षा होता है। वह एक अमूल्य वस्तु है और अपनी दर गिराना नहीं चाहती। मैं अपनी सफलतासे ऐसा दबा कि फिर सिर उठानेकी हिम्मत ही न पड़ी। वह यहाँ कई दिन रही। मुझे जाकर उससे क्षमा माँगनी चाहिये थी। वह क्रुद्ध होती तो शायद मुझे झिड़क देती। वह स्वयं निर्दोष बनना चाहती और सारा दोष मेरे सिर रखती। मुझे यह वाक्प्रहार सहना चाहिये था और थोड़े दिनोंमें मैं उसके हृदयका स्वामी होता। यह तो मुझसे हुआ नहीं,उलटे आपही रूठ बैठा, स्वयं उससे आँखें चुराने लगा। उसने अपने मनमें मुझे बादा,साहसहीन,निरा बुद्धू समझा होगा। खैर,अब कसर पूरी हुई जाती है। यह मानों अन्तःप्रेरणा है। इस जीवन-चरित्रके निकलते ही उसकी अवज्ञा और अभिमानका अन्त हो जायेगा। मान-प्रतिष्ठापर जान देती है। रायसाहब स्वयं क्षमाके

भेषमें अवतरित हुए हैं। उसकी यह आकांक्षा पूरी हुई तो फूली न समायगी और जो कहीं रानीकी पदवी मिल गयी तो वह मेरा पानी भरेगी। भैयाके झमेलेसे छुट्टी पाऊँ तो यह लेख शुरू करूँ। मालूम नहीं, अपने पत्रोंमें कुछ मेरा कुशल-समाचार भी पूछती है या नहीं। चलूँ, विद्यासे पूछूँ। अबकी वह इस प्रबल इच्छाको न रोक सके। विद्या बगलके कमरेमें सोती थी। जाकर उसे जगाया। वह चौंककर उठ बैठी और बोली, क्या है? क्या अभीतक सोये नहीं?

ज्ञान—आज नींद ही नहीं आती। बातें करनेका जी चाहता है। रायसाहब शायद अभीतक नहीं आये।

विद्या—वह बारह बजेके पहले कभी आते हैं कि आज ही आ जायँगे! कभी-कभी १-२ बज जाते हैं।

ज्ञान—मुझे जरासी झपकी आ गयी थी। क्या देखता हूँ, कि गायत्री सामने खड़ी है, फूट-फूटकर रो रही है, आँखें खुल गयीं। तबसे करवटें बदल रहा हूँ, उनकी चिट्ठियाँ तो तुम्हारे पास आती हैं न?

विद्या—हाँ, सप्ताहमें एक चिट्ठी जरूर आती है, बल्कि मैं जवाब देनेमें पिछड़ जाती हूँ।

ज्ञान—कभी कुछ मेरा हालचाल भी पूछती हैं?

विद्या—वाह, ऐसा कोई पत्र नहीं होता जिसमें तुम्हारी क्षेम-कुशल न पूछती हों।

ज्ञान—बुलातीं तो एक बार उनसे जाकर मिल आता।

विद्या—तुम जाओ तो वह तुम्हारी पूजा करें। तुमसे उन्हें बड़ा प्रेम है।

ज्ञानशङ्करको अब भी नींद नहीं आयी, किन्तु सुखस्वप्न देख रहे थे।

१५

प्रातःकाल था। ज्ञानशङ्कर स्टेशनपर गाड़ीका इन्तजार कर रहे थे। अभी गाड़ीके आनेमें आध घंटेकी देर थी। एक अंग्रेजी

पत्र लेकर पढ़ना चाहा पर उसमें जी न लगा। दवाओंके विज्ञापन अधिक मनोरञ्जक थे। दस मिनटमें उन्होंने सभी विज्ञापन पढ़ डाले। चित्त चञ्चल हो रहा था। बेकार बैठना मुश्किल था। इसके लिये बड़ी एकाग्रताकी आवश्यकता होती है। आखिर खोंचेकी चाट खानेमें उनके चित्तको शान्ति मिली। बेकारीमें मन बहलानेका यही सबसे सुगम उपाय है।

जब वह फिर प्लेटफार्मपर आये तो सिगनल डाउन हो चुका था। ज्ञानशङ्करका हृदय धड़कने लगा। गाड़ी आते ही पहले और दूसरे दरजेकी गाड़ियोंमें झाँकने लगे, किन्तु प्रेमशङ्कर इन कमरोंमें न थे। तीसरे दरजेकी सिर्फ दो गाड़ियाँ थीं। वह इन्हीं गाड़ियोंके कमरेमें बैठे हुए थे। ज्ञानशङ्करको देखते ही दौड़कर उनके गले लिपट गये। ज्ञानशङ्करको इस समय अपने हृदयमें आत्मबल और प्रेमभाव प्रवाहित होता जान पड़ता था। सच्चे भातृस्नेहने मनोमालिन्यको मिटा दिया। गला भर आया और अश्रुजल बहने लगा। दोनों भाई दो तीन मिनटतक इसी भाँति रोते रहे। ज्ञानशङ्करने समझा था कि भाई साहबके साथ बहुत-सा आडम्बर होगा, ठाट-बाटके साथ आते होंगे, पर उनके वस्त्र और सफरके सामान बहुत मामूली थे। हाँ, उनका शरीर पहलेसे कहीं हृष्ट-पुष्ट था और यद्यपि वह ज्ञानशङ्करसे ५ साल बड़े थे, पर देखनेमें उनसे छोटे मालूम होते थे, और चेहरेपर स्वास्थ्यकी कांति झलक रही थी।

ज्ञानशङ्कर अभी कुलियोंको पुकार ही रहे थे, कि प्रेमशङ्करने अपना सब सामान उठा लिया और बाहर चले। ज्ञानशङ्कर सङ्कोचके मारे पीछे हट गये कि किसी जान-पहचानके आदमीसे भेंट न हो जाय।

दोनों आदमी ताँगेपर बैठे, तो प्रेमशङ्कर बोले, छः सालके बाद आता हूँ, पर ऐसा मालूम होता है कि यहाँसे गये थोड़े ही दिन हुए। घरपर तो सब कुशल है न?

ज्ञान जी हाँ, सब कुशल है। आपने तो इतने दिन हो गये, एक पत्र भी न भेजा, बिल्कुल भुला दिया। आपके ही वियोगमें बाबूजीके प्राण गये।

प्रेम—वह शोक-समाचार तो मुझे यहाँके समाचारपत्रसे मालूम हो गया था, पर कुछ ऐसे ही कारण थ कि आ न सका। "हिन्दुस्तान रिव्यू" में तुमने नैनीतालके जीवनपर जो लेख लिखा था, उसे पढ़कर मैंने आनेका निश्चय किया। तुम्हारे उन्नत विचारोंने ही मुझे खींचा, नहीं तो सम्भव है, मैं अभी कुछ दिन और न आता। तुम पालिटिक्समें भाग लेते हो न?

ज्ञान (संकोच भावसे) अभीतक तो मुझे इसका अवसर नहीं मिला। हाँ, उसकी स्टडी (अध्ययन) करता रहता हूँ।

प्रेम कौन-सा प्रोफेशन (पेशा) अखतियार किया?

ज्ञान—अभी तो घरके ही झंझटोंसे छुट्टी नहीं मिली। जमींदारीके प्रबन्धके लिये मेरा घर रहना जरूरी था। आप जानते हैं यह जञ्जाल है। एक-न-एक झगड़ा लगा ही रहता है। चाहे उससे लाभ कुछ न हो, पर मनकी प्रवृत्ति आलस्यकी ओर ही जाती है। जीवनके कर्मक्षेत्रमें उतरनेका साहस नहीं होता। यदि यह अवलम्बन न होता तो अबतक मैं अवश्य वकील होता।

प्रेम—तो तुम भी मिल्कियतके जालमें फँस गये और अपनी बुद्धिशक्तियोंका दुरुपयोग कर रहे हो। अभी जायदादके अन्त होनेमें कितनी कसर है?

ज्ञान—चचा साहबका बस चलता तो कभीका अन्त हो चुका होता, पर अब शायद जल्द अन्त न हो। मैं चचा साहबसे अलग हो गया हूँ।

प्रेम—(खेदके साथ) यह तुमने क्या किया? तब तो उनका गुजर बड़ी मुश्किलसे होता होगा?

ज्ञान—कोई तकलीफ नहीं है। दयाशङ्कर पुलिसमें है और आमदनीसे तो हजार मिल जाते हैं।

प्रेम—उन्हें अलग होनेका दुःख तो बहुत हुआ होगा। वस्तुतः मेरे भागनेका मुख्य कारण उन्हींका प्रेम था। तुम तो उस वक्त शायद स्कूलमें पढ़ते थे, मैं कालेजसे निकलते ही स्वराज्यान्दोलनमें अग्रसर हो गया। उन दिनों नेतागण स्वराज्यके नामसे काँपते थे। इस आन्दोलनमें प्रायः नवयुवक ही सम्मिलित थे। मैंने सालभर बड़े उत्साहसे काम किया, पर पुलिसने मुझे फँसानेका प्रयास करना शुरू किया। मुझे ज्योंही मालूम हुआ कि मुझपर अभियोग चलानेकी तैयारियाँ हो रही हैं, त्योंही मैंने जान लेकर भागनेमें ही कुशल समझा। मुझे फँसते देखकर बाबूजी तो चाहे धैर्यसे काम लेते, पर चचासाहब निस्सन्देह आत्महत्या कर लेते। इसी भयसे मैंने पत्र-व्यवहार भी बन्द कर दिया कि ऐसा न हो, पुलिस यहाँ लोगोंको तंग करे। बिना देशाटन किये अपनी पराधीनताका यथेष्ट ज्ञान नहीं होता। जिन विचारोंके लिये मैं यहाँ राजद्रोही समझा जाता था, उससे कहीं स्पष्ट बातें अमेरिकावाले अपने शासकोंको नित्य सुनाया करते हैं, बल्कि वहाँ शासनकी समालोचना जितनी ही निर्भीक हो, उतनी ही आदरणीय समझी जाती है। इस बाबमें यहाँ भी विचार-स्वातन्त्र्यकी कुछ वृद्धि हुई है। तुम्हारा लेख इसका उत्तम प्रमाण है। इन्हीं सुव्यवस्थाओंने मुझे आनेपर प्रोत्साहित किया और सत्य तो यह है कि अमेरिकासे दिनोंदिन अभक्ति होती जाती थी। वहाँ धन और प्रभुत्वकी इतनी क्रूर लीलाएँ देखीं कि अन्तमें उनसे घृणा हो गयी। यहाँके देहातों और छोटे शहरोंका जीवन उनसे कहीं सुखकर है। मेरा विचार भी सरल जीवन व्यतीत करनेका है। हाँ, यथासाध्य कृषिकी उन्नति करना चाहता हूँ।

ज्ञान यह रहस्य आज खुला, अभीतक मैं और घरके सभी लोग यही समझते थे कि आप केवल विद्योपार्जनके लिये गये हैं; मगर आजकल तो स्वराज्यान्दोलन बहुत शिथिल पड़ गया है। [illegible]

ज्ञान जी हाँ, सब कुशल है। आपने तो इतने दिन हो गये, एक पत्र भी न भेजा, बिल्कुल भुला दिया। आपके ही वियोगमें बाबूजीके प्राण गये।

प्रेम—वह शोक-समाचार तो मुझे यहाँके समाचारपत्रसे मालूम हो गया था, पर कुछ ऐसे ही कारण थ कि आ न सका। "हिन्दुस्तान रिव्यू" में तुमने नैनीतालके जीवनपर जो लेख लिखा था, उसे पढ़कर मैंने आनेका निश्चय किया। तुम्हारे उन्नत विचारोंने ही मुझे खींचा, नहीं तो सम्भव है, मैं अभी कुछ दिन और न आता। तुम पालिटिक्समें भाग लेते हो न?

ज्ञान (संकोच भावसे) अभीतक तो मुझे इसका अवसर नहीं मिला। हाँ, उसकी स्टडी (अध्ययन) करता रहता हूँ।

प्रेम कौन-सा प्रोफेशन (पेशा) अखतियार किया?

ज्ञान—अभी तो घरके ही झंझटोंसे छुट्टी नहीं मिली। जमींदारीके प्रबन्धके लिये मेरा घर रहना जरूरी था। आप जानते हैं यह जञ्जाल है। एक-न-एक झगड़ा लगा ही रहता है। चाहे उससे लाभ कुछ न हो, पर मनकी प्रवृत्ति आलस्यकी ओर ही जाती है। जीवनके कर्मक्षेत्रमें उतरनेका साहस नहीं होता। यदि यह अवलम्बन न होता तो अबतक मैं अवश्य वकील होता।

प्रेम—तो तुम भी मिल्कियतके जालमें फँस गये और अपनी बुद्धिशक्तियोंका दुरुपयोग कर रहे हो। अभी जायदादके अन्त होनेमें कितनी कसर है?

ज्ञान—चचा साहबका बस चलता तो कबीका अन्त हो चुका होता, पर अब शायद जल्द अन्त न हो। मैं चचा साहबसे अलग हो गया हूँ।

प्रेम—(खेदके साथ) यह तुमने क्या किया? तब तो उनका गुजर बड़ी मुश्किलसे होता होगा?

ज्ञान—कोई तकलीफ नहीं है। दयाशङ्कर पुलिसमें है और जायदादसे दो हजार मिल जाते हैं।

प्रेम—उन्हें अलग होनेका दुःख तो बहुत हुआ होगा। वस्तुतः मेरे भागनेका मुख्य कारण उन्हींका प्रेम था। तुम तो उस वक्त शायद स्कूलमें पढ़ते थे, मैं कालेजसे निकलते ही स्वराज्यान्दोलनमें अग्रसर हो गया। उन दिनों नेतागण स्वराज्यके नामसे काँपते थे। इस आन्दोलनमें प्रायः नवयुवक ही सम्मिलित थे। मैंने सालभर बड़े उत्साहसे काम किया, पर पुलिसने मुझे फँसानेका प्रयास करना शुरू किया। मुझे ज्योंही मालूम हुआ कि मुझपर अभियोग चलानेकी तैयारियाँ हो रही हैं, त्योंही मैंने जान लेकर भागनेमें ही कुशल समझा। मुझे फँसते देखकर बाबूजी तो चाहे धैर्यसे काम लेते, पर चचासाहब निस्सन्देह आत्महत्या कर लेते। इसी भयसे मैंने पत्र-व्यवहार भी बन्द कर दिया कि ऐसा न हो, पुलिस यहाँ लोगोंको तंग करे। बिना देशाटन किये अपनी पराधीनताका यथेष्ट ज्ञान नहीं होता। जिन विचारोंके लिये मैं यहाँ राजद्रोही समझा जाता था, उससे कहीं स्पष्ट बातें अमेरिकावाले अपने शासकोंको नित्य सुनाया करते हैं, बल्कि वहाँ शासनकी समालोचना जितनी ही निर्भीक हो, उतनी ही आदरणीय समझी जाती है। इस बातमें यहाँ भी विचार-स्वातन्त्र्यकी कुछ वृद्धि हुई है। तुम्हारा लेख इसका उत्तम प्रमाण है। इन्हीं सुव्यवस्थाओंने मुझे आनेपर प्रोत्साहित किया और सत्य तो यह है कि अमेरिकासे दिनोंदिन अभक्ति होता जाता था। वहाँ धन और प्रभुत्वकी इतनी क्रूर लीलाएँ देखीं कि अन्तमें उनसे घृणा हो गयी। यहाँके देहातों और छोटे शहरोंका जीवन उनसे कहीं सुखकर है। मेरा विचार भी सरल जीवन व्यतीत करनेका है। हाँ, यथासाध्य कृषकी उन्नति करना चाहता हूँ।

ज्ञान - यह रहस्य आज खुला, अभीतक मैं और घरके सभी लोग यही समझते थे कि आप केवल विद्योपार्जनके लिये गये हैं; मगर आजकल तो स्वराज्यान्दोलन बहुत शिथिल पड़ गया है। स्वराज्यवादियोंकी जबान ही बन्द कर दी गयी है।

प्रेम—यह तो कोई बुरी बातें नहीं, अब लोग बातें करनेकी जगह काम करेंगे। हमें बातें करते एक युग बीत गया। मुझे भी अब शब्दोंपर विश्वास नहीं रहा। हमें अब संगठनकी, परस्पर प्रेमव्यवहारकी और सामाजिक अन्यायके मिटानेकी जरूरत है। हमारी आर्थिक दशा भी खराब हो रही है। मेरा विचार कृषिविधानमें संशोधन करनेका है। इसलिये मैंने अमेरिकामें कृषि-शास्त्रका अध्ययन किया है।

यों बातें करते हुए दोनों भाई मकानपर पहुँचे। प्रेमशंकरको अपना घर बहुत छोटा दिखाई दिया। उनकी आँखें अमेरिकाकी गगनस्पर्शी अट्टालिकाओंके देखनेकी आदी हो रही थीं। उन्हें कभी अनुमान ही न हुआ था कि मेरा घर इतना पस्त है। कमरेमें आये तो उसकी दशा देखकर और भी हताश हो गये। जमीनपर फर्शतक न था। दो-तीन कुरसियाँ जरूर थीं, लेकिन बाबा आदमके जमानेकी, जिनपर गद्दे जमी हुई थी। दीवारोंपर तस्वीरें नयी थीं, लेकिन बिलकुल भद्दी और अस्वाभाविक। यद्यपि वह सिद्धान्त-रूपसे विलास-वस्तुओंकी अवहेलना करते थे, पर अभीतक रुचि उनकी ओरसे न हटी थी।

लाला प्रभाशंकर उनकी राह देख रहे थे। आकर उनके गलेसे लिपट गये और फूट-फूटकर रोने लगे। महल्लेके और सज्जन भी मिलने आ गये। दो-ढाई घण्टोंतक प्रेमशंकर उन्हें अमेरिकाके वृत्तान्त सुनाते रहे। कोई वहाँसे हटनेका नाम न लेता था, किसीको यह ध्यान न होता था, कि ये बेचारे सफर करके आ रहे हैं, इनके नहाने खानेका समय आ गया है, यह बातें फिर सुन लेंगे। आखिर ज्ञानशङ्करको साफ-साफ कहना पड़ा कि आप लोग कृपा करके भाई साहबको भोजन करनेका समय दीजिये, बहुत देर हो रही है।

प्रेमशङ्करने स्नान किया, सन्ध्या की और ऊपर भोजन करने गये। उन्हें आशा थी, कि श्रद्धा भोजन परसेगी, वहीं उससे भेंट

होगी, खूब बातें करूँगा। लेकिन यह आशा पूरी न हुई। एक चौकीपर कालीन बिछा हुआ था, थाल परसा रखा था, पर श्रद्धा वहाँ उनका स्वागत करनेके लिये न थी। प्रेमशङ्करको उसकी इस प्रेमशून्यतापर बड़ा दुःख हुआ। श्रद्धासे प्रेम उनके लौटनेका एक मुख्य कारण था। उसकी याद उन्हें हमेशा तड़पाया करती थी, उसकी प्रेममूर्ति सदैव उनके हृदयनेत्रोंके सामने रहती थी। उन्हें प्रेमके बाह्याडम्बरसे घृणा थी, वह अब भी स्त्रियोंकी श्रद्धा, पतिभक्ति, लज्जाशीलता और प्रेमानुरागपर मोहित थे। उन्हें श्रद्धाको नीचे दीवानखानेमें देखकर खेद होता, पर उसे यहाँ न देखकर उनका हृदय व्याकुल हो गया। यह लज्जा नहीं, हया नहीं, प्रेमशैथिल्य है। वह इतने मर्माहत हुए कि जी चाहा, इसी क्षण यहाँसे चला जाऊँ और फिर आनेका नाम न लूँ, पर धैर्यसे काम लिया। भोजनपर बैठे। ज्ञानशंकरसे बोले, आओ भाई बैठो, माया कहाँ है, उसे भी बुलाओ, एक मुद्दतके बाद आज यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

ज्ञानशङ्करने सिर नीचा करके कहा—आप भोजन कीजिये, मैं फिर खा लूँगा।

प्रेम—ग्यारह तो बज रहे हैं, अब कितनी देर करोगे? आओ, बैठ जाओ। इतनी चीजें मैं अकेले कहाँतक खाऊँगा, मुझे अब धैर्य्य नहीं है। बहुत दिनोंके बाद चपातियोंके दर्शन हुए हैं। हलुआ, समोसे, खीर आदिका तो स्वाद ही मुझे भूल गया। अकेले खानेमें आनन्द नहीं आता। यह कैसा अतिथि सत्कार है कि मैं तो यहाँ भोजन करूँ और तुम कहीं और। अमेरिकामें तो मेहमान इसे अपना घोर अपमान समझता।

ज्ञान—मुझे तो इस समय क्षमा ही कीजिये, मेरी पाचन-शक्ति दुर्बल है, बहुत पथ्यसे रहता हूँ।

प्रेमशङ्कर भूल गये थे कि समुद्रमें जाते ही हिन्दूधर्म धुल जाता है। अमेरिकासे चलते समय उन्हें ध्यान भी न था कि

बिरादरी मेरा बहिष्कार करेगी, यहाँतक कि मेरा सहोदर भाई भी मुझे अछूत समझेगा। पर इस समय जब उनके बराबर आग्रह करनेपर भी ज्ञानशङ्कर उनके साथ भोजन करने न बैठे और एक न-एक बहाना करके टालते रहे तो उन्हें वह भूली हुई बात याद आ गया। सामनेके बर्तनोंने इस विचारको पुष्ट कर दिया। फूल या पीतलका कोई बर्तन न था। सब बर्तन चीनीके थे और गिलास शीशेका। शङ्कित भावसे बोले, आखिर यह बात क्या है कि तुम्हें मेरे साथ बैठनेमें इतनी आपत्ति है? कुछ छूत-छातका विचार तो नहीं है?

ज्ञानशङ्करने झेंपते हुए कहा—अब मैं आपसे क्या कहूँ, हिन्दुओंको तो आप जानते ही हैं, कितने मिथ्यावादी होते हैं। आपके लौटनेका समाचार जबसे मिला है, सारी बिरादरीमें एक तूफानसा उठा हुआ है। मुझे स्वयं विदेशयात्रामें कोई आपत्ति नहीं है। मैं देश और जातिकी उन्नतिके लिये इसे जरूरी समझता हूँ और स्वीकार करता हूँ, कि इस नाकेबन्दीसे हमको बड़ी हानि हुई है, पर मुझमें इतना साहस नहीं, कि बिरादरीसे विरोध कर सकूँ।

प्रेम—अच्छा, यह बात है! आश्चर्य है कि अबतक क्यों मेरी आँखोंपर परदा पड़ा रहा। अब मैं ज्यादा आग्रह न करूँगा, भोजन करता हूँ, पर खेद यह है कि तुम इतने विचारशील होकर बिरादरीके गुलाम बने हुए हो, विशेषकर जब तुम मानते हो कि इस विषयमें बिरादरीका बन्धन सर्वथा असंगत है। शिक्षाका फल यह होना चाहिये कि तुम बिरादरीके सूत्रधार बनो, उसको सुधारनेका प्रयास करो, न यह कि उसके दबावसे अपने सिद्धान्तोंको भी बलिदान कर दो। यदि तुम स्वाधीन भावसे समुद्रयात्राको दूषित समझते, तो मुझे कोई आपत्ति न होती। तुम्हारे विचार और व्यवहार अनुकूल होते। लेकिन अन्तःकरणसे किसी बातके कायल होकर केवल निन्दा या उपहासके भयसे

उसका व्यवहार न करना तुम जैसे उदार पुरुषको शोभा नहीं देता। अगर तुम्हारे धर्ममें किसी मुसफ्फिरकी बातोंपर विश्वास करना मना न हो, तो मैं तुम्हें यकीन दिलाता हूँ कि अमेरिकामें मैंने कोई ऐसा कर्म नहीं किया जिसे हिन्दू-धर्म निषिद्ध ठहराता हो। मैंने दर्शनशास्त्रोंपर कितने ही व्याख्यान दिये, अपने रस्म-रिवाज और वर्णाश्रम धर्मका समर्थन करनेमें सदैव तत्पर रहा, यहाँतक कि परदेके रस्मकी भी सराहना करता रहा, और मेरा मन इसे कभी नहीं मान सकता कि यहाँ किसीको मुझे विधर्मी समझनेका अधिकार है। मैं अपने धर्म और मतका वैसा ही भक्त हूँ, जैसा पहले था— बल्कि उससे ज्यादा। इससे अधिक मैं अपनी सफाई नहीं दे सकता।

ज्ञान—इस सफाईकी तो कोई जरूरत ही नहीं; क्योंकि यहाँ लोगोंको विदेशयात्रापर जो अश्रद्धा है, वह किसी तर्क या सिद्धान्तके अधीन नहीं है। लेकिन इतना तो आपको भी मानना पड़ेगा कि हिन्दूधर्म कुछ रीतियों और प्रथाओंपर अवलम्बित है और विदेशमें आप उनका पालन समुचित रीतिसे नहीं कर सकते। आप वेदोंसे इन्कार कर सकते हैं, ईसा या मूसाके अनुयायी बन सकते हैं, किन्तु इन रीतियोंको नहीं त्याग सकते। इसमें सन्देह नहीं कि दिनोंदिन यह बन्धन ढीले होते जाते हैं और इसी देशमें ऐसे कितने ही सज्जन हैं जो प्रत्येक व्यवहार-का उल्लङ्घन करके भी हिन्दू बने हुए हैं, किन्तु बहुमत उनकी उपेक्षा करता है और उनको निन्द्य समझता है। इसे आप मेरी आत्मभीरुता या अकर्मण्यता समझें, किन्तु मैं बहुमतके साथ चलना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मैं बलप्रयुक्त सुधारका कायल नहीं हूँ। मेरा विचार है कि हम बिरादरीमें रहकर उस-से कहीं अधिक सुधार कर सकते हैं, जितना स्वाधीन होकर।

प्रेमशङ्करने इसका कुछ जवाब न दिया। भोजन करके लेटे तो अपनी परिस्थितिपर विचार करने लगे। मैंने समझा था यहाँ

शान्तिपूर्वक अपना काम करूँगा, कम-से-कम अपने घरमें कोई मुझसे विरोध न करेगा; किन्तु देखता हूँ, यहाँ कुछ दिन घोर अशान्तिका सामना करना पड़ेगा, ज्ञानशङ्करके उदारतापूर्ण लेखने मुझे भ्रममें डाल दिया। खैर, कोई चिन्ता नहीं। बिरादरी मेरा कर ही क्या सकती है? उसमें रहकर मुझमें कौनसे सुर्खाबके पर लग जायेंगे। अगर कोई मेरे साथ नहीं खाता, न खाय; मैं भी उनके साथ न खाऊँगा। कोई मुझसे सहवास नहीं करता, न करे, मैं भी उससे किनारे रहूँगा। वाह! परदेश क्या गया, मानों कोई पाप किया; पर पापियोंको तो कोई बिरादरीसे च्युत नहीं करता। धर्म बेचनेवाले, ईमान बेचनेवाले, सन्तान बेचनेवाले बगलें बजाते फिरते हैं, कोई उनकी ओर कड़ी आँखसे देख नहीं सकता। ऐसे पतितों, ऐसे भ्रष्टाचारियोंमें रहनेके लिये मैं अपनी आत्माका सर्वनाश क्यों करूँ?

अकस्मात् उन्हें ध्यान आया, कहीं श्रद्धा भी मेरा बहिष्कार न कर रही हो, इन अनुदार भावोंका उसपर भी असर न पड़ा हो। फिर तो मेरा जीवन ही नष्ट हो जायगा। इस शङ्काने उन्हें घोर चिन्तामें डाल दिया और तीसरे पहरतक उनकी व्यग्रता इतनी बढ़ी कि वह स्थिर न रह सके। मायासे श्रद्धाका कमरा पूछकर ऊपर चढ़ गये।

श्रद्धा इस समय अपने द्वारपर इस भाँति खड़ी थी, जैसे कोई पथिक रास्ता भूल गया हो। उसका हृदय आनन्दसे नहीं, एक अव्यक्त भयसे काँप रहा था। यह शुभ दिन देखनेके लिये उसने कितनी तपस्या की थी! यह आकांक्षा उसके अन्धकारमय जीवनका दीपक, उसका डूबती हुई नौकाका लङ्गर थी। महीनेके तीस दिन और दिनके चौबीस घण्टे यही मनोहर स्वप्न देखनेमें कटते थे। विडम्बना यह थी कि वे आकांक्षाएँ और कामनाएँ पूरी होनेके लिये नहीं, केवल तड़पानेके लिये थीं। वह दाह और संताप शांतिका इच्छुक न था। श्रद्धाके लिये प्रेम-

शंकर केवल एक कल्पना थे। इसी कल्पनापर वह प्राणार्पण करती थी। उसकी भक्ति केवल उनकी स्मृतिपर थी,जो अत्यन्त मनोरम, भावमय और अनुरागपूर्ण थी। उनकी उपस्थितिने इस सुखद कल्पना और मधुर स्मृतिका अन्त कर दिया। वह जो उनकी यादपर जान देती थी, अब उनकी सत्तासे भयभीत थी, क्योंकि वह कल्पना धर्म और सतीत्वकी पोषक थी, और यह सत्ता उनकी घातक। श्रद्धाको सामाजिक अवस्था और समयोचित आवश्यकताओंका ज्ञान था। परम्परागत बन्धनोंको तोड़नेके लिये जिस विचार-स्वातन्त्र्य और दिव्य ज्ञानकी जरूरत है, उससे वह रहित थी। वह एक साधारण हिन्दू-अबला थी। वह अपने प्राणोंसे, अपने प्राणप्रिय स्वामीसे हाथ धो सकती थी; किन्तु अपने धर्मकी अवज्ञा करना अथवा लोकनिन्दाका सहन करना उसके लिये असम्भव था। जबसे उसने सुना था कि प्रेमशङ्कर घर आ रहे हैं, उसकी दशा उस अपराधीकी-सी हो रही थी,जिसके सिरपर नंगी तलवार लटक रही हो। आज जबसे वह नीचे आकर बैठे थे, उसके आँसू एक क्षणके लिये भी न थमते थे। उसका हृदय काँप रहा था कि कहीं वह ऊपर न आते हों, कहीं वह आकर मेरे सम्मुख खड़े न हो जायँ, मेरे अंगको स्पर्श न कर लें। मर जाना इससे कहीं आसान था। मैं उनके सामने कैसे खड़ी हूँगी,मेरी आँखें क्योंकर उनसे मिलेंगी, उनकी बातोंका क्योंकर जवाब दूँगी। वह इन्हीं जटिल चिन्ताओंमें मग्न खड़ी थी, कि इतनेमें प्रेमशङ्कर उसके सामने आकर खड़े हो गये। श्रद्धापर अगर बिजली गिर पड़ती, भूमि उसके पैरोंके नीचेसे सरक जाती, अथवा कोई सिंह आकर खड़ा हो जाता, तोभी वह इतनी असावधान होकर अपने कमरेमें न भाग जाती। वह तो भीतर जाकर एक कोनेमें खड़ी हो गयी। भयसे उसका एक-एक रोम काँप रहा था। प्रेमशङ्कर सन्नाटेमें आ गये। कदाचित् आकाश सामनेसे लुप्त हो जाता, तोभी उन्हें इतना

विस्मय न होता। वह क्षणभर मूर्तिवत् खड़े रहे और तब एक ठंढी साँस लेकर नीचेकी ओर चले। श्रद्धाके कमरेमें जाने, उससे कुछ पूछने या कहनेका उन्हें साहस न हुआ। इस दुरनुरागने उनका उत्साह भंग कर दिया, उन काव्यमय स्वप्नोंका नाश कर दिया, जो बरसोंसे उनकी चैतन्यावस्थाके सहयोगी बने हुए थे। श्रद्धाने किवाड़की आड़से उन्हें जीनेकी ओर जाते देखा। हा! इस समय उसके हृदयपर क्या बीत रही थी, कौन जान सकता है? उसका प्रिय पति जिसके वियोगमें उसने सात वर्ष रो-रोकर काटे थे, सामनेसे भग्नहृदय, हताश चला जा रहा था और वह इस भाँति सशंक खड़ी थी, मानों आगे कोई वृहद् जलागार है। धर्म पैरोंको बढ़ाने न देता था। प्रेम उन्मत्त तरंगोंकी भाँति बार-बार उमड़ता था, पर धर्मकी शिलाओंसे टकराकर लौट आता आता था। एक बार वह अधीर होकर चली कि प्रेमशङ्करका हाथ पकड़कर फेर लाऊँ, द्वारतक आयी, पर आगे न बढ़ सकी। धर्मने ललकारकर कहा, प्रेम नश्वर है, निस्सार है. कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी? यह सब मायाजाल है! मैं अविनाशी हूँ, मेरी रक्षा करो। श्रद्धा स्तम्भित हो गयी। मनमें स्थिर किया जो स्वामी सात समुद्र पार गया, वहाँ न जाने क्या खाया, क्या पीया, न जाने किसके साथ रहा, अब उससे मेरा क्या नाता? किन्तु जब प्रेमशङ्कर जीनेपर नीचे उतर गये, तब श्रद्धा मूच्छित होकर गिर पड़ी। उठती हुई लहरें टीलेको न तोड़ सकीं, पर तटोंको जलमग्न कर गयीं।

१६

प्रेमशङ्कर यहाँ दो सप्ताह ऐसे रहे, जैसे कोई जल्द छूटनेवाला कैदी। जरा भी जी न लगता। श्रद्धाकी धार्मिकतासे उन्हें जो आघात पहुँचा था, उसकी पीड़ा एक क्षणके लिये भी शान्त न होती थी। बार-बार इरादा करते कि फिर अमेरिका चला जाऊँ और फिर जीवनपर्यन्त आनेका नाम न लूँ। किन्तु यह

आशा कि कदाचित् देश और समाजकी अवस्थाका ज्ञान श्रद्धामें सद्विचार उत्पन्न कर दे, उनका दामन पकड़ लेती थी। दिनके दिन दीवानखानेमें पड़े रहते, न किसीसे मिलना, न जुलना, कृषि-सुधारके इरादे स्थगित हो गये, उसपर विपत्ति यह थी कि ज्ञानशङ्कर बिरादरीवालोंके षड्यंत्रोंके समाचार ला-लाकर उन्हें और भी उद्विग्न करते रहते थे। एक दिन खबर लाये कि लोगोंने एक महती सभा करके आपको समाजच्युत करनेका प्रस्ताव पास कर दिया। दूसरे दिन ब्राह्मणोंकी एक सभाकी खबर लाये, जिसमें उन्होंने निश्चय किया था कि कोई प्रेमशङ्करके घर पूजा-पाठ करने न जाय। इसके एक दिन पीछे श्रद्धाके पुरोहितजीने आना छोड़ दिया। ज्ञानशङ्कर बातों-बातोंमें यह भी जता दिया करते थे कि आपके कारण मैं भी बदनाम हो रहा हूँ और शङ्का है कि लोग मुझे भी त्याग दें। भाईके साथ तो यह व्यवहार था, और बिरादरीके नेताओंके पास जाकर प्रेमशङ्करपर झूठे आक्षेप करते, वह देवताओंको गालियाँ देते हैं कहते हैं, मांस सब एक है, चाहे किसीका हो। खाना-खाकर कभी हाथ मुँहतक नहीं धोते। कहते हैं, चमार भी कर्मानुसार ब्राह्मण हो सकता है। यह बातें सुन सुनकर बिरादरीवालोंकी द्वेषाग्नि और भी भड़कती थी, यहाँतक कि कई मनचले नवयुवक तो इसपर उद्यत थे कि प्रेमशङ्करको कहीं अकेले पा जायँ तो उनकी अच्छी तरह खबर लें। "तिलक" एक स्थानीय समाचारपत्र था। उसमें इस विषय पर खूब जहर उगला जाता था। ज्ञानशङ्कर नित्य यह पत्र लाकर अपने भाईको सुनाते और यह सब केवल इसलिये कि वह निराश और भयभीत होकर यहाँसे भाग खड़े हों और मुझे जायदादमें हिस्सा न देना पड़े। प्रेमशङ्कर साहस और जीवटके आदमी थे, इन धमकियोंका उन्हें परवा न थी, लेकिन उन्हें मंजूर न था कि मेरे कारण ज्ञानशङ्करपर आँच आये। श्रद्धाकी ओरसे भी उनका चित्त फटता जाता था। इस चिन्तामय अवस्थाका अन्त करनेके

लिये वह कहीं अलग जाकर शान्तिके साथ रहना और अपने जीवनोद्देश्यको पूरा करना चाहते थे। पर जायँ कहाँ? ज्ञानशङ्करने एक बार लखनपुरमें रहनेकी इच्छा प्रकट की थी, पर उन्होंने इतनी आपत्तियाँ खड़ी कीं, कष्टों और असुविधाओंका ऐसा चित्र खींचा कि प्रेमशङ्कर उनकी नीयतको ताड़ गये। वह शहरके निकट ही थोड़ी सी ऐसी जमीन चाहते थे, जहाँ एक कृषिशाला खोल सकें। इसी धुनमें नित्य इधर-उधर चक्कर लगाया करते थे। स्वभावमें संकोच इतना कि किसीसे अपने इरादे जाहिर न करते। हाँ, लाला प्रभाशङ्करका पितृवत् प्रेम और स्नेह उन्हें अपने मनके विचार उनसे प्रकट करनेपर बाध्य कर देता था। लालाजीको जब अवकाश मिलता, वह प्रेमशङ्करके पास आ बैठते और अमेरिकाके वृत्तान्त बड़े शौकसे सुनते। प्रेमशङ्कर दिनोंदिन उनकी सज्जनतापर मुग्ध होते जाते थे। ज्ञानशङ्कर तो सदैव उनका छिद्रान्वेषण किया करते, पर उन्होंने कभी भूलकर भी ज्ञानशङ्करके खिलाफ जबान नहीं खोली। वह प्रेमशङ्करके विचारोंसे सहमत न होते थे; यही सलाह दिया करते कि कहीं सरकारी नौकरी कर लो।

एक दिन प्रेमशङ्करको उदास और चिन्तित देखकर लालाजी बोले, क्या यहाँ जी नहीं लगता?

प्रेम—मेरा विचार है कि कहीं अलग मकान लेकर रहूँ। यहाँ मेरे रहनेसे सबको कष्ट होता है।

प्रभा—तो मेरे घर उठ चलो, वह भी तो तुम्हारा ही घर है। मैं भी कोई बेगाना नहीं हूँ। वहाँ तुम्हें कोई कष्ट न होगा। हम लोग इसे अपना धन्य भाग समझेंगे। कहीं नौकरीके लिये लिखा?

प्रेम—मेरा इरादा नौकरी करनेका नहीं है।

प्रभा—आखिर तुम्हें नौकरीसे क्यों इतनी नफ़रत है? नौकरी कोई बुरी चीज़ है?

प्रेम—जी नहीं, मैं इसे बुरा नहीं कहता। पर मेरा मन उससे भागता है।

प्रभा—तो मनको समझाना चाहिये न? आज सरकारी नौकरीका जो मान-सम्मान है, वह और किसका है? और फिर आमदनी अच्छी, काम कम, छुट्टी ज्यादा, व्यापारमें नित्य हानिका भय, जमींदारीमें नित्य अधिकारियोंकी खुशामद और असामियोंके बिगड़नेका खटका। नौकरी इन सब पेशोंसे उत्तम है। खेती-बारीका शौक उस हालतमें भी पूरा हो सकता है। यह तो रईसोंके मनोरंजनकी सामग्री है। अन्य देशोंका हाल तो नहीं जानता, पर यहाँ किसी रईसके लिये खेती करना अपमानकी बात है। मुझे भूखों मरना कबूल है, पर दूकानदारी या खेती करना कबूल नहीं।

प्रेम—आपका कथन सत्य है, पर मैं अपने मनसे मजबूर हूँ। मुझे थोड़ी-सी जमीनकी तलाश है; पर इधर कहीं नजर नहीं आती।

प्रभा—अगर इसीपर मन लगा है तो करके देख लो। क्या करूँ, मेरे पास शहरके निकट जमीन नहीं है, नहीं तो तुम्हें हैरान न होना पड़ता। मेरे गाँवमें करना चाहो तो जितना जमीन चाहो मिल सकती है; मगर दूर है।

इसी हैस-बैसमें चैतका महीना गुजर गया। प्रेमशङ्करने कृषि-प्रयोगशालाकी आवश्यकताकी ओर रईसोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये समाचारपत्रोंमें कई विद्वत्तापूर्ण लेख छपवाये। इन लेखोंका बड़ा आदर हुआ। उन्हें पत्रोंने उद्धृत किया, उनपर टीकाएँ कीं और कई अन्य भाषाओंमें उनके अनुवाद भी हुए। इसका फल यह हुआ कि ताल्लुकेदार एसोसियेशनने अपने वार्षिकोत्सवके अवसरपर प्रेमशङ्करको कृषिविषयक एक निबंध पढ़नेके लिये निमंत्रित किया। प्रेमशंकर आनन्दसे फूले न समाये। बड़ी खोज और परिश्रमसे एक निबन्ध लिखा और लखनऊ आ

पहुँचे। कैसरबागमें इस उत्सवके लिये एक विशाल पंडाल बनाया गया था। राय कमलानन्द इस सभाके मंत्री चुने गये थे। मईका महीना था। गरमी खूब पड़ने लगी थी। मैदानोंमें भी संध्या समय तक लू चला करती थी। घरमें बैठना नितान्त दुस्सह था। रातके आठ बजे प्रेमशंकर रायसाहबके निवास-स्थानपर पहुँचे। रायसाहबने तुरन्त उन्हें अन्दर बुलाया। वह इस समय अपने दीवानखानेके पीछेकी ओर एक छोटी-सी कोठरीमें बैठे हुए थे। ताकपर एक धुन्धला-सा दीपक जल रहा था। गरमी इतनी थी कि जान पड़ता था अग्निकुण्ड है। पर इस आगकी भट्ठीमें रायसाहब एक मोटा ऊनी कम्बल ओढ़े हुए थे। उनके मुखपर विलक्षण तेज था और नेत्रोंसे दिव्य प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था। प्रतिभा और सौम्यकी सजीव मूर्त्ति मालूम होते थे। उनका शारीरिक गठन और दीर्घकाय किसी पहलवानको भी लज्जित कर सकता था। उनके गलेमें एक रुद्राक्षकी माला थी, बगलमें एक चाँदीका प्याला और गड़ुआ रखा हुआ था, तख्तेके एक ओर दो मोटे-ताजे जवान बैठे पंजा लड़ा रहे थे और उसकी दूसरी ओर तीन कोमलांगी रमणियाँ वस्त्राभूषणोंसे सजी हुई विराज रही थीं। इन्द्रका अखाड़ा था, जिसमें इन्द्र, कालेदेव और अप्सराएँ सभी अपना-अपना पार्ट खेल रहे थे।

प्रभाशङ्करको देखते ही रायसाहबने उठकर बड़े तपाकसे उनका स्वागत किया, उनके बैठनेको एक कुर्सी मँगायी और बोले, क्षमा कीजियेगा, मैं इस समय देवोपासना कर रहा हूँ, पर आपसे मिलनेके लिये ऐसा उत्कण्ठित था कि एक क्षणका विलम्ब भी न सह सका। आपको देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। संसार ईश्वरका विराट स्वरूप है। जिसने संसारको देख लिया, उसने ईश्वरके विराट स्वरूपका दर्शन कर लिया। यात्रा अनुभूत ज्ञान प्राप्त करनेका सर्वोत्तम साधन है। कुछ जलपानके लिये मँगाऊँ?

प्रेम—जी नहीं, अभी जलपान कर चुका हूँ।

रायसाहब—समझ गया, आप भी जवानीमें बूढ़े हो गये। भोजन-आहारका यही पथ्यापथ्य-विचार बुढ़ापा है। जवान वह है जो भोजनके उपरान्त फिर भोजन करे, ईंट-पत्थरतक भक्षण कर ले। जो एक बार जलपान करके फिर कुछ नहीं खा सकता, जिसके लिये कुम्हड़ा बादी है, करेला गर्म, कटहल गरिष्ट, उसे मैं बूढ़ा ही समझता हूँ। मैं सर्वभक्षी हूँ और इसीका फल है कि ६० वर्षकी आयु होनेपर भी मैं जवान हूँ।

यह कहकर रायसाहबने लोटा मुँहसे लगाया और कई घूँट गट-गट पी गये, फिर प्यालेमेंसे कई चमचे निकालकर खाये और जीभ चटकाते हुए बोले, यह न समझिये कि मैं स्वादेन्द्रियका दास हूँ। मैं इच्छाओंका दास नहीं, स्वामी बनकर रहता हूँ। यह दमन करनेका साधनमात्र है। तैराक वह है जो पानीमें गोते लगाये। योद्धा वह है जो मैदानमें उतरे। बबासे भागकर बबासे बचनेका कोई मूल्य नहीं। ऐसा आदमी बबाकी चपेटमें आकर फिर नहीं बच सकता। वास्तवमें रोगविजेता वही है जिसकी स्वाभाविक अग्नि, जिसकी अन्तरस्थ ज्वाला, रोगकीटोंको भस्म कर दे। इस लोटेमें आगकी चिनगारियाँ हैं, पर मेरे लिये शीतल जल है। इस प्यालेमें वह पदार्थ है, जिसका एक चमचा किसी योगीको भी उन्मत्त कर सकता है, पर मेरे लिये सूखे सागके तुल्य है। आजकल यही मेरा आहार है। मैं गर्मीमें आग खाता हूँ और आग ही पीता हूँ। मैं शिव और शक्तिका उपासक हूँ। विषयको दूध-घी समझता हूँ। जाड़ेमें हिमकणोंका सेवन करता हूँ और हिमालयकी हवा खाता हूँ। हमारी आत्मा ब्रह्मका ज्योति-स्वरूप है, उसे मैं देश और काल, इच्छाओं और चिन्ताओंसे मुक्त रखना चाहता हूँ। आत्माके लिये पूर्ण अखण्ड स्वतन्त्रता सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। मेरे किसी कामका कोई निर्दिष्ट समय नहीं। जो इच्छा होती है, करता हूँ। आपको कोई कष्ट तो नहीं है, आरामसे बैठिये।

प्रेम—बहुत आरामसे बैठा हुआ हूँ।

रायसाहब—आप इस त्रिमूर्त्तिको देखकर चौंकते होंगे। पर मेरे लिये यह मिट्टीके खिलौने हैं। विषयासक्त आँखें इनके रूप-लावण्यपर मिटती हैं, मैं उस ज्योतिको देखता हूँ जो इनके घटमें व्यापक है। वाह्य रूप कितना ही सुन्दर क्यों न हो, मुझे विचलित नहीं कर सकता। वह भकुए हैं, जो गुफाओं और कन्दराओंमें बैठकर तप और ध्यानके स्वाँग भरते हैं। वह कायर हैं, प्रलोभनोंसे मुँह छिपानेवाले, तृष्णाओंसे जान बचानेवाले। वे क्या जानें कि आत्मस्वातन्त्र्य क्या वस्तु है, चित्तकी दृढ़ता और मनोबलका उन्हें अनुभव ही नहीं हुआ। वह सूखी पत्तियाँ हैं जो हवाके एक झोंकेसे जमीनपर गिर पड़ती हैं, योग कोई दैहिक कृपा नहीं है। आत्मशुद्धि, मनोबल और इन्द्रियदमन ही सच्चा योग, सच्ची तपस्या है। वासनाओंमें पड़कर अविचलित रहना ही सच्चा वैराग्य है। उत्तम पदार्थोंका सेवन कीजिये; मधुर गानका आनन्द उठाइये, सौन्दर्य्यकी उपासना कीजिये; परन्तु मनोवृत्तियोंके दास न बनिये, फिर आप सच्चे वैरागी हैं। (दोनों पहलवानोंसे) पंडाजी तुम बिलकुल बुद्धू ही रहे। यह महाशय अमेरिकाका भ्रमण कर आये हैं। हमारे दमाद हैं, इन्हें कुछ अपनी कविता सुनाओ, खूब फड़कते हुए कवित्त हों।

दोनों पंडे खड़े हो गये और स्वर मिलाकर एक कवित्त पढ़ने लगे। किन्तु कवित्त क्या था, अपशब्दोंका पोथा और अश्लीलताका अविरत प्रवाह था! एक-एक शब्द बेहयायी और बेशरमीमें डूबा हुआ था। मुँहफट भाँड़ भी लज्जास्पद अंगोंका ऐसा नग्न, ऐसा घृणोत्पादक वर्णन न कर सकते होंगे। कविने समस्त भारतवर्षके कबीर और फागका इत्र, समस्त कायस्थ समाजकी वैवाहिक गजलोंका सत्त, समस्त भारतीय नारिवृन्दकी प्रथाप्रणीत गालियोंका निचोड़ और समस्त पुलिस विभागके कर्मचारियोंके अपशब्दोंका जौहर खींचकर रख दिया था।

और यह गन्दे कवित्त इन पंडोंके मुँहसे ऐसी सफाईसे निकल रहे थे; मानों फूल झड़ रहे हैं। रायसाहब मूर्तिवत् बैठे थे, हँसीका तो कहना ही क्या, ओठोंपर मुस्कुराहटका चिह्न भी न था। तीनों वेश्याओंने शर्मसे सिर झुका लिया, किन्तु प्रेमशङ्कर हँसीको न रोक सके। हँसते-हँसते उनके पेटमें बल पड़ गये।

पंडोंके चुप होते ही समाजियोंका आगमन हुआ। उन्होंने अपने साज मिलाये, तबलेपर थाप पड़ी, सारङ्गियोंने स्वर मिलाया और तीनों रमणियाँ एक ध्रुपद अलापने लगीं। प्रेमशङ्करको स्वरलालित्यका वही आनन्द मिल रहा था जो किसी गँवारको उज्ज्वल रत्नोंके देखनेसे मिलता है। इस आनन्दमें रसज्ञता न थी; किन्तु मर्मज्ञ रायसाहब मस्त हो-होकर झूम रहे थे और कभी-कभी स्वयं गाने लगते थे।

आधी राततक मधुर अलापकी तानें उड़ती रहीं। जब प्रेमशङ्कर ऊँघ ऊँघकर गिरने लगे तब सभा विसर्जित हुई। उन्हें रायसाहबकी बहुज्ञता और प्रतिभापर आश्चर्य हो रहा था। इस मनुष्यमें कितना बुद्धि-चमत्कार, कितना आत्मबल कितनी सिद्धि, कितनी सजीविता है और जीवनका कितना विलक्षण आदर्श!

दूसरे दिन प्रेमशङ्कर सोकर उठे तो आठ बजे थे। मुँह-हाथ धोकर बरामदेमें टहलने लगे कि सामनेसे रायसाहब एक मुश्की घोड़ेपर सवार आते दिखाई दिये। शिकारी वस्त्र पहने हुए थे। कन्धेपर बन्दूक थी। पीछे पीछे शिकारी कुत्तोंका झुंड चला आ रहा था। प्रेमशङ्करको देखकर बोले, आज किसी भले आदमीका मुँह देखा था। एक वार भी खाली नहीं गया। निश्चय कर लिया था कि जलपानके समयतक लौट आऊँगा। आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कि कितनी दूरसे आ रहा हूँ। पूरे बीस मीलका धावा किया है। तीन घंटोंसे ज्यादा कभी नहीं सोता। मालूम है न, आज तीन बजे जलसा शुरू होगा!

प्रेम—जी हाँ, डेलिगेट लोग तो आ गये होंगे ?

राय—(हँसकर) मुझे अभीतक कुछ खबर नहीं और मैं ही स्वागतकारिणी समितिका प्रधान हूँ। मेरे मुख्तार साहबने सब प्रबन्ध कर दिया होगा। अभीतक मैंने कुछ नहीं सोचा कि वहाँ क्या कहूँगा ? बस, मौकेपर जो कुछ मुँहमें आयेगा, बक डालूँगा।

प्रेम—आपकी सूझ बहुत अच्छी होगी ?

राय—जी हाँ, मेरे एसोसियेशनमें ऐसा कोई नहीं है, जिसकी सूझ अच्छी न हो, इस गुणमें एक-से-एक बढ़कर हैं। कोषाध्यक्ष महाशयको आयव्ययका पता नहीं, पर सभाके सामने वह पूरा ब्यौरा दिखा देंगे। यही हाल औरोंका भी है। जीवन इतना अल्प है कि आदमीको अपने ही ढोल पीटनेसे छुट्टी नहीं मिलती, जातिका मजीरा कौन बजावे ?

प्रेम—ऐसी संस्थाओंसे देशका क्या उपकार होगा ?

राय—उपकार क्यों नहीं, क्या आपके विचारमें जातिका नेतृत्व निरर्थक वस्तु है ? आजकल तो यही उपाधियोंका सदर दरवाजा हो रहा है। सरल भक्तोंका श्रद्धास्पद बनना क्या कोई मामूली बात है ? बेचारे जातिके नामपर मरनेवाले सीधे-सादे लोग दूर-दूरसे हमारे दर्शनोंको आते हैं। हमारी गाड़ियाँ खींचते हैं, हमारी पदरजको माथेपर चढ़ाते हैं। क्या यह कोई छोटी बात है ? और फिर हममें कितने ही जातिके सेवक ऐसे भी हैं जो सारा हिसाब मनमें रखते हैं। उनसे हिसाब पूछिये तो वह अपनी तौहीनी समझेंगे और इस्तीफ़ेकी धमकी देंगे। इसी संस्थाके सहायक मन्त्रीकी वकालत बिलकुल नहीं चलती; पर अभी उन्होंने बास हजारका एक बँगला मोल लिया है। जातिसे ऐसे भी लेना है, वैसे भी लेना है, चाहे इस बहानेसे लीजिये, चाहे उस बहानेसे लीजिये।

प्रेम—मुझे अपना निबन्ध पढ़नेका समय कब मिलेगा ?

राय—आज तो मिलता नहीं। कल गार्डनपार्टी है। हिज़ एक्सेलेन्सी और अन्य अधिकारिवर्ग निमन्त्रित हैं। सारा दिन उसी तैयारीमें लग जायेगा। परसों सब चिड़ियाँ उड़ जायेंगी, कुछ गिने-गिनाये लोग रह जायेंगे। तब आप शौक़से अपना लेख सुनाइयेगा।

यही बातें हो रही थीं कि राजा इन्द्रकुमारसिंहका आगमन हुआ। रायसाहबने उनका स्वागत करके पूछा, नैनीताल कब-तक चलियेगा।

राजासाहब—मैं तो सब तैयारियाँ करके चला हूँ। यहींसे हिज़ एक्सेलेन्सीके साथ चला जाऊँगा। क्या मिस्टर ज्ञानशङ्कर नहीं आये?

प्रेम—जी नहीं, उन्हें अवकाश नहीं मिला।

राजा—मैंने समाचार-पत्रोंमें आपके लेख देखे थे। इसमें सन्देह नहीं कि आप कृषिशास्त्रके पंडित हैं, पर आप जो प्रस्ताव कर रहे हैं, वह यहाँके लिये कुछ बहुत उपयुक्त नहीं जान पड़ता! हमारी सरकारने कृषिकी उन्नतिके लिये कोई बात उठा नहीं रखी। जगह-जगहपर प्रयोगशालाएँ खोलीं, सस्ते दामोंमें बीज बेचती है, कृषिसम्बन्धी आविष्कारोंका पत्रों द्वारा प्रचार करती है, इस कामके लिये कितने ही निरीक्षक नियुक्त किये हैं; कृषिके बड़े-बड़े कालेज खोल रखे हैं, पर उनका फल कुछ न निकला। जब वह करोड़ों रुपये व्यय करके कृतकार्य न हो सकी तो आप दो लाखकी पूँजीसे क्या कर लेंगे! आपके बनाये हुए यंत्र कोई सेंत भी न लेगा, आपकी रासायनिक खादें पड़ी सड़ेंगी। बहुत हुआ तो आप पाँच-सात सैकड़े मुनाफा दे देंगे। इससे क्या होता है? जब हम दो-चार कुँए खुदवाकर, पटवारीसे मिलकर, कर्मचारियोंका सत्कार करके आसानीसे अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं, तो यह झंझट कौन करे?

प्रेम—मेरा उद्देश्य कोई व्यापार खोलना नहीं है। मैं तो

केवल कृषिकी उन्नतिके लिये धन चाहता हूँ। सम्भव है, आगे चलकर लाभ हो, पर अभी तो मुनाफेकी कोई आशा नहीं।

राजा—समझ गया, यह केवल पुण्य-कार्य्य होगा।

प्रेम—जी हाँ, यही मेरा उद्देश्य है। मैंने अपने उन लेखोंमें और इस निबन्धमें भी यह बात साफ़-साफ़ कह दी है।

राजा—तो फिर आपने श्रीगणेश करनेमें ही भूल की। आपको पहले इस विषयमें लाट साहबकी सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिये थी। तब दोकी जगह आपको दस लाख बात-की-बात-में मिल जाते। बिना सरकारकी प्रेरणाके यहाँ ऐसे कामोंमें सफलता नहीं होती। यहाँ आप जितनी संस्थाएँ देख रहे हैं, उनमें किसीका जन्म स्वाधीनरूपसे नहीं। यहाँकी यही प्रथा है। रायसाहब यदि आपको हिज़एक्सलेन्सीसे मिला दें और उनकी आपपर कृपादृष्टि हो जाय तो कल ही रुपयेका ढेर लग जाय।

राय—मैं बड़ी खुशीसे तैयार हूँ।

प्रेम—मैं इस संस्थाको सरकारी सम्पर्कसे अलग रखना चाहता हूँ।

राजा—ऐसी दशामें आप इस एसोसियेशनसे सहायताकी आशा न रखें। कमसे कम मेरा यही विचार है; क्यों रायसाहब!

राय—आपका कहना यथार्थ है।

प्रेम—तो फिर मेरा निबन्ध पढ़ना व्यर्थ है।

राजा—नहीं, व्यर्थ नहीं है। सम्भव है, आप इसके द्वारा आगे चलकर सरकारी सहायता पा सकें। हाँ, रायसाहब, प्रधानजीके जलूस निकालनेकी तैयारी हो रही है न? वह तीसरे पहरकी गाड़ीसे आनेवाले हैं।

प्रेमशङ्कर निराश हो गये। ऐसी सभामें अपना निबन्ध पढ़ना अन्धोंके आगे रोना था। वह तीन दिन लखनऊ रहे और एसोसियेशनके अधिवेशनोंमें शरीक होते रहे, किन्तु न तो अपना लेख पढ़ा और न किसीने उनसे पढ़नेके लिये जोर दिया। वहाँ तो सभी

अधिकारियोंकी सेवा-सत्कारमें ऐसे दत्तचित्त थे, मानो बरात आई हो। बल्कि उनका वहाँ रहना सबको अखरता था। सभी समझते थे कि यह महाशय मनमें हमारा तिरस्कार कर रहे हैं। उन लोगोंको किसी गुप्त रीतिसे यह भी मालूम हो गया था कि यह स्वराज्यवादी हैं। इसी कारणसे किसीने उनके निबन्ध पढ़नेके लिये आग्रह नहीं किया यहाँतक कि गार्डनपार्टीमें उन्हें निमंत्रण भी न दिया। यह रहस्य लोगोंपर उनके आनेके एक दिन पीछे खुला था, नहीं तो कदाचित् उनके पास लेख पढ़नेका आदेशपत्र भी न भेजा जाता। प्रेमशङ्कर ऐसी दशामें वहाँ क्योंकर ठहरते? चौथे दिन घर चले आये। दो-तीन दिनतक उनका चित्त बहुत खिन्न रहा; किन्तु इसलिये नहीं कि उन्हें आशातीत सफलता न हुई, बल्कि इसलिये कि उन्होंने सहायताके लिये रईसोंके सामने हाथ फैलाकर अपने स्वाभिमानकी हत्या की। यद्यपि अकेले पड़े पड़े उनका जी बहुत उकताता था, पर इसके साथ ही यह अवस्था आत्मचिन्तनके बहुत अनुकूल थी। निस्स्वार्थ सेवा करना मेरा कर्तव्य है। प्रयोगशाला स्थापित करके मैं कुछ स्वार्थ भी सिद्ध करना चाहता था। कुछ लाभ होता, कुछ नाम होता, परमात्माने उसीका मुझे यह दण्ड दिया है। सेवाका क्या यही एक साधन है? मैं प्रयोगशालाके ही पीछे क्यों पड़ा हुआ हूँ? बिना प्रयोगशालाके भी कृषि-सम्बन्धी विषयोंका प्रचार किया जा सकता है, रोग निवारण क्या सेवा नहीं है? इन प्रश्नोंने प्रेमशङ्करके सदुत्साहको उत्तेजित कर दिया। वह प्रातःकाल घरसे निकल जाते और आसपासके देहातोंमें जाकर किसानोंसे खेती-बारीके विषयमें वार्त्तालाप करते। उन्हें अब मालूम हुआ कि यहाँके किसानोंको जितना मूर्ख समझा जाता है, उतने मूर्ख नहीं हैं। उन्हें किसानोंसे कितनी ही नयी बातोंका ज्ञान हुआ। शनैः शनैः वह दिन-दिन भर घरसे बाहर रहने लगे। कभी-कभी दूरके देहातोंमें चले जाते तो दो-दो तीन-तीन दिनोंतक न लौटते।

जेठका महीना था। आकाशसे आग बरसती थी। राज्याधिकारिवर्ग पहाड़ोंपर ठंढी हवा खा रहे थे। भ्रमण करनेवाले कर्मचारियोंके दौरे भी बन्द थे, पर प्रेमशङ्करकी तातील न थी। उन्हें बहुधा दोपहरका समय पेड़ोंकी छाँहमें काटना पड़ता, कभी दिनका दिन निराहार बीत जाता, पर सेवाकी धुनने उन्हें शारीरिक सुखोंसे विरक्त कर दिया था। किसी गाँवमें हैजा फैलनेकी खबर मिलती, कहीं कीड़े ऊखके पौधोंका सर्वनाश किये डालते थे; कहीं आपसमें लठियाव होनेका समाचार मिलता, प्रेमशङ्कर डाकियोंकी भाँति इन सभी स्थानोंपर जा पहुँचते और यथासाध्य कष्ट-निवारणका प्रयास करते। कभी-कभी लखनपुर तकका धावा मारते। जब असाढ़में मेह बरसा तो प्रेमशङ्करको अपने काममें बड़ी असुविधा होने लगी। वह एक विशेष प्रकारके धानोंका प्रचार करना चाहते थे। तरकारियोंके बीज भी वितरण करनेके लिये मँगा रक्खे थे। उन्हें बोने और उपजानेकी विधि बतलानी भी जरूरी थी। इसीलिये उन्होंने शहरसे ४-५ मीलपर वरणाके किनारे हाजीगंजमें रहनेका निश्चय किया। गाँवसे बाहर फूसका एक झोपड़ा पड़ गया। दो-तीन खाटें आ गयीं। गाँववालोंकी उनपर असीम भक्ति थी। उनके निवासको लोगोंने अहोभाग्य समझा। उन्हें सब लोग अपना रक्षक, अपना इष्टदेव समझते थे और उनके इशारेपर जान देनेको तैयार रहते थे।

यद्यपि प्रेमशङ्करको यहाँ बड़ी शांति मिलती थी, पर श्रद्धाकी याद कभी-कभी विकल कर देती थी। वह सोचते, यदि वह भी मेरे साथ होती, तो कितने आनन्दसे जीवन व्यतीत होता। उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि ज्ञानशङ्करने ही मेरे विरुद्ध उसके कान भरे हैं, अतएव उन्हें अब उसपर क्रोधके बदले दया आती थी। उन्हें एक बार उससे मिलने और उसके मनोगत भावोंके जानने की बड़ी आकांक्षा होती थी। कई बार इरादा किया कि उसे एक पत्र लिखूँ, पर यह सोचकर कि जवाब दे या न दे टाले जाने थे।

इस चिन्ताके अतिरिक्त अब धनाभावसे भी कष्ट होता था। अमेरिकासे जितने रुपये लाये थे, वह इन चार महीनोंमें खर्च हो गये थे और यहाँ नित्य ही रुपयोंका काम लगा रहता था। किसानोंसे अपनी कठिनाइयाँ बयान करते हुए उन्हें सङ्कोच होता था। वह अपने भोजनादिका बोझ भी उनपर डालना पसन्द न करते थे और न शहरके किसी रईससे ही सहायता माँगनेका साहस होता था। अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि ज्ञानशङ्करसे अपने हिस्सेका मुनाफा माँगना चाहिये। उन्हें मेरे हिस्सेकी पूरी रकम उड़ा जानेका क्या अधिकार है? श्रद्धाके भरण-पोषणके लिये वह अधिक-से-अधिक मेरा आधा हिस्सा ले सकते हैं। तब भी मुझे एक हजारके लगभग मिल जायँगे। इस वक्त काम चलेगा, फिर देखा जायगा। निस्सन्देह इस आमदनीपर मेरा कोई हक नहीं है, मैंने उसका अर्जन नहीं किया, लेकिन मैं उसे अपने भोग-विलासके निमित्त तो नहीं चाहता, उसे लेकर परमार्थमें खर्च करना आपत्तिजनक नहीं हो सकता। पहले प्रेमशङ्करकी निगाह इस तरफ कभी न गयी थी, वह इन रुपयोंको ग्रहण करना अनुचित समझते थे। पर अभाव बहुधा सिद्धान्तों और धारणाओंका बाधक हो जाता है। सोचा तो था कि पत्रमें सबकुछ साफ-साफ लिख दूँगा, पर लिखने बैठे तो केवल इतना लिखा कि मुझे रुपयोंकी बड़ी जरूरत है। आशा है, मेरी कुछ सहायता करेंगे। भावोंको लेखबद्ध करनेमें हम बहुत विचारशील हो जाते हैं। ज्ञानशङ्करको यह पत्र मिला तो जामेसे बाहर हो गये। श्रद्धाको सुनाकर बोले, यह तो नहीं होता कि कोई उद्यम करें, बैठे-बैठे सुकीर्तिका आनन्द उठाना चाहते हैं। जानते होंगे कि यहाँ रुपये बरस रहे हैं, बस बिना हर्रे-फिटकरीके मुनाफा हाथ आ जाता है। और यहाँ अदालतके खर्चके मारे कचूमर निकला जाता है। एक हजार रुपये कर्ज लेकर खर्च कर चुका और अभी पूरा साल पड़ा है। एक बार हिसाब-किताब देख लें तो आँखें

खुल जायँ, मालूम हो जाय कि जमींदारी परोसा हुआ थाल नहीं है। सैकड़ों रुपये साल कर्मचारियोंकी नजर-नियाजमें उड़ जाते हैं।

यह कहते हुए वह उसी गुस्सेमें पत्रका उत्तर लिखने नीचे गये। उन्हें अपनी अवस्था और दुर्भाग्यपर क्रोध आ रहा था। राय कमलानन्दकी चेतावनी बार-बार याद आती थी। वही हुआ, जो उन्होंने कहा था।

सन्ध्या हो गयी थी। आकाशपर काली घटा छायी हुई थी। प्रभशङ्कर सोच रहे थे, बड़ी देर हुई अभीतक आदमी जवाब लेकर नहीं लौटा। कहीं पानी न बरसने लगे, नहीं तो इस वक्त आ भी न सकेगा। देखूँ क्या जवाब देते हैं? सूखा जवाब तो क्या देंगे, हाँ, मनमें अवश्य झुँझलायेंगे। अब मुझे भी निस्सङ्कोच होकर लोगोंसे सहायता माँगनी चाहिये, अपने बलपर यह बोझ मैं नहीं सँभाल सकता। थोड़ीसी जमीन मिल जाती, मैं स्वयं कुछ पैदा करने लगता, तो यह दशा न रहती। जमीन तो यहाँ बहुत कम है, हाँ पचास बीघेका यह ऊसर अलबत्ता है, लेकिन जमींदार साहबसे सौदा पटना कठिन है। वह ऊसरके लिये २००) रु० बीघे नजराना माँगेंगे। फिर इसकी रेह निकालने और पानीके निकासके लिये नालियाँ बनवानेमें हजारोंका खर्च है। क्या बताऊँ, ज्ञानूने मेरे सारे मन्सूबे चौपट कर दिये, नहीं तो लखनपूर यहाँसे कौन बहुत दूर था? मैं १५-२० बीघेकी सीर भी कर लेता तो मुझे किसीकी मदद की दरकार न होती।

वह इन्हीं विचारोंमें डूबे थे कि सामनेसे एक एक्का आता हुआ दिखाई दिया। पहले तो कई आदमियोंने एक्केवानको ललकारा। क्यों खेतमें एक्का लाता है? आँखें फूटी हुई हैं? देखता नहीं, खेत बोया हुआ है? पर जब एक्का प्रेमशङ्करके झोंपड़ेकी ओर मुड़ा तो लोग चुप हो गये। इसपर लाला प्रभाशङ्कर और उनके दोनों लड़के पद्मशङ्कर और तेजशङ्कर बैठे हुए थे। प्रेमशङ्करने दौड़कर उनका स्वागत किया। प्रभाशङ्करने उन्हें

छातीसे लगा लिया और पूछा, अभी तुम्हारा आदमी ज्ञानूका जवाब लेकर तो नहीं आया ?

प्रेम—जी नहीं, अभी तो नहीं आया, देर बहुत हुई।

प्रभा—मेरे ही साथ बाजी रही। मैं उसके एक घण्टा पीछे चला हूँ। यह लो, बड़ी बहूने यह लिफाफा और यह सन्दूकचा तुम्हारे पास भेजा हैं। मगर यह तो बताओ, यह बनवास क्यों कर रहे हो ? तुम्हारे एक छोड़ दो-दो घर हैं। उनमें न रहना चाहो तो तुम्हारे कई मकान किरायेपर उठे हुए हैं, उनमेंसे जिसे हो खाली करा दूँ। आरामसे शहरमें रहो। तुम्हें इस दशामें देखकर मेरा हृदय फटा जाता है। यह फूसका झोंपड़ा, बीहड़ स्थान, न कोई आदमी न आदमजाद, मुझसे तो यहाँ एक क्षण भी न रहा जाये। हफ्तों घरकी सुधि नहीं लेते। मैं तुम्हें यहाँ न रहने दूँगा। हम तो महलमें रहें, और तुम यों बनवास करो। (सजल नेत्र होकर) यह सब मेरा दुर्भाग्य है। मेरे कलेजेके टुकड़े हुए जाते हैं। भाई साहब जबतक जीवित रहे, मैं अपने ऊपर गर्व करता था। समझता था, कि मेरी बदौलत एका बना हुआ है। लेकिन उनके उठते ही घरकी श्री उठ गयी। मैं दो-चार साल भी उस मेलको न निभा सका। वह भाग्यशाली थे, मैं अभागा हूँ और क्या कहूँ !

प्रेमशंकरने बड़ी उत्सुकतासे लिफाफा खोला और पढ़ने लगे। लालाजीकी तरफ उनका ध्यान न था।

प्रिय प्राणपति, दासीका प्रणाम स्वीकार कीजिये। आप जब तक विदेशमें थे, मैं वियोगके दुःखको धैर्यके साथ सहती रही, पर आपका यह एकान्त निवास नहीं सहा जाता। मैं यहाँ आपसे बोलती न थी, आपसे मिलती न थी, पर आपको आँखों-से देखती तो थी, आपकी कुछ सेवा तो कर सकती थी। आपने यह सुअवसर भी मुझसे छीन लिया ? मुझे तो संसारकी हँसीका डर था, क्या आपको भी संसारकी हँसीका डर है ?

मुझे आपसे मिलते हुए अनिष्टकी आशंका होती है, धर्मको तोड़कर कौन प्राणी सुखी रह सकता है? आपके विचार तो ऐसे नहीं, फिर आप क्यों मेरी सुधि नहीं लेते?

यहाँ लोग आपके प्रायश्चित्त करनेकी चर्चा कर रहे हैं। मैं जानती हूँ आपको बिरादरीका भय नहीं है, पर यह भी जानती हूँ, कि आप मुझपर दया और प्रेम रखते हैं। क्या मेरी खातिर इतना न कीजियेगा?—मेरे धर्मको न निभाइयेगा?

इस सन्दूकचीमें मेरे कुछ गहने और रुपये हैं। गहने अब किसके लिये पहनूँ? कौन देखेगा? यह तुच्छ भेंट है, इसे स्वीकार कीजिये। यदि आप न लेंगे, तो समझूँगी कि आपने मुझसे नाता तोड़ लिया।

आपकी अभागिनी,

श्रद्धा।

प्रेमाशंकरके मनमें पहले विचार हुआ कि सन्दूकचीको वापस कर दूँ और लिख दूँ कि मुझे तुम्हारी मददकी जरूरत नहीं। क्या मैं ऐसा निर्लज्ज हो गया, कि जो स्त्री मेरे साथ इतनी निष्ठुरतासे पेश आये, उसीके सामने मददके लिये हाथ फैलाऊँ? लेकिन एक ही क्षणमें यह विचार पलट गया। उसके स्थानपर यह शंका हुई कि कहीं इसने मनमें कुछ और तो नहीं ठान ली है? यह पत्र किसी विषद संकल्पका सूचक तो नहीं है? वह अस्थिर चित्त होकर इधर-उधर टहलने लगे। सहसा लाला प्रभाशंकरसे बोले—आपको तो मालूम होगा, ज्ञानशंकरका बर्ताव उसके साथ कैसा है?

प्रभा—बेटा, यह बात मुझसे मत पूछो। हाँ, इतना कहूँगा कि तुम्हारे यहाँ रहनेसे वह बहुत दुःखी है। तुम्हें मालूम है कि उसका तुमसे कितना प्रेम है। तुम्हारे लिये उसने बड़ी तपस्या की है, उसके ऊपर तुम्हारी यह अकृपा नितान्त अनुचित है।

प्रेम—मुझे वहाँ रहनेमें कोई उज्र नहीं है। हाँ, ज्ञानशंकरके

कुटिल व्यवहारसे दुःख होता है। और फिर वहाँ बैठकर यह काम न होगा। किसानोंके साथ रहकर मैं उनकी जितनी सेवा कर सकता हूँ, अलग रहकर नहीं कर सकता। आपसे केवल यह प्रार्थना करता हूँ कि आपसे बुलाकर उसकी तस्कीन कर दीजियेगा। मेरे विचारसे उसका व्यवहार कितना ही अनुचित क्यों न हो, पर मैं उसे निरपराध समझता हूँ! यह दूसरोंके बहकानेका फल है। मुझे शङ्का होती है, कि वह जानपर न खेल जाय।

प्रभा—मगर तुम्हें वचन देना होगा कि सप्ताहमें कमसे कम एक बार वहाँ अवश्य जाया करोगे।

प्रेम—इसका पक्का वादा करता हूँ।

प्रभाशङ्करने लौटना चाहा, पर प्रेमशङ्करने उन्हें साग्रह रोक लिया। हाजीगञ्जमें एक सज्जन ठाकुर भवानीसिंह रहते थे। उनके यहाँ भोजनका प्रबन्ध किया गया। पूरियाँ मोटी थीं और भाजी भी अच्छी न बनी थी; किन्तु दूध बहुत स्वादिष्ट था। प्रभाशङ्करने मुस्कुराकर कहा, यह पूरियाँ हैं या लिट्टे। मुझे तो दो-चार दिन भी खानी पड़े तो काम तमाम हो जाय। हाँ, दहीकी मलाई बहुत अच्छी है।

प्रेम—मैं तो यहाँ रोटियाँ बना लेता हूँ। दोपहरको दूध पी लिया करता हूँ।

प्रभा—तो यह कहो, तुम योगाभ्यास कर रहे हो। अपनी रुचिका भोजन न मिले तो फिर जीवनका सुख ही क्या रहा?

प्रेम—क्या जाने, मैं तो रोटियोंसेही सन्तुष्ट हो जाता हूँ। कभी-कभी तो मैं शाक या दाल भी नहीं बनाता। सूखी रोटियाँ बहुत मीठी लगती हैं। स्वास्थ्यके विचारसे भी रूखा-सूखा भोजन उत्तम है।

प्रभा—यह सब नये जमानेके ढकोसले हैं। लोगोंकी पाचन-शक्ति निर्बल हो गयी है। इसी विचारसे अपनेको तस्कीन दिया

करते हैं। मैंने तो आजीवन चटपटा भोजन किया है, पर कभी कोई शिकायत नहीं हुई।

भोजन करनेके बाद कुछ इधर-उधरकी बातें होने लगीं। लालाजी थके थे, सो गये, किन्तु दोनों लड़कोंको नींद न आती थी। प्रेमशङ्कर बोले, क्यों तेजशङ्कर, क्या नींद नहीं आती? मैट्रिकमें हो न? इसके बाद क्या करनेका विचार है?

तेजशङ्कर—मुझे क्या मालूम? दादाजीकी जो राय होगी, वही करूँगा।

प्रेम—और तुम क्या करोगे पद्मशङ्कर?

पद्म—मेरा तो पढ़नेमें जी नहीं लगता। जी चाहता है, साधु हो जाऊँ।

प्रेम—(मुस्कुराकर) अभीसे?

पद्म—जी हाँ, खूब पहाड़ोंपर विचरूँगा। दूर-दूरके देशोंकी सैर करूँगा। भैया भी तो साधु होनेको कहते हैं।

प्रेम—तो तुम दोनों साधु हो जाओगे और गृहस्थीका सारा बोझ चचासाहबके सिर छोड़ दोगे?

तेज—मैंने कब साधु होनेको कहा पद्मू? झूठ बोलते हो।

पद्म—रोज तो कहते हो, इस वक्त लजा रहे हो।

तेज—बड़े झूठे हो।

पद्म—अभी तो कल ही कह रहे थे, कि पहाड़ोंपर जाकर योगियोंसे मन्त्र जगाना सीखेंगे।

प्रेम—मन्त्र जगानेसे क्या होगा?

पद्म—वाह! मन्त्रमें इतनी शक्ति है कि चाहें तो अभी गायब हो जायँ, जमीनमें गड़ा हुआ धन देख लें। एक मन्त्र तो ऐसा है कि चाहें तो मुर्दोंको जिला दें। बस, सिद्धि चाहिये। खूब चैन रहेगा। यहाँ तो बरसों पढ़ेंगे, तब जाकर कहीं नौकरी मिलेगी। और वहाँ तो एक मन्त्र भी सिद्ध हो गया, तो फिर चाँदी-ही-चाँदी है।

प्रेम—क्यों जी तेजू, तुम भी इन मिथ्या बातोंपर विश्वास करते हो ?

तेज—जी नहीं, यह पद्मू योंही वाही-तबाही बकता फिरता है; लेकिन इतना कह सकता हूँ कि आदमी मन्त्र जगाकर बड़े-बड़े काम कर सकता है। हाँ, डर न जाय, नहीं तो जान जानेका डर रहता है।

प्रेम—यह सब गपोड़ा है। खेद है, कि तुम विज्ञान पढ़कर इन गपोड़ोंपर विश्वास करते हो। संसारमें सफलताका सबसे जागता हुआ मंत्र अपना उद्योग, अध्यवसाय और दृढ़ता है, इसके सिवा और सब मंत्र झूठे हैं।

दोनों लड़कोंने इसका कुछ उत्तर न दिया। उनके मनमें मंत्रकी बात बैठ गयी थी और तर्क द्वारा उन्हें कायल करना कठिन था।

इनके सो जानेके बाद प्रेमशङ्करने सन्दूकचा खोलकर देखा। गहने सभी सोनेके थे। रुपये गिने तो पूरे एक हजार थे। इस समय प्रेमशङ्करके सम्मुख श्रद्धा एक देवीके रूपमें खड़ी मालूम होती थी। उसकी मुखश्री एक विलक्षण ज्योतिसे प्रदीप्त थी। त्याग और अनुरागकी विशाल मूर्ति थी, जिसके कोमल नेत्रोंमें भक्ति और प्रेमकी किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं। प्रेमशंकरका हृदय विह्वल हो गया। उन्हें अपनी निष्ठुरतापर बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। श्रद्धाकी भक्तिके सामने अपनी कटुता और अनुदारता अत्यन्त निन्द्य प्रतीत होने लगी। उन्होंने संदूकची बन्द करके खाटके नीचे रख दी और लेटे तो सोचने लगे, इन गहनोंको क्या करूँ ? कुल सम्पत्ति ५ हजारसे कमकी नहीं है। इसे मैं ले लूँ, तो श्रद्धा निरवलम्ब हो जायेगी। लेकिन मेरी दशा सदैव ऐसी ही थोड़े ही रहेगी ? अभी ऋण समझकर ले लूँ, फिर कभी सूद समेत चुका दूँगा। २५ बीघे ऊसर लूँ तो दो ढाई हजारमें तय हो जाये। एक हजार खाद डालने और रेह

निकालनेमें लग जायेंगे। एक हजारमें बैलोंकी दो गोइयाँ और दूसरी सामग्रियाँ आ जायेंगी। १० बीघेमें एक सुन्दर बाग लगा दूँ, १५ बीघेमें खेती करूँ। दो साल तो चाहे उपज कम हो, लेकिन आगे चलकर दो ढाई हजार वार्षिककी आय होने लगेगी। अपने लिये मुझे २००) साल भी बहुत है। शेष रुपये अपने जीवनोद्देश्यके पूरे करनेमें लगेंगे। सम्भव है, तबतक कोई सहायक भी मिल जाये। लेकिन उस दशामें कोई सहायता न भी करे,तो मेरा काम चलता रहेगा। हाँ, एक बातका तो ध्यान ही न रहा। मैं यह ऊसर ले लूँ तो फिर इस गाँवमें गोचरभूमि कहाँ रहेगी? यही ऊसर तो यहाँके पशुओंका मुख्य आधार है। नहीं, इसके लेनेका विचार छोड़ देना चाहिये। अब तो हाथमें रुपये आ गये हैं, कहीं न कहीं जमीन मिल ही जायेगी। हाँ, अच्छी जमीन होगी तो इतने रुपयोंमें १० बीघेसे ज्यादा न मिल सकेगी। १० बीघेमें मेरा काम कैसे चलेगा?

प्रेमशङ्कर इसी उधेड़ बुनमें पड़े हुए थे। मूसलधार मेह बरस रहा था। सहसा उनके कानोंमें बादलोंके गर्जनकी-सा आवाज आने लगी। लेकिन जब देरतक इस ध्वनिका तार न टूटा, मानों किसी बड़े पुलपरसे रेलगाड़ी चली जा रही हो, और थोड़ी देरमें गाँवकी ओरसे आदमियोंके चिल्लाने और रोनेकी आवाजें आने लगीं, तो वह घबराकर उठे और गाँवकी तरफ नजर दौड़ायी। गाँवमें हलचल मची हुई थी। लोग हाथोंमें सन और अरहरके डण्ठलोंकी मशालें लिये इधर उधर दौड़ते फिरते थे। कुछ लोग मशालें लिये नदीकी तरफ दौड़े जाते थे। एक क्षणमें मशालोंका प्रतिविम्ब सा दीखने लगा, जैसे गाँवमें पानी लहरें मार रहा हो। प्रेमशंकर समझ गये कि बाढ़ आ गयी।

अब विलम्ब करनेका समय न था। वह तुरन्त गाँवकी तरफ चले,लेकिन थोड़ी ही दूर चलकर वह घुटनेतक पानीमें आ पहुँचे। बहावमें इतना वेग था कि उनके पाँव मुश्किलसे सम्भल सकते

थे। कई बार वह गड्ढोंमें गिरते-गिरते बचे। जल्दीमें जल थाहनेके लिये कोई लकड़ी भी न ले सके थे। जी चाहता था कि गाँवमें उड़कर जा पहुँचूँ और लोगोंकी यथासाध्य मदद करूँ; लेकिन यहाँ एक-एक पग रखना दुस्तर था। चारों तरफ घना अंधेरा, ऊपर मूसलधार वर्षा, नीचे वेगवती लहरोंका सामना, राह-बाटका कहीं पता नहीं, केवल मशालोंको देखते चले जाते थे। कई बार घरोंके गिरनेका धमाका सुनाई दिया। गाँवके निकट पहुँचे तो हाहाकार मचा हुआ था। गाँवके समस्त प्राणी—युवा, वृद्ध, बालक मन्दिरके चबूतरेपर खड़े यह विध्वंसकारी मेघलीला देख रहे थे। प्रेमशङ्करको देखते ही लोग चारों ओरसे आकर खड़े हो गये। स्त्रियाँ रोने लगीं।

प्रेमशङ्कर—बाढ़ क्या अबकी ही आयी है या और भी कभी-आयी थी?

भवानीसिंह—हर दूसरे तीसरे साल आ जाती है। कभी कभी तो सालमें दो-दो बेर आ जाती है।

प्रेमशङ्कर—उसके रोकनेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया?

भवानी—इनका एक ही उपाय है। नदीके किनारे बाँध बना दिया जाय। लेकिन कमसे कम तीन हजार खर्च है, वह हमारे किये नहीं हो सकता। इतनी सामर्थ्य ही नहीं। कभी बाढ़ आती है, कभी सूखा पड़ता है। धन कहाँसे आये?

प्रेमशङ्कर—जमींदारसे इस विषयमें तुम लोगोंने कुछ नहीं कहा?

भवानी—उनके कभी दर्शन ही नहीं होते, किससे कहें? सेठजीने यह गाँव उन्हें पिण्डदानमें दे दिया था। बस, आप तो गयाजीमें बैठे रहते हैं। सालमें दो बार उनका मुन्शी आकर लगान वसूल कर ले जाता है। उससे कहो तो कहता है, हम कुछ नहीं जानते, पण्डाजी जानें। हमारे सिरपर चाहे जो पड़े, उन्हें अपने नफेसे काम है।

प्रेमशङ्कर - अच्छा, इस वक्त क्या उपाय करना चाहिये? कुछ बचा या सब डूब गया?

भवानी—अन्धेरेमें कुछ सूझ तो नहीं पड़ता, लेकिन अटकलसे जान पड़ता है कि घर एक भी नहीं बचा। कपड़े, लत्ते, बर्त्तन भाँड़े, खाट-खटोले सब बह गये। इतनी मुहलत ही नहीं मिली कि अपने साथ कुछ लाते। जैसे बैठे थे वैसे ही उठकर भागे। ऐसी बाढ़ कभी नहीं आयी थी, जैसे आँधी आ जाय; बल्कि आँधीका हाल भी कुछ पहले मालूम हो जाता है, यहाँ तो कुछ पता ही न चला।

प्रेमशङ्कर—मवेशी भी बह गये होंगे?

भवानी—राम जाने, कुछ तुड़ाकर भागे होंगे, कुछ बह गये होंगे, कुछ गर्दनतक पानीमें खड़े होंगे। पानी दस पाँच अंगुल और चढ़ा तो उनका भी पता न लगेगा।

प्रेमशङ्कर—कमसे कम उनकी रक्षा तो करनी ही चाहिये।

भवानी - हमें तो असाध्य जान पड़ता है।

प्रेम—नहीं, हिम्मत न हारो। भला कुल कितने मर्द यहाँ होंगे?

भवानी—(आँखोंसे गिनकर) यही कोई ४०-५०।

प्रेम—तो पाँच-पाँच आदमियोंकी एक-एक टुकड़ी बना लो और सारे गाँवका एक चक्कर लगाओ। जितने जानवर मिलें, उन्हें बटोर लो और मेरे झोंपड़ेके सामने ले चलो। वहाँ जमीन बहुत ऊँची है, पानी नहीं जा सकता। मैं भी तुम लोगोंके साथ चलता हूँ। जो लोग इस कामके लिये तैयार हों, सामने निकल आयें।

प्रेमशङ्करके उत्साहने लोगोंको उत्साहित किया। तुरत ५० ६० आदमी निकल आये। सबके हाथोंमें लाठियाँ थीं। प्रेमशङ्करको लोगोंने रोकना चाहा, लेकिन वह किसी तरह न माने। एक लाठी हाथमें ले ली और आगे-आगे चले। पग-पगपर बहते

हुए झोंपड़ों, गिरे हुए वृक्षों तथा बहती हुई चारपाइयोंसे टकराना पड़ता था। गाँवका नाम-निशान भी न था। गाँववालोंको अपने-अपने घरोंका भी-पता न चलता था। हाँ, जहाँ-तहाँ भैंसों या बैलोंके डकारनेकी आवाज़ सुन पड़ती थी। कहीं कहीं पशु बहते हुए भी मिलते थे। यह रक्षक-दल सारी रात पशुओंके उद्धारका प्रयत्न करता रहा। उनका साहस अदम्य और उद्योग अविश्रान्त था। प्रेमशङ्कर अपनी टुकड़ीके साथ बारी-बारीसे अन्य दलोंकी सहायता करते रहते थे। उनका धैर्य्य और परिश्रम देखकर निर्बल हृदयवाले भी प्रोत्साहित हो जाते थे। जब दिन निकला और प्रेमशङ्कर अपने झोंपड़ेपर पहुँचे तब २०० से अधिक पशुओंको आनन्दसे बैठे जुगाली करते हुए देखा। लेकिन इतनी कड़ी मेहनत कभी न की थी। ऐसे थक गये थे, कि खड़ा होना मुश्किल था। अंग अंगमें पीड़ा हो रही थी। आठ बजते-बजते उन्हें ज्वर हो आया। लाला प्रभाशङ्करने यह वृत्तान्त सुना तो असन्तुष्ट होकर बोले, बेटा, परमार्थ करना बहुत अच्छी बात है, लेकिन इस तरह प्राण देकर नहीं। चाहे तुम्हें अपने प्राणका मूल्य इन जानवरोंसे कम जान पड़ता हो, लेकिन हम ऐसे-ऐसे लाखों पशुओंका तुम्हारे ऊपर बलिदान कर सकते हैं। श्रद्धा सुनेगी तो न जाने उसका क्या हाल होगा? यह कहते-कहते उनकी आँखें भर आयीं।

तीन दिनतक प्रेमशङ्करने सिर न उठाया और न लाला प्रभाशङ्कर उनके पाससे उठे। उनके सिरहाने बैठे हुए कभी विनय-पत्रिकाके पदोंका पाठ करते, कभी हनुमान-चालीसा पढ़ते। हाजीपुरमें दो ब्राह्मण भी थे। वह दोनों झोंपड़ेमें बैठ दुर्गापाठ किया करते। अन्य लोग तरह-तरहकी जड़ी-बूटियाँ लाते। आसपासके देहातोंमें भी जो उनकी बीमारीकी खबर पाता, दौड़ा हुआ देखने आता। चौथे दिन ज्वर उतर गया, आकाश भी निर्मल हो गया और बाढ़ उतर गयी।

प्रभातका समय था। लाला प्रभाशङ्कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर घर चले गये थे। प्रेमशङ्कर चारपाईपर तकियेके सहारे बैठे हुए हाजीपुरकी तरफ चिन्तामय नेत्रोंसे देख रहे थे। चार दिन पहले जहाँ एक हरा-भरा लहलहाता हुआ गाँव था, जहाँ मीलों-तक खेतोंमें सुखद हरियाली छायी हुई थी, जहाँ प्रातःकाल गाय-भैंसोंके खेड़के खेड़ चरते दिखाई देते थे, जहाँ झोंपड़ोंसे चक्कियों-की मधुर ध्वनि उठती थी और बालवृन्द मैदानोंमें खेलते-कूदते दिखाई देते थे, वहाँ एक निर्जन मरुभूमि थी। गाँवके अधिकांश प्राणी दूसरे गाँवोंमें भाग गये थे, और कुछ लोग प्रेमशङ्करके झोंपड़ेके सामने सिरकियाँ डाले पड़े थे न किसीके पास भोजन था, न वस्त्र। बड़ा शोकमय दृश्य था। प्रेमशंकर सोचने लगे, कितनी विषम समस्या है! इन दीनोंका कोई सहायक नहीं। आये दिन इनपर यही विपत्ति पड़ा करती है और ये बेचारे इसका निवारण नहीं कर सकते। साल-दो-सालमें जो कुछ तन-पेट काट कर संचय करते हैं वह जलदेवकी भेंट कर देते हैं। कितना धन, कितने जीव इस भँवरमें समा जाते हैं, कितने घर मिट जाते हैं, कितनी गृहस्थियोंका सर्वनाश हो जाता है और यह केवल इस-लिये कि इनको गाँवके किनारे एक सुदृढ़ बाँध बनानेका साहस नहीं है। न इतना धन है, न वह सहमति और सुसंगठन है जो धनका अभाव होनेपर भी बड़े-बड़े कार्य्य सिद्ध कर देता है। ऐसा बाँध यदि बन जाय तो उससे इसी गाँवकी नहीं, आस-पासके कई गाँवोंकी रक्षा हो सकती है। मेरे पास इस समय चार-पाँच हजार रुपये हैं। क्यों न इस बाँधमें हाथ लगा दूँ? गाँवके लोग धन न दे सकें, मेहनत तो कर सकते हैं। केवल उन्हें संगठित करना होगा। दूसरे गाँवके लोग भी निस्सन्देह इस काममें सहायता देंगे। ओह! कहीं यह बाँध तैयार हो जाय तो इन गरीबोंका कितना कल्याण हो।

यद्यपि प्रेमशंकर बहुत अशक्त हो रहे थ, पर इन विचारोंने

उन्हें इतना उत्साहित किया कि तुरन्त उठ खड़े हुए और लोगोंके बहुत रोकनेपर भी हाथमें डंडा लेकर नदीकी ओर बाँधस्थलका निरीक्षण करने चल खड़े हुए। जेबमें पेन्सिल और कागज़ भी रख लिया। कई आदमी साथ हो लिये। नदीके किनारे खड़े वह बहुत देरतक रस्सीसे नाप-नापकर कागज़पर बाँधका नक़शा खींचते और उसकी लम्बाई, चौड़ाई, गर्भ आदिका अनुमान करते रहे। उन्हें उत्साहके वेगमें यह काम सहज जान पड़ता था, केवल काम छेड़ देनेकी जरूरत थी। उन्होंने वहीं खड़े-खड़े निश्चय किया कि वर्षा समाप्त होते ही श्रीगणेश कर दूँगा और ईश्वरने चाहा तो जाड़ेमें ही बाँध तैयार हो जायेगा। बाँधके साथ-साथ गाँवको भी पुनर्जीवित कर दूँगा। बाढ़का भय तो रहेगा नहीं, दीवारें मज़बूत बनवाऊँगा और फूसकी जगह खपरैलका छाज रखूँगा।

भवानीसिंहने कहा, बाबूजी यह काम हमारे मानका नहीं है।

प्रेमशङ्कर—है क्यों नहीं, मैं तुम्हीं लोगोंसे यह काम पूरा कराऊँगा। तुमने इसे असाध्य समझ लिया है, इसी कारण इतनी मुसीबतें झेलते हो।

भवानी—गाँवमें आदमी कितने हैं?

प्रेम—दूसरे गाँववाले तुम्हारी मदद करेंगे, काम शुरू तो होने दो।

भवानी—जैसा बाँध आप सोच रहे हैं ५-६ हजारसे कममें न बनेगा।

प्रेम—रुपयोंकी कोई चिन्ता नहीं। कातिक आ रहा है, बस काम शुरू कर दो, दो-तीन महीनेमें बाँध तैयार हो जायेगा। रुपयोंका प्रबन्ध जो कुछ मुझसे हो सकेगा, मैं कर दूँगा।

भवानी—आपका ही भरोसा है।

प्रेम—ईश्वरपर भरोसा रखो।

भवानी—मजूरीकी मदद मिल जाय तो अगहनमें ही बाँध तैयार हो सकता है।

प्रेम—इसका मैं वचन दे सकता हूँ। यहाँ ६०-७० बीघेका अच्छा चक निकल आयेगा।

भवानी—तब हम आपका झोंपड़ा भी यहीं बना देंगे। वह जगह ऊँची है, लेकिन कभी-कभी वहाँ भी बाढ़ आ जाती है।

प्रेम—तो आज ही भागे हुए लोगोंको इसकी सूचना दे दो और पड़ोसके गाँवोंमें भी खबर भेज दो।

१८

गायत्री उन महिलाओंमें थी जिनके चरित्रमें रमणीयता और लालित्यके साथ पुरुषोंका साहस और धैर्य्य भी मिला होता यदि वह कंघी और आईनेपर जान देती थी तो कभी सड़कोंके गर्द और धूलसे भी न भागती थी, प्यानोपर मोहित थी तो देहातियोंके बेसुरे अलापका आनन्द भी उठा सकती थी, सरस साहित्यपर मुग्ध होती थी तो खसरा और खतौनीसे भी जी न चुराती थी। लखनऊसे आये हुए उसे दो साल हो गये। लेकिन एक दिन भी अपने विशाल भवनमें आरामसे न बैठी। कभी इस गाँव जाती, कभी उस छावनीमें ठहरती, कभी तहसील आना पड़ता, कभी सदर जाना पड़ता, बार-बार अधिकारियोंसे मिलने की जरूरत पड़ती। उसे अनुभव हो रहा था कि दूसरोंपर शासन करनेके लिये स्वयं कितना झुकना पड़ता है। उसके इलाकोंमें सर्वत्र लूट मची हुई थी, कारिन्दे असामियोंको नोचे खाते थे। सोचती, क्या इन सब मुख्तारों और कारिन्दोंको जवाब दे दूँ? मगर काम कौन करेगा? और यही क्या मालूम है कि इनकी जगह जो नये लोग आयेंगे, वे इनसे ज्यादा नेकनीयत होंगे? मुश्किल तो यह है कि प्रजाको इस अत्याचारसे उतना कष्ट भी नहीं होता जितना मुझे होता है। कोई शिकायत नहीं करता, कोई फरियाद नहीं करता, उन्हें अन्याय सहनेका ऐसा अभ्यास हो गया है कि वह इसे भी जीवनकी एक साधारण दशा समझते

हैं। उससे मुक्त होनेका कोई यत्न भी हो सकता है। इसका उन्हें ध्यान भी नहीं होता।

इतना ही नहीं था। प्रजा गायत्रीकी सच्चेष्टाओंको संदेह-की दृष्टिसे देखती थी। उनको विश्वास ही न होता था कि उनकी भलाईके लिये कोई जमींदार अपने नौकरोंको दण्ड दे सकता है। वर्त्तमान अन्याय उनका ज्ञात विषय था, इसका उन्हें भय न था। सुधारके मन्तव्योंसे वे भयभीत होते थे, यह उनके लिये अज्ञात विषय था। उन्हें शङ्का होती थी कि कदाचित् यह हम-लोगोंको निचोड़नेकी कोई नयी विधि है। अनुभव भी इस शङ्काको पुष्ट करता था। गायत्रीका हुक्म था कि किसानोंको नाममात्र सूदपर रुपये उधार दिये जायँ, लेकिन कारिन्दे महा-जनोंसे भी ज्यादा सूद लेते थे। उसने ताकीद कर दी थी कि बखारोंसे असामियोंको अष्टांशपर अनाज दिया जाय। लेकिन यहाँ अष्टांश न देकर लोग दूसरोंसे सवाई डेवढ़ेपर अनाज लाते थे। वह अपने इलाके भरमें सफाईका प्रबन्ध भी करना चाहती थी। गोबर बटोरनेके लिये गाँवसे बाहर खत्ते बनवा दिये थे। मोरियोंको साफ करनेके लिये भंगी लगा दिये थे। लेकिन प्रजा इसे 'मुदाख़लतबेजा' समझती थी और डरती थी कि कहीं रानी साहब हमारे घूरों और खत्तोंपर तो हाथ नहीं बढ़ा रही हैं।

जाड़ोंके दिन थे। गायत्री राप्ती नदीके किनारेके गाँवोंमें दौरा कर रही थी। अबकी बाढ़में कई गाँव डूब गये थे। कृषकों ने छूटकी प्रार्थना की थी। सरकारी कर्मचारियोंने इधर-उधर देखकर लिख दिया था, छूटकी जरूरत नहीं है। गायत्री अपनी आँखोंसे इन ग्रामोंकी दशा देखकर यह निर्णय करना चाहती थी कि कितनी छूट होनी चाहिये। सन्ध्या हो गयी थी। वह दिनभरकी थकी-माँदी, बिन्दापुरकी छावनीमें उदास पड़ी हुई थी। सारा मकान खंडहर हो गया था। इस छावनीकी मरम्मत-के लिये उसने कारिन्देको सैकड़ों रुपये दिये थे; लेकिन उसकी

दशा देखनेसे ज्ञात होता था कि बरसोंसे खपरैल भी नहीं बदला गया। दीवारें गिर गयी थीं, कड़ियोंके टूट जानेसे जगह-जगह छत बैठ गयी थी। आँगनमें कूड़ेके ढेर लगे हुए थे। यहाँके कारिन्देको वह बहुत ईमानदार समझती थी। उसके कुटिल व्यवहारपर चित्त बहुत खिन्न हो रहा था। सामने चौकीपर पूजाके लिये आसन बिछा हुआ था, लेकिन उसका उठनेका जी न चाहता था कि इतनेमें एक चपरासीने आकर कहा, सरकार कानूनगो साहब आये हैं।

गायत्री उठकर आसनपर जा बैठी और इस भयसे कि कहीं कानूनगो साहब चले न जायें, शीघ्रतासे सन्ध्या समाप्त की और परदा कराके कानूनगो साहबको बुलाया।

गायत्री—कहिये खाँ साहब, मिजाज तो अच्छा है, क्या आजकल परताल हो रही है?

कानूनगो—जी हाँ, आजकल हुजूरके ही इलाकेका दौरा कर रहा हूँ।

गायत्री—आपके विचारमें बाढ़से खेतीको कितना नुकसान हुआ?

कानूनगो—अगर सरकारी तौरपर पूछती हैं तो रुपयेमें एक आना, निजके तौरपर पूछती हैं तो रुपयेमें बारह आने।

गायत्री—आपलोग यह दोरङ्गी चाल क्यों चलते हैं? आप जानते नहीं हैं कि इससे प्रजाका कितना नुकसान होता है।

कानूनगो—हुजूर यह न पूछें, दोरङ्गी चाल न चलें और असली बात लिख दें तो एक दिनमें नालायक बनाकर निकाल दिये जायँ। हमलोगोंसे सच्चा हाल जाननेके लिये तहकीकात नहीं करायी जाती, बल्कि उसको छिपानेके लिये। पेटकी बदौलत सब कुछ करना पड़ता है।

गायत्री—पेटको गरीबोंकी हायसे भरना तो अच्छा नहीं। अगर अपनी तरफसे प्रजाकी कुछ भलाई न कर सकें तो कम-से-

कम अपने हाथों उनका अहित तो न करना चाहिये। इलाकेका और क्या हाल है ?

कानूनगो—आपको सुनकर रंज होगा। सारनमें हुजूरकी कई बीघे सीर असामियोंने जोत ली है, जगराँवके ठाकुरोंने हुजूरके नये बागको जोतकर खेत बना लिया है, और मेंड़ें खोद डाली हैं। जबतक फिरसे पैमाइश न हो, कुछ पता ही नहीं चल सकता कि आपकी कितनी जमीन उन्होंने खायी है।

गायत्री—क्या वहाँका कारिन्दा सो रहा है ? मेरा तो इन झगड़ोंसे नाकोंदम है।

कानूनगो—हुजूरकी जानिबसे पैमाइशकी एक दर्खास्त पेश हो जाय, बस, बाकी काम मैं कर लूँगा। हाँ, सदर कानूनगो साहबकी कुछ खातिर करनी पड़ेगी। मैं तो हुजूरका गुलाम हूँ, ऐसी सलाह हरगिज न दूँगा जिसमें हुजूरको नुकसान हो। इतनी अर्ज और करूँगा कि हुजूर एक मैनेजर रख लें। गुस्ताखी माफ, इतने बड़े इलाकेका इन्तजाम करना हुजूरका काम नहीं है।

गायत्री—मैनेजर रखनेकी तो मुझे भी फिक्र है, लेकिन लाऊँ कहाँसे ? कहीं वह महाशय भी कारिन्दोंसे मिल गये तो रही सही बात भी बिगड़ जायेगी। उनका यह अन्तिम आदेश था कि मेरी प्रजाको कोई कष्ट न होने पाये। उसी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं यों अपनी जान खपा रही हूँ। आपकी दृष्टिमें कोई ऐसा ईमानदार और चतुर आदमी हो, जो मेरे सिरसे यह भार उतार ले तो बतलाइये।

कानूनगो—बहुत अच्छा, मैं खयाल रखूँगा। मेरे एक दोस्त है। ग्रेजुएट, बड़े लायक और तजरबेकार। खानदानी आदमी हैं। मैं उनसे जिक्र करूँगा। तो मुझे क्या हुक्म होता है ? सदर कानूनगो साहबसे बातचीत करूँ ?

गायत्री—जी हाँ, कह तो रही हूँ। वही लाला साहब हैं न ? लेकिन वह तो बेतरह मुँह फैलाते हैं।

कानूनगो—हुजूर खातिर जमा रक्खें, मैं उन्हें सीधा कर लूँगा। औरोंके साथ वह चाहे जितना मुँह फैलायें, यहाँ उनकी दाल न गलने पायेगी। बस, हुजूरके पाँच सौ रुपये खर्च होंगे। इतनेमें ही दोनों गाँवोंकी पैमाइश करा दूँगा।

गायत्री—(मुस्कुराकर) इसमें कमसे कम आधा तो आपके हाथ जरूर ही लगेगा।

कानूनगो—मुआज़ल्लाह, जनाब यह क्या फरमाती हैं। मैं मरते दमतक हुजूरको मुगालता न दूँगा। हाँ, काम पूरा हो जानेपर हुजूर जो कुछ अपनी खुशीसे अता करेंगी, वह सिर आँखोंपर रक्खूँगा।

गायत्री—तो यह कहिये, मुझे पाँच सौके ऊपर कुछ और भी आपको भेंट करना पड़ेगा। मैं इतना महँगा सौदा नहीं करती।

यही बातें हो रही थीं कि पण्डित लेखराजजीका शुभागमन हुआ। रेशमी अचकन, रेशमी पगड़ी, रेशमी चादर, रेशमी धोती, पाँवोंमें दिल्लीका सलमशाही कामदार जूता, माथेपर चन्द्रबिन्दु, अधरोंपर पानकी लाली, आँखोंपर सुनहरी ऐनक, केवड़ेमें बसे हुए, आकर कुरसीपर बैठ गये।

गायत्री—पण्डितजी महाराजको पालागन करती हूँ।

लेखराज—आशीर्वाद! आज तो सरकारको बहुत कष्ट हुआ।

गायत्री—क्या करूँ, मेरे पुरखोंने भी बिना खेतकी खेती बिना जमीनकी जमींदारी, बिना धनकी महाजनीकी प्रथा निकाली होती, तो मैं भी आपकी ही तरह चैन करती।

लेखराज—(हँसकर) कानूनगो साहब, आप सुनते हैं सरकारकी बातें। ऐसे चुनकर कह देती हैं कि उसका जवाब ही न बन पड़े। सरकारको परमात्माने रानी बनाया है। हम तो सरकारके द्वारके भिक्षुक हैं। सरकारने धर्मशालाके शिलारोपणका शुभ मुहूर्त्त पूछा था, वह मैंने विचार लिया है। इसी पक्षकी एकादशीको प्रातःकाल सरकारके हाथसे नींव पड़ जानी चाहिये।

गायत्री—यह सुकीर्ति मेरे भाग्यमें नहीं लिखी है। आपने किसी रईसको अपने हाथों सार्वजनिक इमारतोंका आधार रखते देखा है? लोग अपने रहनेके मकानोंकी नींव अधिकारियोंसे रखवाते हैं। मैं इस प्रथाको क्योंकर तोड़ सकती हूँ? जिलाधीशको शिलारोपणके लिये निमंत्रित करूँगी। उन्हींके नामपर धर्मशालाका नामकरण होगा। किसी ठीकेदारसे भी आपने बातचीत की?

लेखराज—जी हाँ, मैंने एक ठीकेदार ठीक कर लिया है। सज्जन पुरुष है। इस शुभकार्यको बिना लाभके करना चाहता है। केवल लागतमात्र लेगा।

गायत्री—आपने उसे नकशा दिखा दिया है न? कितनेपर इस कामका ठीका लेना चाहता है?

लेखराज—वह कहता है, दूसरा ठीकेदार जितना माँगे उससे मुझे सौ रुपये कम दिए जायँ।

गायत्री—तो अब एक दूसरा ठीकेदार लाना पड़ा। वह कितना तखमीना करता है?

लेखराज—उसके हिसाबसे ६० हजार पड़ेंगे। माल मसाला सब औवल दर्जेका लगायेगा। ६ महीनेमें काम पूरा कर देगा।

गायत्रीने इस मकानका नकशा लखनऊमें बनवाया था। वहाँ इसका तखमीना ४० हजार किया गया था। व्यङ्ग्य-भावसे बोली, तब तो वास्तवमें आपका ठीकेदार बड़ा सज्जन पुरुष है। इसमेंसे कुछ न कुछ तो आपके ठाकुरजीपर जरूर ही चढ़ाये जायेंगे।

लेखराज—सरकार तो दिल्लगी करती हैं। मुझे सरकारसे योंही क्या कम मिलता है कि ठीकेदारसे कमीशन ठहराता? कुछ इच्छा होगी तो माँग लूँगा, नीयत क्यों बिगाड़ूँ?

गायत्री—मैं इसका जवाब एक सप्ताहमें दूँगी।

कानूनगो—और मुझे क्या हुक्म होता है? पण्डितजी,

आपने भी तो देखा होगा, सारन और जगरौंवमें हुजूरकी कितनी जमीन दब गयी है।

पण्डित—जी हाँ, देखा क्यों नहीं, १०० बीघेसे कम न दबी होगी।

गायत्री—मैं जमीन देखकर आपको इत्तला दूँगी। अगर आपसके समझौतेसे काम चल जाय तो, रार बढ़ानेकी जरूरत नहीं।

दोनों महानुभाव निराश होकर बिदा हुए। दोनों मन-ही-मन गायत्रीको कोस रहे थे। कानूनगोने कहा, चालाक औरत है, बड़ी मुश्किलसे हत्थेपर चढ़ती है। लेखराज बोले, एक-एक पैसा दाँतसे पकड़ती है। न जानें बटोरकर क्या करेगी, कोई आगे-पीछे भी तो नहीं है।

अन्धेरा हो चला था। गायत्री सोच रही थी, इन लुटेरोंसे क्योंकर बचूँ? इनका बस चले तो दिन दहाड़े लूट लें। इतने नौकर हैं लेकिन ऐसा कोई नहीं, जिसे इलाकेकी उन्नतिका ध्यान हो। ऐसा सुयोग्य आदमी कहाँ मिलेगा? मैं अकेली ही कहाँ-कहाँ दौड़ सकती हूँ। ठीकेपर दे दूँ तो इससे अधिक लाभ हो सकता है। सब झंझटोंसे मुक्त हो जाऊँगी, लेकिन असामी मर मिटेंगे। ठीकेदार इन्हें पीस डालेगा। कृष्णार्पण कर दूँ, तो भी वही हाल होगा। कहीं ज्ञानशङ्कर राजी हो जायँ तो इलाकेके भाग जग उठें। कितने अनुभवशील पुरुष हैं, कितने मर्मज्ञ, कितने सूक्ष्म-दर्शी! वह आ जायँ, तो इन लुटेरोंसे मेरा गला छूट जाय। सारा इलाका चमन हो जाय। लेकिन मुसीबत तो यह है कि उनकी बातें सुनकर मेरी भक्ति और धार्मिक विश्वास डावाँडोल हो-हो जाते हैं। अगर उनके साथ मुझे दो-चार महीने और लखनऊ रहनेका अवसर मिलता तो मैं अबतक फैशनेबिल लेडी बन गयी होती। उनकी वाणीमें विचित्र प्रभाव है। मैं तो उनके सामने बावली-सी हो जाती हूँ। वह मेरा कितना अदब करते

थे। उनके स्वभावमें थोड़ीसी उच्छृङ्खलता अवश्य है, लेकिन मैं भी तो परछाईं की तरह उनके पीछे-पीछे लगी रहती थी, छेड़-छाड़ किया करती थी। न जाने उनके मनमें मेरी ओरसे क्या-क्या भावनाएँ उठी हों। पुरुषोंमें यह बड़ा अवगुण है कि हास्य और विनोदको कुवृत्तियोंसे अलग नहीं रख सकते। इसका पवित्र आनन्द उठाना उन्हें आता ही नहीं। स्त्री जरा हँसकर बोली और उन्होंने समझ लिया कि वह मुझपर लट्टू हो गयी। उन्हें ज़रासी उँगली पकड़नेको मिल जाय, फिर तो पहुँचा पकड़ते देर नहीं लगती। अगर ज्ञानशङ्कर यहाँ आनेपर तैयार हो गये, तो उन्हें यहीं रक्खूँगी। यहींसे वह इलाकेका प्रबन्ध करेंगे। जब कोई विशेष काम होगा तो शहर जायेंगे। वहाँ भी मैं उनसे दूर-दूर रहूँगी। भूलकर भी घरमें न बुलाऊँगी। नहीं, अब उन्हें उतनी धृष्ठता करनेका साहस ही न होगा। बेचारा कितना लज्जित था, मेरे सामने ताक न सकता था। स्टेशनपर मुझे विदा करने आया था, मगर दूर बैठा रहा, जबान तक न खोली।

गायत्री इन्हीं विचारोंमें मग्न थी कि एक चपरासीने आजकी डाक लाकर उसके सामने रख दी। डाकघर यहाँसे तीन कोस-पर था। प्रतिदिन एक बेगार डाक लेने जाया करता था।

गायत्रीने पूछा—वह आदमी कहाँ है? क्यों रे? अपनी मजूरी पा गया?

बेगार—हाँ सरकार, पा गया।

गायत्री—कम तो नहीं है?

बेगार—नहीं सरकार, खूब खानेभरको मिल गया।

गायत्री—कल तुम जाओगे कि कोई दूसरा आदमी ठीक किया जाय?

बेगार—सरकार मैं तो हाजिर ही हूँ, दूसरा क्यों जायेगा?

गायत्री चिट्ठियाँ खोलने लगी। अधिकांश चिट्ठियाँ सुगन्धित

तेल और अन्य औषधियोंके विज्ञापकोंकी थीं। गायत्रीने उन्हें उठाकर रद्दीकी टोकरीमें डाल दिया। एक पत्र राय कमलानन्दका था। इसे उसने उत्सुकतासे खोला और पढ़ते ही उसकी आँखें आनन्दपूर्ण गर्वसे चमक उठीं, मुखमंडल नवपुष्पके समान खिल गया। उसने तुरत वह पैकेट खोला जिसे वह अबतक किसी औषधालयका सूचीपत्र समझ रही थी। पूर्व पृष्ठ खोलते ही उसे अपना चित्र दिखाई दिया! पहले लेखका शीर्षक था "गायत्री देवी" लेखकका नाम था "ज्ञानशङ्कर बी० ए०" गायत्री अंग्रेजी कम जानती थी, लेकिन स्वाभाविक बुद्धिमत्तासे वह साधारण पुस्तकोंका आशय समझ लेती थी। उसने बड़ी उत्सुकतासे लेखको पढ़ना शुरू किया और यद्यपि २० पृष्ठोंसे कम न थे, पर उसने आध ही घण्टेमें सारा लेख समाप्त कर दिया और तब गौरवोन्मत्त नेत्रोंसे इधर-उधर देखकर एक लम्बी साँस ली। ऐसा आनन्दोन्माद उसे अपने जीवनमें शायद ही प्राप्त हुआ हो। उसका मानप्रेम कभी इतना उल्लसित न हुआ था। ज्ञानशङ्करने गायत्रीके चरित्र, उसके सद्गुणों और सत्कार्य्योंका इतनी कुशलतासे उल्लेख किया था कि भक्तिकी जगह लेखमें ऐतिहासिक गम्भीरताका रङ्ग आ गया था। इसमें सन्देह नहीं कि एक-एक शब्दसे श्रद्धा टपकती थी, किन्तु वाचकको यह विवेकहीन प्रशंसा नहीं, ऐतिहासिक उदारता प्रतीत होती थी। इस शैलीपर वाक्य-नैपुण्य सोनेमें सुगन्ध हो गया था। गायत्री बार-बार आईनेमें अपना स्वरूप देखती थी, उसके हृदयमें एक असीम उत्साह प्रवाहित हो रहा था; मानों वह विमानपर बैठी हुई स्वर्गको जा रही हो! उसकी धमनियोंमें रक्तकी जगह उच्च भावोंका सञ्चार होता हुआ जान पड़ता था। इस समय उसके द्वारपर भिक्षुकोंकी एक सेना भी होती तो निहाल हो जाती। कानूनगो साहब अगर आ जाते तो पाँच सौके बदले पाँच हजार ले भागते और पण्डित लेखराजका तखमीना दूना भी होता तो स्वीकार कर लिया।

जाता। उसने कई दिनसे यहाँके कारिन्देसे बात न की थी, उससे रूठी हुई थी। इस समय उसे अपराधियोंकी भाँति खड़े देखा तो प्रसन्नमुख होकर बोला, कहिये, मुन्शीजी, आजकल तो कच्चे घड़ेकी खूब छनती होगी। मुन्शीजी धीरे-धीरे सामने आकर बोले, हजूर जनेऊकी सौगन्द है, जबसे सरकारने मना कर दिया, मैंने उसकी सूरततक न देखी।

यह कहते हुए उन्होंने अपने साहित्यप्रेमका परिचय देनेके लिये पत्रिका उठा ली और पन्ने उलटने लगे। अकस्मात् गायत्री-का चित्र देखकर उछल पड़े। बोले, सरकार यह तो आपकी तस्वीर है। कैसा बनाया है कि अब बोली, अब बोली। क्या कुछ सरकारका हाल भी लिखा है?

गायत्रीने बेपरवाईसे कहा, हाँ, तस्वीर है तो हाल क्यों न होगा? कारिन्दा दौड़ा हुआ बाहर गया और यह खबर सुनाई। कई कारिन्दे और चपरासी भाजन बना रहे थे, कोई भंग पीस रहा था, कोई गा रहा था। सबके सब आकर तस्वीरपर टूट पड़े। छीना झपटी होने लगी, पत्रिकाके कई पन्ने फट गये। यों गायत्री किसीको अपनी किताबें छूने न देती थी, पर इस समय ज़रा भी न बोली।

एक मुँहलगे चपरासीने कहा, सरकार कुछ हम लोगोंको भी सुना दें।

गायत्री - यह मुझसे न होगा। सारा पोथा भरा हुआ है कहाँतक सुनाऊँगी? दो-चार दिनमें इसका अनुवाद हिन्दी पत्रमें छप जायेगा, तब पढ़ लेना।

लेकिन जब आदमियोंने एक स्वर होकर आग्रह करना शुरू किया तो गायत्री विवश हो गयी। इधर-उधरसे कुछ अनुवाद करके सुनाया। यदि उसे अंगरेजीकी अच्छी योग्यता होती तो कदाचित् वह अक्षरशः सुनाती।

एक कारिन्देने कहा, पत्रवालोंको न जाने यह सब हाल कैसे मिल जाते हैं।

दूसरे कारिन्देने कहा, उनके गोइन्दे सब जगह बिचरते रहते हैं। कहीं कोई बात हो, चट उनके पास पहुँच जाती है।

गायत्रीको इन वार्ताओंमें असीम आनन्द आ रहा था। प्रातःकाल उसने ज्ञानशंकरको एक विनयपूर्ण पत्र लिखा। इस लेखकी चर्चा न करके केवल अपनी विडम्बनाओंका वृत्तान्त लिखा और साग्रह निवेदन किया कि आप आकर मेरे इलाकेका प्रबंध अपने हाथमें लें, इस डूबती हुई नौकाको पार लगायें। उसका मनोमालिन्य मिट गया था। खुशामद अभिमानका सिर नीचा कर देती है। गायत्री अभिमानकी पुतली थी। ज्ञानशंकरने अपने श्रद्धाभावसे उसे वशीभूत कर लिया।

१६

ज्ञानशंकरको गायत्रीका पत्र मिला, तो फूले न समाये। हृदयमें भाँति-भाँतिकी मनोहर सुखद कल्पनाएँ तरंगें मारने लगीं। सौभाग्यदेवी जीवन-संकल्पकी भेंट लिये उनका स्वागत करनेको तैयार खड़ी थी। उनका मधुर-स्वप्न इतनी जल्द फलीभूत होगा, इसकी उन्हें आशा न थी। विधाताने एक बड़ी रियासतके स्वामी बननेका अवसर प्रदान कर दिया था। यदि अब भी वह इससे लाभ न उठा सकें तो उनका दुर्भाग्य।

किन्तु गोरखपुर जानेके पहले लखनपुरकी ओरसे निश्चिंत हो जाना चाहते थे। जबसे प्रेमशंकरने उनसे अपने हिस्सेका नफा माँगा था उनके मनमें नाना प्रकारकी शंकाएँ उठ रही थीं। लाला प्रभाशंकरका वहाँ आना-जाना और भी खटकता था। उन्हें सन्देह होता था कि यह बुड्ढा घाग अवश्य कोई-न-कोई दाँव खेल रहा है। यह पितृवत् प्रेम अकारण नहीं। प्रेमशंकर चतुर हों, लेकिन इस चाणक्यके सामने अभी लौंडे हैं। इनकी

कुटिल कामना यही होगी कि उन्हें फोड़कर लखनपूरके आठ आने, अपने लड़कोंके नाम हिब्बा करा ले या किसी दूसरे महाजनके यहाँ बय कराके बीचमें दस-पाँच हजारका रकम उड़ा ले। जरूर यही बात है, नहीं तो जब अपनी ही रोटियोंके लाले पड़े हैं, तो यह पकवान बन-बन न जाते, अब तो श्रद्धाही मेरी हारी हुई बाजीका फर्जी है। अब उसे यह पढ़ाऊँ कि तुम अपने गुजारेके लिये आधा लखनपूर अपने नाम करा लो, उनकी कौन चलाये, अकेले हैं हीं, न जाने कब कहीं चल दें, तो तुम कहींकी न रहो। यह चाल सीधी पड़ जाय तो अब भी लखनपूर अपना हो सकता है। श्रद्धाको तीर्थयात्रा करनेके लिये भेज दूँगा। एक-न-एक दिन मरही जायेगा। जीती भी रही, तो हरद्वारमें बैठी गंगास्नान करती रहेगी। लखनपूरकी ओरसे मुझे कोई चिन्ता न रहेगी।

यों निश्चय करके ज्ञानशङ्कर अन्दर गये। देवयोगसे श्रद्धा उनके इच्छानुसार अपने कमरेमें अकेली बैठी हुई मिल गयी। मायाको कई दिनसे ज्वर आ रहा था, विद्या अपने कमरेमें बैठी हुई उसे पंखा झल रही थी।

ज्ञानशङ्कर चारपाईपर बैठकर श्रद्धासे बोले, देखी चचासाहबकी धूर्तता। वह तो मैं पहले ही ताड़ गया था कि यह महाशय कोई-न-कोई स्वाँग रच रहे हैं। सुना है, लखनपूरके बय करनेकी बातचीत हो रही है।

श्रद्धा—(विस्मित होकर) तुमसे किसने कहा? चचासाहब को मैं इतना नीच नहीं समझती। मुझे पूरा विश्वास है, कि वह केवल प्रेमवश वहाँ आते-जाते हैं।

ज्ञान—यह तुम्हारा भ्रम है। यह लोग ऐसे निःस्वार्थ प्रेम करनेवाले जीव नहीं हैं। जिसने जीवनपर्यन्त दूसरोंको ही मूँड़ा हो, वह अब अपना गँवाकर भला क्या प्रेम करेगा? मतलब कुछ और ही है। भैयाका माल है, चाहे बेचें या रखें, चाहे चचासाहब को दे दें या लुटा दें। इसका उन्हें पूरा अधिकार है, मैं बीचमें

कूदनेवाला कौन होता हूँ ? हाँ, इतना अवश्य है कि तुम फिर कहींकी न रहोगी।

श्रद्धा—अगर तुम्हारा ही कहना ठीक हो, तो मेरा इसमें क्या बस है ?

ज्ञान—बस क्यों नहीं है ? आखिर तुम्हारे गुजारेका भार तो उन्हींपर है। तुम आठ आने लखनपूर अपने नाम लिखा सकती हो। भैयाको कोई आपत्ति नहीं हो सकती। तुम्हें संकोच हो तो मैं स्वयं जाकर उनसे मामला तै कर सकता हूँ। मुझे विश्वास है कि भैया इन्कार न करेंगे और करें भी तो मैं उन्हें कायल कर सकता हूँ। जब गाँव तुम्हारे नाम हो जायगा तब उन्हें बय करनेका अधिकार न रहेगा और चचासाहबकी दाल भी न गलेगी।

श्रद्धा विचारोंमें डूब गयी। जब उसने कई मिनटतक सिर न उठाया तब ज्ञानशङ्करने पूछा, क्या सोचती हो ? इसमें कोई हरज है ? जायदाद नष्ट हो जाय, वह अच्छा है या घरमें बनी रहे, वह अच्छा है ?

अब श्रद्धाने सिर उठाया और गौरवपूर्ण भावसे बोली, मैं ऐसा नहीं कर सकती। उनकी जो इच्छा हो वह करें, चाहे अपना हिस्सा बेच दें या रक्खें। वह स्वयं बुद्धिमान हैं जो उचित समझेंगे वह करेंगे। मैं उनके पाँवमें बेड़ी क्यों डालूँ ?

ज्ञानशङ्करने रुष्ट होकर उत्तर दिया, लेकिन यह सोचा है कि जायदाद निकल गयी तो तुम्हारा निर्वाह क्योंकर होगा ? वह कल ही फिर अमेरिकाकी राह लें, तो ?

श्रद्धा—मेरी कुछ चिन्ता न करो। वह मेरे स्वामी हैं, जो कुछ करेंगे उसीमें मेरी भलाई है। मुझे विश्वास ही नहीं होता, कि वह मुझे निरवलम्ब छोड़ जायेंगे।

ज्ञान—तुम्हारी जैसी इच्छा। मैंने ऊँच-नीच सुझा दिया, अगर पीछेसे कोई बात बने-बिगड़े तो मेरे सिर दोष न रखना।

ज्ञानशङ्कर बाहर आये, उनका चित्त उद्विग्न हो रहा था।

श्रद्धाके संतोष और पतिभक्तिने उन्हें एक नयी उलझनमें डाल दिया। यह तो उन्हें मालूम था कि श्रद्धा मेरे प्रस्तावको सुगमतासे स्वीकार न करेगा, लेकिन उसमें इतना दृढ़ त्याग भाव है, इसका उन्हें पता न था। अपने मानव प्रकृति-ज्ञानपर उन्हें घमण्ड था। श्रद्धाके त्याग-भावने उसे चूर कर दिया। ओह! स्त्रियाँ कितनी अविवेकिनी होती हैं। मैंने महीनों इसे तोतेकी भाँति पढ़ाया, उसका यह फल! वह अपने कमरेमें देरतक बैठे सोचते रहे कि क्योंकर यह गुत्थी सुलझे? वह आज ही इस दुविधाका अन्त करना चाहते थे। यदि वह श्रद्धाका भार मुझपर छोड़ना चाहते हैं, तो उन्हें लखनपूर उसके नाम लिखाना पड़ेगा। मैं उन्हें मजबूर करूँगा। खूब खुली-खुली बातें होंगी। इसी असमंजसमें वह घरसे निकले और हाजीपुरकी ओर चले। रास्तेभर वह इसी चिन्तामें पड़े रहे। यह संकोच भी होता था कि इतने दिनों बाद मिलने भी चला तो स्वार्थवश होकर। प्रेमशङ्कर हाजीपुर रहने लग गये थे, ज्ञानबाबूने एक बार भी वहाँ जानेका कष्ट न उठाया था। कभी-कभी अपने घरपर ही उनसे मुलाकात हो जाती थी। मगर इधर ३ ४ महीनोंसे दोनों भाइयोंमें भेंट हो न हुई थी।

ज्ञानशङ्कर हाजीपुर पहुँचे तो शाम हो गयी थी। पूसका महीना था। खेतोंमें चारों ओर हरियाली छायी हुई थी, सरसों मटर, कुसुम, अलसीके नीले-पीले फूल अपनी छटा दिखा रहे थे। कहीं चञ्चल तोतोंके झुण्ड थे, कहीं उचक्के कौवोंके गोल। जगह-जगहपर सारसके जोड़े अहिंसापूर्ण विचारमें मग्न खड़े थे। युवतियाँ सिरोंपर घड़े रक्खे नदीसे पानी ला रही थीं, कोई खेतमें बथुएका साग तोड़ रही थी, कोई बैलोंको खिलानेके लिये हरियालीका गट्ठा सिरपर रक्खे चली आती थी। सरल, शान्तिमय जीवनका पवित्र दृश्य था। शहरकी चिल्ल-पों, दौड़धूपके सामने यह शांति अतीव सुखद प्रतीत होती थी।

ज्ञानशङ्कर एक आदमीके साथ प्रेमशङ्करके झोंपड़ेमें आये तो वहाँकी सुरम्य शोभा देखकर चकित हो गये। नदीके किनारे एक ऊँचे और विस्तृत टीलेपर लताओं और बेलोंसे सजा हुआ ऐसा जान पड़ता था, मानों किसी उच्चात्माका संतोषपूर्ण हृदय है। झोंपड़ेके सामने जहाँतक निगाह जाती थी, प्रकृतिकी पुष्पित और पल्लवित छटा दिखाई देती थी। प्रेमशङ्कर झोंपड़ेके सामने खड़े बैलोंको चारा डाल रहे थे। ज्ञानशङ्करको देखते ही बड़े प्रेमसे गले मिले और घरका कुशल-समाचार पूछनेके बाद बोले, तुम तो जैसे मुझे भूल ही गये, इधर आनेकी कसम खा ली।

ज्ञानशङ्करने लज्जित होकर कहा, यहाँ आनेका विचार तो कई दिनसे था, पर अवकाश ही नहीं मिलता था। इसे अपने दुर्भाग्यके सिवा और क्या कहूँ ? आप मुझसे इतने समीप हैं, फिर भी हमारे बीचमें सौ कोसका अन्तर है। यह मेरी नैतिक दुर्बलता और बिरादरीका लिहाज है। मुझे बिरादरीके हाथों जितने कष्ट झेलने पड़े, वह मैं ही जानता हूँ। यह स्थान तो बड़ा रमणीक है। यह खेत किसके हैं ?

प्रेमशङ्कर—इसी गाँवके असामियोंके हैं। तुम्हें तो मालूम होगा, सावनमें यहाँ बाढ़ आ गयी थी। सारा गाँव डूब गया था, कितने ही बैल बह गये, यहाँतक कि झोपड़ोंका भी पता न चला। तबसे लोगोंको सहकारिताकी जरूरत मालूम होने लगी है। सब असामियोंने मिलकर यह बाँध बना लिया है और यह साठ बीघेका चक निकल आया। इसके चारों ओर ऊँची मेड़ें खींच दी हैं। जिसके जितने बीघे खेत हैं, उसी परतेसे बीज और मजदूरी ली जायेगी। उपज भी उसी परतेसे बाँट दी जायेगी। मुझे लोगोंने प्रबन्धकर्त्ता बना रक्खा है। इस ढङ्गसे काम करनेसे बड़ी किफायत होती है। जो काम १० मजूर करते थे, वही काम ६।७ मजूरोंसे पूरा हो जाता है। जुताई और सिंचाई भी उत्तम

रीतिसे हो सकती है। तुमने गायत्रीदेवीका वृत्तान्त खूब लिखा। मैं पढ़कर मुग्ध हो गया।

ज्ञान—उन्होंने मुझे अपनी रियासतका प्रबन्ध करनेको बुलाया है। मेरे लिये यह बड़ा अच्छा अवसर है। लेकिन जाऊँ कैसे? माया और उसकी माँको तो साथ ले जा सकता हूँ, किन्तु भाभी किसी तरह जानेपर राजी नहीं हो सकतीं। शिकायत नहीं करता, लेकिन चाचीसे आजकल उनका बड़ा मेलजोल है। चाची और उनकी बहू दोनों ही उनके कान भरती हैं। उनका सरल स्वभाव है। दूसरोंकी बातोंमें आ जाती हैं। आजकल दोनों महिलाएँ उन्हें दम दे रही हैं कि लखनपूरका आधा हिस्सा अपने नाम करा लो, कौन जाने, तुम्हारे पीछे फिर विदेशकी राह लें, तो तुम कहींकी न रहो। चचासाहब भी उसी गोष्ठीमें हैं। आज ही कलमें वह लोग यह प्रस्ताव आपके सामने लायेंगे। इसलिये आपसे मेरी विनीत प्रार्थना है, कि इस विषयमें आप जो करना चाहते हों, उससे मुझे सूचित कर दें। आपके ही फैसलेपर मेरे जीवनकी सारी आशाएँ निर्भर हैं। यदि आपने अपने हिस्सेको बय करनेका निश्चय कर लिया हो, तो मैं अपने लिये कोई और राह निकालूँ।

प्रेमशङ्कर—चचासाहबके विषयमें तुम्हें जो सन्देह है, वह सर्वथा निर्मूल है। उन्होंने आजतक कभी मुझसे तुम्हारी शिकायत नहीं की। उनके हृदयमें सन्तोष है और चाहे उनका अवस्था अच्छी न हो, पर वह उससे असन्तुष्ट नहीं जान पड़ते। रहा लखनपूरके सम्बन्धमें मेरा इरादा। मैं यह सुनना ही नहीं चाहता कि मैं उस गाँवका जमींदार हूँ। तुम मेरी ओरसे निश्चन्त रहो। यही समझ लो, कि मैं हूँ ही नहीं। मैं अपने श्रमकी रोटी खाना चाहता हूँ। बीचका दलाल बनना नहीं चाहता। अगर सरकारी पत्रोंमें मेरा नाम दर्ज हो गया तो मैं इस्तीफा देनेको तैयार हूँ, तुम्हारी भाभीके जीवन-निर्वाहका भार तुम्हारे ऊपर

रहेगा। मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा, तुम्हारी सहायता करता रहूँगा।

ज्ञानशङ्कर भाईकी यह बातें सुनकर विस्मित हो गये। यद्यपि इन विचारोंमें मौलिकता न थी, उन्होंने साम्यवादके ग्रन्थोंमें इनका विवरण देखा था, लेकिन उनकी समझमें यह केवल मानव-समाजका आदर्शमात्र था। इस आदर्शको व्यावहारिक रूपमें देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वह अगर इस विषयपर तर्क करना चाहते तो अपनी सबल युक्तियोंसे प्रेमशङ्करको निरुत्तर कर देते। लेकिन यह समय इन विचारोंके समर्थन करनेका था, न कि अपनी वाक्पटुता दिखानेका। बोले, भाई साहब! यह समाज-सङ्गठनका महान् आदर्श है और मुझे गर्व है कि आप केवल विचारसे नहीं, व्यवहारसे भी उसके भक्त हैं। अमेरिकाकी स्वतन्त्र भूमिमें इन भावोंका जाग्रत होना स्वाभाविक है। यहाँ तो घरसे बाहर निकलनेकी नौबत ही नहीं आयी। आत्मबल और बुद्धिसामर्थ्यसे भी वञ्चित हूँ। मेरे संकल्प इतने पवित्र और उत्कृष्ट क्योंकर हो सकते हैं? मेरी संकीर्ण दृष्टिमें तो यही जमींदारी, जिसे आप (मुस्कुराकर) बीचकी दलाली समझते हैं, जीवनका सर्वश्रेष्ठ रूप है। हाँ, सम्भव है आगे चलकर आपके सत्सङ्गसे मुझमें भी सद्विचार उत्पन्न हो जायँ।

प्रेम—तुम अपने ही मनमें विचार करो। यह कहाँका न्याय है कि मिहनत तो कोई करे, उसकी रक्षाका भार किसी दूसरेपर हो, और रुपये उगाहें हम?

ज्ञान—बात तो यथार्थ है, लेकिन परम्परासे यह परिपाटी ऐसी चली आती है कि इसमें किसी प्रकारका संशोधन करनेका ध्यान ही नहीं होता।

प्रेम—तो तुम्हारा गोरखपुर जानेका कबतक इरादा है?

ज्ञान—पहले आप मुझे इसका पूरा विश्वास दिला दें कि कल्याणपूरके सम्बन्धमें आपने जो कहा है वह निश्चयात्मक है।

प्रेम—उसे तुम अटल समझो। मैंने तुमसे एक बार अपने हिस्सेका मुनाफा माँगा था। उस समय मेरे विचार इतने पक्के न थे। मेरा हाथ भी बहुत तंग था। उसपर मैं बहुत लज्जित हूँ। ईश्वरने चाहा तो अब तुम मुझे इस प्रतिज्ञापर दृढ़ पाओगे।

ज्ञान—तो मैं होली तक गोरखपुर चला जाऊँगा। कोई हरज न हो तो आप भी घर चलें। माया आपको बहुत पूछा करता है।

प्रेम—आज तो अवकाश नहीं है, फिर कभी आऊँगा।

ज्ञानशङ्कर यहाँसे चले तो उनका चित्त बहुत प्रसन्न था। बहुत दिनोंके बाद मेरे मनकी अभिलाषा पूरी हुई। अब मैं पूरे लखनपूरका स्वामी हूँ। यहाँ अब कोई मेरा हाथ पकड़नेवाला नहीं। जो चाहूँ, निर्विघ्न कर सकता हूँ। भैया वचनके पक्के हैं, वह अब कदापि दुलख नहीं सकते। वह इस्तीफा लिख देते तो बात और भी पक्की हो जाती; लेकिन इसपर जोर देनेसे मेरी क्षुद्रता प्रकट होगी। अभी इतना ही बहुत है, आगे चलकर देखा जायेगा।

२०

ज्ञानशंकर लगभग दो बरससे लखनपूरपर इजाफा लगान करनेका इरादा कर रहे थे, किन्तु हमेशा उनके सामने एक-न-एक बाधा आ खड़ी होती थी। कुछ दिन तो अपने चचासे अलग होनेमें लगे। जब उधरसे बेफिक्र हुए तो लखनऊ जाना पड़ा। इधर प्रेमशङ्करके आ जानेसे एक नयी समस्या उपस्थित हो गयी। इतने दिनोंके बाद अब उन्हें मनोनीत सुअवसर हाथ लगा। कागज पत्र पहलेसे ही तैयार थे। नालिशोंके दायर होनेमें विलंब न हुआ।

लखनपूरके लोग मुचलकेके कारण बिगड़े हुए थे ही, यह नयी विपत्ति सिरपर पड़ी तो और भी झल्ला उठे। मुचलकेकी

मियाद इसी महीनेमें समाप्त होनेवाली थी। वह स्वच्छन्दतासे जवाबदेही कर सकते थे। सारे गाँवमें एका हो गया। आग-सी लग गयी। बूढ़े कादिर खाँ भी, जो अपनी सहिष्णुताके लिये बदनाम थे, धीरतासे काम न ले सके। भरी हुई पंचायतमें, जो जमींदारका विरोध करनेके उद्देश्यसे बैठी थी, बोले—इसी धरतीमें सब कुछ होता है और सब कुछ इसीमें समा जाता है। हम भी इसी धरतीसे पैदा हुए हैं और एक दिन इसीमें समा जायेंगे। फिर यह चोट क्यों सहें? धरतीके ही लिये छत्रधारियोंके सिर गिर जाते हैं, हम भी अपने सिर गिरा देंगे। इस काममें सहायता करना गाँवके सब प्राणियोंका धर्म है, जिससे जो कुछ हो सके दे। सब लोगोंने एक स्वरसे कहा, हम सब तुम्हारे साथ हैं, जिस रास्ते कहोगे चलेंगे और इस धरतीपर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देंगे।

निस्सन्देह गाँववालोंको मालूम था कि जमींन्दारको इजाफा करनेका पूरा अधिकार है, लेकिन वह यह भी जानते थे कि यह अधिकार उसी दशामें होता है, जब जमींन्दार अपने प्रयत्नोंसे भूमिकी उत्पादक शक्ति बढ़ा दे। इस निर्मूल इजाफेको सभी अनर्थ समझते थे।

ज्ञानशंकरने गाँवमें यह एका देखा तो चौंके, लेकिन कुछ तो अपने दबाव और कुछ हाकिम परगना मिस्टर ज्वालासिंहके सहवासी होनेके कारण उन्हें अपनी सफलतामें विशेष संशय न था, लेकिन जब दावेकी सुनवायी हो चुकनेके बाद जवाबदेही शुरू हुई, तो ज्ञानशङ्करको विदित हुआ कि मैं अपनी सफलताको जितना सुलभ समझता था उससे कहीं अधिक कष्टसाध्य है। ज्वालासिंह कभी-कभी ऐसे प्रश्न कर बैठते और असामियोंके प्रति ऐसा दयाभाव प्रकट करते कि उनकी अभिरुचिका साफ पता चल जाता था। दिनोंदिन अवस्था ज्ञानशङ्करके विपरीत होती जाती थी। वह स्वयं तो कचहरी न जाते, लेकिन प्रति दिनका

विवरण बड़े ध्यानसे सुनते थे। ज्वालासिंह दाँत पीसकर रह जाते। ये महापुरुष मेरे सहपाठियोंमें हैं। हम और यह बरसों-तक साथ-साथ खेले हैं। हँसी-दिल्लगी, धौल-धप्पा सभी कुछ होता था। आज जो जरा अधिकार मिल गया तो ऐसे तोतेकी भाँति आँखें फेर लीं, मानों कभीका परिचय ही नहीं है।

अन्तमें जब उन्होंने देखा कि अब यत्न न किया गया तो काम बिगड़ जायगा, तब उन्होंने एक दिन ज्वालासिंहसे मिलने-का निश्चय किया। कौन जाने मुझपर रोब जमानेके ही लिये यह जाल फैला रहे हों। यद्यपि वह जानते थे, कि ज्वालासिंह किसी मुकद्दमेकी जाँचकी अवधिमें बादियोंसे बहुत कम मिलते हैं, तथापि स्वार्थपरताकी धुनमें उन्हें इसका भी ध्यान न रहा। सन्ध्या समय उनके बँगलेपर जा पहुँचे।

ज्वालासिंहको इन दिनों सितारका शौक हुआ था। उन्हें अपनी शिक्षामें यह विशेष त्रुटि जान पड़ती थी। एक गत बजानेकी बार-बार चेष्टा करते, पर तारोंका स्वर न मिलता था। कभी यह कील घुमाते; कभी वह कील ढीली करते कि ज्ञान-शङ्करने कमरेमें प्रवेश किया। ज्वालासिंहने सितार रख दिया। और उनसे गले मिलकर बोले, आइये भाई जान, आइये, कई दिनोंसे आपकी याद आ रही थी। आजकल तो आपका लिटरेरी उमंग बढ़ा हुआ है। मैंने गायत्रीदेवीपर आपका लेख देखा। बस, यही जी चाहता था, आपका कलम चूम लूँ। यहाँ सारी कचहरीमें उसीकी चर्चा है। ऐसा ओज, ऐसा प्रसादगुण, इतना प्रतिभा, इतना प्रवाह बहुत कम किसी लेखमें दिखाई देता है। कल मैं साहब बहादुरसे मिलने गया था। उनकी मेजपर वही पत्रिका पड़ी हुई थी। जाते ही जाते उसी लेखकी चर्चा छेड़ दी। वे लोग बड़े गुणग्राही होते हैं। यह कहाँसे ऐसे चुने हुए शब्द और मुहाविरे लाकर रख देते हो, मानों किसीने सुन्दर फूलोंका गुलदस्ता सजा दिया हो।

ज्वालासिंहकी प्रशंसा उस रईसकी प्रशंसा थी जो अपने कलावन्तके मधुर गानपर मुग्ध हो गया हो। ज्ञानशङ्करने सकुचाते हुए पूछा, साहब क्या कहते थे?

ज्वाला—पहले तो पूछने लगे, यह कौन आदमी है? जब मैंने कहा, यह मेरे सहपाठी और साथके खिलाड़ी हैं तब उसे और भी दिलचस्पी हुई। पूछा, क्या करते हैं, कहाँ रहते हैं? मेरी समझमें देहाती बैंकोंके सम्बन्धमें आपने जो रिमार्क किये हैं, उनका उनपर बड़ा असर हुआ है।

ज्ञान—(मुस्कुराकर) भाई जान, आपसे क्या छिपाएँ, वह टुकड़ा मैंने एक अंगरेजी पत्रिकासे कुछ काट-छाँटकर नकल कर लिया था। (सावधान होकर) कमसे कम वह विचार मेरे न थे।

ज्वाला—आपको हवाला देना चाहिये था।

ज्ञान—विचारोंपर किसीका अधिकार नहीं होता। शब्द तो अधिकांश मेरे ही थे।

ज्वाला—गायत्रीदेवी तो बहुत प्रसन्न हुई होंगी। कुछ वरदान भी देंगी या नहीं?

ज्ञान—उनका एक पत्र आया है। अपने इलाकेका प्रबन्ध मेरे हाथोंमें देना चाहती हैं।

ज्वाला—वाह, क्या कहने, वेतन भी ५००) से कम न होगा।

ज्ञान—वेतनका तो जिक्र न था। शायद इतना न दे सकें।

ज्वाला—भैया, अगर वहाँ ३००) भी मिलें तो आप हमलोगोंसे अच्छे रहेंगे। खूब सैरसपाटे कीजिये, मोटर दौड़ाते फिरिये, और काम ही क्या है? हम लोगोंकी भाँति कागजका एक पुलिन्दा तो सिरपर लादकर घर न लाना पड़ेगा। वहाँ कबतक जानेका विचार है?

ज्ञान—जानेको तो मैं तैयार बैठा हूँ, लेकिन जब आप गला छोड़ें ...।

ज्वालासिंहने बात काटकर कहा, फ़ैमिलीको भी साथ ले जाइयेगा न ? अवश्य ले जाइये। मैंने भी एक सप्ताह हुए स्त्रीको बुला लिया है। इस ऊजड़में भूतकी तरह अकेला पड़ा रहता था।

ज्ञान—अच्छा, तो भाभी आ गयीं ? बड़ा आनन्द रहेगा। कालेजमें तो आप परदेके बड़े विरोधी थे।

ज्वाला—अब भी हूँ,पर विपत्ति यह कि किसी अन्य पुरुषके सामने आते हुए उनके प्राण निकलसे जाते हैं। अरदली और दूसरे नौकरोंसे निस्संकोच बातें करती हैं, लेकिन मेरे मित्रोंकी परिछाईं से भी भागती हैं। खींच-खाँचके लाऊँ भी तो सिर झुकाकर अपराधियोंकी भाँति खड़ी रहेंगी।

ज्ञान—अरे, तो क्या मेरी गिन्ती भी उन्हीं मित्रोंमें है ?

ज्वाला—अभी तो आपसे भी झिझकेंगी। हाँ, आपसे दो-चार बार मुलाकात हो, आपके घरकी स्त्रियाँ भी आने लगें, तो संभव है, आपसे संकोच न रहे। क्यों न मिसेज़ ज्ञानशङ्करको कल यहाँ भेज दीजिये। गाड़ी भेज दूँगा। आपकी वाइफ़को तो कोई आपत्ति न होगी ?

ज्ञान—जी नहीं, वह बड़े शौक़से आयेंगी।

ज्ञानशङ्करको अपने मुकदमेके सम्बन्धमें और कुछ कहनेका अवसर न मिला,लेकिन वहाँसे चले तो बहुत खुश थे। स्त्रियोंके मेल-जोलसे इन महाशयकी नकेल मेरे हाथोंमें आ जायेगी। जिस कलको चाहूँ घुमा सकता हूँ। उन्हें अब अपनी सफलतामें कोई संशय न रहा। लेकिन जब घरपर आकर उन्होंने विद्यासे यह चर्चा की तो वह बोली, मुझे तो वहाँ जाते झेंप होती है, न कभी-की जान न पहचान, न रीति न व्यवहार। मैं वहाँ जाकर क्या बातें करूँगी ? गूँगी बनी बैठी रहूँगी, तुमने मुझसे न पूछा न ताछा, वादा कर आये।

ज्ञान—मिसेज़ ज्वालासिंह बड़ी मिलनसार हैं, उनसे मिल-कर तुम्हें बड़ा आनन्द आयेगा।

विद्या—अच्छा, और मुन्नीको (छोटी लड़कीका नाम था) क्या करूँगी ? यह वहाँ रोये-चिल्लाये और उन्हें बुरा लगे तो ?

ज्ञान—महरीको साथ लेती जाना। वह लड़कीको बाहर बगीचेमें बहलाती रहेगी।

विद्या बहुत कहने-सुननेसे अन्तमें जानेपर राजी हो गयी। प्रातःकाल ज्वालासिंहकी गाड़ी आ गयी। विद्या बड़े ठाटसे उनके घर गयी। दस बजते-बजते लौटी। ज्ञानशङ्करने बड़ी उत्सुकतासे पूछा, कैसे मिलीं ?

विद्या—बहुत अच्छी तरह। स्त्री क्या हैं, देवी हैं। ऐसी हँसमुख, स्नेहमयी स्त्री तो मैंने देखी ही नहीं। छोड़ती ही न थीं। बहुत जिद की तो आने दिया। मुझे बिदा करने लगीं तो उनकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। मैं भी रो पड़ी। उर्दू, अंगरेजी सब पढ़ी हुई हैं। बड़ा सरल स्वभाव है। महरियोंतकको तू नहीं कहतीं। शीलमणि नाम है।

ज्ञान—कुछ मेरी चर्चा भी हुई ?

विद्या—हाँ, हुई क्यों नहीं ? कहती थीं मेरे बाबूजीके पुराने दोस्त हैं। तुम्हें उस दिन खिड़की आड़से देखा था। तुम्हारी अचकन उन्हें पसन्द नहीं। हँसकर बोलीं, अचकन क्या पहनते हैं, मुसलमानोंका पहनावा है। कोट क्यों नहीं पहनते ?

ज्ञानशङ्करकी आशा और भी उद्दीप्त हुई, लेकिन जब मुकदमा फिर तारीखपर पेश हुआ तो ज्वालासिंहके व्यवहारमें जरा भी अंतर न था। बार-बार मुद्दईके गवाहोंसे अविश्वास सूचक प्रश्न करते, मुद्दई वकीलके प्रश्नोंपर शंकाएँ करते। ज्ञानशङ्करने शामको यह समाचार सुना तो चकित हो गये। यह तो विचित्र आदमी है। इधर भी चलता है उधर भी। मुझे नचाना चाहता है। यह पद पाकर दोरंगी चाल चलना सीख गया है। जीमें आया, चलकर साफ-साफ कह दूँ मित्रोंसे यह कपट अच्छा नहीं। या तो दुश्मन बन जाओ या दोस्त बने रहो, यह क्या कि

मनमें कुछ और मुखमें कुछ और ! इसी असमंजसमें एक सप्ताह गुज़र गया। दूसरी तारीख निकट आती-जाती थी। ज्ञानशङ्करका चित्त बहुत उद्विग्न था। उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया था कि अगर इन्होंने फिर वही दोरङ्गी चाल चली, तो अपना मुकदमा किसी दूसरे इजलासमें उठा ले जाऊँगा। दबूँ क्यों ?

लेकिन जब दूसरी तारीखको ज्वालासिंहने लखनपूर जाकर मौकेकी जाँच करनेके लिये फिर तारीख बढ़ा दी तो ज्ञानशंकर झुँझला उठे। क्रोधमें भरे हुए विद्यासे बोले, देखा तुमने इनकी शरारत ? अब मौकेकी जाँच करने जा रहे हैं। अब नहीं रहा जाता, जाता हूँ, जरा दो-दो बातें कर आऊँ।

विद्या—तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो ? क्या जाने वह दूसरोंको दिखानेके लिये यह स्वांग भर रहे हों। अपनी बदनामीको सभी डरते हैं।

ज्ञान—तो आखिर कबतक मैं फैसलेका इन्तजार करता रहूँ ? यहाँ बैठे-बैठे मेरी कई सौ रुपये महीनेकी हानि हो रही है।

ज्ञानशङ्करने अभीतक विद्यासे गायत्रीके अनुरोधकी ज़रा भी चर्चा न की थी। इस समय सहसा मुँहसे बात निकल गयी। विद्याने चौंककर पूछा, हानि कैसी हो रही है ?

ज्ञानशङ्करने देखा, अब बातें बनानेसे काम न चलेगा और फिर कबतक छिपाऊँगा। बोले, मुझे याद आता है, मैंने तुमसे गायत्रीदेवीके पत्रका जिक्र किया था। उन्होंने मुझे अपनी रियासतका मैनेजर बनानेका प्रस्ताव किया है और जल्द बुलाया है।

विद्या—तुमने स्वीकार भी कर लिया ?

ज्ञान—क्यों न करता, क्या कोई हानि थी ?

विद्या—जब तुम्हें स्वयं इतनी मोटी-सी बात भी नहीं सूझती तो मैं और क्या कहूँ ? भला सोचो तो दुनिया क्या कहेगी ! लोग यही समझेंगे कि अबला विधवा है, नातेदार जमा होकर लूटे खाते हैं। तुम चाहे कितने ही निःस्पृह भावसे काम करो,

लेकिन बदनामीसे न बच सकोगे, अभी वह तुम्हारी बड़ी साली है, तुमसे कितना प्रेम करती है, तुम्हारा कितना सत्कार करती है, कितनी ही बार तुम्हारी चारपाईतक बिछा दी है। इस उच्चासनसे गिरकर अब तुम उनके नौकर हो जाओगे और मुझे भी बहिनके पदसे गिराकर नौकरानी बना दोगे। मान लिया कि वह अब भी तुम्हारी खातिर करेंगी, लेकिन वह मृदुभाव कहाँ? लोग उनसे तुम्हारा जा-बेजा शिकायतें करेंगे। मुलाहिजेके मारे वह तुमसे कुछ न कह सकेंगी, मन-ही-मन कुढ़ेंगी। मैं तुम्हें नौकरीके विचारसे जानेकी कभी सलाह न दूँगी।

ज्ञान—कह चुकी या कुछ और कहना है?

विद्या—कहने-सुननेकी बात नहीं है, मुझे तुम्हारा वहाँ जाना सर्वथा अनुचित जान पड़ता है।

ज्ञान—अच्छा तो अब मेरी बात सुनो। मुझे वर्त्तमान और भविष्यकी अवस्थाका विचार करके यही उचित जान पड़ता है कि इस अवसरको हाथसे न जाने दूँ। जब मैं जी तोड़कर काम करूँगा, दोकी जगह एक खर्च करूँगा, एककी जगह दो जमा करके दिखाऊँगा, तो गायत्री बावली नहीं है कि अनायास मुझपर सन्देह करने लगे। और फिर मैं केवल नौकरीके इरादेसे नहीं जाता, मेरे विचार कुछ और ही हैं।

विद्याने सशंक दृष्टिसे ज्ञानशङ्करको देखकर पूछा, और क्या विचार है?

ज्ञान—मैं ऐसी समृद्धिपूर्ण रियासतको दूसरोंके हाथोंमें नहीं देखना चाहता? गायत्रीके बाद जब उसपर दूसरोंका ही अधिकार होगा तो मेरा क्यों न हो?

विद्याने कुतूहलसे देखकर कहा, तुम्हारा क्या हक है?

ज्ञान—मैं अपना हक जमाया चाहता हूँ। अब चलता हूँ, जरा ज्वालासिंहसे निबटता आऊँ।

विद्या—उनसे क्या निबटोगे? उन्होंने कोई रिश्वत ली है?

ज्ञान—तो फिर इतना मित्रभाव क्यों दिखाते हैं ?

विद्या—यह उनकी सज्जनता है। यह आवश्यक नहीं, कि वह आपके मित्र हों तो आपके लिये दूसरोंपर अन्याय करें।

ज्ञान - यही बात मैं उनके मुँहसे सुनना चाहता हूँ। इसका मुँहतोड़ जवाब मेरे पास है।

विद्या—अच्छा तो जाओ, जो जीमें आये, करो। फिर मुझसे क्यों सलाह लेते हो ?

ज्ञान—तुमसे सलाह नहीं लेता, तुममें इतनी ही बुद्धि होती तो फिर रोना काहेका था ? स्त्रियाँ बड़े-बड़े काम कर दिखाती हैं। तुमसे इतना भी न हो सका कि शीलमणिसे इस मुकदमेके सम्बन्धमें कुछ बातचीत करती, तुम्हारी तो ज़रा-ज़रा-सी बात में मान-हानि होने लगती है।

विद्या—हाँ, मुझसे यह सब नहीं हो सकता। अपना स्वभाव ही ऐसा नहीं है।

ज्ञान—क्यों, इसमें क्या हरज था, अगर तुम एक बार हँसी-हँसीमें कह देती कि तुम्हारे बाबूजी हमारा हजारों रुपये साल-की क्षति कराये देते हैं, ज़रा उनको समझा क्यों नहीं देतीं ?

विद्या—मुझे यह बातें बनानी नहीं आतीं, क्या करूँ ? मैं इस विषयमें शीलमणिसे कुछ कह नहीं सकती।

ज्ञान—चाहे दावा खारिज़ हो जाय !

विद्या - चाहे जो कुछ हो।

ज्ञानशङ्कर बाहर आये तो सामने एक नयी समस्या आ खड़ी हुई। विद्याको कैसे राजी करूँ ? यह मानता हूँ कि सम्बन्धियोंके यहाँ नौकरी करनेसे कुछ हेठी अवश्य होती है, लेकिन इतनी नहीं कि कोई उसके लिये चिरकालके मन्सूबोंको मिटा दे। विद्याकी यह बुरी आदत है कि जिस बातपर अड़ जाती है उसे किसी तरहसे नहीं छोड़ती। मैं उधर चला जाऊँ और इधर यह रायसाहबसे मेरी शिकायत कर दे तो बना-बनाया काम

बिगड़ जाय। अब यह पहलेकीसी सरला नहीं है। उसमें दिनों-दिन आत्मसम्मानकी मात्रा बढ़ती जाती है। इसे नाराज करनेका यह अवसर नहीं।

वह इस चिन्तामें बैठे हुए थे कि शीलमणिकी सवारी आ पहुँची। ज्ञानशङ्करने निश्चय किया कि स्वयं चलकर उससे अपना समाचार कहूँ। अभी तीनों महिलाएँ कुशल सामाचार ही पूछ रही थीं कि वह कुछ झिझकते हुए ऊपर आये और कमरेके द्वारपर चिलमनके सामने खड़े होकर शीलमणिसे बोले, भाभीजीको प्रणाम करता हूँ।

विद्या उनका आशय समझ गयी। लज्जासे उसका मुखमंडल अरुण वर्ण हो गया। वह वहाँसे उठकर ज्ञानशङ्करको अवहेला-पूर्ण नेत्रोंसे देखते हुए दूसरे कमरेमें चली गयी। श्रद्धा मध्यस्थ-का काम करनेके लिये रह गयी।

ज्ञानशङ्कर बोले, भाईसाहब तो परदेके भक्त नहीं हैं, और जब हमलोगोंमें इतनी घनिष्ठता हो गयी है, यह हिजाब उठ जाना चाहिये। मुझे आपसे कितनी ही बातें कहनी हैं। परमात्माने आप-को शील और विनयके गुणोंसे विभूषित किया है, इसीलिये मुझे आपसे एक निजके मामलेमें जबान खोलनेका साहस हुआ है। मुझे विश्वास है कि आप उसकी अवज्ञा न करेंगी। मेरा एक इजाफा लगानका मुकदमा भाईसाहबके इजलासमें दो महीनोंसे पेश है। मैं उनका इतना अदब करता हूँ कि इस विषयमें उनसे कुछ कहते हुए सङ्कोच होता है। यद्यपि वह मुझे भाई समझते हैं, लेकिन किसी कारणसे उन्हें भ्रम होता हुआ जान पड़ता है कि मेरा दावा झूठा है और मुझे भय है कि कहीं वह उसे खारिज न कर दें। इसमें सन्देह नहीं कि दावेको खारिज करनेका उन्हें बहुत दुःख होगा, लेकिन शायद उन्हें अबतक मेरी वास्तविक दशाका ज्ञान नहीं है। वह यह नहीं जानते कि इससे मेरा कितना अप-मान और कितना अनिष्ट होगा। आजकलकी जमींदारी एक बला

है। जीवनकी सामग्रियाँ दिनोंदिन महँगी होती जाती हैं और मेरी आमदनी आज भी वही है, जो तीस वर्ष पहले थी। ऐसी अवस्थामें मेरे उद्धारका इसके सिवा और क्या उपाय है कि असामियोंपर इजाफ़ा लगान करूँ। अन्न मोतियोंके मोल बिक रहा है। कृषकोंकी आमदनी दुगुनी, बल्कि तिगुनी हो गयी है। यदि मैं उनकी बढ़ी हुई आमदनीमेंसे एक हिस्सा माँगता हूँ तो क्या अन्याय करता हूँ? अगर मेरी जीत हुई तो सहजमेंही मेरी आमदनी एक हजार बढ़ जायेगी। हार हुई तो असामियोंकी निगाहमें गिर जाऊँगा। वह शेर हो जायेंगे और बात-बातपर मुझसे उलझेंगे। तब मेरे लिये इसके सिवा और कोई मार्ग न रहेगा कि जमींदारीसे इस्तीफा दे दूँ और मित्रोंके सिर जा पड़ूँ। (मुस्कुराकर) आपहीके द्वारपर अड्डा जमाऊँगा और यदि आप मार-मारकर हटायें, तोभी हटनेका नाम न लूँगा।

शीलमणिने यह विवरण ध्यानपूर्वक सुना और श्रद्धासे बोली, आप बाबूजीसे कह दें, मुझे यह सुनकर बड़ा खेद हुआ। आपने पहले इसका जिक्र क्यों नहीं किया? विद्याने भी कभी इसकी चर्चा नहीं की, नहीं तो अबतक आपकी डिगरी हो गयी होती। किन्तु आप निश्चिन्त रहें। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि अपनी ओरसे आपकी सिफारिश करनेमें कोई बात उठा न रक्खूँगी।

ज्ञान—मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी। दो-चार दिनमें भाई साहब मौका देखने जायंगे। इसलिये उनसे जल्द ही इसकी चर्चा कर दें।

शील—मैं आज जाते-ही-जाते कहूँगी। आप इतमीनान रक्खें।

२१

प्रभातका समय था। चैतकी सुखद पवन प्रवाहित हो रही थी। बाबू ज्वालासिंह बरामदेमें आरामकुरसीपर लेटे हुए घोड़ेका इन्तजार कर रहे थे। उन्हें आज मौका देखनेके लिये लखनपूर जाना था। किन्तु इस मार्गमें एक बड़ी बाधा खड़ी हो गयी

थी। कल संध्या समय शीलमणिने उनसे ज्ञानशंकरके मुकदमेकी बात कही थी और तभीसे वह बड़े असमंजसमें पड़े हुए थे। सामने एक जटिल समस्या थी—न्याय या प्रणय, कर्त्तव्य या स्त्रीका मानरक्षा। वह सोचते थे, मुझसे बड़ी भूल हुई कि इस मुकदमेको अपने इजलासमें रक्खा। लेकिन मैं यह क्या जानता था कि ज्ञानशंकर यह कूटनीति ग्रहण करेंगे। बड़ा स्वार्थी मनुष्य है। इसी अभिप्रायसे उसने स्त्रियोंमें यह मेलजोल बढ़ाया।

शीलमणि यह चालें क्या जानें, शीलमें पड़कर बचन दे आयी। अब यदि उसकी बात नहीं रखता तो वह रो-रोकर जान ही दे देगा। उसे क्या मालूम, कि इस अन्यायसे मेरी आत्माको कितना दुःख होगा। अभीतक जितनी गवाहियाँ सामने आयी हैं, उनसे तो यही सिद्ध होता है कि ज्ञानशङ्करने असामियोंको दबानेके लिये यह मुकदमा दायर किया है और कदाचित् बात भी यही है। बड़ा ही बना हुआ आदमी है। लेख तो ऐसा लिखता है मानों दीनरक्षाके भावोंमें पगा हुआ है; किन्तु पक्का मतलबी है। गायत्रीकी रियासतका मैनेजर हो जायेगा तो अन्धेर मचा देगा। नहीं, मुझसे यह अन्याय न हो सकेगा, देखकर मक्खी न निगली जायेगी। शीलमणि रूठेगी तो रूठे, उसे स्वयं समझना चाहिये था कि मुझे ऐसा वचन देनेका कोई अधिकार नहीं था। लेकिन मुश्किल तो यह है कि वह केवल रोकर ही मेरा पिण्ड न छोड़ेगी। बात-बातपर ताने देगी। कदाचित् मैकेकी तैयारी भी करने लगे। यही तो उसकी बुरी आदत है कि या तो प्रेम और मृदुलताकी देवी बन जायेगी या बिगड़ेगी तो भालोंसे छेदने लगेगा। ज्ञानशङ्करने मुझे ऐसे सङ्कटमें डाल रक्खा है कि उससे निकलनेका कोई मार्ग ही नहीं दीखता।

ज्वालासिंह इसी हैस-बैसमें पड़े हुए थे कि अचानक ज्ञानशङ्कर सामने पैरगाड़ीपर आते दिखायी दिये। ज्वालासिंह तुरन्त कुरसीसे उठ खड़े हुए और साईसको जोरसे पुकारा कि

घोड़ा ला। साईस घोड़ेको कसे हुए तैयार खड़ा था। यह हुक्म पाते ही घोड़ा सामने लाकर खड़ा कर दिया। ज्वालासिंह उसपर कूदकर सवार हो गये। ज्ञानशङ्करने समीप आकर कहा, कहिये भाई साहब, आज सवेरे-सवेरे कहाँ चले?

ज्वाला—जरा लखनपूर जा रहा हूँ। मौका देखना है।

ज्ञान—धूप हो जायेगी।

ज्वाला—कोई परवा नहीं।

ज्ञान—मैं भी साथ चलूँ?

ज्वाला—मुझे रास्ता मालूम है।

यह कहते हुए उन्होंने घोड़ेको एड़ लगायी और हवा हो गये। ज्ञानशङ्कर समझ गये कि मेरा मन्त्र अपना काम कर रहा है। यह अकृपा इसीका लक्षण है। ऐसा न होता तो आज भी वही मीठी-मीठी बातें होतीं। चलूँ, जरा शीलमणिको और पक्का कर आऊँ। यह इरादा करके वह ज्वालासिंहके कमरेमें जा बैठे। अरदलीने कहा, सरकार बाहर गये हैं।

ज्ञान—मैं जानता हूँ। मुझसे मुलाकात हो गयी, जरा घरमें मेरी इत्तला कर दो।

अरदली—सरकारका हुकुम नहीं है।

ज्ञान—मुझे पहचानते हो या नहीं?

अरदली—पहचानता क्यों नहीं हूँ।

ज्ञान—तो चौखटपर जाकर कहते क्यों नहीं?

अरदली—सरकारने मना कर दिया है।

ज्ञानशङ्करको अब विश्वास हो गया कि मेरी चाल ठीक पड़ी। ज्वालासिंहने अपनेको पक्षपातरहित सिद्ध करनेके लिये ही यह षड्यन्त्र रचा है, वह सोच ही रहे थे कि शीलमणिसे क्योंकर मिलूँ, कि इतनेमें महरी किसी कामसे बाहर आयी और ज्ञानशङ्करको देखते ही जाकर शीलमणिसे कहा। शीलमणिने तुरन्त उनके लिये पान भेजा और उन्हें दीवानखानेमें बैठाया। एक

क्षणके बाद वह खुद आकर परदेकी आड़में खड़ी हो गयी और महरीसे कहलाया, मैंने बाबूजीसे आपकी सिफारिश कर दी है।

ज्ञानशङ्करने धन्यवाद देते हुए कहा, मुझे अब आपकाही भरोसा है।

शीलमणि बोली—आप घबरायें नहीं, मैं उन्हें एकदम चैन न लेने दूँगी। ज्ञानशङ्करने ज्यादा ठहरना उचित न समझा। खुशी-खुशी बिदा हुए।

उधर बाबू ज्वालासिंहने घोड़ा दौड़ाया तो चार मीलपर रुके। उन्हें एक सिगार पीनेकी इच्छा हुई। जेबसे सिगार-केस निकाला; लेकिन देखा तो दियासलाई न थी। उन्हें सिगारसे बड़ा प्रेम था। अब क्या हो? इधर-उधर निगाह दौड़ायी तो सामने कुछ दूरीपर एक बहली जाती हुई दिखाई दी। घोड़ेको बढ़ाकर बहलीके पास आ पहुँचे। देखा तो उसपर प्रेमशङ्कर बैठे हुए थे। ज्वालासिंहका उनसे परिचय था। कई बार उनकी कृषिशालाकी सैर करने गये थे और उनके सरल, सन्तोषमय जीवनका आदर करते थे। पूछा, कहिये महाशय, आज इधर कहाँ चले?

प्रेम—जरा लखनपूर जा रहा हूँ। और आप?

ज्वाला—मैं भी वहीं चलता हूँ।

प्रेम - अच्छा साथ हुआ। क्या कोई मुकदमा है?

ज्वालासिंहने सिगार जला मुकदमेका वृत्तान्त कह सुनाया।

प्रेमशङ्कर गौरसे सुनते रहे, फिर बोले, आपने उन्हें समझाया नहीं कि गरीबोंको क्यों तंग करते हो?

ज्वाला—मैं इस विषयमें उनसे क्योंकर कुछ कहता? हाँ, स्त्रियोंमें जो बातें हुईं उनसे मालूम होता है कि वह अपनी जरूरतोंसे मजबूर हैं। उनका खर्च नहीं चलता।

प्रेम—दो हजार सालकी आमदनी तीन-चार प्राणियोंके लिये तो कम नहीं होता।

ज्वाला—लेकिन इसमें आधा तो आपका है।

प्रेम—जी नहीं, मेरा कुछ नहीं है। मैंने उनसे साफ़-साफ़ कह दिया है कि मैं इस जायदादमें हिस्सा नहीं लेना चाहता।

ज्वालासिंह—(आश्चर्यसे) क्या आपने उनके नाम हिब्बा कर दिया?

प्रेम—जी नहीं, लेकिन हिब्बा ही समझिये। मेरा सिद्धान्त है कि मनुष्यको अपनी मेहनतकी कमाई खानी चाहिये। यही प्राकृतिक नियम है। किसीको यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरोंकी कमाईको अपनी जीवन-वृत्तिका आधार बनाये।

ज्वाला—तो यह कहिये कि आप जमींदारीके पेशेकोही बुरा समझते हैं।

प्रेम—हाँ; मैं इसका भक्त नहीं हूँ। भूमि उसकी है जो उसे जोते। शासकको उसकी उपजमें भाग लेनेका अधिकार इसलिये है, कि वह देशमें शांति और रक्षाकी व्यवस्था करता है, जिसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्गका समाजमें कोई स्थान नहीं है।

ज्वाला—महाशय, इन विचारोंसे तो आप देशमें क्रांति मचा देंगे। आपके सिद्धान्तके अनुसार हमारे बड़े-बड़े जमींदारों, ताल्लुकेदारों और रईसोंका समाजमें कोई स्थान ही नहीं है, सब-के-सब डाकू हैं।

प्रेम—इसमें उनका कोई दोष नहीं, प्रथाका दोष है। इस प्रथाके कारण देशकी कितनी आत्मिक और नैतिक अवनति हो रही है, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। हमारे समाजका वह भाग जो बल, बुद्धि, विद्यामें सर्वोपरि है, जो हृदय और मस्तिष्कके गुणोंसे अलंकृत है; केवल इसी प्रथाके वश आलस्य, विलास और अविचारके बन्धनोंमें जकड़ा हुआ है।

ज्वालासिंह—कहीं आप इन्हीं बातोंका प्रचार करने तो लखनपूर नहीं जा रहे हैं, कि मुझे पुलिसकी सहायता न माँगनी पड़े!

प्रेम—हाँ,शान्ति-भंग करानेका अपराध मुझपर लगाना हो तो जरूर पुलिसकी सहायता लीजिये।

ज्वालासिंह—मुझे अब आपपर कड़ी निगाह रखनी पड़ेगी। मैं भी छोटा-मोटा जमींदार हूँ। आपसे डरना चाहिये। इस समय लखनपूर ही जाइयेगा या आगे जानेका इरादा है?

प्रेम—इरादा तो यहींसे लौट आनेका है, आगे जैसी जरूरत हो। इधर आसपासके देहातोंमें एक महीनेसे प्लेगका प्रकोप हो रहा है। कुछ दवाएँ साथ लेता आया हूँ। जरूरत होगी तो उसे बाँट दूँगा, कौन जाने, मेरे ही हाथों दो-चार जानें बच जायँ।

इसी प्रकार बातें करते हुए दोनों आदमी लखनपूर पहुँचे। गाँव खाली पड़ा था। लोग बागोंमें झोपड़ियाँ डाले पड़े हुए थे। इस छोटी-सी बस्तीमें खूब चहल-पहल थी। उन दारुण दुःखोंका चिह्न कहीं न दिखाई देता था, जिनसे लोगोंके हृदय विदीर्ण हो गये थे। छप्परोंके सामने महुए सुखाये जा रहे थे। चक्कियोंकी गरज, छाजकी तड़प, ओखली और मूसलकी धमक उस जीवन-संग्रामकी सूचना दे रही थी; जो प्लेगके भीषण हत्याकाण्डकी भी परवा न करता था। लड़के आमोंपर ढेले चला रहे थे। कोई स्त्री बरतन माँजती थी, कोई उपले पाथती थी, कोई पड़ोसीके घरसे आग लिये आती थी। कोई आदमी निठल्ला बैठा नजर न आता था।

प्रेमशङ्कर तो बस्तीमें आते ही बहलीसे उतर पड़े और एक झोंपड़ेके सामने खाटपर बैठ गये। ज्वालासिंह घोड़ेसे न उतरे। खाटपर बैठना अपमानकी बात थी। जोरसे बोले,कहाँ है मुखिया? जाकर पटवारीको बुला लाये, हम मौका देखना चाहते हैं।

यह हुक्म सुनते ही कई आदमी झोपड़ोंसे मरीजोंको छोड़-छोड़कर निकल आये। चारों ओर भगदड़-सी पड़ गयी। दो-तीन आदमी चौपालकी तरफ कुरसी लेने दौड़े,दो-तीन आदमी पटवारीकी तलाशमें भागे और गाँवके मान्यगण ज्वालासिंहको घेर

कर खड़े हो गये। प्रेमशङ्करकी ओर किसीने ध्यान भी न दिया। इतनेमें कादिरखाँ अपनी झोंपड़ीसे निकले और सुक्खूके कानमें कुछ कहा। सुक्खूने दुखरन भगतसे कानाफूसी की, तब विसेसरसाहसे सायँ-सायँ बातें हुईं; मानों लोग किसी महत्वपूर्ण प्रश्नपर विचार कर रहे हों। दस मिनटके बाद सुक्खू चौधरी एक थाल लिये हुए आये। उसमें अक्षत, दही और कुछ रुपये रखे हुए थे। गाँवके पुरोहितजीने प्रेमशङ्करके माथेपर दही, चावलका टीका लगाया और थाल उनके सामने रख दिया।

ज्वालासिंह कुरसीपर बैठते हुए बोले, लीजिये, आपकी तो बोहनी हो गयी, घाटेमें हमही रहे। उसपर भी आप जमींदारीके पेशेकी निन्दा करते हैं।

प्रेमशङ्करने कहा,—देवीके नामसे ईंट पत्थर भी तो पूजे जाते हैं।

कादिरखाँ—हमलोगोंके धन भाग थे कि दोनों मालिकोंके एक साथ दर्शन हो गये।

प्रेम—यहाँ बीमारी कुछ कम हुई या अभी वही हाल है?

कादिर—सरकार, कुछ नहीं पूछिये, कम तो न हुई और बढ़ती जाती है। कोई दिन नागा नहीं जाता कि एक-न-एक घरपर बिजली न गिरती हो। नदी यहाँसे छः कोस है। कभी-कभी तो दिनमें दो-दो, तीन-तीन बेर जाना पड़ता है। उसपर कभी आँधी, कभी पानी, कभी आग। खेतोंमें अनाज सड़ा जाता है, कैसे काटें, कहाँ रक्खें। बस, भोरको घरोंमें एक बेर चूल्हा जलता है। फिर दिनभर कहीं आग नहीं जलती। चिलमको तरसकर रह जाते हैं, हजूर, रोते नहीं बनता, बड़ी दुर्दशा हो रही है। उसपर मालिकों-की निगाह भी टेढ़ी होगयी है। सौ काम छोड़कर कचहरी दौड़ना पड़ता है। कभी-कभी तो घरमें लाश छोड़कर जाना पड़ता है। क्या करें, जो सिरपर पड़ी है उसे झेलते हैं। हजूरका एक गुलाम था। अच्छा पट्ठा था। सारी गृहस्थी संभाले हुए था। तीन घड़ी

मैं चल बसा। मुँहसे बोलतक न निकली। सुक्खू चौधरीका तो घर ही सत्यानास हो गया। बस, अब अकेले इन्हींका दम रह गया है,बेचारे डपटसिंहका छोटा लड़का कल मरा है,आज बड़ा लड़का बीमार है। अल्लाही बचाये तो बचे। ज़ुबान बन्द हो गयी है। लाल-लाल आँखें निकाले खाटपर पड़ा हाथ-पैर पटक रहा है। कहाँतक गिनायें, खोदारसूल, देवी-देवता सभीकी मन्नतें मानते हैं,पर कोई नहीं सुनता। अबतक तो जैसे बन पड़ा, मुकदमेकी उजरदारी की। अब वह हिम्मत भी नहीं रही। किसके लिये यह सब करें? इतनेपर भी मालिकोंको दया नहीं आती।

प्रेमशङ्कर—ज़रा मैं डपटसिंहके लड़केको देखना चाहता हूँ।

कादिर—हाँ, हज़ूर चलिये, मैं चलता हूँ।

ज्वालासिंह—ज़रा सावधान रहियेगा, यह रोग संक्रामक होता है।

प्रेमशङ्करने इसका कुछ उत्तर न दिया। औषधियोंका बेग उठाया और कादिरखाँके पीछे-पीछे चले। डपटसिंहके झोपड़ेपर पहुँचे तो आदमियोंकी बड़ी भीड़ लगी हुई थी। एक आमके पेड़के नीचे रोगीकी खाट पड़ी हुई थी। डपटसिंह और उनके छोटे भाई झपटसिंह सिरहाने खड़े पंखा झल रहे थे। दो स्त्रियाँ पाँयतेकी ओर खड़ी रो रही थीं। प्रेमशङ्करको देखते ही दोनों अन्दर चली गयीं। दोनों भाइयोंने उनकी ओर दीन भावसे देखा और अलग हट गये। उन्होंने उष्णतामापक यंत्रसे देखा तो रोगीका ज्वर १०७ दरजेपर था। त्रिदोषके लक्षण प्रकट थे। समझ गये कि अब यह दमभरका और मेहमान है। अभी वह बेगसे औषधि निकाल ही रहे थे कि मरीज एक बार जोरसे चीख मारकर उठा और फिर खाटपर गिर पड़ा। आँखें पथरा गयीं। स्त्रियोंमें पिट्टस पड़ गयी। डपटसिंह शोकातुर होकर मृत शरीरसे लिपट गया और रोकर बोला, बेटा, हाय बेटा!

यह कहते-कहते उसकी आँखें रक्तवर्ण हो गयीं। उन्माद-सा

छा गया, गीली लकड़ी पहली आँचमें रसती है, दूसरी आँचमें जलकर भस्म हो जाती है। डपटसिंह शोक-सन्तापसे विह्वल हो गया। खड़ा होकर बोला, कोई इस घरमें आग क्यों नहीं लगा देता? अब इसमें क्या रक्खा है? कैसी दिल्लगी है! बाप बैठा रहे और बेटा चल दे! इन्हीं हाथोंसे मैंने इसे गोद खिलाया था। इन्हीं हाथोंसे चिताकी गोदमें कैसे बैठा दूँ! कैसा रुलाकर चल दिया, मानों हमसे कोई नाता ही नहीं है। कहता था, दादा तुम बूढ़े हुए, अब बैठे-बैठे राम राम करो, हम तुम्हारी परवस्ती करेंगे। मगर दोनों-के-दोनों चल दिये, किसीको मुझपर दया न आयी। लो, राम राम करता हूँ। अब परवस्ती करो कि बातोंकेही धनी थे?

यह कहते-कहते वह शवके पाससे हटकर दूसरे पेड़के नीचे जा बैठे। एक क्षणके बाद फिर बोले, अब इस मायाजालको तोड़ दूँगा! बहुत दिन इसने मुझे उँगलियोंपर नचाया, अब मैं इसे नचाऊँगा। तुम दोनों चल दिये, बहुत अच्छा हुआ। मुझे मायाजालसे छुड़ा दिया। इस मायाके कारण कितने पाप किये, कितने झूठ बोले, कितनोंका गला दबाया, कितनोंके खेत काटे। अब सब पाप-दोषका कारण मिट गया। वह मरी हुई माया सामने पड़ी है। कौन कहता है मेरा बेटा था? नहीं, मेरा दुश्मन था, मेरे गलेका फन्दा था, मेरे पैरोंकी बेड़ी था। फन्दा छूट गया, बेड़ी कट गयी। लाओ, इस घरमें आग लगा दो, सब कुछ भस्म कर दो। बलराज, खड़ा आँसू क्या बहाता है? कहीं आग नहीं है? लाके लगा दे।

सब लोग खड़े रो रहे थे। प्रेमशङ्कर भी करुणातुर हो गये। डपटसिंहके पास जाकर बोले, ठाकुर धीरज धरो। संसारका यही दस्तूर है। तुम्हारी यह दशा देखकर बेचारी स्त्रियाँ और भाई रो रहे हैं। उन्हें समझाओ।

डपटसिंहने प्रेमशङ्करको उन्मत्त नेत्रोंसे देखा और व्यंग भाव-

से बोले, ओहो आप तो हमारे मालिक हैं। क्या जाफ़ा वसूल करने आये हैं? उसीसे लीजिये जो वहाँ धरतीपर पड़ा हुआ है, वह आपकी कौड़ी-कौड़ी चुका देगा। गौसखाँसे कह दीजिये, उसे पकड़ ले जायें, बाँधें, मारें, मैं न बोलूँगा। मेरा खेती-बारी-से घर-द्वारसे इस्तीफा है।

कादिरखाँने कहा, भैया डपट, दिल मज़बूत करो। देखते हो, घर-घर यही आग लगी हुई है। मेरे सिर भी तो वही विपत्ति पड़ी है। इस तरह दिल छोटा करनेसे काम न चलेगा, उठो। कुछ कफन कपड़ेकी फिकिर करो, दोपहर हुआ जाता है।

डपटसिंहको होश आ गया। होशके साथ आँसू भी आये। रोकर बोले, दादा, तुम्हारासा कलेजा कहाँसे लावें? किसी तरह धीरज नहीं होता। हाय! दोनों-के-दोनों चल दिये, एक भी बुढ़ापेका सहारा न रहा। सामने वह लाश देखकर ऐसा जी चाहता है, गलेपर गड़ाँसा मार लूँ। दादा, तुम तो जानते हो कि कितना सुशील लड़का था। अभी उस दिन मुगदरकी जोड़ीके लिये हठ कर रहा था। मैंने सैकड़ों गालियाँ दीं, मारने उठा। बेचारेने ज़ुबानतक न हिलायी। हा! खाने पहननेको तरसता रह गया। उसकी कोई मुराद पूरी न हुई। न भर पेट खा सका, न तन भर पहन सका। धिक्कार है मेरी जिन्दगानीपर! अब यह घर नहीं देखा जाता। झटपट अपना घर-द्वार संभालो, मेरे भाग्यमें ठोकर खाना लिखा हुआ है। भाई लोगो! राम राम, मालिकको राम राम, सरकारको राम राम, अब यह अभागा देशसे जाता है, कही-सुनी माफ़ करना।

यह कहकर डपटसिंह उठकर कदम बढ़ाता हुआ एक तरफ चला। जब कई आदमियोंने उसे पकड़ना चाहा तो वह भागा। लोगोंने उसका पीछा किया, पर कोई उसकी गर्दको भी न पहुँचा। जान पड़ता था, हवामें उड़ा जाता है। लोगोंके दम फूल गये, कोई यहाँ रहा, कोई वहाँ गिरा, अकेले बलराजने उसका पीछा

न छोड़ा, यहाँतक कि डपटसिंह बेदम होकर जमीनपर गिर पड़े। बलराज दौड़कर उनकी छातीसे लिपट गया और तब अपने अंगोछेसे उसे हवा करने लगा। जब उन्हें होश आया तो हाथ पकड़े हुए घर लाया।

ज्वालासिंहकी करुणा भी जाग्रत हो गयी। प्रेमशङ्करसे बोले, बाबू साहब, बड़ा शोकमय दृश्य है।

प्रेमशङ्कर—कुछ न पूछिये, कलेजा मुँहको आया जाता है।

कई आदमी बाँस काटने लगे, लेकिन तीसरे पहरतक लाश न उठी। प्रेमशङ्करने कादिरसे पूछा,—देर क्यों हो रही है?

कादिर—हुजूर, क्या कहें। घरमें रुपये नहीं हैं, बेचारा झपट रुपयेके लिये इधर-उधर दौड़ रहा है, लेकिन कहीं नहीं मिलते। हमारी जो दशा है सरकार वह हमीं जानते हैं। जाफ़ा लगानके मुकदमेने पहले ही हाँड़ी, तावा गिरों रखवा लिया था। इस बीमारीने रही-सही कसर भी पूरी कर दी। अब किसीके घरसे कुछ तथा नहीं रही। प्रेमशङ्करने ठण्ढी साँस लेकर ज्वालासिंहसे कहा,—देखा आपने इसकी हालत? घरमें कौड़ी कफनको नहीं।

ज्वालासिंह—मुझे अफसोस आता है कि इनसे पिछले साल मुचलका क्यों लिया। मैं अबतक न जानता था कि इनकी दशा इतनी हीन है।

प्रेम—मुझे खेद है कि मकानसे कुछ रुपये लेकर न चला।

ज्वाला—रुपये मेरे पास हैं, पर मुझे देते हुए संकोच होता है। शायद इन्हें बुरा लगे। आप लेकर दे दें, तो अच्छा हो।

प्रेमशङ्करने २०) का नोट ले लिया और कादिरखाँको चुपकेसे दे दिया। एक आदमी तुरन्त कफन लेने दौड़ा। लाश उठानेकी तैयारी होने लगी। स्त्रियोंमें फिर कोहराम मची। जबतक शव घरमें रहता है, घरवालोंको कदाचित् कुछ आशा लगी रहती है। उसका घरसे उठना पार्थिव वियोगका अन्त है। वह आशाके अन्तिम सूत्रको तोड़ देता है।

तीसरे पहर लाश उठी। सारे गाँवके पुरुष साथ चले। पहले कादिरखाँने कन्धा दिया।

ज्वालासिंहको सरकारी काम था, वह लौट पड़े। लेकिन प्रेमशङ्करने दो-चार दिन वहाँ रहना निश्चय किया।

२२

एक पखवारा बीत गया। सन्ध्या समय था। शहरोंमें बर्फ-की दूकानोंपर जमघट होने लगा था, हुक्के और सिगरेटसे लोगोंको अरुचि होती जाती थी। ज्वालासिंह लखनपूरमें मौके-की जाँच करके लौटे थे और कुरसीपर बैठे ठंढा शर्बत पी रहे थे कि शीलमणिने आकर पूछा, दोपहरको कहाँ रह गये थे?

ज्वाला—बाबू प्रेमशङ्करका मेहमान रहा। वह अभी देहात मेंही हैं।

शील—क्या अभीतक बीमारीका जोर कम नहीं हुआ?

ज्वाला—नहीं, अब कम हो रहा है। वह पूरे पन्द्रह दिनसे देहातोंमें दौरे कर रहे हैं। एक दिन भी आरामसे नहीं बैठे। गाँवकी जनता उनको पूजती है। बड़े-बड़े हाकिमका भी इतना सम्मान न होगा। न जाने इस तपनमें उनसे कैसे वहाँ रहा जाता हैं। न पंखा, न टट्टी, न शर्बत, न बर्फ। बस, पेड़के नीचे एक झोपड़ेमें पड़े रहते हैं। मुझसे तो वहाँ एक दिन भी न रहा जाय।

शील—परोपकारी पुरुष जान पड़ते हैं। क्या हुआ, तुमने मौका देखा?

ज्वाला—हाँ, खूब देखा। जिस बातका सन्देह था वही सच्ची निकली। ज्ञानशङ्करका दावा बिलकुल निस्सार है, उसके मुख्तार और चपरासियोंने मुझे बहुत चकमा देना चाहा, लेकिन मैं इन लोगोंके हथकंडोंको खूब जान गया हूँ! बस, हाकिमोंको धोखा देकर अपना मतलब निकाल लेते हैं। जरा इस भलमन्सा-हतको देखो कि असामियोंके तो जानके लाले पड़े हुए हैं और इन्हें अपने प्यालेभर खूनकी धुन सवार है। इतना भी नहीं हो

सकता कि ज़रा गाँवमें जाकर गरीबोंकी तसल्ली तो करते। इन्हींका भाई है कि जमींदारीपर लात मारकर दीनोंकी निःस्वार्थ सेवा कर रहा है, अपनी जान हथेलीपर लिये फिरता और एक यह महापुरुष हैं कि दीनोंकी हत्या करनेसे भी नहीं हिचकते। मेरी निगाहमें तो अब इनकी आधी इज्ज़त भी नहीं रही, खाली ढोल है।

शील—तुम जिसकी बुराई करने लगते हो, उसकी मिट्टी पलीद कर देते हो,मैं भी आदमी पहचानती हूँ। ज्ञानशङ्कर देवता न हों, लेकिन जैसे सब आदमी होते हैं वैसे ही वह भी हैं, ख़ामख्वाह दूसरोंसे बुरे नहीं।

ज्वाला—तुम उन्हें जो चाहो समझो, पर मैं तो उन्हें महालोभी, क्रूर और दुरात्मा समझता हूँ।

शील—तब तो तुम उनका दावा अवश्यही खारिज कर दोगे?

ज्वाला—कदापि नहीं; मैं यह सब जानते हुए भी उन्हींकी डिग्री करूँगा, चाहे अपीलसे मेरा फैसला मन्सूख हो जाय।

शील—(प्रसन्न होकर) हाँ, बस मैं भी यही चाहती हूँ; तुम अपनीसी कर दो, जिसमें मेरी बात बनी रहे!

ज्वाला—लेकिन यह सोच लो, कि तुम अपने ऊपर कितना बड़ा बोझ ले रही हो। लखनपूरमें प्लेगका भयङ्कर प्रकोप हो रहा है। लोग तबाह हुए जाते हैं, खेत काटनेकी भी किसीको फ़ुरसत नहीं मिलती। कोई घर ऐसा नहीं,जहाँसे शोक-विलाप की आवाज न आ रही हो, घर-के-घर अन्धेरे हो गये, कोई नाम लेनेवाला भी न रहा, उन गरीबोंमें अब अपील करनेकी सामर्थ्य नहीं। ज्ञानशङ्कर डिगरी पाते ही जारी कर देंगे, किसीके बैल नीलाम होंगे, किसीके घर बिकेंगे, किसीकी फस्ल खेतमें खड़ी-खड़ी कौड़ियोंके मोल नीलाम हो जायेगी। यह दीनोंकी हाय किसपर पड़ेगी? यह खून किसकी गर्दनपर होगा? मैं बदनामीसे नहीं डरता, लेकिन अन्याय और अनर्थसे मेरे प्राण काँपते हैं।

शीलमणि यह व्याख्यान सुनकर काँप उठी। उसने इस मामलेको इतना महत्वपूर्ण न समझा था। उसका मानव्रत टूट गया, बोली, यदि यह हाल है तो आप वही कीजिये जो न्याय और सत्य कहे। मैं गरीबोंकी आह नहीं लेना चाहती। मैं क्या जानती थी कि जरासे दावेका यह भीषण परिणाम होगा!

ज्वालासिंहके हृदयपरसे एक बोझा-सा उतर गया। शीलमणिको अबतक वह न समझे थे। बोले, विद्यावतीके सामने कौनसा मुँह लेकर जाओगी।

शीलमणि—विद्यावती ऐसे क्षुद्र विचारोंकी स्त्री नहीं है, और अगर वह इस बातपर मुझसे रूठ भी जाय तो मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैत्रीके पीछे क्या गरीबोंका गला काट लिया जाय? मैं तो समझती हूँ, वह ज्ञानशङ्करसे चिढ़ती है। जब कभी उन्होंने मुझसे इस दावेकी चर्चा की है वह मेरे पाससे उठकर चली गयी है। इनकी मायालिप्सा उसे एक आँख नहीं भाती। दावेके खारिज होनेकी खबर सुनकर वह मनमें प्रसन्न होगी।

ज्वाला—उसपर आपका दावा है कि गायत्रीके इलाकेका प्रबन्ध करेंगे। उसकी इनसे एक दिन भी न निभेगी। वह बड़ी दयावती है।

शीलमणि—दावा खारिज करनेपर वह अपील कर दे तो?

ज्वाला—हाँ, बहुत सम्भव है, अवश्य करेंगे।

शील—और वहाँसे इनका दावा बहाल हो सकता है?

ज्वाला—हाँ, हो सकता है।

शील—तब तो वह गरीब खेतिहारोंको और भी पीस डालेंगे।

ज्वाला—हाँ, यह तो उनकी प्रवृत्ति ही है।

शील—तुम खेतिहरोंकी कुछ मदद नहीं कर सकते?

ज्वाला—न, यह मेरे अख्तियारसे बाहर है।

शील—किसानोंको कहींसे धनकी सहायता मिल जाय तब तो वह न हारेंगे?

ज्वाला—हार-जीत तो हाकिमके निश्चयपर निर्भर है। हाँ, उन्हें मदद मिल जाय तो वह अपने मुकदमेकी पैरवी अच्छी तरह कर सकेंगे।

शील—तो तुम कुछ रुपये क्यों नहीं दे देते?

ज्वाला—वाह, जिस अन्यायसे भागता हूँ, वही करूँ!

शील—प्रेमशङ्करजी बड़े दयालु हैं। उनके पास रुपये हों तो वह खेतिहरोंकी मदद करें।

ज्वाला—मेरे विचारमें वह इस न्यायके लिये अपने भाईसे वैर न करेंगे। इतनेमें बाहर कई मित्र आ गये। ग्वालियरका एक नामी जलतरंगिया आया हुआ था। क्लबमें उसका गाना होनेवाला था। लोग क्लब चल दिये।

दूसरी तारीखपर ज्ञानशङ्करका मुकदमा पेश हुआ। ज्वालासिंहने फैसला सुना दिया। उनका दावा खारिज हो गया। ज्ञानशङ्कर उस दिन स्वयं कचहरीमें मौजूद थे। यह फैसला सुना तो दाँत पीसकर रह गये। क्रोधमें भरे हुए घर आये और विद्यापर जले दिलके फफोले फोड़े। आज बहुत दिनोंके बाद लाला प्रभाशङ्करके पास गये और उनसे भी इस असद् व्यवहारका रोना रो आये। एक सप्ताहतक यही क्रम चलता रहा। शहरमें ऐसा कोई परिचित आदमी न था, जिससे उन्होंने ज्वालासिंहके कपट-व्यवहारकी शिकायत न की हो। यहाँतक कि रिश्वतका दोषारोपण करनेमें भी संकोच न किया और उन्हें शब्दाघातोंसेही तसकीन न हुई। कलमकी तलवारसे भी चोटें करनी शुरू कीं, कई दैनिक-पत्रोंमें ज्वालासिंहकी खबर ली। जिस पत्रमे देखिये, उसीमें उनके विरुद्ध कालमके कालम भरे रहते थे। ऐङ्गलो इण्डियन पत्रोंको हिन्दुस्तानियोंकी अयोग्यतापर टिप्पणी करनेका अच्छा अवसर हाथ आया। एक महीनेतक यही रौला मचा रहा। ज्वालासिंहके जीवनका कोई अंग कलंक और अपवादसे न बचा। एक सम्पादक महाशयने तो यहाँतक लिख मारा कि उनका मकान शहर भरके

रसिकजनोंका अखाड़ा है। ज्ञानशङ्करके रचना-कौशलने उनके मनोमालिन्यके साथ मिलकर ज्वालासिंहको अत्याचार और अविचारका काला देव बना दिया। बेचारे लेखोंको पढ़ते थे और मन-ही-मन ऐंठकर रह जाते थे। अपनी सफाई देनेका अधिकार न था। कानून उनका मुँह बन्द किये हुए था। मित्रोंमें ऐसा कोई न था, जो पक्षमें कलम उठाता, पत्रोंकी मिथ्यावादितापर कुढ़-कुढ़कर रह जाते थे, जो सत्यासत्यका निर्णय किये बिना अधिकारियोंपर छींटे उड़ानेमें ही अपना गौरव समझते थे। घरसे निकलना मुश्किल हो गया। शहरमें जहाँ देखिये, यही चर्चा थी। लोग उन्हें आते-जाते देखकर खुलेबन्दों उनका उपहास करते थे। अफसरोंकी निगाह भी बदल गयी। जिलाधीशसे मिलने गये। उसने कहला भेजा, मुझे फुरसत नहीं है। कमिश्नर एक बंगाली सज्जन थे। उनके पास फरियाद करने गये। उन्होंने सारा वृत्तान्त बड़ी सहानुभूतिके साथ सुना, लेकिन चलते समय बोले, यह असंभव है कि इस हलचलका आपपर कोई असर न हो। मुझे शंका है कि कहीं यह प्रश्न व्यवस्थापक सभामें न उठ जाय। मैं यथाशक्ति आपपर आँच न आने दूँगा। लेकिन आपको न्यायका समर्थन करनेके लिये कुछ नुकसान उठानेपर तैयार रहना चाहिये, क्योंकि सन्मार्ग फूलोंकी सेज नहीं है।

एक दिन ज्वालासिंह इन्हीं चिन्ताओंमें मग्न बैठे हुए थे कि प्रेमशङ्कर आये। ज्वालासिंह दौड़कर उनके गले लिपट गये। आँखें सजल हो गयीं, मानों अपने किसी परम हितैषीसे भेंट हुई हो। कुशल-समाचारके बाद पूछा – देहातसे कब लौटे?

प्रेमशङ्कर—आज ही आया हूँ। पूरे डेढ़ महीने लग गये। दो-तीन दिनका इरादा करके घरसे चला था। हाजीगञ्जवाले बार-बार बुलाने न जाते तो मैं जेठ भर वहाँ और रहता।

ज्वाला—बीमारीकी क्या हालत है?

प्रेमशङ्कर—शांत हो गयी है। यह कहिये, समाचारपत्रोंमें क्या

हरबोंग मचा हुआ है ? मैंने तो आज देखा। दुनियामें क्या हो रहा है, इसकी कुछ खबर ही न थी। यह मण्डली तो बेतरह आपके पीछे पड़ी हुई है।

ज्वाला—उनकी कृपा है और क्या कहूँ।

प्रेम—मैं तो देखते ही समझ गया कि यह ज्ञानशङ्करके दावेको खारिज कर देनेका फल है।

ज्वाला—बाबू ज्ञानशङ्करसे कभी ऐसी आशा न थी कि मुझे अपना कर्त्तव्य-पालन करनेका यह दँड दिया जायगा। अगर वह केवल मेरी न्याय और अधिकार सम्बन्धी बातोंपर आघात करते तब भी मुझे खेद न होता। मुझे अत्याचारी कहते, जुल्मी कहते, निरंकुश सिद्ध करते—हम इन आक्षेपोंके आदी होते हैं। दुःख इस बातका है कि मेरे चरित्रको कलङ्कित किया गया है। मुझे अगर किसी बातका घमंड है तो वह अपने आचरणका है। मेरे कितने ही रसिक मित्र मुझे वैरागी कहकर चिढ़ाते हैं, यहाँ मैं कभी थियेटर देखने नहीं गया, कभी मेला-तमाशा तक नहीं देखा। बाबू ज्ञानशङ्कर इस बातसे भली भाँति परिचित है; लेकिन मुझे सारे शहरके छैलोंका नेता बनानेमें उन्हें लेशमात्र सङ्कोच न हुआ। इन आक्षेपोंसे मुझे इतना दुःख हुआ है कि उसे प्रकट नहीं कर सकता। कई बार मेरी इच्छा हुई कि विष खा लूँ। आपसे मेरा परिचय बहुत थोड़ा है, लेकिन मालूम नहीं, क्यों जी चाहता है कि आपके सामने हृदय निकालकर रख दूँ। मैंने कई बार जहर खानेका इरादा किया, किन्तु यह सोचकर कि कदाचित् इससे इन आक्षेपोंकी पुष्टि हो जायगी, रुक गया। यह भय भी था कि शीलमणि रो-रोकर प्राण न त्याग दे। सच पूछिये, तो उसीके श्रद्धामय प्रेमने अबतक मेरी प्राण-रक्षा की है। अगर वह एक क्षणके लिये भी मुझसे विमुख हो जाती तो मैं अवश्य ही आत्मघात कर लेता। ज्ञानशङ्कर मेरे स्वभावको जानते हैं। मैं और वह बरसोंतक भाइयोंकी भाँति

रहे हैं, उन्हें मालूम है कि मेरे हृदयमें मर्मस्थान कहाँ है। इसी स्थानको उन्होंने अपनी कलमसे बेधा और मेरी आत्माको सदाके लिये निर्बल बना दिया।

प्रेम—मैं तो आपको यही सलाह दूँगा कि इन पत्रोंपर मानहानिका अभियोग चलाइये। इसके सिवा अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेका कोई उपाय नहीं है। मुझे इसकी जरा भी परवा नहीं कि ज्ञानशङ्करपर इसका क्या असर पड़ेगा। उन्हें अपने कर्मोंका दण्ड मिलना चाहिये। मैं स्वयं सहिष्णुताका भक्त हूँ, लेकिन यह असंभव है कि कोई मेरे चरित्रपर मिथ्या कलङ्क लगाये और मैं मौन धारण किये बैठा रहूँ। आप वकीलोंसे सलाह लेकर अवश्य मानहानिका मुकदमा चलाइये।

ज्वालासिंह कुछ सोचकर बोले, और भी बदनामी होगी।

प्रेम—कदापि नहीं। आपको इन मिथ्याक्षेपोंके प्रतिवाद करनेका अवसर मिलेगा और जनताकी दृष्टिमें आपका सम्मान बढ़ जायगा। ऐसी दशामें आपका चुप रह जाना अक्षम्य ही नहीं, दूषित है। यह न समझिये कि मुझे ज्ञानशङ्करसे द्वेष या अपवादसे प्रेम है। मैं इस मामलेको केवल सिद्धान्तकी निष्पक्ष दृष्टिसे देखता हूँ। मान-रक्षा हमारा धर्म है।

ज्वाला—मैं नतीजेको सोचकर कातर हो जाता हूँ। बाबू ज्ञानशङ्करका फँस जाना निश्चित है। मुमकिन है, जेलकी नौबत आये। वह आत्मिक कष्ट मेरे लिये इससे कहीं असह्य होगा। जिस प्राणीसे बरसोंतक भ्रातृवत् प्रेम रहा, जिससे दाँत काटी रोटी थी, उससे मैं इतना कठोर नहीं हो सकता। मैं तो इस विचारमात्रहीसे काँप उठता हूँ। इन आक्षेपोंसे मेरी केवल इतनी हानि होगी कि यहाँसे तबदील हो जाऊँगा या अधिकसे अधिक पदच्युत हो जाऊँगा। परन्तु ज्ञानशङ्कर तबाह हो जायँगे। मैं अपने दुरावेशोंको पूरा करनेके लिये उनके परिवारका सर्वनाश नहीं कर सकता।

प्रेमशङ्करने ज्वालासिंहको श्रद्धापूर्ण नेत्रोंसे देखा। इस आत्मोत्सर्गके सामने उनका सिर झुक गया, हृदय सदनुरागसे परिपूर्ण हो गया, ज्वालासिंहके पैरोंपर गिर पड़े और सजल नेत्र होकर बोले, भाईजी, आपको परमात्माने देवस्वरूप बनाया है। मुझे अबतक न मालूम था, कि आपके हृदयमें ऐसे पवित्र और निर्मल भाव छिपे हुए हैं।

ज्वालासिंह झिझककर पीछे हट गये और बोले, भैया, भैया, ईश्वरके लिये यह अन्याय न कीजिये। मैं तो अपनेको इस योग्य भी नहीं पाता कि आपके चरणारविन्द अपने माथेसे लगाऊँ। आप मुझे काँटोंमें घसीट रहे हैं।

प्रेमशङ्कर—यदि आपकी इच्छा हो तो मैं उन्हीं पत्रोंमें इन आक्षेपोंका प्रतिवाद कर दूँ।

ज्वालासिंह वास्तवमें प्रतिवादकी आवश्यकताको स्वीकार करते थे; किन्तु इस भयसे कि कहीं मेरी अनुमति मुझे उस उच्च पदसे गिरा न दे, जो मैंने अभी प्राप्त किया है, इन्कार करना ही उचित जान पड़ा। बोले, जी नहीं, इसकी भी जरूरत नहीं।

प्रेमशङ्करके चले जानेके बाद ज्वालासिंहको खेद हुआ कि प्रतिवादका ऐसा उत्तम अवसर हाथसे निकल गया। अगर इनके नामसे प्रतिवाद निकलता तो यह सारा मिथ्याजाल मकड़ीके जालोंके सदृश कट जाता। पर अब तो जो हुआ सो हुआ। एक साधु पुरुषके हृदयमें स्थान तो मिल गया।

प्रेमशङ्कर घरतक जानेका विचार करके हाजीपुरसे चले थे। महीनोंसे घरका कुशल-समाचार न मिला था, लेकिन यहाँसे उठे तो नौ बज गये थे, जेठकी लू चलने लगी थी। घरसे हाजीपूर लौट जाना दुस्तर था। इसलिये किसी दूसरे दिन आनेका इरादा करके लौट पड़े।

लेकिन ज्ञानशङ्करको चैन कहाँ! उन्हें ज्योंही मालूम हुआ, कि भैया देहातसे लौट आये हैं, वह उनसे मिलनेके लिये उत्सुक

हो गये। ज्वालासिंहको उनकी नज़रोंसे गिराना आवश्यक था। सन्ध्या समय था। प्रेमशङ्कर अपने झोंपड़ेके सामनेवाले गमलों-में पानी दे रहे थे, कि ज्ञानशङ्कर आ पहुँचे और बोले, क्या मजूर कहीं चला गया है क्या ?

प्रेमशङ्कर—मैं भी तो मजूर ही हूँ। घरपर सब कुशल है न ?

ज्ञान—जी हाँ, सब आपकी दया है। आपके यहाँ तो कई मजूर हलवाहे होंगे ? क्या वह इतना भी नहीं कर सकते कि इन गमलोंको सींच दें ? आपको व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ता है।

प्रेम—मुझे उनसे काम लेनेका कोई अधिकार नहीं है। वह मेरे निजके नौकर नहीं हैं। मैं तो केवल यहाँका निरीक्षक हूँ और फिर मैंने अमेरिकामें तो अपने हाथोंसे बर्तन धोये हैं, होटलोंका मेजें साफ की हैं, सड़कोंपर झाड़ू दी है, यहाँ आकर मैं कोई और तो नहीं हो गया। मैंने यहाँ कोई खिदमत-गार नहीं रक्खा है। अपना सब काम कर लेता हूँ।

ज्ञान—तब तो आपने हद कर दी। क्या मैं पूछ सकता हूँ, कि आप क्यों अपना आत्माको इतना कष्ट देते हैं ?

प्रेम—मुझे कोई कष्ट नहीं होता। हाँ, इसके विरुद्ध आचरण करनेमें अलबत्ता कष्ट होगा। मेरी आदत ही ऐसी पड़ गयी है।

ज्ञान—यह तो आप मानते हैं कि आत्मिक उन्नतिकी भिन्न-भिन्न कक्षाएँ होती हैं।

प्रेम—मैंने इस विषयमें कभी विचार नहीं किया और न अपना कोई सिद्धान्त स्थिर कर सका हूँ। उस मुकदमेकी अपील अभी दायर की या नहीं ?

ज्ञान—जी हाँ, दायर कर दी। आपने ज्वालासिंहकी सज्जनता देखी ? यह महाशय मेरे बनाये हुए हैं, मैंने ही इन्हें रटा-रटाके किसी तरह बी० ए० कराया, अपना हर्ज करता था, पर पहले इनकी कठिनाइयोंको दूर कर देता था। इस नेकीका इन्होंने यह बदला दिया। ऐसा कृतघ्न मनुष्य मैंने नहीं देखा।

प्रेम—पत्रोंमें उनके विरुद्ध जो लेख छपे थे, वह तुम्हींने लिखे थे ?

ज्ञान—जी हाँ। जब वह मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, तब मैं क्यों उनकी रिआयत करूँ ?

प्रेम—तुम्हारा व्यवहार बिलकुल न्याय-विरुद्ध था। उन्होंने जो कुछ किया न्याय समझ कर किया। उनका उद्देश्य तुम्हें नुकसान पहुँचाना न था। तुमने केवल उनका अनिष्ट करनेके लिये यह आक्षेप किये।

ज्ञान—जब आपसमें अदावत हो गयी तब सत्यासत्यका विवेचन कौन करता है ? धर्म-युद्धका समय अब नहीं रहा।

प्रेम—तो यह सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है ?

ज्ञान—जी हाँ, आपके सामने, लेकिन दूसरोंके सामने·····

प्रेम—(बात काटकर) वह मानहानिका दावा कर दें तो ?

ज्ञान—इसके लिये बड़ा हिम्मत चाहिये और उनमें हिम्मत-का नाम नहीं। यह सब रोब-दाब दिखानेको ही है। अपीलका फैसला मेरे अनुकूल हुआ, तो अभी उनकी और खबर लूँगा। जाते कहाँ हैं ? और कुछ न हुआ तो बदनामीके साथ तबदील तो हो ही जायेंगे। अबकी तो आपने लखनपूरकी खूब सैर की, असामियोंने मेरी खूब शिकायत की होगी।

प्रेम—हाँ, शिकायत सभी कर रहे हैं।

ज्ञान—लड़ाई-दंगेका तो कोई भय नहीं है ?

प्रेम—मेरे विचारमें तो इसकी कोई सम्भावना नहीं है।

ज्ञान—अगर उन्हें मालूम हो जाय कि इस विषयमें हम लोगोंमें मतभेद है—और यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि आप अपने मनोगत भावोंको छिपा नहीं सकते—तो वह और भी शेर हो जायँगे।

प्रेम—(हँसकर) तो इससे हानि क्या होगी ?

ज्ञान—आपके सिद्धान्तोंके अनुसार तो कोई हानि न होगी,

पर मैं कहींका न रहूँगा। इस समय मेरे हितके लिये यह अत्यावश्यक है कि आप उधर आना जाना कम कर दें।

प्रेम—क्या तुम्हें सन्देह है कि मैं असामियोंको उभाड़कर तुमसे लड़ाता हूँ? मुझे तुमसे कोई दुश्मनी है? मुझे लखनपूरकेही नहीं, सारे देशके कृषकोंसे सहानुभूति है। लेकिन इसका यह आशय नहीं, कि मुझे जमींदारोंसे कोई द्वेष है। हाँ; अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं उधर न जाऊँ तो यही सहो। अबसे कभी न जाऊँगा।

ज्ञानशङ्करको इतमीनान तो हुआ, पर वह इसे प्रकट न कर सके, मनमें लज्जित थे! अपने भाईकी रजोवृत्तिके सामने उन्हें अपनी तमोवृत्ति बहुत ही निकृष्ट प्रतीत होती थी। वह कुछ देरतक कपास और मक्काके खेतोंको देखते रहे, जो यहाँ बहुत पहले ही बो दिये गये थे। फिर घर चले आये। श्रद्धाके बारेमें न प्रेमशङ्करने कुछ पूछा और न उन्होंने कुछ कहा। श्रद्धा अब उनकी प्रेयसी नहीं, उपास्य देवी थी।

दूसरे दिन दस बजे डाकियेने उन्हें एक रजिस्टर्ड लिफाफा दिया। उन्होंने विस्मित होकर लिफाफेको देखा। पता साफ लिखा हुआ था। खोला तो ५००) का एक करेन्सी नोट निकला। एक पत्र भी था, जिसमें लिखा हुआ था:—

"लखनपूरवालोंकी सहायताके लिये यह रुपये आपके पास भेजे जाते हैं। इससे आप अपीलकी पैरवी करनेके लिये उन्हें दे दें। इस कष्टके लिये क्षमा कीजियेगा।"

प्रेमशङ्कर सोचने लगे, इसका भेजनेवाला कौन है। यहाँ मुझे कौन जानता है? कौन मेरे विचारोंसे अवगत है? किसे मुझपर इतना विश्वास है? इन सब प्रश्नोंका उत्तर मिलता था, 'ज्वालासिंह' किन्तु मन इस उत्तरको स्वीकार न करता था।

अब उन्हें यह चिंता लगी कि यह रुपये क्योंकर भेजूँ? ज्ञानशङ्करको मालूम हो गया तो वह समझेंगे, मैंने स्वयं असामियोंको

सहायता दी है। उन्हें कभी विश्वास न आयेगा कि यह किसी अन्य व्यक्तिकी अमानत है। यदि असामियोंको न दूँ, तो महान् विश्वासघात होगा। इसी हैस-बैसमें शाम हो गयी और लाला प्रभाशङ्करका शुभागमन हुआ।

२३

ज्ञानशङ्करको अपीलके सफल होनेका पूरा विश्वास था। उन्हें मालूम था कि किसानोंमें धनाभावके कारण अब बिलकुल दम नहीं है। लेकिन जब उन्होंने देखा कि काश्तकारोंकी ओरसे भी मुकदमेकी पैरवी उत्तम रीतिसे की जा रही है, तो उन्हें अपनी सफलतामें कुछ-कुछ सन्देह होने लगा। उन्हें विस्मय होता था, कि इनके पास इतने रुपये कहाँसे आ गये? गौसखाँ तो कहता था कि बीमारीने सभीको मटियामेट कर दिया है, कोई अपीलकी पैरवी करने भी न जायगा, एकतरफा डिगरी होगी। यह कायापलट क्योंकर हुई? अवश्य इनको कहीं-न-कहींसे मदद मिली है। कोई महाजन खड़ा हो गया है। शहरमें तो कोई ऐसा नहीं दीख पड़ता, लखनपूरहाके आस-पासका होगा। खैर, कभी तो रहस्य खुलेगा, तब बच्चूसे समझूँगा। फैसलेके दिन वह स्वयं कचहरी गये। अपील खारिज हो गयी। सबसे पहले गौसखाँ सामने आये। उनसे डपटकर बोले, क्यों जनाब, आप तो फरमाते थे, इन सभोंके पास कौड़ी कफनको नहीं है, यह वकील क्या योंही आ गया?

गौसखाँने भी गर्म होकर कहा, मैंने हजूरसे बिलकुल सही अर्ज किया था, लेकिन मैं क्या जानता था कि मालिकोंमें ही इतना निफाक है। मुझे पता लगता है कि हजूरके बड़े भाई साहबने एक हफ्ता हुआ कादिरको अपीलकी पैरवीके लिये एक हजार रुपये दिये हैं।

ज्ञानशङ्कर स्तम्भित हो गये। एक क्षणके बाद बोले—बिलकुल झूठ है।

गौसखाँ—हर्गिज नहीं। मेरे चपरासियोंने कादिरखाँको अपनी जबानसे यह कहते सुना है। उससे पूछा जाय तो वह आपसे भी साफ-साफ कह देगा या आप अपने भाई साहबसे खुद पूछ सकते हैं।

ज्ञानशङ्कर निरुत्तर हो गये। उसी समय पैरगाड़ी संभाली, झल्लाये हुए घर आये और श्रद्धासे तीव्रस्वरमें बोले, भाभी,तुमने देखी भैयाकी कारामात? आज पता चला है कि आपने लखनपूरवालोंको अपीलकी पैरवी करनेके लिये एक हजार रुपये दिये हैं। इसका फल यह हुआ कि मेरी अपील खारिज हो गयी, महीनोंकी दौड़-धूप और हजारों रुपयोंपर पानी फिर गया। एक हजार सालानाका नुकसान हुआ और रोब-दाब बिलकुल मिट्टीमें मिल गया। मुझे उनसे ऐसी कूटनीतिकी आशङ्का न थी। अब तुम्हीं बताओ, उन्हें दोस्त समझूँ या दुश्मन?

श्रद्धाने संशयात्मक भावसे कहा, तुम्हें किसीने बहका दिया होगा। भला उनके पास इतने रुपये कहाँ होंगे?

ज्ञान—नहीं, मुझे पक्की खबर मिली है। जिन लोगोंने रुपये पाये हैं, वे खुद अपनी जबानसे कहते हैं।

श्रद्धा—तुमसे तो उन्होंने वादा किया था न कि लखनपूरसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं वहाँ कभी न जाऊँगा?

ज्ञान—हाँ, कहा तो था और मैंने उनपर विश्वास कर लिया था, लेकिन आज विदित हुआ कि कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो सारे संसारके मित्र होते हैं, पर अपने घरके शत्रु। जरूर इसमें चचा साहबका भी हाथ है।

श्रद्धा—पहले उनसे पूछ तो लो। मुझे विश्वास नहीं आता कि उनके पास इतने रुपये होंगे।

ज्ञान – उनकी कपटनीतिने मेरे सारे मनसूबोंको मिट्टीमें मिला दिया। जब उनको मुझसे इतना वैमनस्य है,तो मैं नहीं समझता कि मैं उन्हें अपना भाई कैसे समझूँ? बिरादरीवालोंने उनका जो

तिरस्कार किया वह असंगत नहीं था। विदेश-निवास आत्मीयताका नाश कर देता है।

श्रद्धा—तुम्हें भ्रम हुआ है।

ज्ञान—फिर वही बच्चोंकीसी बातें करती हो। तुम क्या जानती हो कि उनके पास रुपये थे या नहीं?

श्रद्धा – तो जरा वहाँतक चले ही क्यों नहीं जाते?

ज्ञान—अब नहीं जा सकता। मुझे उनकी सूरतसे घृणा हो गयी। उन्होंने असामियोंका पक्ष लिया है तो मैं भी दिखा दूँगा, कि मैं क्या कर सकता हूँ? जमींदारके बावन हाथ होते हैं। लखनपूरवालोंको ऐसा कुचलूँगा कि उनकी हड्डियोंका पता न लगेगा। भैयाके मनकी बात मैं जानता हूँ। तुम सरलस्वभावा हो, उनकी तहतक नहीं पहुँच सकतीं। उनका उद्देश्य इसके सिवा और कुछ नहीं है कि मुझे तंग कर और असामियोंको उभाड़कर मुसल्लम गाँव हथिया लें और हम तुम कहींके न रहें। अब उन्हें खूब पहचान गया। रँगे हुए सियार हैं—मनमें और, मुँहमें और। और फिर जिसने अपना धर्म खो दिया, वह जो कुछ न करे, थोड़ा है। इनसे तो बेचारा ज्वालासिंह फिर भी अच्छा है। उसने जो कुछ किया, न्याय समझकर किया, मेरा अहित न करना चाहता था। एक प्रकारसे मैंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया, उसे देशभरमें बदनाम कर दिया। उन बातोंको याद करनेसे ही दुःख होता है।

श्रद्धा—उनकी तो यहाँसे बदली हो गयी। शीलमणिकी महरी आज आयी थी। कहती थी, तीन-चार दिनमें चले जायँगे। दरजा भी घटा दिया गया है।

ज्ञानशङ्करने चौंककर कहा - सच!

श्रद्धा—शीलमणि कल आनेवाली है। विद्या बड़े सङ्कोचमें पड़ी हुई है।

ज्ञान—मुझसे बड़ी भूल हुई। इसका शोक जीवन-पर्य्यन्त

रहेगा। मुझे तो अब इसका विश्वास होता जाता है कि भैयाने उनके कान भी भर दिये थे। जिस दिन वह मौका देखने गये थे, उसी दिन भैया भी लखनपूर पहुँचे। बस, इधर तो ज्वालासिंहको पट्टा पढ़ायी, उधर गाँववालोंको पक्का-पोढ़ा कर दिया। मैं कभी कल्पना भी न कर सकता था कि वह इतनी दूरकी कौड़ी लायेंगे, नहीं तो मैं पहलेसे ही चौकन्ना रहता।

श्रद्धाने ज्ञानशंकरको अनादरकी दृष्टिसे देखा और वहाँसे उठकर चली गयी।

दूसरे दिन शीलमणि आयी और दिनभर यहाँ रही। चलते समय विद्या और श्रद्धासे गले मिल कर खूब रोयी।

ज्वालासिंह पाँच दिन और रहे। ज्ञानशंकर रोज उनसे मिलनेका विचार करते, लेकिन समय आनेपर कातर हो जाते थे। भय होता, कहीं उन्होंने उन आक्षेपपूर्ण लेखोंकी चर्चा छेड़ दी, तो क्या जवाब दूँगा? धाँधली तो कर सकता हूँ; साफ मुकर जाऊँ कि मैंने कोई लेख नहीं लिखा, मेरे नामसे तो कोई लेख छपा नहीं; किन्तु शंका होती थी कि कहीं इस प्रपंचसे ज्वालासिंहकी आँखोंमें और न गिर जाऊँ।

पाँचवें दिन ज्वालासिंह यहाँसे चले। स्टेशनपर मित्रजनोंकी अच्छी संख्या थी। प्रेमशंकर भी मौजूद थे। ज्वालासिंह मित्रोंसे हाथ मिला-मिलाकर विदा होते थे। गाड़ीके छूटनेमें एक-दो मिनट ही बाकी थे, कि इतनेमें ज्ञानशङ्कर लपके हुए प्लैटफार्मपर आये और पीछेकी श्रेणीमें खड़े हो गये। आगे बढ़कर मिलनेकी हिम्मत न पड़ी। ज्वालासिंहने उन्हें देखा, गाड़ीसे उतरकर उनके पास आये और गलेसे लिपट गये। ज्ञानशङ्करकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। ज्वालासिंह रोते थे कि चिरकालकी मैत्रीका ऐसा शोकमय अन्त हुआ, ज्ञानशङ्कर रोते थे कि हाय! मेरे ऐसे सच्चे, निश्छल, निःस्पृह और हितैषी मित्रका अमङ्गल हुआ।

गार्डने झण्डी दिखायी, तो ज्ञानशङ्करने कम्पित स्वरमें कहा, भाई जान, मैं अत्यन्त लज्जित हूँ।

ज्वालासिंह बोले, उन बातोंको भूल जाइये।

ज्ञान - ईश्वरने चाहा तो इसका प्रतिकार कर दूँगा।

ज्वाला—कभी-कभी पत्र लिखते रहियेगा, भूल न जाइयेगा।

लोगोंको दोनों मित्रोंके इस सद्व्यवहारपर कुतूहल हुआ। उनके विचारमें इस घावका भरना दुस्तर था। सबसे ज्यादा आश्चर्य प्रेमशङ्करको हुआ, जो ज्ञानशङ्करको उससे कहीं असज्जन समझते थे, जितने वह वास्तवमें थे।

२४

अपील खारिज करनेके बाद ज्ञानशङ्करने गोरखपूरकी तैयारी की। सोचा, इस तरह तो लखनपूरसे आजीवन गला न छूटेगा, एक न-एक उपद्रव मचा ही रहेगा। कहीं गोरखपुरमें रंग जम गया तो दो-ही-तीन बरसोंमें ऐसे कई लखनपूर हाथ आ जायँगे। विद्या भी स्थितिका विचार करके सहमत हो गयी। उसने सोचा, अगर दोनों भाइयोंमें योंही मनमुटाव रहा तो अवश्य ही बँटवारा हो जायगा और तब एक हजार सालानाकी आमदनीमें निर्वाह न हो सकेगा। इनसे और कोई काम तो हो सकेगा नहीं, वकालसे जो काम मिलता है, वही सही। अतएव जन्माष्टमीसे उत्सवके बाद ज्ञानशङ्कर गोरखपूर जा पहुँचे। प्रेमशङ्करसे मुलाकात तक न की।

प्रभातका समय था, गायत्री पूजापर थी, कि दरबानने ज्ञानशङ्करके आनेकी सूचना दी। गायत्रीने तत्क्षण तो उन्हें अन्दर न बुलाया, हाँ, जो पूजा नौ बजे समाप्त होती थी, वह सात ही बजे समाप्त कर दी। तब अपने कमरेमें आकर उसने एक सुन्दर साड़ी पहनी, बिखरे हुए केश सँवारे और गौरवके साथ मसनदपर जा बैठी। लौंडीको इशारा किया कि ज्ञानशङ्करको बुला लावे। वह अब 'रानी' थी। यह उपाधि उसे

हालमेंही प्राप्त हुई थी। वह ज्ञानशङ्करसे यथोचित आरोहसे मिलना चाहती थी।

ज्ञानशङ्कर बुलावेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें यहाँका ठाट-बाट देखकर विस्मय हो रहा था। द्वारपर दो दरवान वरदी पहने टहल रहे थे। सामनेकी अँगनाईमें एक घण्टा लटका हुआ था। एक ओर अस्तबलमें कई बड़ी रासके घोड़े बँधे हुए थे। दूसरी ओर एक टीनके झोंपड़ेमें दो हवागाड़ियाँ थीं। दालानमें पिंजरे लटकते थे, किसीमें मैना थी, किसीमें पहाड़ी श्यामा, किसीमें सुफेद तोता, विलायती खरहे अलग कठघरेमें पले हुए थे। भवनके सम्मुख ही एक बंगला था, फर्श मेज-कुरसियोंसे सजा हुआ। यही दफ्तर था। यद्यपि अभी बहुत सवेरा था, पर कर्मचारी लोग अपने-अपने काममें लगे हुए थे। जिस कमरेमें वह स्वयं बैठे हुए थे, वह दीवानखाना था। उसकी सजावट बड़े सलीकेके साथ की गयी थी। ऐसी बहुमूल्य कालीनें और ऐसे बड़े-बड़े आईने उनकी निगाहसे न गुजरे थे।

कई दालानों और आँगनोंसे गुजरनेके बाद जब वह गायत्रीकी बैठकमें पहुँचे तब उन्हें अपने सम्मुख विलासमय सौन्दर्यकी एक अनुपम मूर्ति नजर आयी, जिसके एक-एक अंगसे गर्व और गौरव आभासित हो रहा था। यह वह पहलेकीसी प्रसन्नमुख, सरलप्रकृति, विनयपूर्ण गायत्री न थी।

ज्ञानशंकरने सिर झुकाये सलाम किया और कुरसीपर बैठ गये, लज्जाने सिर न उठाने दिया। गायत्रीने कहा, आइये महाशय, आइये, क्या विद्या छोड़ती ही न थी? और तो सब कुशल है?

ज्ञान—जी हाँ, सब लोग अच्छी तरह हैं। माया तो चलते समय बहुत जिद कर रहा था कि मैं भी मासीके घर चलूँगा, लेकिन अभी बुखारसे उठे हुए थोड़े ही दिन हुए हैं, इसी कारण साथ न लाया। आपको नित्य याद किया करता है।

गायत्री—मुझे भी उसकी प्यारी-प्यारी भोली सूरत याद आती है। कई बार इच्छा हुई कि चलूँ, सबसे मिल आऊँ; पर रियासतके झमेलोंसे फुरसत ही नहीं मिलती। यह बोझ आप संभालें तो मुझे ज़रा साँस लेनेका अवकाश मिले। आपके लेखका तो बड़ा आदर हुआ। (मुस्कुराकर) खुशामद करना कोई आपसे सीख ले।

ज्ञान—जो कुछ था वह मेरी श्रद्धाका अल्पांश था।

गायत्रीने गुणज्ञताके भावसे मुस्कुराकर कहा—जब थोड़ा-सा पाप बदनाम करनेको पर्य्याप्त हो तो अधिक क्यों किया जाय? कार्तिकमें हिज एक्सेलेन्सी यहाँ आनेवाले हैं। उस अवसरपर मेरे उपाधि-प्रदानका जलसा करना निश्चय किया गया है। अभीतक तो केवल गजटमें सूचना छपी है। अब दरबारमें मैं यथोचित समारोह और सम्मानके साथ उपाधिसे विभूषित की जाऊँगी।

ज्ञान—तब तो अभीसे दरबारकी तैयारी होनी चाहिये।

गायत्री—आप बहुत अच्छे अवसरपर आये। दर्बारके मंडपमें अभीसे हाथ लगा देना चाहिये। मेहमानोंका ऐसा आदर-सत्कार किया जाय कि चारों ओर धूम मच जाय। रुपयेकी जरा भी चिन्ता मत कीजिये। आप ही इस अभिनयके सूत्रधार हैं, आपकेही हाथों इसका सूत्रपात होना चाहिये। एक दिन मैंने जिलाधीशसे आपका जिक्र किया था। पूछने लगे, उनके राजनीतिक विचार कैसे हैं। मैंने कहा, बहुत ही विचारशील शान्त प्रकृतिके मनुष्य हैं। यह सुनकर बहुत खुश हुए और कहा, वह आ जायँ तो एक बार जलसेके सम्बन्धमें मुझसे मिल लें।

इसके बाद गायत्रीने इलाकेकी सुव्यवस्था और अपने संकल्पोंकी चर्चा शुरू की। ज्ञानशङ्करको उसके अनुभव और योग्यतापर आश्चर्य्य हो रहा था। उन्हें भय होता था कि कदाचित् मैं इन कार्य्योंका उत्तम रीतिसे सम्पादन न कर सकूँ। उन्हें देहाती

बङ्कोंका बिलकुल ज्ञान न था, निर्माण-कार्य्यसे परिचित न थे, कृषिके नये आविष्कारोंसे कोरे थे, किन्तु इस समय अपनी अयोग्यता प्रकट करना नितान्त अनुचित था। वह गायत्रीकी बातोंपर ऐसी मर्मज्ञतासे सिर हिलाते थे और बीच-बीचमें ऐसी टिप्पणियाँ करते थे, मानों इन विषयोंमें पारङ्गत हैं! उन्हें अपनी बुद्धिमत्ता और चातुर्य्यपर भरोसा था। इनके बलपर वह कोई काम हाथमें लेते हुए न हिचकते थे।

ज्ञानशङ्करको दो-चार दिन भी शांतिसे बैठकर कामको समझनेका अवसर न मिला। दूसरे ही दिनसे दरबारकी तैयारियोंमें दत्तचित्त होना पड़ा। प्रातःकालसे सन्ध्यातक सिर उठानेकी फ़ुरसत न मिलती। बार-बार अधिकारियोंसे राय लेनी पड़ती, सजावटकी वस्तुओंको एकत्र करनेके लिये बार-बार रईसोंकी सेवामें दौड़ना पड़ता। ऐसा जान पड़ता था कि यह कोई सरकारी दरबार है। लेकिन कर्त्तव्यशील उत्साही पुरुष थे, कामसे घबराते न थे। प्रत्येक कामको पूरी ज़िम्मेदारीसे करते थे। वह संकोच और अविश्वास जो पहले किसी मामलेमें अग्रसर न होने देता था, अब दूर होता जाता था। उनकी अध्यवसायशीलतापर लोग चकित हो जाते थे। दो महीनोंके अविश्रान्त उद्योगके बाद दरबारका इन्तज़ाम पूरा हो गया। जिलाधीशने स्वयं आकर देखा, और ज्ञानशङ्करकी तत्परता और कार्य्यदक्षताकी खूब प्रशंसा की। गायत्रीसे मिले तो ऐसे सुयोग्य मैनेजरकी नियुक्तिपर उसे बधाई दी। अभिनन्दनपत्रकी रचनाका भार भी ज्ञानशङ्करपर ही था। साहब बहादुरने उसे पढ़ा, तो लोट-पोट हो गये और नगरके मान्य जनोंसे कहा, मैंने किसी हिन्दुस्तानीकी कलममें यह चमत्कार नहीं देखा।

अक्टूबर मासकी १५ तारीख दरबारके लिये नियत थी। लोग सारी रात जागते रहे। प्रातःकालसे सलामीकी तोपें दगने लगीं। अगर उस दिनकी कार्य्यवाहीका संक्षिप्त वर्णन किया

जाय तो एक ग्रन्थ बन जाय। ऐसे अवसरोंपर उपन्यासकार अपनी कल्पनाको समाचारपत्रोंके संवाददाताओंके सुपुर्द कर देता है। लेडियोंके भूषणालंकारकी बहार, रसोईकी सजधजकी छटा देखनी हो, दावतकी चटपटी, स्वादयुक्त सामग्रियोंका मजा चखना हो और शिकारके तड़प-झड़पका आनन्द उठाना हो तो अखबारोंके ही पन्ने उलटिये। वहाँ आपको सारा विवरण अत्यन्त सजीव, चित्रमय शब्दोंमें मिलेगा। प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्ट शिकार खेलने अफ्रिका गये थे तो संवादाताओंकी एक मंडली उनके साथ गयी थी। सम्राट् जार्ज पञ्चम जब भारतवर्ष आये थे तब संवाददाताओंकी एक पूरी सेना उनके जलूसमें थी। यह दरबार इतना महत्वपूर्ण न था, तिपर भी पत्रोंमें महीनोंतक इसकी चर्चा होती रही। हम इतना ही कह देना काफी समझते हैं कि दरबार विधिपूर्वक समाप्त हुआ, कोई त्रुटि न रही, प्रत्येक कार्य निर्दिष्ट समयपर हुआ, किसी प्रकारकी अव्यवस्था न होने पाई। इस विलक्षण सफलताका सेहरा ज्ञानशङ्करके सिर था। ऐसा मालूम होता था कि सभी कठपुतलियाँ उन्हींके इशारेपर नाच रही हैं। गवर्नर महोदयने विदाईके समय उन्हें धन्यवाद दिया, चारों तरफ वाह वाह हो गयी।

सन्ध्या समय था। दरबार समाप्त हो चुका था। ज्ञानशङ्कर नगरके मान्यजनोंके साथ गवर्नरको स्टेशनतक बिदा करके लौटे थे और एक कोचपर आरामसे लेटे सिगार पी रहे थे। आज उन्हें सारा दिन दौड़ते गुजरा था, जरा भी दम लेनेका अवकाश न मिला। वह कुछ अलसाये हुए थे, पर इसके साथ ही हृदयपर वह उल्लास छाया हुआ था, जो किसी आशातीत सफलताके बाद प्राप्त होता है। वह इस समय जब अपने कृत्योंका सिंहावलोकन करते थे तो उन्हें अपनी योग्यतापर स्वयं आश्चर्य होता था। अभी दो-ढाई मास पहले मैं क्या था, एक मामूली आदमी, केवल दो हजार सालानाका जमींदार। शहरमें कोई मेरी-बात

भी न पूछता था, छोटे-छोटे अधिकारियोंसे भी दबता था और उनकी खुशामद करता था। अब यहाँके अधिकारिवर्ग मुझसे मिलनेकी अभिलाषा रखते हैं। शहरके मान्यगण अपना नेता समझते हैं। बनारसमें तो सारी उम्र बीत जाती, तब भी यह सम्मान-पद न लाभ होता। आज गायत्रीका मिजाज भी आसमानपर होगा। मुझे जरा भी आशा न थी कि वह इस तरह बेधड़क मंचपर चली आयेगी। वह मंचपर आयी तो सारा दरबार जगमगाने लगा था। उसके कुन्दनवर्णपर अगरई साड़ी कैसी छटा दिखा रही थी! उसके सौन्दर्यकी आभाने रत्नोंकी चमक-दमकको भी मात कर दिया था। विद्या इससे कहीं रूपवती है, लेकिन उसमें यह आकर्षण कहाँ, यह उत्तेजक शक्ति कहाँ, यह सगर्विता कहाँ, यह रसिकता कहाँ? इसके सम्मुख आकर आँखोंपर, चित्तपर, जबानपर काबू रखना कठिन हो जाता है। मैंने चाहा था कि इसे अपनी ओर खींचूँ, उससे मान करूँ, किन्तु कोई शक्ति मुझे बलात् उसकी ओर खींचे लिये जाती है। अब मैं रुक नहीं सकता। कदाचित् वह मुझे अपने समीप आते देखकर पीछे हटती है, मुझसे स्वामिनी और सेवकके अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती। वह मेरी योग्यताका आदर करती है और मुझे अपनी सम्माननृष्णाका साधनमात्र बनाना चाहती है। उसके हृदयमें अब अगर कोई अभिलाषा है तो वह सम्मान-प्रेम है। यही अब उसके जीवनका मुख्य उद्देश्य है। मैं इसीका आवाहन करके यहाँ पहुँचा हूँ और इसीकी बदौलत एक दिन मैं उसके हृदयमें प्रेमका बीज भी अंकुरित कर सकूँगा।

ज्ञानशङ्कर इन्हीं विचारोंमें मग्न थे कि गायत्रीने अन्दर बुलाया और मुस्कुराकर कहा, आज सारी आयोजनाका श्रेय आपको है। मैं हृदयसे आपकी अनुगृहीत हूँ। साहब बहादुरने चलते समय आपको बड़ी प्रशंसा की। आपने मजूरोंकी मजूरी तो दिला

दी है ? मैं इस आनन्दोत्सवमें बेगार लेकर किसीको दुःखी नहीं करना चाहती।

ज्ञान—जी हाँ, मैंने मुख्तारसे कह दिया था।

गायत्री—मेरी ओरसे प्रत्येक मजूरको एक-एक रुपया इनाम दिला दीजिये।

ज्ञान—पाँच सौ मजूरोंसे कम न होंगे।

गायत्री—कोई हर्ज नहीं, ऐसे अवसर रोज नहीं आया करते। जिस ओवरसियरने पण्डाल बनवाया है, उसे १००) इनाम दे दीजिये।

ज्ञान—वह शायद स्वीकार न करे।

गायत्री—यह रिशवत नहीं, इनाम है। स्वीकार क्यों न करेगा ? फर्राशों और आतशबाजोंको भी कुछ मिलना चाहिये।

ज्ञान—तो फिर हलवाई और बावर्ची, खानसामे और खिदमतगार क्यों छोड़े जायँ ?

गायत्री—नहीं, कदापि नहीं, उन्हें २०) २०) से कम न मिले।

ज्ञान—(हँसकर) मेरी सारी मितव्ययिता निष्फल हो गयी।

गायत्री—वाह, उसीकी बदौलत तो मुझे हौसला हुआ है। मजूरको मजूरी कितनी ही दीजिये, खुश नहीं होगा; लेकिन इनाम पाकर खुशीसे फूल उठता है। अपने नौकरोंको भी यथायोग्य कुछ-न-कुछ दिलवा दीजिये।

ज्ञान—जी हाँ, जब बाहरवाले लूट मचायें तो घरवाले क्यों गीत गायें ?

गायत्री—नहीं, घरवालोंको पहला हक़ है जो आठों पहरके गुलाम हैं। सब आदमियोंका यहीं बुलवाइये, मैं अपने हाथसे उन्हें इनाम दूँगी। इसमें उन्हें विशेष आनन्द मिलेगा।

ज्ञान—घण्टोंकी झंझट है। बारह बज जायेंगे।

गायत्री—यह झंझट नहीं है। यह मेरी हार्दिक लालसा

है। अब मुझे कई बड़े-बड़े अनुष्ठान करने हैं। यह मेरा जड़ाऊ कङ्गन है। यह विद्याके भेंट है, कल इसका पारसल भेज दीजिये और ५००) नगद।

ज्ञान—(सिर झुकाकर) इसकी क्या जरूरत है? कौन-सा मौका है?

गायत्री—और कौन-सा मौका होगा। मेरे लड़के-लड़कियाँ भी तो नहीं हैं कि उनके विवाहमें दिलके अर्मान निकालूँगी। यह कङ्गन उसे पसन्द भी था। पिछले साल इटालीसे मँगवाया था। अब आपसे भी मेरी एक प्रार्थना है। आप मुझसे छोटे हैं, आप भी अपना हक़ वसूल कीजिये और निर्दयताके साथ।

ज्ञानशङ्करने शरमाते हुए कहा—मेरे लिये आपकी कृपादृष्टि ही काफी है। इस अवसरपर मुझे जो कीर्ति प्राप्त हुई है, वही मेरा इनाम है।

गायत्री—जी नहीं, मैं न मानूँगी। इस समय सङ्कोच छोड़िये और सूद खानेवालोंकी भाँति कठोर बन जाइये। यह आपकी कलम है, जिसने मुझे इस पदपर पहुँचाया है, नहीं तो जिलेमें मेरी जैसी कितनी ही स्त्रियाँ हैं, कोई उनकी बात भी नहीं पूछता। इस कलमकी यथायोग्य पूजा किये बिना मुझे तस्कीन न होगी।

ज्ञान—इसकी जरूरत तो तब होती जब मुझे उससे कम आनन्द प्राप्त होता, जितना आपको हो रहा है।

गायत्री—मैं यह तर्क-वितर्क एक भी न सुनूँगी। आप स्वयं कुछ नहीं कहते, इसलिये आपकी ओरसे मैं ही कहे देती हूँ। आप अपने लिये बनारसमें अपने घरसे मिला हुआ एक सुन्दर बङ्गला बनवा लीजिये। चार कमरे हों और चारों तरफ बरामदे। बरामदोंपर विलायती खपरैल हो और कमरोंपर लदाबकी छत। छतपर बरसातके लिये एक हवादार कमरा बनवा लीजिये। खुश हुए?

ज्ञानशङ्करने कृतज्ञतापूर्ण भावसे देखकर कहा, खुश तो नहीं हूँ, अपने ऊपर ईर्षा होती है।

गायत्री—बस, दीपमालिकासे आरम्भ कर दीजिये। अब बतलाइये, मायाको क्या दूँ ?

ज्ञान—मायाको अभी कुछ न चाहिये। उसका इनाम अपने पास अमानत रहने दीजिये।

गायत्री—आप नौ नगद तेरह उधारवाली मसल भूले जाते हैं।

ज्ञान—अमानतपर तो कुछ न कुछ ब्याज मिलता है।

गायत्री—अच्छी बात है, पर इस समय उसके लिये कलकत्ते के किसी कारखानेसे एक छोटा-सा टैण्डम मंगा दीजिये और मेरा टाँघन जो ताँगेमें चलता है, बनारस भेज दीजिये। छोटी लड़कीके लिये हार बना दीजिये, जो ५००) से कमका न हो।

ज्ञानशङ्कर यहाँसे चले तो पैर धरतीपर न पड़ते थे। बंगलेकी अभिलाषा उन्हें चिरकालसे थी। वह समझते थे, यह मेरे जीवनका मधुर स्वप्न ही रहेगी; लेकिन सौभाग्यकी एक ही दृष्टिने वह चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण कर दी।

आरम्भ तो उत्साहवर्द्धक हुआ, देखें अन्त क्या होता है!

२५

आयमें वृद्धि और व्ययमें कमी, यह ज्ञानशङ्करके सुप्रबन्धका फल था। यद्यपि गायत्री भी सदैव किफायतपर निगाह रखती थी, पर उसकी किफायत अशर्फियोंकी लूट और कोयलोंपर मोहरको चरितार्थ करती थी। ज्ञानशङ्करने सारी व्यवस्था ही पलट दी। कारिन्दोंकी बेपरवाईसे इलाकेमें जमीनके बड़े-बड़े टुकड़े परती पड़े थे, हजारों बीघेकी सीर होती थी, पर अनाजका कहीं पता न चलता था, सबका सब सिपाही, प्यादोंकी खुराकमें उठ जाता था। पटवारीकी साज़िश और कारिन्दोंकी बेईमानीसे कितनी ही उर्वरा भूमि ऊसर दिखाई जाती थी। सायरकी सारी

आमदनी राज्याधिकारियोंके आदर-सत्कारके लिये भेंट हो जाती थी। नौकर भी जरूरतसे ज्यादा पड़े हुए थे। ज्ञानशङ्करने कागजपत्र देखा तो उन्हें बड़ा गोलमाल दिखाई दिया। बहुत दिनोंसे इजाफा लगान न हुआ था। खेतोंकी जमाबन्दी भी किसी निश्चित नियमके अधीन न थी। हजारों रुपये प्रति वर्ष बट्टे खाते चले जाते थे। बड़े-बड़े टुकड़े मौरूसी हो गये थे। ज्ञानशङ्करने इन सभी मामलोंकी छानबीन शुरू की। सारे इलाकेमें हलचल मच गयी। गायत्रीके पास शिकायतें पहुँचने लगीं और यद्यपि गायत्री असामियोंके साथ नर्मीका बर्ताव करना पसन्द करती थी, पर जब ज्ञानशङ्करने उसे हिसाबका ठ्यौरा समझाया तो उसकी आँखें खुल गयीं। हजारसे ज्यादा ऐसे असामी थे, जिनपर तत्काल बेदखली न दायर की जाती तो वे सदाके लिये जमींदारके काबूसे बाहर हो जाते और २० हजार सालानाकी क्षति होती। इजाफा लगानसे आमदनी सवाई हुई जाती थी। जिस रियासतसे २ लाख सालाना भी न निकलता था, उससे बिना किसी अड़चनके ३ लाखकी निकासी होती नजर आती थी; ऐसी दशामें गायत्री अपने सुयोग्य मैनेजरसे क्यों न सहमत होती?

तीन वर्षतक सारी रियासतमें हाहाकार मचा रहा। ज्ञानशङ्करको नाना प्रकारके प्रलोभन दिये गये, यहाँतक कि मार डालनेकी धमकियाँ भी दी गयीं,पर वह अपने कर्मपथसे न हटे। यदि वह चाहते तो इन परिस्थितियोंको अपरिमित धनसंचयका साधन बना सकते थे, पर सम्मान और अधिकारने अब उन्हें क्षुद्रताओंसे निवृत्त कर दिया था।

किन्तु जो मन्सूबे बाँधकर ज्ञानशङ्कर यहाँ आये थे वे अभी तक पूरे होते नजर न आये थे। गायत्री उनका लिहाज करती थी, प्रत्येक विषयमें उन्हींकी सलाहपर चलती थी, लेकिन इसके साथ ही वह उनसे कुछ खिंची रहती थी। उन्हें प्रायः नित्य

ही उससे मिलनेका अवसर प्राप्त होता था, वह इलाकेके दूरवर्ती स्थानोंसे भी मोटरपर लौट आया करते थे, लेकिन यह मुलाकात कार्य्यसम्बन्धी होती थी, यहाँ प्रेमतत्व-दर्शनका मौका न मिलता। दो-चार लौंडियाँ खड़ी रहतीं, निराश होकर लौट आते थे। वह आग जो उन्होंने हाथ सेंकनेके लिये जलायी थी, अब उनके हृदयको भी गर्म करने लगी थी। उनकी आँखें गायत्रीके दर्शनोंकी भूखी रहती थीं, कान उसका मधुर भाषण सुननेके लिये विकल। यदि किसी दिन मजबूर होकर उन्हें देहातमें ठहरना पड़ता या किसी कारणसे गायत्रीसे भेंट न होती तो वह उस अफीमचीकी भाँति अस्थिर-चित्त हो जाते थे, जिसे समयपर अफीम न मिले।

एक दिन गायत्रीने प्रातःकाल ज्ञानशङ्करको अन्दर बुलाया। आजकल मकानकी सफाई और सुफेदी हो रही थी। दीपमालिकका उत्सव निकट था। गायत्री बगीचेमें बैठी हुई चिड़ियोंको दाना चुगा रही थी। कोई लौंडी न थी। ज्ञानशङ्करका हृदय चिड़ियोंकी भाँति फुदकने लगा। आज पहली बार उन्हें ऐसा अवसर मिला। गायत्रीने उन्हें देखकर कहा,आज आपको कोई बहुत जरूरी काम तो नहीं है? मैं आपसे एक खास मामलेमें कुछ राय लेना चाहती हूँ।

ज्ञानशङ्कर—कुछ हिसाब-किताब देखना था, लेकिन कोई ऐसा जरूरी काम नहीं है।

गायत्री—मेरे स्वामीने अन्तिम समय मुझे वसीयत की थी कि अपने बाद यह इलाका धर्मार्पण कर देना और इसकी निगरानी और प्रबन्धके लिये एक ट्रष्ट बना देना। मेरी अब इच्छा होती है कि उनकी वसीयत पूरी कर दूँ। जिन्दगीका कोई भरोसा नहीं, न जाने कब संदेशा आ पहुँचे। कहीं बिना लिखा-पढ़ी किये मर गयी तो रियासतका बाँट-बखरा हो जायगा और वसीयत पानीकी रेखाकी भाँति मिट जायगी। मैं

चाहती हूँ कि आप इस समस्याको हल कर दें, इससे अच्छा अवसर फिर न मिलेगा।

ज्ञानशङ्करकी आँखोंके सामने अंधेरा छा गया। उनकी अभिलाषाओंके त्रिभुजका आधार ही लुप्त हुआ जाता था। बोले, वसीयत लेखबद्ध हो गयी है?

गायत्री—उनकी इच्छा मेरे लिये हजारों लेखोंसे अधिक मान्य है। यदि उन्हें मेरी फिक्र न होती तो अपने जीवनकाल-में ही रियासतको धर्मार्पण कर जाते। केवल मेरा मान रखनेके लिये उन्होंने इस विचारको स्थगित कर दिया। जब उन्हें मेरा इतना लिहाज था तो मैं भी उनकी इच्छाको देववाणी समझती हूँ।

ज्ञानशङ्कर समझ गये कि इस समय कूटनीतिसे काम लेने-की आवश्यकता है। अनुमोदनसे विरोधका काम लेना चाहिये। बोले, अवश्य, लेकिन पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि इस परमार्थका स्वरूप क्या होगा।

गायत्री—आप इस सम्बन्धमें लखनऊ जाकर पिताजीसे मिलिये। अपने बड़े भाई साहबसे भी राय लीजिये।

प्रेमशङ्करकी चर्चा सुनते ही ज्ञानशंकरके तेवरोंपर बल पड़ गये। उनकी ओरसे इनके हृदयमें गाँठ-सी पड़ गयी थी। बोले, राय साहबसे सम्मति लेनी तो आवश्यक है, वह बुद्धिमान हैं, लेकिन भाई साहबको मैं कदापि इस योग्य नहीं समझता। जो मनुष्य इतना विचारहीन हो कि अपनी स्त्रीको त्याग दे, मिथ्या सिद्धान्तप्रेमके घमण्डमें बिरादरीका अपमान करे, और अपनी असाधुताको प्रजाभक्तिका रंग देकर भाईकी गर्दनपर छुरी चलानेमें संकोच न करे, उससे इस धार्मिक विषयमें कुछ पूछना व्यर्थ है। उनकी बदौलत मेरी एक हजार सालानाकी हानि हो गयी और तीन साल गुजर जानेपर भी गाँवमें शान्ति नहीं होने पायी; बल्कि उपद्रव बढ़ता ही चला जाता है। श्रद्धा इन्हीं अविचारोंके कारण उनसे घृणा करती है।

गायत्री—मेरी समझमें तो यह श्रद्धाका अन्याय है। जिस पुरुषके साथ विवाह हो गया, उसके साथ निर्वाह करना प्रत्येक कर्मनिष्ठ नारीका धर्म है।

ज्ञान—चाहे पुरुष नास्तिक और विधर्मी हो जाय?

गायत्री—हाँ, मैं तो ऐसा ही समझती हूँ। विवाह स्त्री-पुरुषके अस्तित्वको संयुक्त कर देता है। उनकी आत्माएँ एक दूसरेमें समाविष्ट हो जाती हैं।

ज्ञान—पुराने जमानेमें लोगोंके विचार ऐसे रहे हों, पर नया-युग इसे नहीं मानता। वह स्त्रीको सम्पूर्णतः स्वाधीन ठहराता है। वह मनसा, वाचा, कर्मणा किसीके अधीन नहीं है। परमात्मासे आत्माका जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसके सामने मानवकृत सम्बन्धकी कोई हस्ती नहीं हो सकती। पश्चिमके देशोंमें आये दिन धार्मिक मतभेदके कारण तलाक होते रहते है।

गायत्री—उन देशोंकी बात न चलाइये, वहाँके लोग भी विवाहको केवल सामाजिक सम्बन्ध समझते हैं। आपने ही एक बार कहा था कि वहाँ कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो विवाहसंस्कारको मिथ्या समझते हैं। उनके विचारमें स्त्री-पुरुषकी अनुमति ही विवाह है, लेकिन भारतवर्षमें कभी इन विचारोंका आदर नहीं हुआ।

ज्ञान—स्मृतियोंमें तो इसकी व्यवस्था स्पष्ट रूपसे की गयी है।

गायत्री—की गयी है; मुझे मालूम है, लेकिन कभी उसका प्रचार नहीं हुआ और क्यों होता, जब कि हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ रहकर अपने मतानुसार परमात्माकी उपासना कर सकते हैं? पुरुष वैष्णव है स्त्री शैव है, पुरुष आर्य्य समाजमें है, स्त्री अपने पुराने सनातनधर्मको मानती है, वह ईश्वरको भी नहीं मानता, स्त्री ईंट और पत्थरोंतककी पूजा-अर्चना करती हैं। लेकिन इन भेदोंके पीछे पति-पत्नीमें अलगाव

नहीं हो जाता। ईश्वर वह कुदिन यहाँ न लाये, जब लोगोंमें विचारस्वातन्त्र्यका इतना प्रकोप हो जाय।

ज्ञान—इसका कारण यही है कि हम भीरु-प्रकृति हैं; यथार्थका सामना न करके मिथ्या आदर्श-प्रेमकी आड़में अपनी कमजोरीको छिपाते हैं।

गायत्री—मैंने आपका आशय नहीं समझा।

ज्ञान—मेरा आशय केवल यही है कि लोकनिन्दाके भयसे अपने प्रेम या अरुचिको छिपाना अपनी आत्मिक स्वाधीनताको खाकमें मिलाना है। मैं उस स्त्रीको सराहनीय नहीं समझता जो एक दुराचारी पुरुषसे केवल इसलिये भक्ति करती है कि वह उसका पति है। वह अपने उस जीवनको, जो सार्थक हो सकता है, नष्ट कर देती है। यही बात पुरुषोंपर भी घटित हो सकती है। हम संसारमें रोने और झींकनेके ही लिये नहीं आये हैं और न आत्मदमन हमारे जीवनका ध्येय है।

गायत्री—तो आपके कथनका निष्कर्ष यह है कि हम अपनी मनोवृत्तियोंका अनुसरण करें, जिस ओर इच्छाएँ ले जायँ उसी ओर आँखें बन्द किये चले जायँ। उनके दमनकी चेष्टा न करें। आपने पहले भी एक बार यही विचार प्रकट किया था, तबसे मैंने इसपर अच्छी तरह गौर किया है, लेकिन हृदय इसे किसी भाँति स्वीकार नहीं करता। इच्छाओंको जीवनका आधार बनाना बालूकी दीवार बनाना है। धर्मग्रन्थोंमें आत्मदमन और संयमकी अखण्ड महिमा कही गयी है; बल्कि इसीको मुक्तिका साधन बताया गया है। इच्छाओं और वासनाओंकोही मानवपतनका मुख्य कारण सिद्ध किया गया है और मेरे विचारमें यह निर्विवाद है। ऐसी दशामें पश्चिमवालोंका अनुसरण करना नादानी है। प्रथाओंकी गुलामी इच्छाओंकी गुलामीसे श्रेष्ठ है।

ज्ञानशङ्करको इस कथनमें बड़ा आनन्द आ रहा था। इससे उन्हें गायत्रीके हृदयके भेद्य और अभेद्य स्थलोंका पता मिल रहा

था, जो आगे चलकर उनकी अभीष्ट-सिद्धिमें सहायक हो सकता था। वह कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि एक लौंडीने तारका लिफाफा लाकर उनके सामने रख दिया। ज्ञानशङ्करने चौंककर लिफाफा खोला। लिखा था, 'जल्द आइये' लखनपूरवालोंसे फौजदारी होनेका भय है।

ज्ञानशंकरने अन्यमनस्क भावसे लिफाफेको जमीनपर फेंक दिया। गायत्रीने पूछा—घरपर तो सब कुशल है न?

ज्ञानशंकर—लखनपूरसे आया है, वहाँ फौजदारी हो गयी है। इस गाँवने मेरी नाकमें दम कर दिया। सब ऐसे दुष्ट कि किसी तरह काबूमें नहीं आते। यह सब भाईसाहबकी करतूत है।

गायत्री—तब तो आपको जाना पड़ेगा। कहीं मामला तूल न पकड़ गया हो।

ज्ञान—अबकी हमेशाके लिये निबटारा कर दूँगा। या तो गाँवसे इस्तीफा दे दूँगा या सारे गाँवको ही जला डालूँगा। वे लोग भी क्या याद करेंगे कि किसीसे पाला पड़ा था!

गायत्री—लौटते हुए मायाको ज़रूर लाइयेगा। उसे देखनेको बहुत जी चाहता है। विद्याको भी घसीट लायें तो क्या कहना! मैं तो लिखते-लिखते हैरान हो गयी।

ज्ञान—यह वही प्रथाकी गुलामी है, जिसका आप बयान करती है। बहिनके घर जानेका साधारणतः रिवाज नहीं है, वह इसे क्योंकर तोड़ सकती है? कदाचित् इसी कारण आप भी वहाँ नहीं जा सकतीं।

गायत्री—(लजाकर) मैं इन बातोंकी परवा नहीं करती, लेकिन यहाँ तो आप देखते हैं, सिर उठानेकी भी फुरसत नहीं।

ज्ञान—यही बहाना वह भी कर सकती है।

गायत्री—खैर, वह न आये सही, लकिन मायाको ज़रूर लाइयेगा और वहाँका समाचार लिखते रहियेगा। अवकाश मिलते ही चले आइयेगा।

गायत्रीका अन्तिम वाक्य ऐसा आकांक्षा-सूचक था कि ज्ञानशंकरके हृदयमें गुदगुदी-सी पैदा हो गयी। उन्हें यहाँ रहते तीन सालसे ऊपर हो गये थे, कितनी ही बार बनारस आये, लेकिन गायत्रीने कभी लौटनेके लिये ऐसा भावपूर्ण आग्रह न किया था। दिलने कहा, शायद मेरा जादू कुछ असर करने लगा। बोले, तब भी दो सप्ताहसे कम क्या लगेंगे ?

गायत्री चिन्तित स्वरसे बोली—दो सप्ताह ?

ज्ञानशंकरको अपने विचारकी पुष्टि हो गयी। ६ बजे वह डाकगाड़ीसे रवाना हुए और ५ बजते बजते बनारस पहुँच गये।

२६

जिस समय ज्ञानशंकरकी अपील खारिज हुई, लखनपूरके लोगोंपर विपत्तिकी घटा छायी हुई थी। कितने ही घर प्लेगसे उजड़ गये। कई घरोंमें आग लग गयी। कई चोरियाँ हुईं। उनपर दैविक घटनाएँ अलग हुईं। कभी आँधी आती, कभी पानी बरसता, फाल्गुन महीनेमें एक दिन ओले पड़ गये। सारी खेती नष्ट हो गयी। अब गाँववालोंके लिये कोई सहारा न था। विसेसरसाहने भी जमींदारके मुकाबिलेमें सहायता देनेसे इनकार किया। स्त्रियोंके गहने पहले ही निकल चुके थे। अब सुक्खू चौधरीके सिवा और कोई न था, जो अपीलकी पैरवी कर सकता था। लोग भाग्यपर भरोसा किये बैठे हुए थे। बेकसीकी दशामें प्रेमशंकरके भेजे हुए रुपयोंने बड़ा काम किया। मुर्दे जाग पड़े। कादिरखाँ दृढ़प्रतिज्ञ होकर उठ खड़ा हुआ और जी तोड़कर मुकदमेकी पैरवी करने लगा। लेकिन किसानोंकी नैतिक विजय वास्तविक पराजयसे कम न थी। ज्ञानशंकर असामियोंको इस दुःसाहसका दण्ड देनेके लिये उधार खाये बैठे थे। अभी गाँवके लोग झोपड़ीमेंही थे कि गौसखाँ अपने तीनों चपरासियोंको लिये हुए आये और झोपड़ोंमें आग लगवा दी। बागकी भूमि जमींदारकी थी। असामियोंको वहाँ झोपड़े बनवानेका कोई अधिकार न था। चपरासियोंमें दो

बिलकुल नये थे। फैजू और कर्त्तार—दोनों लकड़ी चलानेमें कुशल थे, कई बार सजा पाये हुए थे। इनके हृदयमें दया और शीलका नाम न था। पुराने आदमियोंमें केवल बिन्दा महाराज अपनी कुटिल नीतिकी बदौलत रह गये थे। अभीतक ताऊनकी ज्वाला शांत न हुई थी कि लोगोंको विवश होकर बस्तीमें आना पड़ा, जिसका फल यह हुआ कि दूसरे ही दिन ठाकुर झगड़सिंह प्लेगके झोंकेमें आ गये और कल्लू अहीर मरते-मरते बच गया। जितनी आरजू मिन्नत हो सकती थी वह सब की गयी, लेकिन अत्याचारियोंपर कुछ असर न हुआ। झपटके मर जानेपर डपट भी मरनेके लिये तैयार हुआ। लठ चलाकर बोला, गौसको आज जीता न छोड़ूँगा। अब क्या भय है? लेकिन कादिरखाँ उनके पैरोंपर गिर पड़े और समझा-बुझाकर घर लौटाया।

लखनपूरमें एक बहुत बड़ा तालाब था। गाँवभरके पशु उसमें पानी पीते थे। नहाने-धोनेका काम भी उससे चलता था।

जूनका महीना था, कुओंका पानी पातालतक चला गया था। आसपासके सब गड्ढे और तालाब सूख गये थे। केवल इसी बड़े तालाबमें पानी रह गया था। ठीक उसी समय गौसखाँने उस तालाबका पानी रोक दिया। दो चपरासी किनारे आकर डट गये और पशुओंको मार-मारकर भगाने लगे। गाँववालोंने सुना तो चकराये। क्या सचमुच जमींदार तालाबका पानी भी बन्द कर देगा? यह तालाब सारे गाँवका जीवनस्रोत था। लोगोंको कभी स्वप्नमें भी यह अनुमान न हुआ था कि जमींदार इतनी जबरदस्ती कर सकता है। उनका चिरकालसे इसपर अधिकार था। पर आज इन्हें ज्ञात हुआ कि इस जलपर हमारा स्वत्व नहीं है। यह जमींदारकी कृपा थी कि वह इतने दिनोंतक चुप रहा; किन्तु चिरकालीन कृपा भी स्वत्वका रूप धारण कर लेती है। गाँवके लोग तुरन्त तालाबके तटपर जमा हो गये और चपरासियोंसे वादविवाद करने लगे। कादिरखाँने

देखा कि बात बढ़ा चाहती है तो वहाँसे हट जाना उचित समझा। जानते थे कि मेरे पीछे और भी लोग टल जायँगे, किन्तु दो ही चार पग चले थे कि सहसा सुक्खू चौधरीने उनका हाथ पकड़ लिया और बोले, कहाँ जाते हो कादिर भैया! जबतक यहाँ कोई निपटारा न हो जाय, तुम जाने न पाओगे। जब जा-बेजा हरएक मामलेमें इसी तरह दबना है, तो गाँवके सरगना काहेको बनते हो?

कादिरखाँ—तो क्या कहते हो लाठी चलवाऊँ?

सुक्खू—और लाठी है किस दिनके लिये?

कादिर—किसके बूतेपर लाठी चलेगी? गाँवमें रह कौन गया? अल्लाहने पट्ठोंको चुन लिया।

सुक्खू—पट्ठे नहीं हैं न सही, बूढ़े तो हैं? हमलोगोंकी जिन्दगानी किस रोज काम आयेगी?

गौसखाँको जब मालूम हुआ कि गाँवके लोग तालाबके तटपर जमा हैं तो वह भी लपके हुए आ पहुँचे और गरजकर बोले, खबरदार! कोई तालाबकी तरफ कदम न रखे। सुक्खू आगे बढ़ आये और कड़ककर बोले, किसकी मजाल है, जो तालाबका पानी रोके, हम और हमारे पुरखा इसीसे अपना निस्तार करते चले आ रहे हैं। जमींदार नहीं ब्रह्मा आकर कहें, तब भी इसे न छोड़ेंगे, चाहे इसके पीछे सरबस लुट जाय।

गौसखाँने सुक्खू चौधरीको विस्मित नेत्रोंसे देखा और कहा चौधरी, क्या इस मौकेपर तुम भी दगा दोगे? होशमें आओ।

सुक्खू—तो क्या आप चाहते हैं, कि जमींदारकी खातिर अपने हाथ कटवा लूँ? पैरोंमें कुल्हाड़ी मार लूँ? खैरख्वाहीके पीछे अपना हक नहीं छोड़ सकता।

करतार चपरासीने हँसी करते हुए कहा, अरे तुमका का परी है, है कोऊ आगे पीछे? चार दिनमें हाथ पसारे चले जैहो। ई ताल तुमरे संग न जाई।

वृद्धजन मृत्युका व्यंग नहीं सह सकते। सुक्खू ऐंठकर बोले – क्या ठीक है कि हम ही पहले चले जायेंगे? कौन जाने हमसे पहले तुम्हीं चले जाओ। जो हो, हम तो चले ही जायेंगे, पर गाँव तो हमारे साथ न चला जायेगा?

गौसखाँ—हमारे सलूकोंका यही बदला है?

सुक्खू—आपने हमारे साथ सलूक किये हैं तो हमने भी आपके साथ सलूक किये हैं और फिर कोई सलूकके पीछे अपने हक-पदको नहीं छोड़ सकता।

फैजू—तो फौजदारी करनेका अरमान है?

सुक्खू—फौजदारी क्यों करें, क्या हाकिमका राज नहीं है? हाँ,जब हाकिम भी न सुनेगा तो जो तुम्हारे मनमें है वह भी हो जायेगा। यह कहकर सुक्खू तालके किनारेसे चले आये और उसी वक्त बैलगाड़ीपर बैठकर अदालत चले। दूसरे दिन दावा दायर हो गया।

लाला मौजीलाल पटवारीकी साक्षीपर हार-जीत निर्भर थी, उनकी गवाही गाँववालोंके अनुकूल हुई। गौसखाँने उन्हें फोड़ने में कोई कसर उठा नहीं रखी। यहाँतक कि मार-पीटकी भी धमकी दी। पर मौजीलालका इकलौता बेटा इसी ताऊनमें मर चुका था। इसे वह अपने पूर्वसंचित पापोंका फल समझते थे। सन्मार्गसे विचलित न हुए। बेलाग साक्षी दी। सुक्खू चौधरी की डिगरी हो गयी और यद्यपि उनके कई सौ रुपये खर्च हुए,पर गाँवमें उनकी खोई हुई प्रतिष्ठा फिर जम गयी। धाक बैठ गयी। सारा गाँव उनका भक्त हो गया। इस विजयका आनन्दोत्सव मनाया गया, सत्यनारायणकी कथा हुई। ब्राह्मणोंका भोज हुआ और तालाबके चारों ओर पक्के घाटकी नींव पड़ गयी। गौसखाँ-के भी सैकड़ों रुपये खर्च हो गये। ये काँटे उन्होंने ज्ञानशङ्करसे बिना पूछे ही बोये थे। इसलिये इसका फल भी उन्हींको खाना पड़ा। हरामका धन हरामके भेंट हो गया।

गौसखाँ यह चोट खाकर बौखला उठे। सुक्खू चौधरी उनकी आँखोंमें काँटेकी तरह खटकने लगा। दयाशङ्कर इस हल्केसे बदल गये थे। उनकी जगहपर नूर आलम नामके एक दूसरे महाशय नियुक्त हुए थे। गौसखाँने उनसे राहरस्म पैदा करना शुरू किया। दोनों आदमियोंमें मित्रता हो गयी और लखनपूरपर नयी-नयी विपत्तियोंका अक्रमण होने लगा।

वर्षाके दिन थे। किसानोंको ज्वार और बाजरेकी रखवालीसे दम मारनेका अवकाश न मिलता। जिधर देखिये, हा-हूकी ध्वनि आती थी। कोई ढोल बजाता था, कोई टीनके पीपे पीटता था। दिनको तोतोंके झुण्ड-के-झुण्ड टूटते थे, रातको गीदड़के गोल, उसपर धानकी क्यारियोंमें पौधे बिठाने पड़ते थे। पहर रात रहे तालमें जाते और पहर रात गये आते थे। मच्छरोंके डंकसे लोगोंकी देहमें छाले पड़ जाते थे। किसीका घर गिरता था, किसीके खेतकी मेड़ें कटा जाती थीं। जीवन-संग्रामकी दोहाई मची हुई थी। इसी समय दारोगा नूरआलमने गाँवपर छापा मारा। सुक्खू चौधरीने कभी कोकीनका सेवन नहीं किया था, उसकी सूरत नहीं देखी थी, उसका नाम नहीं सुना था, लेकिन उनके घरमें एक तोला कोकीन बरामद हुई। फिर क्या था, मुकदमा तैयार हो गया। मालके निकलनेकी देर थी, हिरासतमें आ गये। उन्हें विश्वास हो गया कि मैं बरी न हो सकूँगा। उन्होंने स्वयं कई आदमियोंको इसी भाँति सजा दिलायी थी। हिरासतमें आनेके एक क्षण पहले वह घरमें गये और एक हाँडी लिये हुए आये। गाँवके सब आदमी जमा थे। उनसे बोले, भाइयो, राम राम! अब तुमसे विदा होता हूँ। कौन जाने फिर भेंट हो या न हो। बूढ़े आदमीकी जिन्दगानीका क्या भरोसा! ऐसे ही भाग होंगे तो भेंट होगी। इस हाँडीमें पाँच हजार रुपये हैं। यह कादिर भाईको सौंपता हूँ। तालाबका घाट बनवा देना। जिन लोगोंपर

मेरा कुछ आता है वह सब छोड़ता हूँ। यह देखो, सब कागज पत्र अब तुम्हारे सामने फाड़े डालता हूँ। मेरा किसीके यहाँ कुछ बाकी नहीं, सब भर पाया।

दारोगाजी वहीं उपस्थित थे। रुपयोंकी हाँड़ी देखते ही लार टपक पड़ी। सुक्खूको बुलाकर कानमें कहा, कैसे अहमक हो कि इतने रुपये रखकर भी बचनेकी फिक्र नहीं करते ?

सुक्खू—अब बचकर क्या करना है ? क्या कोई रोनेवाला बैठा है ?

नूरआलम—तुम इस गुमानमें होगे कि हाकिमको तुम्हारे बुढ़ापेपर तरस आ जायगी और वह तुमको बरी कर देगा। मगर इस धोखेमें न रहना। वह डटकर रिपोर्ट लिखूँगा और ऐसी मोतबिर शहादत पेश करूँगा, कि कोई बैरिस्टर भी जबान न खोल सकेगा। पाँच हजार नहीं पाँच लाख भी खर्च करोगे, तो भी मेरे पंजेसे न निकल सकोगे। मैं दयाशङ्कर नहीं हूँ। मेरा नाम नूरआलम है। चाहूँ, तो एक बार खुदाको भी फँसा दूँ।

सुक्खूने फिर उदासीन भावसे कहा, आप जो चाहें करें। अब जिन्दगीमें कौन-सा सुख है, कि किसीका ठेंगा सिरपर लूँ ? गौसखाँका दयास्रोत उबल पड़ा। फैजू और कर्तार भी कुलबुला उठे और बिन्दा महाराज तो हाँड़ीकी ओर टकटकी लगाये ताक रहे थे।

सबने अलग-अलग और फिर मिलकर सुक्खूको समझाया; लेकिन वह टससे मस न हुए। अन्तमें लोगोंने कादिरको घेरा। नूरआलमने उन्हें अलग ले जाकर कहा, खाँ साहब, इस बूढ़ेको जरा समझाओ, क्यों जान देनेपर तुला हुआ है ? दो सालसे कमकी सजा न होगी। अभी मामला मेरे हाथमें है। सब कुछ हो सकता है। हाथसे निकल गया तो कुछ न होगा। मुझे उसके बुढ़ापेपर तरस आती है।

गौसखाँ बोले—हाँ, इस वक्त उसपर रहम करना चाहिये। अबकी ताऊनने बेचारेका सत्यानास कर दिया।

कादिरखाँ जाकर सुक्खूको समझाने लगे, बदनामीका भय दिलाया, कारावासकी कठिनाइयाँ बयान कीं; किन्तु सुक्खू जरा भी न पसीजा। जब कादिरखाँने बहुत आग्रह किया और गाँवके सब लोग एक स्वरसे समझाने लगे तो सुक्खू उदासीन भावसे बोला, तुमलोग मुझे क्या समझाते हो? मैं कोई नादान बालक नहीं हूँ। कादिरखाँसे मेरी उम्र दो ही चार दिन कम होगी। इतनी बड़ी जिन्दगानी अपने बन्धुओंका बुरा करनेमें कट गयी। मेरे दादा मरे तो घरमें भूनी भाँगतक न थी। कारिन्दोंसे मिल-मिलकर मैं आज गाँवका मुखिया बन बैठा हूँ। चार आदमी मुझे जानते हैं और मेरा आदर करते हैं; पर अब आँखोंके सामनेसे परदा हट गया। उन कर्मोंका फल कौन भोगेगा? भोगना तो मुझीको है, चाहे यहाँ भोगूँ, चाहे नरकमें। यह सारी हाँड़ी मेरे पापोंसे भरी हुई है। इसीने मेरे कुलका सर्वनाश कर दिया। कोई एक चुल्लू पानी देनेवाला न रहा। यह पापकी कमाई पुण्य-कार्यमें लग जाय तो अच्छा है। घाट बनवा देना, अगर कुछ और लगे तो अपने पाससे लगा देना। मैं जीता बचा तो कौड़ी-कौड़ी चुका दूँगा।

दूसरे दिन सुक्खूका चालान हुआ। फैजू और कर्तारने पुलिसकी ओरसे साक्षी दी। माल बरामद हो ही गया था। कई हजार रुपयोंका घरसे निकलना पुष्टिकारक प्रमाण हो गया। कोई वकील भी न था। पूरे दो सालकी सजा हो गयी। निरपराध निर्दोष सुक्खू गौसखाँके वैमनस्य और ईर्ष्याका लक्ष्य बन गया।

सारा गाँव थर्रा उठा। इजाफा लगानके खारिज होनेसे लोगोंने समझा था अब किसी बातकी चिन्ता नहीं रही। मानो ईश्वरने अभय प्रदान कर दिया, पर अत्याचारके यह नये हथकण्डे

देखकर सबके प्राण सूख गये। जब सुक्खू चौधरी जैसा शक्तिशाली मनुष्य दमके दममें तबाह हो गया तो दूसरोंका कहना ही क्या! किन्तु गौसखाँका अब भी सन्तोष न हुआ। उनकी यह लालसा, कि सारा गाँव मेरा गुलाम हो जाय, मेरे इशारोंपर नाचे, अभीतक पूरी न हुई थी। मौरूसी काश्तकारोंमें अभीतक कई आदमी बचे हुए थे। कादिरखाँ अब भी था, बलराज और मनोहर अब भी आँखोंमें खटकते थे। यह सब इस बागके काँटे थे। उन्हें निकाले बिना सैर करनेका आनन्द कहाँ!

लखनपूर शहरसे दस ही मीलकी दूरीपर था। हाकिम लोग आते और जाते यहाँ ज़रूर ठहरते। अगहनका महीना लगा ही था कि पुलिसके एक बड़े अफसरका लश्कर आ पहुँचा। तहसीलदार स्वयं रसदका प्रबन्ध करनेके लिये आये। चपरासियोंकी एक फौज साथ थी। लश्करमें सौ सवा सौ आदमी थे। गाँवके लोगोंने यह जमघट देखा तो समझा कि कुशल नहीं है। मनोहरने बलराजको ससुराल भेज दिया और ससुरालवालोंको कहला भेजा कि इसे चार-पाँच दिन न आने देना। लोग अपनी-अपनी लकड़ियाँ और भूसा उठा-उठाकर घरोंमें रखने लगे। लेकिन बोवनीके दिन थे; इतनी फुरसत किसे थी!

प्रातःकाल बिसेसर साह दूकान खोल ही रहे थे कि अरदलीके दस-बारह चपरासी दूकानपर आ पहुँचे। बिसेसरने आटे-दालके बोरे खोल दिये, जिन्स तौली जाने लगी। दोपहरतक यही ताँता लगा रहा। घीके कई कनस्तर खाली हो गये। तीन पड़ावके लिये जो सामग्री एकत्र की थी, अभी समाप्त हो गयी। बिसेसरके होश उड़ गये। फिर आदमी मण्डी दौड़ाये। बेगारकी समस्या इससे कठिन थी। पाँच बड़े-बड़े घोड़ोंके लिये हरी घास छीलना सहज नहीं था। गाँवके सब चमार इस काममें लगा दिये गये। कई नोनिये पानी भर रहे थे। चार आदमी नित्य सरकारी डाक लेनेके लिये सदर दौड़ाये जाते थे। कहारोंको कर्मचारियोंकी

खिदमतसे सिर उठानेकी फुरसत न थी। इसलिये जब दो बजे साहबने हुक्म दिया कि मैदानमें घास छीलकर टेनिस कोट तैयार किया जाय तो वे लोग भी पकड़े गये जो अबतक अपनी वृद्धावस्था या जाति-सम्मानके कारण बचे हुए थे। चपरासियोंने पहले दुखरन भगतको पकड़ा। भगतने चौंककर कहा, क्यों मुझसे क्या काम है? चपरासीने कहा, चलो लश्करमें घास छीलनी है।

भगत—घास चमार छीलते हैं, यह हमारा काम नहीं है।

इसपर एक चपरासीने उनकी गरदन पकड़कर आगे ढकेला और कहा, चलते हो या यहाँ कानून बघारते हो?

भगत—अरे तो ऐसा क्या अन्धेर है? अभी ठाकुरजीका भोगतक नहीं लगाया।

चपरासी—एक दिनमें ठाकुरजी भूखों न मर जायँगे।

भगतने वादविवाद करना उचित न समझा, झपटकर सिपाहियोंके बीचसे निकल गये और भीतर जाकर किवाड़ बन्द कर लिये। सिपाहियोंने धड़ाधड़ किवाड़ पीटना शुरू किया। एक सिपाहीने कहा, लगादे आग, वहीं भुन जाय। दुखरनने भीतरसे कहा, बैठो भोग लगाकर आ रहा हूँ। चपरासियोंने खपरैल फोड़ने शुरू किये। इतनेमें कई चपरासी मनोहर, कादिरखाँ आदिको साथ लिये आ पहुँचे। डपटसिंह पहर रात रहे घरसे गायब हो गये थे। कादिरने कहा, भगत घरमें क्यों घुसे बैठे हो, चलो, हमलोग भी चलते हैं। भगतने द्वार खोला और बाहर निकल आये। कादिर हँसकर बोले—आज हमारी तुम्हारी बाजी है। देखें कौन ज्यादा घास छीलता है। भगतने कुछ उत्तर न दिया। सब लश्करके मैदानमें आये और घास छीलने लगे।

मनोहरने कहा—खाँ साहबके कारण हम भी चमार हो गये।

दुखरन—भगवानकी इच्छा, जो कभी न किया, वह आज करना पड़ा।

कादिर—जमींदारके असामी नहीं हो? खेत नहीं जोतते हो?

मनोहर—खेत जोतते हैं तो उसका लगान नहीं देते? कोई भकुआ एक पैसा भी तो नहीं छोड़ता।

कादिर—इन बातोंमें क्या रक्खा है? गुड़ खाया है तो कान छिदाने पड़ेंगे। कुछ और बातचीत करो। कल्लू, अबकी तुम ससुरालमें बहुत दिनतक रहे। क्या-क्या मार लाये?

कल्लू—मार लाया! यह कहो जान लेकर आ गया। यहाँ-से चला तो कुल साढ़े तीन रुपये पास थे। एक रुपयेकी मिठाई ली, आठ आने रेलका किराया दिया, दो रुपये पास रख लिये। वहाँ पहुँचते ही बड़े सालेने अपना लड़का लाकर मेरी गोदमें रख दिया। बिना कुछ दिये उसे गोदमें कैसे लेता? कमरसे एक रुपया निकालकर उसके हाथमें रख दिया। रातको गाँव-भरकी औरतोंने जमा होकर गालो गायी। उन्हें भी कुछ नेग-दस्तूर मिलना ही चाहिये था। एक ही रुपयेकी पूँजी, वह उनकी भेंट की। न देता तो नाम-हँसाई होती। मैंने समझा यहाँ रुपयों-का और काम ही क्या है और चलतो बेर कुछ-न-कुछ बिदाई मिल ही जायेगी। आठ दिन चैनसे रहा। जब चलने लगा तो सामने एक मटका खाँड़, एक टोकरी ज्वारकी बाल, और एक थैलीमें कुछ खटाई भरकर दी। पहुँचानेके लिये एक आदमी साथ कर दिया। बस बिदाई हो गयी। अब बड़ी चिन्ता हुई कि घरतक कैसे पहुँचूँगा? जान न पहचान, माँगू किससे? उस आदमीके साथ टेसनतक आया। इतना बोझ लेकर पैदल घरतक आना कठिन था। बहुत सोचते सोचते सूझी कि चल-कर ज्वारकी बाल कहीं बेच दूँ। आठ आने भी मिल जायेंगे, तो काम चल जायेगा। बाजारमें आकर एक दूकानदारसे पूछा, बालें लोगे? उसने दाम पूछा, मेरे मुँहसे निकला, दाम तो मैं नहीं जानता, आठ आने दो, ले लो। बनियेने समझा, चोरीका माल है। थैला पटका, बालें सब रखवा लीं और कहा, चुपकेसे चले जाओ, नहीं तो चौकीदारको बुलाकर थाने भिजवा दूँगा।

तो भैया क्या करता? सब कुछ वहीं छोड़ छाड़कर भागा। दिनभरका भूखा-प्यासा पहर रात गये घर आया, कान पकड़े कि अब ससुराल न जाऊँगा।

कादिर—तुम तो सस्ते ही छूट गये। एक बेर मैं भी ससुराल गया था। जवानीकी उमिर थी। दिनभर धूपमें चला तो रतौंधी हो गयी। मगर लाजके मारे किसीके कहातक नहीं। खाना तैयार हुआ तो साली दालानमें बुलाकर भीतर चली गयी, दालानमें अँधेरा था। मैं उठा तो कुछ सूझा ही नहीं कि किधर जाऊँ? न किसीको पुकारते बने, न पूछते। इधर-उधर टटोलने लगा। वहीं एक कोनेमें मेढ़ा बँधा हुआ था। मैं उसके ऊपर जा पहुँचा। वह मेरे पैरके नीचेसे झपटकर उठा और मुझे ऐसा सींग मारा कि मैं दूर जा गिरा। यह धमाका सुनके वह साली दौड़ी हुई आयी और अन्दर ले गयी। आँगनमें मेरे ससुर और दो-तीन बिरादर बैठे हुए थे, मैं भी जा बैठा। पर कुछ सूझता न था कि क्या करूँ। सामने खाना रखा हुआ था। इतनेमें मेरी सास कड़े-छड़े पहने छन-छन करती हुई दालकी रकाबीमें घी डालने आयी, मैंने छन-छनकी आवाज सुनी तो रोंगटे खड़े हो गये। अभीतक घुटनेमें दर्द हो रहा था, समझा कि शायद मेढ़ा छूट गया, खड़ा होकर लगा पैंतरे बदलने। सासको भी एक घूसा लगाया। घीकी प्याली उनके हाथसे छूट पड़ी। वह घबराकर भागीं। लोगोंने दौड़कर मुझे पकड़ा और पूछने लगे, क्या हुआ, क्या हुआ! शरमके मारे मेरी जबान बन्द हो गयी। कुछ बोलाही न निकली। साला दौड़ा हुआ गया और एक मौलवीको लिवा लाया। मौलवीने देखते ही कहा, इसपर सईद मर्द सवार है। दुवा-तवीज होने लगी। घरमें किसीने खाना न खाया। सास और ससुर मेरे सिरहाने बैठे बड़ी देरतक रोते रहे और मुझे आवे बार-बार हँसी। कितना ही रोकूँ हँसी न रुके। बारे मुझे नींद आ गयी। भोरे उठकर मैंने किसीसे कुछ पूछा न ताछा, सीधे घरकी राह

लो। दुखरन भरत, अपनी ससुरालकी कोई बात तुम भी कहो।

दुखरन—मुझे इस वखत मसखरी नहीं सूझती। यही जी चाहता है, कि सिर पटककर मर जाऊँ।

मनोहर—कादिर भैया, आज बलराज होता तो खून-खराबी हो जाती। उससे यह दुर्गत न देखी जाती।

कादिर फिर वही दुखड़ा ले बैठे। अरे जो अल्लाहको यही मंजूर होता कि हम लोग इज्जत-आबरूसे रहें, तो काश्तकार क्यों बनाता? जमींदार न बनाता, चपरासी न बनाता, थानेका कानिसटिबिल न बनाता कि बैठे-बैठे दूसरोंपर हुकुम चलाया करते? नहीं तो यह हाल है कि अपना कमाते हैं, अपना खाते हैं, फिर भी जिसे देखो, धौंसे जमाया करता है। सभीकी गुलामी करनी पड़ती है। क्या जमींदार, क्या सरकार, क्या हाकिम, सभीकी निगाह हमारे ऊपर टेढ़ी है और शायद अल्लाह भी नाराज़ हैं, नहीं तो क्या हम आदमी नहीं हैं, कि कोई हमसे बड़ा बुद्धिमान है? लेकिन रोकर क्या करें? कौन सुनता है? कौन देखता है? खुदातालाने आँखें बन्द कर लीं। जो कोई भला मानुष दरद बूझकर हमारे पीछे खड़ा भी हो जाता है, तो उस बेचारेकी जान भी आफतमें फँस जाती है। उसे तङ्ग करनेके लिये, फँसानेके लिये तरह-तरहके कानून गढ़ लिये जाते हैं। देखते तो हो, बलराजके अखबारमें कैसी-कैसी बातें लिखी रहती हैं। यह सब अपनी तकदीरकी खूबी है।

यह कहते-कहते कादिरखाँ रो पड़े। वह हृदय-ताप जिसे वह हास्य और आमोदसे दबाना चाहते थे, प्रज्ज्वलित हो उठा। मनोहरने देखा तो उसकी आँखें रक्तवर्ण हो रही थीं। पददलित अभिमानकी मूर्ति थी।

चारोंमेंसे कोई न बोला। सबके सब सिर झुकाये चुपचाप घास छीलते रहे, यहाँतक कि तीसरा पहर हो गया। सारा मैदान साफ हो गया। सबने खुरपियाँ रख दीं और कमर

सीधी करनेके लिये जरा लेट गये। बेचारे समझते थे कि गला छूट गया, लेकिन इतनेमें तहसीलदार साहबने आकर हुक्म दिया, गोबर लाकर इसे लीप दो, खूब चिकना कर दो, कोई कङ्कर-पत्थर न रहने पाये। कहाँ हैं नाजिरजी, इन सबको डोल और रस्सी दिलवा दीजिये।

नाजिरने तुरत डोल और रस्सी मँगाकर रख दी। कादिर-खाँने डोल उठाया और कुएँ की तरफ चले, लेकिन दुखरन भगतने घरका रास्ता लिया। तहसीलदारने पूछा, उधर कहाँ?

दुखरनने उद्दण्डतासे कहा—घर जा रहा हूँ।

तहसीलदार—और लीपेगा कौन?

दुखरन—जिसे गरज होगी वह लीपेगा।

तहसीलदार—जूते पड़ेंगे, दिमागकी गरमी उतर जायगी।

दुखरन—आपका अखतियार है—जूते मारिये, चाहे फाँसी दीजिये, लेकिन लीप नहीं सकता।

कादिर—भगत, तुम कुछ न करना, आओ, बैठे ही रहना, तुम्हारे हिस्सेका काम मैं कर दूँगा।

दुखरन—मैं तो अब जूते खाऊँगा, जो कसर है, वह भी पूरी हो जाय।

तहसीलदार—इसपर शामत सवार है। है कोई चपरासी, जरा लगाओ तो बदमाशको पचास जूते, मिजाज ठंढा हो जाय।

यह हुक्म पाते ही एक चपरासीने लपककर भगतको इतने जोरसे धक्का दिया कि वह जमीनपर गिर पड़े और जूते लगाने लगा। भगत जड़वत् भूमिपर पड़े रहे, मानों संज्ञाशून्य हो गये हैं, उनके चेहरेपर क्रोध या ग्लानिका चिह्न भी न था। उनके मुखसे हायतक न निकलती थी, दीनताने समस्त चैतन्य शक्तियोंका हनन कर दिया था। कादिरखाँ कुएँ परसे दौड़े हुए आये और उस निर्दय चपरासीके सामने सिर झुकाकर बोले, "सेखजी, इनके बदले मुझे जितना चाहिये मार लीजिये, अब बहुत हो गया।"

चपरासीने धक्का देकर कादिरखाँको ढकेल दिया और फिर जूता उठाया कि अकस्मात् सामनेसे एक इक्केपर प्रेमशङ्कर और डपटसिंह आते हुए दिखाई दिये। प्रेमशङ्कर यह हृदय-विदारक दृश्य देखते ही इक्केसे कूद पड़े और दौड़े हुए चपरासीके पास आकर बोले, खबरदार! जो फिर हाथ चलाया।

चपरासी सकतेमें आ गया। कल्लू, मनोहर सब डोल-रस्सी छोड़-छोड़कर दौड़े और उन्हें सलामकर खड़े हो गये। चमार भी घास लाकर पंसोंके इन्तजारमें खड़े थे। वे भी पास आ गये। प्रेमशङ्करके चारों ओर एक जमघट-सा हो गया। तहसीलदारने कठोर स्वरमें पूछा; आप कौन हैं? आपको सरकारी काममें मुदाखिलत करनेका क्या मजाल है?

प्रेमशङ्कर—मुझे नहीं मालूम था कि गरीबोंको जूते लगवाना भी सरकारी काम है। इसने क्या खता की थी, जिसके लिये आपने यह सजा तजवीज की?

तहसीलदार—सरकारी हुक्मकी तामीलसे इन्कार किया। इससे कहा गया था कि इस मैदानको गोबरसे लाप दे, पर इसने बदजबानी की।

प्रेम—आपको मालूम नहीं था कि यह ऊँची जातका काश्तकार है? जमीन लीपना या कूड़ा फेंकना इनका काम नहीं है।

तहसीलदार—जूतेकी मार सब कुछ करा लेती है।

प्रेमशङ्करका रक्त खौल उठा, पर जब्तसे काम लेकर बोले, आप जैसे जिम्मेदार ओहदेदारकी जबानसे यह बात सुनकर सख्त अफसोस होता है।

मनोहर आगे बढ़कर बोला—सरकार, आज जैसी दुर्गति हुई है, वह हमी जानते हैं। एक चमार बोला—दिनभर घास छीली, अब कोई पैसे ही नहीं देता, घण्टोंसे खड़े चिल्ला रहे हैं।

तहसीलदारने क्रोधोन्मत्त होकर कहा, आप यहाँसे चले जायँ, वरना आपके हकमें अच्छा न होगा। नाजिरजी, आप मुँह क्या

देख रहे हैं? चपरासियोंसे कहिये, इन चमारोंकी अच्छी तरह खबर लें। यही इनकी मजदूरी है।

चपरासियोंने बेगारोंको घेरना शुरू किया। कान्सटेबलोंने भी बन्दूकोंके कुन्दे चलाने शुरू किये। कई आदमियोंको चोट आ गयी। प्रेमशङ्करने ओरसे कहा, तहसीलदार साहब, मैं आपसे मिन्नत करता हूँ, कि चपरासियोंको मार-पीट करनेसे मना कर दें, वरना इन गरीबोंका खून हो जायेगा।

तहसीलदार—आपके ही इशारेसे इन बदमाशोंने सरकशी अखतियार की है। इसके जिम्मेदार आप हैं। मैं समझ गया, आप किसी किसान-सभासे ताल्लुक रखते हैं।

प्रेमशङ्करने देखा तो लखनपूरवालोंके चेहरे रोषसे विकृत हो रहे थे। प्रतिक्षण शङ्का होती थी कि इनमेंसे कोई प्रतिकार न कर बैठे। प्रति क्षण समस्या जटिलतर होती जाती थी। तहसीलदार और अन्य कर्मचारियोंकी मनुष्यता और दयालुतासे अब कोई आशा न रही। तुरत अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। गांव-वालोंकी ओर रुख करके बोले, तहसीलदार साहबका हुक्म मानो। एक आदमी भी यहाँसे न जाय। सब आदमियोंको मुँहमागी मजूरी दी जायेगी। इसकी कुछ चिन्ता मत करो।

यह शब्द सुनते ही सारे आदमी ठिठक गये और विस्मित होकर प्रेमशङ्करकी ओर ताकने लगे। सरकारी कर्मचारियोंको भी आश्चर्य हुआ। मनोहर और कल्लू कुएँकी तरफ चले, चमारोंने गोबर बटोरना शुरू किया। डपटसिंह भी मैदानसे ईंट पत्थर उठा-उठाकर फेंकने लगे। सारा काम ऐसी शान्तिसे होने लगा, मानों कुछ हुआ ही न था। केवल दुखरन भगत अपनी जगहसे न हिले।

प्रेमशङ्करने तहसीलदारसे कहा, आपकी इजाजत हो, तो यह आदमी अपने घर जाय। इसे बहुत चोट आ गयी है।

तहसीलदारने कुछ सोचकर कहा, हाँ, जा सकता है।

भगत चुपकेसे उठे और धीरे-धीरे घरकी ओर चले। इधर दम-के-दममें आदमियोंने मैदान लीप-पोतकर तैयार कर दिया। सब ऐसा दौड़-दौड़कर उत्साहसे काम कर रहे थे, मानों उनके घर बरात आयी हो।

संध्या हो गयी थी। प्रेमशङ्कर जमीनपर बैठे हुए विचारोंमें मग्न थ—कबतक गरीबोंपर यह अन्याय होगा? कब उन्हें मनुष्य समझा जायगा? हमारा शिक्षित समुदाय कब अपने दीन भाइयोंकी इज्जत करना सीखेगा? कब अपने स्वार्थके लिये अपने अफसरोंकी नीच खुशामद करना छोड़ेगा?

इतनेमें तहसीलदार साहब सामने आकर खड़े हो गये और विनय भावसे बोले, आपको यहाँ तकलीफ हो रही है, मेरे खेमेमें तशरीफ ले चलिये। माफ कीजियेगा, मैंने आपको पहचाना न था। गरीबोंके साथ आपकी हमदर्दी देखकर आपकी तारीफ करनेको जी चाहता है। आप बड़े खुशनसीब हैं कि खुदाने आपको ऐसा दर्दमन्द दिल अता फरमाया है। हम बदनसीबोंकी जिन्दगी तो अपनी तनपरवरीमेंही गुजरी जाती है। क्या करूँ? अगर अभी साफ कह दूँ, कि बेगारमें मजदूर नहीं मिलते तो नालायक समझा जाऊँ। आँखोंसे देखता हूँ कि मजदूरोंको आठ आने रोज मिलते हैं, पर इन साहब बहादुरसे इतनी मजदूरी माँगूँ तो वह हर्गिज न देंगे। सरकारने कायदे बहुत अच्छे बनाये हैं, लेकिन ये हुक्काम उनकी परवा ही नहीं करते। कम-से-कम ५०) के मिट्टीके बर्तन उठे होंगे। लकड़ी, भूसा, पुआल सैकड़ों मन खर्च हो गये। कौन इनकी कीमत देता है? अगर कायदेपर अमल करने लगूँ तो एक लेहमेभर रहना दुश्वार हो जाय। और मैं अकेला कर ही क्या सकता हूँ? मेरे और भाई भी तो है। उनकी सख्तियाँ आप देखें तो दाँतों उँगली दबा लें। खुदाने जिसके घरमें रूखी रोटियाँ भी दी हों, वह कभी यह मुलाजमत न करे। आइये, बैठिये, आपको ऐसी सैकड़ों दास्तानें सुनाऊँ, जिनमें

तहसीलदारोंको कायदेके मुताबिक अमल करनेके लिये जहन्नुममें भेज दिया गया है। मेरे ऊपर खुद एक बार गुजर चुकी है।

प्रेमशङ्करको तहसीलदारसे सहानुभूति हो गयी। समझ गये कि यह बेचारे विवश हैं। मनमें लज्जित हुए कि मैंने अकारण ही इनसे अविनय की। उनके साथ खेमेमें चले गये। वहाँ बहुत देरतक बातें होती रहीं। तहसीलदार साहब बड़े साधु सज्जन निकले। अधिकार विषयक घटनाएँ समाप्त हो चुकीं, तो अपनी पारिवारिक कठिनाइयाँ बयान करने लगे। उनके तीन पुत्र कालेज-में पढ़ते थे। दो लड़कियाँ विधवा हो गयी थीं। एक विधवा बहिन और उसके बच्चोंका भार भी सिरपर था। २००) में बड़ी मुश्किलसे गुजर होता था। अतएव जहाँ अवसर और सुविधा देखते थे, वहाँ रिश्वत लेनेमें उज्र न था। उन्होंने यह वृत्तान्त ऐसे सरल और नम्र भावसे कहा कि प्रेमशङ्करका उनसे स्नेह-सा हो गया। यहाँसे उठे तो ८ बज चुके थे। चौपालकी तरफ जाते हुए दुखरन भगतके द्वारपर पहुँचे तो एक विचित्र दृश्य देखा। गाँवके कितने ही आदमी जमा थे और भगत उनके बीचमें खड़े हाथमें शालिग्रामकी मूर्ति लिये उन्मत्तोंकी भाँति बहक-बहक कर कह रहे थे—यह सालिगराम हैं। अपने भक्तोंपर बड़ी दया रखते हैं, सदा उनकी रक्षा किया करते हैं। इन्हें मोहनभोग बहुत अच्छा लगता है, कपूर और धूपकी महँक बहुत अच्छी लगती है। पूछो, मैंने इनकी कौन सेवा नहीं की? आप सत्तू खाता था, बच्चे चबेना चाबते थे, इन्हें मोहनभोगका भोग लगाता था, इनके लिये जाकर कोसोंसे फूल और तुलसीदल लाता था। अपने लिये तमाखू चाहे न रहे, पर इनके लिये कपूर और धूपकी फिकिर करता था, इनका भोग लगाके तब दूसरा काम करता था। घरमें कोई मरता हो क्यों न हो, पर इनकी पूजा-अर्चा किये बिना कभी न उठता था। कोई दिन ऐसा न हुआ कि ठाकुरद्वारेमें जाकर चरणामृत न पिया हो, आरती न ली हो, रामायणका पाठ न किया हो। यह

भगती और सर्धा क्या इसलिये की कि मुझपर जूते पड़ें, हकना-हक मारा जाऊँ, चमार बनूँ ? धिक्कार है मुझपर, जो फिर ऐसे ठाकुरका नाम लूँ, जो इन्हें अपने घरमें रखूँ, और फिर इनकी पूजा करूँ। हाँ, मुझे धिक्कार है! ज्ञानियोंने सच कहा है कि यह अपने भगतोंके बैरी हैं, उनका अपमान कराते हैं, उनकी जड़ खोदते हैं, और उससे प्रसन्न रहते हैं, जो इनका अपमान करे। मैं अबतक भूला हुआ था। बोलो मनोहर, क्या कहते हो, इन्हें कुएँमें फेंकूँ या घूरपर डाल दूँ; जहाँ इनपर रोज मनों कूड़ा पड़ा करे या राहमें फेंक दूँ, जहाँ सवेरेसे साँझतक इनपर लात पड़ते रहें।

मनोहर—भैया तुम जानकार होकर अनजान बनते हो। वह संसारके मालिक हैं, उनकी महिमा अपरम्पार है।

कादिर—कौन जानता है, उनकी क्या मरजी है? बुराईसे भलाई करते हैं। इतना मन न छोटा करो।

दुखरन—(हँसकर) यह सब मनको समझानेका ढकोसला है। कादिर मियाँ, यह पत्थरका ढेला है, निरा मिट्टीका पिण्डा। मैं अबतक भूलमें पड़ा हुआ था; समझता था, इसकी उपासना करनेसे मेरे लोक-परलोक दोनों बन जायँगे। आज आँखोंके सामनेसे वह परदा हट गया, यह निरा मिट्टीका ढेला है। यह लो महाराज, जाओ, जहाँ तुम्हारा जी चाहे, तुम्हारी यही पूजा है। ३० सालकी भगतीका तुमने मुझे जो बदला दिया है, मैं भी तुम्हें उसीका बदला देता हूँ।

यह कहकर भगतने शालिग्रामकी प्रतिमाको जोरसे एक ओर फेंक दिया। न जानें कहाँ जाकर गिरी। फिर दौड़े हुए घरमें गये और पूजाकी पिटारी लिये हुए बाहर निकले। मनोहर लपका कि पिटारी उनके हाथसे छीन लूँ। लेकिन भगतने उन्हें अपनी ओर आते देखकर बड़ी फुरतीसे पिटारी खोली और उसे हवामें उछाल दी, सभी सामग्रियाँ इधर-उधर फैल गयीं। तीस वर्षकी

धर्मनिष्ठा, और आत्मिक श्रद्धा नष्ट हो गयी। धार्मिक विश्वास-की दीवार हिल गयी और उसकी ईंटें बिखर गयीं।

कितना हृदय-विदारक दृश्य था! प्रेमशङ्करका हृदय गद्गद् हो गया। भगवन्! इस असभ्य, अशिक्षित और दरिद्र मनुष्य-का इतना आत्माभिमान! इसे अपमानने इतना मर्माहत कर दिया! कौन कहता है गँवारोंमें यह भावना निर्जीव हो जाती है? कितना दारुण आघात है, जिसने भक्ति, विश्वास तथा आत्मगौरवको नष्ट कर डाला!

प्रेमशङ्कर सब आदमियोंके पीछे खड़े थे। किसीने उन्हें देखा नहीं। वह वहींसे चौपाल चले गये। वहाँ पलङ्ग बिछा तैयार था। डपटसिंह चौका लगाते थे, कल्लू पानी भरते थे। उन्हें देखते ही गौसखाँ झुककर अदाबअर्ज बजा लाये और कुछ सकु-चाते हुए बोले, हुजूरको तहसीलदार साहबके यहाँ बड़ी देर हो गयी।

प्रेमशङ्कर—हाँ, इधर-उधरकी बातें करने लगे। क्यों यहाँ कहार नहीं हैं क्या? ये लोग क्यों पानी भर रहे हैं? उसे बुलाइये, मुनासिब मजदूरी दी जायगी।

गौसखाँ—हुजूर, कहार तो चार घर थे, लेकिन सब उजड़ गये। अब एक आदमी भी नहीं है।

प्रेमशङ्कर—यह क्यों?

गौसखाँ—अब हजूरसे क्या बताऊँ, हमी लोगोंकी शरारत और जुल्मसे। यहाँ हमेशा तीन चार चपरासी रहते हैं। एक-एकके लिये एक-एक खिदमतगार चाहिये। और मेरे लिये तो जितने खिदमतगार हों उतने थोड़े हैं। बेचारे सुबहसे ही पकड़ लिये जाते थे, शामको छुट्टी मिलती थी। कुछ खानेको पा गये तो पा गये, नहीं तो भूखे ही लौट जाते थे। आखिर सबके सब भाग खड़े हुए। कोई कलकत्ता गया, कोई रंगून। अपने बाल-बच्चोंको भी लेते गये। अब यह हाल है कि अपनेही हाथों बर्तनतक धोने पड़ते हैं।

प्रेमशङ्कर—आप लोग इन गरीबोंको इतना सताते क्यों हैं? अभी तहसीलदार साहब लश्करवालोंकी सारी बेइन्साफियोंका इलजाम आपके ही सिर मढ़ रहे थे।

गौसखाँ—हजूर तो फरिस्ते हैं, लेकिन हमारे छोटे सरकारका ऐसा ही हुक्म है। आजकल खतोंमें बार-बार ताकीद करते हैं कि गाँवमें एक भी दखलकार असामी न रहने पाये। हजूरका नमक खाता हूँ, तो हजूरके हुक्मकी तामील करना मेरा फ़र्ज़ है, वरना खुदातालाको क्या मुँह दिखाऊँगा! इसीलिये मुझे इन बेकसोंपर सभी तरहकी सख्तियाँ करनी पड़ती हैं। कहीं मुकदमे खड़े कर दिये, कहीं बेगारमें फँसा दिया, कहीं आपसमें लड़ा दिया। कानूनका हुक्म है कि आदमियोंको लगान देते ही पाई-पाईकी रसीद दी जाय, लेकिन मैं सिर्फ उन्हीं लोगोंको रसीद देता हूँ जो जरा चालाक हैं, गँवारोंको यों ही टाल देता हूँ। छोटे सरकारका बकायापर इतना जोर है कि एक पाई भी बाकी रहे तो नालिश कर दो। कितने ही असामी तो नालिशोंसे तंग आकर निकल भागे। मेरे लिये तो जैसे छोटे सरकार हैं वैसे हजूर भी हैं। आपसे क्या छिपाऊँ? इस तरहकी धाँधलियोंमें हम लोगोंका भी गुजर-बसर हो जाता है, नहीं तो इस थोड़ीसी आमदनीमें गुजर होना मुश्किल था।

इतनेमें बिसेसर, मनोहर, कादिरखाँ आदि भी आ गये और आजका वृत्तान्त कहने लगे। मनोहर दूध लाये, कल्लूने दही पहुँचाया। सभी प्रेमशङ्करके सेवा-सत्कारमें तत्पर थे। जब वह भोजन करके लेटे तो लोगोंने आपसमें सलाह की कि बाबू साहबको रामायण सुनायी जाय। बिसेसर साह अपने घरसे ढोल मजीरा लाये। कादिरने ढोल लिया; मजीरे बजने लगे और रामायणका गान होने लगा। प्रेमशङ्करको हिन्दी भाषाका अभ्यास न था और शायद ही कोई चौपाई उनकी समझमें आती थी; पर वह इन देहातियोंके विशुद्ध धर्मानुरागका आनन्द उठा रहे थे।

कितने निष्कपट, सरलहृदय, साधु लोग हैं! इतने कष्ट झेलते हैं, इतना अपमान सहते हैं, लेकिन मनोमालिन्यका कहीं नाम नहीं। इस समय सभी आमोदके नशेमें चूर हो रहे हैं।

रामायण समाप्त हुई तो कल्लू बोला, कादिर चाचा अब तुम्हारी कुछ हो जाय।

कादिरने लजाते हुए कहा, गा तो रहे हो, क्या इतनी जल्द थक गये?

मनोहर—नहीं भैया, अब अपनी कोई अच्छी सी चीज सुना दो, बहुत दिन हुए नहीं सुना, फिर न जाने कब बैठक हो। सरकार, ऐसा गायक इधर कई गाँवोंमें नहीं है।

कादिर—मेरे गँवारू गानेमें सरकारको क्या मजा आयेगा?

प्रेमशङ्कर—नहीं-नहीं, मैं तुम्हारा गाना बड़े शौकसे सुनूँगा।

कादिर—हजूर, गाते क्या हैं, रो लेते हैं; आपका हुक्म कैसे टालें?

यह कहकर कादिर खाँने ढोलका स्वर मिलाया और यह भजन गाने लगा—

मैं अपने रामको रिझाऊँ।
जङ्गल जाऊँ न बिरछा छेड़ूँ, ना कोई डार सताऊँ।
पात-पातमें है अबिनासी, वाहीमें दरस कराऊँ।
मैं अपने रामको रिझाऊँ।
ओखद खाऊँ न बूटी लाऊँ, ना कोई बैद बुलाऊँ।
पूरन बैद मिले अविनासी, ताहिको नबज दिखाऊँ।
मैं अपने रामको रिझाऊँ।

कादिरके गलेमें यद्यपि लोच और माधुर्य न था, पर ताल और स्वर ठीक था। कादिर इस विद्यामें चतुर था। प्रेमशङ्कर भजन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। इसका एक-एक शब्द भक्ति

और उद्गारमें डूबा हुआ था। व्यवसायी गायनोंकी नीरसता और शुष्कताकी जगह अनुरागमय भावरस परिपूर्ण था।

गाना समाप्त हुआ तो एक नकलकी ठहरी। कल्लू इस कलामें निपुण था। कादिर मियाँ राजा बने, कल्लू मन्त्री, बिसेसर साह सेठ बन गये। डपटसिंहने एक चादर ओढ़ ली और रानी बन बैठे। राजकुमारकी कमी थी, लोग सोचने लगे कि यह भाग किसे दिया जाय। प्रेमशङ्करने हँसकर कहा, कोई हरज न हो तो मुझे राजकुमार बना दो। यह सुनकर सबके सब फूल उठे। नकल शुरू हो गयी।

पहला अङ्क

राजा—हाय! हाय! वैद्योंने जवाब दिया, हकीमोंने जवाब दिया, डाकदरोंने जवाब दिया, किसीने रोग न पहचाना, सबके सब लुटेरे थे, अब जिन्दगानीकी कोई आसा नहीं। यह सारा राज-पाट छूटता है। मेरे पीछे परजापर न जाने क्या बीतेगी! राजकुमार अल्हड़ नादान है, उसकी सङ्गत अच्छी नहीं है। (प्रेमशङ्करकी ओर कटाक्षसे देखकर) किसानोंसे मेल रखता है, उनके पीछे सरकारी आदमियोंसे रार करता है, जिन दीन-दुखी रोगियोंकी परछाईंसे भी डाकदर लोग डरते हैं, उनकी दवा-दारू करता है, उसे अपनी जानका, धनका तनिक भी लोभ नहीं है। यह इतना बड़ा राज कैसे सँभालेगा? अत्याचारियोंको कैसे दण्ड देगा? हाय मेरी प्यारी रानी, जिससे मैंने अभी महीनेभर हुए ब्याह किया है, मेरे बिना कैसे जियेगी? कौन उससे प्रेम करेगा? हाय!

रानी—स्वामीजी, मैं इस सोगमें मर जाऊँगी। यह उजले सनकेसे बाल, यह पोपला मुँह कहाँ देखूँगी? (कटाक्षभावसे)

किसको गोदमें लूँगी ? किससे ठुनकूँगी ? अब मैं किसी तरह न बचूँगी।

राजाकी साँस उखड़ जाती है, आँखें पथरा जाती हैं, नाड़ी छूट जाती है, रानी छाती पीटकर रोने लगती है, दरबारमें हाहाकार मच जाता है।

राजाके कानोंमें आकाशवाणी होती है—हम तुझे एक घंटेकी मोहलत देते हैं, अगर तुझे तीन मनुष्य ऐसे मिल जायँ जो दिलसे तेरे जीनेकी इच्छा रखते हों तो तू अमर हो जायगा।

राजा सचेत हो जाता है, उसके मुखारविन्दपर जीवन-ज्योति झलकने लगती है। वह प्रसन्नमुख उठ बैठता है और आप ही आप कहता है, अब मैं अमर हो गया, अकण्टक राज करूँगा शत्रुओंका नाश कर दूँगा। मेरे राजमें ऐसा कौन प्राणी है, जो हृदयसे मेरे जीनेकी इच्छा न रखता हो। तीन नहीं, तीन लाख आदमी बातकी बातमें निकल आयेंगे।

दूसरा अङ्क

(राजा एक साधारण नागरिकके रूपमें आप-ही-आप)

समय कम है, ऐसे तीन सज्जनोंके पास चलना चाहिये जो मेरे भक्त थे। पहले सेठके पास चलूँ, वह परोपकारके प्रत्येक काममें मेरी सहायता करता था, मैंने उसकी कितनी बार रक्षा की है, और उसे कितना लाभ पहुँचाया है। यह सेठजीका घर आ गया। सेठजी, सेठजी जरा बाहर आओ।

सेठ—क्या है ? इतनी रात गये कौन काम है ?

राजा—कुछ नहीं, अपने स्वर्गवासी राजाका जस गाकर उनकी आत्माको शान्ति देना चाहता हूँ। कैसे धर्मात्मा, प्रजा-

प्रिय पुरुष थे! उनका परलोक हो जानेसे सारे देशमें अन्धकार-सा छा गया है। प्रजा उनको कभी न भूलेगी। आपसे तो उनकी बड़ी मैत्री थी, आपको तो और भी दुःख हो रहा होगा।

सेठ—मुझे उनके राज्यसे कौन-सा सुख था, कि अब दुःख होगा। मर गये, अच्छा हुआ। उनकी बदौलत लाखों रुपये साधु-सन्तोंको खिलाने पड़ते थे।

राजा—(मनमें) हाय! इस सेठपर मुझे कितना भरोसा था! यह मेरे इशारेपर लाखों रुपये दान कर दिया करता था। सच कहा है, बनिये किसीके मित्र नहीं होते। मैं जन्मभर इसके साथ रहा, पर इसे पहचान न सका। अब चलूँ, मन्त्रीके पास, यह बड़ा स्वामिभक्त, सज्जन पुरुष है। उसके साथ मैंने बड़े-बड़े सलूक किये हैं। यह उसका भवन आ गया। शायद अभी दर्बारसे आ रहा है। मन्त्रीजी, कहिये, क्या राज-दर्बारसे आ रहे हैं? इस समय तो दर्बारमें शोक मनाया जा रहा होगा। ऐसे धर्मात्मा राजाको मृत्युपर जितना शोक किया जाय,थोड़ा है। अब फिर ऐसा राजा न होगा। आपको तो बहुत ही दुःख हो रहा होगा।

मन्त्री—मुझे उनसे कौन-सा सुख मिलता था कि अब दुःख होगा? मर गये अच्छा हुआ। उनके मारे साँस लेनेकी भी छुट्टी न मिलती थी। प्रजाके पीछे आप-आप मरते थे, मुझे भी मारते थे, रात-दिन कमर कसे खड़े रहना पड़ता था।

राजा—(आप-ही-आप) हाय! इस परम हितैषी सेवकने भी धोखा दिया! मेरी आँख बन्द होते ही सारा संसार मेरा बैरी हो गया। ऐसे-ऐसे आदमी धोखा दे रहे हैं, जो मेरे पसीनेकी जगह लोहू बहानेको तैयार रहते थे। तीन आदमी भी ऐसे नहीं, जिन्हें मेरा जीना पसन्द हो। जब दोनों निकल गये तो दूसरोंसे क्या आशा रक्खूँ! अब रानीके पास जाता हूँ। वह साध्वी सती स्त्री है। उसकी जितनी ही सखियाँ हैं, सभी मुझपर प्राण

देती थीं। वहाँ मेरी इच्छा अवश्य पूरी होगी। अब केवल थोड़ा सा समय और रह गया है—यह राजभवन आ गया, रानी अकेली मनमारे शोकमें बैठी हुई है। महारानीजी, अब धीरजसे काम लीजिये, आपके स्वामी ऐसे प्रतापी थे, कि संसारमें सदा उनका लोग यश गाया करेंगे, देह त्याग करके वह अमर हो गये।

रानी—अमर नहीं पत्थर हो गये। उनसे संसारको चाहे जो सुख मिला हो, मुझे तो कोई सुख नहीं मिला। उनके साथ बैठते लज्जा आती थी। मैं उनका क्या यश गाऊँ? मैं तो उसी दिन विधवा हो गयी, जिस दिन उनसे विवाह हुआ। वह जीते थे तब भी राँड़ थी, मर गये तब भी राँड़ हूँ। देखो तो कुँवर साहब कैसे सजीले, बाँके जवान हैं। मेरे योग्य यह थे न कि वैसा खूसट बुड्ढा, जिसके मुँहमें दाँततक नहीं थे।

यह सुनते ही राजा एक लम्बी साँस लेता है और मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है।

(अभिनय समाप्त होता है)

प्रेमशङ्करको इन गँवारोंके अभिनय-कौशलपर विस्मय हुआ। बनावटका कहीं नाम न था। प्रत्येक व्यक्तिने अपना अपना भाग स्वाभाविक रीतिसे पूरा किया। यद्यपि न परदे थे, न कपड़े थे, न कोई दूसरे सामान, तथापि अभिनय रोचक और मनोरञ्जक था।

सवेरे प्रेमशङ्कर टहलते हुए पड़ावकी ओर चले तो देखा कि लश्कर कूचकी तैयारी कर रहा है। खेमे उखड़ रहे हैं। गाड़ियों पर असबाब लद रहा है। साहब बहादुरकी मोटर तैयार है और बिसेसर साह तहसीलदारके सामने कागजका एक पुलिन्दा लिये खड़े हैं। तेली, तमोली, बूचड़ आदि भी एक पेड़के नीचे अभियुक्तोंकी भाँति दाम वसूल करनेके लिये बैठे हुए हैं। प्रेमशङ्करने तहसीलदारसे हाथ मिलाया और बैठकर तमाशा देखने लगे।

तहसीलदार—कहाँ हैं गाड़ीवान लोग? बुलाओ, रसदका

हिसाब करें। इसपर एक गाड़ीवानने कहा, हजूर यहाँ रसद मिली है कि हमारी जान मारी गयी है। आटेमें इस बेईमान बनियेने न जाने क्या मिला दिया है कि उसी दिनसे पेटमें दर्द हो रहा है। घीमें तेल मिलाया था, उसपर हिसाब करनेको कहता है। अभी साहबसे कह दें तो बच्चूको लेनेके देने पड़ जायें!

अर्दलीके कई चपरासी बोले, यह बनिया गोली मार देनेके लायक है। ऐसा खराब आटा उम्रभर नहीं खाया। न जाने क्या चीज मिला दी है, कि हजम ही नहीं होती। घी ऐसा बदबू करता था कि दाल खाते न बनती थी। इसपर तो जुर्माना होना चाहिये, उल्टे हिसाब करने आया है।

एक कान्सटेबिल महाशयने कहा, हम इसे खूब जानते हैं, छटा हुआ है। चाना दो तो उसमें आधी बालू, घीमें आधी घुइयाँ, आटेमें आधा चोकर, दालमें आधा कूड़ा, इसे तो ऐसी जगह मारे जहाँ पानी न मिले।

कई साईस बोले, घोड़ोंको जो दाना दिया है, वह बिलकुल घुना हुआ, आधा चना आधा चोकर, घोड़ोंने सूँघातक नहीं। साहबसे कह दें तो अभी हण्टर पड़ने लगें।

तहसीलदार—ये सब शिकायतें पहले क्यों नहीं कीं?

कई आदमी—हजूर, रोज तो हाय-हाय कर रहे हैं!

तहसीलदार—(प्रमशङ्करकी ओर देखकर) मुझसे किसीने भी नहीं कहा। अब यह सब मैं कुछ नहीं सुनूँगा। जिसके जिम्मे जो कुछ निकले, कौड़ी-कौड़ी दे दो। साहजी, अपना हिसाब निकालो।

बिसेसर—मौला बख्श अर्दली, आटा ⅝, घी ⅝॥, चावल ⅝, दाल ⅝१, मसाला ⅝, तमाखू ⅝, कत्था-सुपारी ≠), चीनी ।)—कुल ३) रुपये।

तहसीलदार—कहाँ है मौला बख्श? दाम देकर रसीद लो।

एक अर्दली—इस नामका हमारे यहाँ कोई आदमी नहीं है।

बिसेसर—हैं क्यों नहीं, लम्बे-लम्बे हैं, छोटी दाढ़ी है, मुँह-पर शीतलाका दाग है, सामनेके दो-तीन दाँत टूटे हुए हैं।

कई अर्दली—इस हुलियेका यहाँ कोई आदमी ही नहीं। पहचान, हममेंसे कौन है?

बिसेसर कहीं चल दिये होंगे और क्या!

तहसीलदार—अच्छा, और दूसरा नाम बोलो।

बिसेसर—धन्नू अहीर, चावल ⅀३, आटा ⅀२, घी ⅀। खली ⅀४, दाना और चोकर ⅀८, तमाखू ≈)—कुल २) रुपये।

तहसीलदार—कहाँ है धन्नू अहीर? निकाल रुपये।

एक अर्दली—वह तो पहर रात रहे साहबका डेरा लादकर चला गया।

तहसीलदार—हिसाब नहीं चुकाया और चल दिया। अच्छा नाजिरजी; उसका नाम लिख लीजिये, कहाँ जाते हैं बच्चू, एक-एक पाई वसूल कर लूँगा।

प्रेमशङ्कर—यह लश्करवालोंकी बड़ी ज्यादती है।

तहसीलदार—कुछ न पूछिये, कम्बख्त खा-खाकर चल देते हैं, बदनामी बेचारे तहसीलदारकी होती है।

बिसेसर साहने फिर ऐसा ही व्यौरा पढ़ सुनाया। यह जयराम चपरासीका पुर्जा था। जयराम उपस्थित थे। आगे बढ़ कर बोले, क्यों रे घी ⅀॥ लिया या कि ⅀= पाव?

बिससेर—कागदमें तो ⅀॥ लिखा हुआ है।

जयराम—झूठ लिखा है, सोलहों आने झूठ।

तहसीलदार—अच्छा ⅀= का दाम दो, या कुछ भी नहीं देना चाहते?

यह झमेला ६, १० बजेतक रहा। एक तिहाईसे अधिक आदमी बिना हिसाब चुकाये ही प्रस्थान कर चुके थे; एक चौथाईसे अधिक आदमी लापता हो गये थे। आधे आदमी मौजूद थे, लेकिन उन्हें भी हिसाबके ठीक होनेमें सन्देह था। ऐसे

दस ही पाँच सज्जन निकले, जिन्होंने खरे दाम चुका दिये हों। जब सब चिटें समाप्त हो गयीं तो बिसेसर साहने उन्हें लाकर तहसीलदारके सामने पटक दिया और बोला, मैं और किसीको नहीं जानता, एक हजूरको जानता हूँ और हजूरकेही हुकुमसे मैंने रसद दी है।

तहसीलदार—मैं क्या अपनी गिरहसे दूँगा?

बिसेसर—हजूर जैसे चाहें दें या दिला दें, २००) में यह ७०) मिले हैं। मैं टकेका आदमी, इतना धक्का कैसे उठाऊँगा? महाजन मेरा घर बिकवा लेगा।

तहसीलदार—अच्छी बात है, तुम्हारे दाम मिलेंगे। नाजिरजी, आप दो चपरासियोंको लेकर जाइये; इसके बही-खाते उठा लाइये और खुद इसकी सालाना आमदनीका हिसाब कीजिये। देखिये, अभी कलई खुली जाती है। मैं इसके सब रुपये दूँगा, पर इसीसे लेकर। बच्चू, दो हजार रुपये साल नफा करते हो, उसपर एक बार १००) का घाटा हुआ तो दम निकल गया।

कहाँ तो बिसेसर साह इतने गर्म हो रहे थे, कहाँ यह धमकी सुनते ही भीगी बिल्ली बन गये। बोले, हाँ हजूर, सब हिसाब-किताब जाँच लें। इस गाँवमें ऐसा कौन रोजगार है कि दो हजारका नफा हो जायेगा? खानेभरको मिल जाय, यही बहुत है।

तहसीलदार—और यह आसपासके देहातोंका अनाज किसके घरमें भरा जाता है? तुम समझते हो हाकिमोंको खबर ही नहीं होती। यहाँ इतना बतला सकते हैं कि आज तुम्हारे घरमें क्या पक रहा है। यह रिआयत इसी दिनके लिये करते हैं, कुछ तुम्हारी सूरत देखनेके लिये नहीं।

बिसेसर साह चुपकेसे सरक गये। तेली और तमोलीने भी देखा, कि यहाँ मिलता-जुलता तो कुछ नहीं दीखता, उल्टे और पलेथन लगनेका भय है, तो उन्होंने भी अपनी-अपनी राह ली।

तहसीलदारने प्रेमशङ्करकी ओर देखकर कहा, देखा आपने टैक्सके नामसे इन सबोंकी जान निकल जाती है। मैं जानता हूँ, कि इसकी सलाना आमदनी ज्यादा-से-ज्यादा १०००) होगी। लेकिन चाहे इस तरह कितना ही नुकसान बरदाश्त कर लें, अपने बही-खाते न दिखायेंगे। यह इनकी आदत है।

प्रेमशङ्कर—खैर, यह तो अपनी चालबाजीकी बदौलत नुकसानसे बच गया, मगर और बेचारे तो मुफ्तमें पिस गये, उसपर जलील हुए वह अलग।

तहसीलदार—जनाब, इसकी दवा मेरे पास नहीं है। जबतक कौमको आपलोग एक सिरेसे जगा न देंगे, इस तरहके हथकंडोंका बन्द होना मुश्किल है। जहाँ दिलोंमें इतनी खुदगरजी समायी हुई है और जहाँ रिआया इतनी कच्ची है, वहाँ किसी तरहकी इसलाह नहीं हो सकती। (मुस्कुराकर) हम लोग एक तौरपर आपके मददगार हैं, रिआयाको सताकर, पीसकर, मजबूत बनाते हैं और आप जैसे कौमी हमदर्दोंके लिये मैदान साफ करते हैं।

२७

प्रभातका समय था और कुआरका महीना। वर्षा समाप्त हो चुकी थी। देहातोंमें जिधर निकल जाइये, सड़े हुए सनकी दुर्गन्ध उड़ती थी। कभी ज्येष्ठको लज्जित करनेवाली धूप होती थी, कभी सावनको शरमानेवाले बादल घिर आते थे। मच्छर और मलेरियाका प्रकोप था, नामकी छाल और गिलायकी बहार थी। चरावरमें दूरतक हरी-हरी घास लहरा रही थी, अभी किसीको उसे काटनेका अवकाश न मिलता था। इसी समय बिन्दा महाराज और कर्तारसिंह लाठी कंधेपर रक्खे, एक वृक्षके नीचे आकर खड़े हो गये। कर्तारने कहा, इस बुड्ढेको खुबड़ सूझती रहती है। भला बताओ, जो यहाँ मवेसी न चरने पायेंगे तो कहाँ जायँगे और जो लोग सदासे चराते आये हैं, वे मानेंगे कैसे?

एक बेर कोई इसकी मरम्मत कर देता तो यह आदत छूट जाती।

बिन्दा—हमका तो ई मौजा माँ तीस बरसें होय गईं। तब-से दस कारिन्दे आये पर चरावर कोऊने न रोका। गाँवभरके मवेसी मजेसे चरत रहे।

कर्तार—उन्हें हुक्म देते क्या लगता है, जायगी तो हमारे माथे।

बिन्दा—हमार जी तो अस ऊब गवा है कि मन करत है छोड़-छाड़के घरे चला जाई। सुनित है मालिक अवेया हैं। बस, एक बेर उनसे भेंट होइ जाय और अपने घरके राह लेई।

कर्तार—फैजू दिनभर खाटपर पड़ा रहता है, उससे कुछ नहीं कहते। जब देखो, कर्तारकोही दौड़ाते हैं, मानों कर्तार उनके बापका गुलाम है। और देखो, पीपलके नीचे जहाँ हम-तुम जल चढ़ाते हैं, वहाँ नमाज पढ़ते हैं, वहीं दतुअन-कुल्ली करते हैं, वहीं नहाते हैं। बताओ, धरम नष्ट भया कि रहा? आप तो रोज कुरान पढ़ते हैं, और मैं रामायण पढ़ने लगता हूँ तो कैसे डाँटके कहते हैं, क्या सोर मचा रक्खा है। अबकी असाढ़में ३००) नजराना मिला, हमें एक पाईसे भेंट न हुई।

बिन्दा—हमका तो एक रुपैया मिला रहे।

कर्तार—यह भी कोई मिलनेमें मिलना है, और सब कहीं चपरासियोंको रुपयेमें आठ आने मिलते हैं, यह कुछ न दें तो चार आने तो दें। लेना-देना तो दूर रहा, उसपर आठों पहर सिरपर सवार। कल तुम कहीं गये थे, मुझसे बोले, कर्तार एक घड़ा पानी तो खींच लो। मैंने तुरत जुवाब दिया, इसके नौकर नहीं हैं, फौजदारी करा लो, लाठी चलवा लो, अगर कदम पीछे हटायें तो कहो, लेकिन चिलम भरना, पानी खींचना हमारा काम नहीं है। इसपर आँखें बहुत लाल पीली कीं। एक दिन पीपलके नीचेवाली मूरतोंको देखकर बोले, यह क्या ईंट-पत्थर जमा-कर रक्खे हैं। मैंने तो ठान लिया है कि जहाँ अबकी कोई नज-

राना लेकर आया और मैंने हाथ पकड़ा, कि चार आने इधर रखिये। जरा भी नरम-गरम हुए, मुँहसे लाम-काफ निकाली और मैंने गरदन दबायी। फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। फैजू बोले, तो उनसे मैं भी समझूँगा। खूब पड़े-पड़े रोटी-गोस उड़ा रहे हैं, सब निकाल दूँगा···वह देखो, मवेसी इधर आ रहे हैं, बलराज तो नहीं है न?

बिन्दा—होबै करी तो कौनो डर हौ? अबकी अस जर आवा है कि ठठरी होय गवा है।

कर्तार—बड़े कस-बलका पट्ठा है। सुक्खू चौधरीका तालाब जहाँ बन रहा वहीं एक दिन अखाड़ेमें उससे मेरी एक पकड़ हो गयी थी। मैं उसे पहले ही झपाटेमें नीचे लाया; लेकिन ऐसा तड़पके नीचेसे निकला कि मैं झोंकेमें आ गया। सम्भल ही न सका। बदन नहीं, लोहा है।

बिन्दा—निगाहका बड़ा सच्चा जवान है। क्या मजाल कि कोऊकी बिटिया-मेहरियाकी ओर आँखें उठाके ताके।

कर्तार—वह देखो, फैजू और गौसखाँ भी इधर ही आ रहे हैं। आज कुसल नहीं दीखती।

बिन्दा—यह गायें-भैंसे तो मनोहरकी जान परत हैं। बिलासी लीने आवत है।

कर्तारने उच्च स्वरमें कहा,—यह कौन मवेसी लिये आता है? यहाँसे निकाल ले जाव, सरकारी हुक्म नहीं है। इतनेमें बिलासी निकट आ गयी और बिन्दा महाराजकी ओर अनिश्चित भावसे देखकर बोली, सुनत हौ महराज ठाकुरकी बात!

कर्तार—सरकारी हुकुम हो गया है कि अब कोई जानवर यहाँ न चरने पाये।

बिलासी—कैसा सरकारी हुकुम? सरकारकी जमीन नहीं है। महाराज, तुम्हें तो यहाँ एक युग बीत गया, कभी किसीने बराई भी है?

बिन्दा—उन पुरानी बातनका न गावो, अब ऐसे हुकुम भवा है। जानवरनका और कौनो कैत ले जाव, नाहीं तो वह गौसखाँ आवत हैं, सभनका पकड़के कानीहौद पठै देहैं।

बिलासी—कानीहौद कैसे पठै देहैं, कोई राहजनी है? हमारे मवेसी सदासे यहाँ चरते आये हैं और सदा यहीं चरेंगे। अच्छा सरकारी हुकुम है, आज कह दिया चरावर छोड़ दो, कल कहेंगे अपना घर छोड़ो, पेड़ तले जाके रहो। ऐसा कोई अन्धेर है?

इतनेमें गौसखाँ और फैजू भी आ पहुँचे। विलासीके अन्तिम शब्द खाँ साहबके कानमें पड़े। डपटकर बोले, अपने जानवरोंको फौरन निकाल ले जा, वरना मवेशीखाने भेज दूँगा।

बिलासी—क्यों निकाल ले जाऊँ? चरावर सारे गाँवका है। जब सारा गाँव छोड़ देगा तो हम भी छोड़ देंगे।

गौसखाँ—जानवरोंको ले जाती है कि खड़ी-खड़ी कानून बघारती है।

बिलासी—तुम तो खाँ साहब, ऐसी घुड़की जमा रहे हो, जैसे मैं तुम्हारा दिया खाती हूँ।

गौसखाँ—फैजू, यह जबाँदराज औरत यों न मानेगी, घेर लो इसके जानवरोंको और मवेशीखाने हाँक ले जाओ।

फैजू तो मवेशियोंकी तरफ लपका, पर कर्तार और बिन्दा महाराज धर्मसङ्कटमें पड़े खड़े रहे। खाँ साहबने उन्हें भी ललकारा—खड़े मुँह क्या देख रहे हो? घेर लो जानवरोंको और हाँक ले जाओ। सरकारी हुकुम है या कोई मजाक है।

अब कर्तार और बिन्दा महाराज भी उठे और जानवरोंको चारों ओरसे घेरनेका आयोजन करने लगे। मवेशियोंने चौकन्नी आँखोंसे देखा, कान खड़े किये और इधर-उधर बिदकने लगे। परिस्थितिको ताड़ गये। बिलासीने कहा, मैं कहती हूँ, इन्हें मत घेरो, नहीं तो ठीक न होगा।

किन्तु किसीने उसकी धमकीपर ध्यान न दिया। थोड़ी देरमें सब जानवर घिर गये और कन्धेसे कन्धे मिलाये, कनखियोंसे ताकते, तीनों चपरासियोंके बीचमें धीरे-धीरे चले। बिलासी एक संदिग्ध दशामें मूर्तिवत् खड़ी थी। जब जानवर कोई बीस क़दम निकल गये, तब वह उन्मत्तोंकी भाँति दौड़ी और हाँफते हुए बोली, मैं कहती हूँ कि इन्हें छोड़ दो, नहीं तो ठीक न होगा।

फेजू - हट जा रास्तेसे, कुछ शामत तो नहीं आयी है?

बिलासी रास्तेमें खड़ी हो गयी और बोली, ले कैसे जाओगे? —दिल्लगी है?

गौसखाँ —न हटे तो इसकी मरम्मत कर दो।

बिलासी —कहे देती हूँ, इन जानवरोंके पीछे लोहूकी नदी बह जायेगी। माथे गिर जायेंगे।

फेजू—हटती है या नहीं चुड़ैल?

बिलासी —तू हट जा, दाढ़ीजार!

इतना उसके मुँहसे निकलना था कि फेजूने आगे बढ़कर बिलासीकी गदेन पकड़ी और उसे इतने जोरसे झोंका दिया कि वह दो-कदमपर जा गिरी। उसकी आँखें तिलमिला गयीं, मूर्च्छा-सी आ गयी। एक क्षण वह वहीं अचेत पड़ी रही, तब उठी और लँगड़ाती हुई उन पुरुषोंसे अपनी अपमान-कथा कहने चली, जो उसके मान और मर्यादाके रक्षक थे।

मनोहर और बलराज दोनों एक दूसरे गाँवमें धान काटने गये हुए थे। वह यहाँसे कोसभर पड़ता था। लखनपूरमें धानके खेत न थे। इसलिये सभी लोग प्रायः उसी गाँवमें धान बोते थे। बिलासी धानके मेंड़ोंपर चली जाती थी। कभी पैर इधर फिसलते, कभी उधर। वह ऐसी उद्विग्न हो रही थी कि कि किसी प्रकार उड़कर वहाँ पहुँच जाऊँ। पर घुटनियोंमें चोट आ गयी थी, इसलिये विवश थी। उसके रोम-रोमसे अग्निकी

ज्वाला निकल रही थी। अंग-अंगसे यही ध्वनि निकलती थी—इनकी इतनी मजाल!

उसे इस समय परिणाम और फलकी लेशमात्र भी चिन्ता न थी। कौन मरेगा? किसका घर मिट्टीमें मिलेगा? यह बातें उसके ध्यानमें भी न आती थीं। वह संकल्प-विकल्पके बन्धनसे मुक्त हो गयी थी।

लेकिन जब वह उस गाँवके समीप पहुँची और धानके लहराते हुए खेत दिखाई देने लगे तो पहली बार उसके मनमें यह प्रश्न उठा, इसका फल क्या होगा? बलराज एक ही क्रोधी है, मनोहर उससे भी एक अंगुल आगे। मेरा रोना सुनते ही दोनों भभक उठेंगे। जानपर खेल जायेंगे तब? किन्तु आहत हृदयने उत्तर दिया, क्या हानि है? लड़कोंके लिये आदमी क्यों झींकता है? पतिके लिये क्यों रोता है? इसी दिनके लिये तो? इस कलमुँहे फैजूका मानमरदन तो हो जायेगा। गौसखाँका घमण्ड चूर-चूर हो जायेगा।

तब भी, जब वह अपने खेतोंके डाँडेपर पहुँची, मनोहर और बलराज नज़र आने लगे,तब उसके पैर आप ही रुकने लगे। यहाँतक कि जब वह उनके पास पहुँची, तब परिणाम-चिन्ताने उसे परास्त कर दिया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। जानती थी और समझती थी कि यह आँसूकी बूँदें आगकी चिनगारियाँ हैं, पर आवेशपर अपना क़ाबू न था। वह खेतके किनारे खड़ी हो गयी और मुँह ढाँपकर रोने लगी।

बलराजने सशंक होकर पूछा, अम्मा क्या है रोती क्यों है? क्या हुआ? अरे यह सारा कपड़ा कैसे लोहूलुहान हो गया?

बिलासीने साड़ीकी ओर देखा, तो वास्तवमें रक्तके छींटे दिखाई दिये। घुटनियोंसे खून बह रहा था। उसका हृदय थर-थर काँपने लगा। इन छींटोंको छिपानेके लिये वह इस समय अपने प्राणतक दे सकती थी। हाय! मेरे सिरपर कौन-सा भूत

सवार हो गया कि यहाँ दौड़ी हुई आयी ! मैं क्या जानती थी कि कहीं फूट-फाट भी गया है। अब गजब हो गया ! मुझे चाहिये था कि धीरज धरे बैठी रहती। साँझको जब यह लोग घर जाते और गाँवके सब आदमी जमा होते तो सारा वृत्तान्त कह देती। जैसी सबकी सलाह होती, वैसा किया जाता। इस अव्यवस्थित दशामें वह कोई शान्तिप्रद उत्तर न सोच सकी।

बलराजने फिर पूछा, कुछ मुँहसे बोलती क्यों नहीं, बस रोये जाती है। क्या हुआ, कुछ बता भी तो ?

बिलासी—(सिसकते हुए) फैजू और गौसखाँ हमारी सब गायें-भैंसें कानीहौद हाँक ले गये।

बलराज—क्यों ? क्या उनकी सीरमें पड़ी थी ?

बिलासी—नहीं, कहते थे कि चरावरमें चरानेकी मनाही हो गयी है।

बलराजने देखा, माताकी आँखें झुकी हुई हैं और मुखपर मर्माघातकी आभा झलक रही है। उसने उग्रावस्थामें स्थितिको उससे कहीं भयंकर समझ लिया, जितनी वह वस्तुतः थी। कुछ और पूछनेकी हिम्मत न पड़ी। आँखें रक्तवर्ण हो गयीं। कन्धेपर लट्ठ रख लिया और मनोहरसे बोला, मैं जरा गाँवतक जाता हूँ।

मनोहर—क्या काम है ?

बलराज—फैजू और गौसखाँसे दो-दो बातें करनी हैं।

मनोहर—ऐसी बातें करनेका यह मौका नहीं है। अभी जाओगे तो बात बढ़ेगी और कुछ हाथ भी न लगेगा। चार आदमी तुम्हींको बुरा कहेंगे। अपमानका बदला इस तरह नहीं लिया जाता।

मनोहरके इन शब्दोंमें इतना भयंकर संकल्प, इतना घातक निश्चय भरा हुआ था कि बलराज अधिक आग्रह न कर सका। उसने लाठी रख दी और माँसे कहा, अभी घर जाओ। हमलोग आयेंगे, तो देखा जायगा।

मनोहर—नहीं घर मत जाओ। यहीं बैठो, साँझको सब जने साथ ही चलेंगे। वह कौन दौड़ा आ रहा है? बिन्दा महाराज हैं क्या?

बलराज—नहीं, कादिर दादा जान पड़ते हैं। हाँ, वही हैं। भागे चले आते हैं। मालूम होता है गाँवमें मारपीट हो गयी—दादा क्या है? कैसे दौड़े आते हो, कुशल तो है?

कादिरने दम लेकर कहा, तुम्हारे ही पास तो दौड़े आते हैं। बिलासी रोती आयी है। मैं डरा, तुम लोग गुस्सेमें न जाने क्या कर बैठो। चला कि राहमें मिल जाओगे तो रोक लूँगा, पर तुम कहीं मिले ही नहीं। अब तो जो हो गया सो हो गया, आगेकी खबर करो। आजसे जमींदारने चरावर रोक दी है। यह अन्धेर देखते हो?

मनोहर—हाँ, देख तो रहा हूँ, अन्धेरे-सा अन्धेर है!

कादिर—फिर अदालत जाना पड़ेगा।

मनोहर—चलो, मैं तैयार हूँ।

कादिर—हाँ, आज आओ तो सलाह पक्की करके सवाल दे दें। अबकी हाईकोर्टतक लड़ेंगे, चाहे घर बिक जाय। बस, हल पीछे चन्दा लगा लिया जाय।

मनोहर—हाँ, यही अच्छा होगा।

कादिर—मैं नमाज पढ़ता था, सुना बिलासीको चरावरमें चपरासियोंने बुरा भला कहा और वह रोती हुई इधर आयी है। समझ गया कि आज गजब हो गया। बारे तुमने सबरसे काम लिया। अल्लाह इसका सवाब तुमको देगा। तो मैं अब जाता हूँ, सबसे चन्देकी बातचीत करता हूँ। जरा दिन रहते चले आना।

कादिरखाँ सावधान होकर चले गये। यह न समझे कि यहाँ मनमें कुछ और ही ठन गयी है। मनोहरके तुले हुए शब्दोंको उन्होंने मानसिक धैर्यका द्योतक समझा।

मनोहर ऐसे उद्दीप्त उत्साहसे अपने काममें दत्तचित्त था,

मानों उसकी युवावस्थाका विकास हो गया है। धानके पोलों-के ढेर लगते जाते थे, न आगे ताकता था न पीछे, न किसीसे कुछ बोलता था, न किसीका कुछ सुनता था; न हाथ थकते थे, न कमर दुखती थी। बलराजने चिलम भरकर रख दी। तम्बाकू रक्खे-रक्खे जल गया। बिलासी खाँड़का रस घालकर सामने लायी। उसने उसकी ओर देखातक नहीं, कुत्ता पी गया। कुआरकी धूप थी, देहसे चिनगारियाँ निकलती थीं, पसीनेकी धारें बहती थीं; किन्तु वह सिरतक न उठाता था। बलराज कभी खेतमें आता, कभी पेड़के नीचे जा बैठता, कभी चिलम पीता। एक ही अग्नि दोनोंके हृदयमें प्रज्ज्वलित थी, एक ओर सुलगती हुई, दूसरी ओर दहकती हुई; एक ओरे वायुके वेगसे चंचल, दूसरी ओर निर्बलतासे निश्चल। एकही भावना दोनोंके हृदयमें थी; एकमें उद्दाम—उच्छृंखल, दूसरेमें गम्भीर और स्थिर।

दोपहर हुई, बिलासीने आकर डरते-डरते कहा, चलो, चबेना कर लो।

मनोहरने सिर झुकाये हुए जवाब दिया—चलो आते हैं।

एक घण्टेके बाद बिलासी फिर आकर बोली, चलो, चबेना कर लो, दिन ढल गया। क्या आज ही सब खेत काट लोगे?

मनोहरने कठोर स्वरसे कहा, हाँ, यही विचार है। कौन जाने, कल आये या न आये।

जैसे किसी भरे हुए घड़ेमें एक कंकर लग जाय और पानी बह निकले, उसी भाँति बिलासीके हृदयमें एक चोट-सी लगी और आँसू बहने लगे। वह रह-रहकर हाथ मलती थी। हाय! न जाने, इन्होंने मनमें क्या ठान लिया है।

वह कई मिनटतक वहीं खड़ी रोती रही। परिणामकी भया-वह विकराल मूर्ति उसके नेत्रोंके सामने नाच रही थी। मुँह खोले उसे निगलनेको दौड़ती थी और शोक! इस मूर्तिको उसने अपने ही हाथों रचा था। अन्तमें वह मनोहरके सम्मुख बैठ

गयी और उसकी ओर अत्यन्त दीन भावसे देखकर बोली, हाथ जोड़कर कहती हूँ, चलकर चबेना कर लो। तुम्हारे इस तरह गुमसुम रहनेसे मेरा कलेजा दहल रहा है। तुमने क्या ठान रक्खी है, बोलते क्यों नहीं ?

मनोहर—जाकर चुपकेसे बैठो। जब मुझे भूख लगेगी, खा लूँगा।

बिलासी—हाय राम ! तुम क्या करनेपर तुले हुए हो ?

मनोहर—करूँगा क्या ! कुछ करने ही लायक होता तो आज यह बेइज्जती नहीं होती। जो कुछ तकदीरमें है वह होगा।

यह कहकर वह फिर अपने काममें व्यस्त हो गया। कोई किसीसे न बोला। बलराज टालमटोल करता रहा और बिलासी उदास बैठी कभी रोती और कभी अपनेको कोसती, यहाँ तक कि संध्या हो गयी, तीनोंने धानके गट्ठ गाड़ीपर लादे और लखनपूर चले। बलराज गाड़ी हाँकता था और मनोहर पीछे-पीछे उच्च-स्वरसे एक बिरहा गाता हुआ चला आता था। राहमें कल्लू-अहीर मिला, बोला, मनोहर काका, आज बड़े मगन हो। मनोहर-का गाना समाप्त हुआ तो उसने भी एक बिरहा गाया, दोनों साथ-साथ गाँवमें पहुँचे तो एक हलचल-सी मचाई हुआ थी। चारों ओर चरावरकीही चर्चा थी। कादिरके द्वारपर एक पञ्चायत-सी बैठी हुई थी। लेकिन मनोहर पञ्चायतमें न जाकर सीधा घर गया और जाते ही जाने भोजन माँगा। बहूने रसोई तैयार कर रक्खी थी। इच्छापूर्ण भोजन करके नारियल पीने लगा। थोड़ी देरमें बलराज भी पञ्चायतसे लौटा। मनोहरने पूछा, कहो, क्या हुआ ?

बलराज—कुछ नहीं, यह सलाह हुई है कि खाँ साहबको कुछ नजर वजर देकर मना लिया जाय। अदालतसे सब लोग घबराते हैं।

मनोहर—यह तो मैं पहले ही समझ गया था। अच्छा

जाकर चटपट खा पी लो। आज मैं भी तुम्हारे साथ रखवाली करने चलूँगा। आँख लग जाय तो जगा लेना।

एक घण्टेके बाद दोनों खेतकी ओर चलनेको तैयार हुए। मनोहरने पूछा, कुल्हाड़ा खूब चलता है न?

बलराज—हाँ, आज ही तो रगड़ा है।

मनोहर—तो उसे ले लो।

बलराज—मेरा तो कलेजा थर-थर काँप रहा है।

मनोहर—काँपने दो। तुम्हारे साथ मैं भी तो रहूँगा। तुम दो एक हाथ चलाके वहाँसे लम्बे हो जाना और सब मैं देख लूँगा। इस तरह आके सो रहना, जैसे कुछ जानते ही नहीं। कोई कितना ही पूछे, डरावे, धमकावे मुँह मत खोलना। मैं अकेले ही जाता, मुदा एक तो मुझे अच्छी तरह सूझता नहीं; कई दिनोंसे रतौंधी होती है। दूसरे, हाथोंमें अब वह बल नहीं कि एक चोटमें वारा न्यारा हो जाय।

मनोहर यह बातें ऐसी सावधानीसे कह रहा था, मानों कोई साधारण घरेलू बातचीत हो। बलराज इसके प्रतिकूल शङ्का और भयसे आतुर हो रहा था। क्रोधके आवेशमें वह आगमें कूद सकता था; किन्तु इस पैशाचिक हत्याकाण्डसे उसके प्राण सूख जाते थे।

खेतमें पहुँचकर दोनों मचानपर लेटे। अमावसकी रात थी। आकाशपर कुछ बादल भी हो आये थे। चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था।

मनोहर तो लेटते ही खर्राटे लेने लगा, लेकिन बलराज पड़ा-पड़ा करवटें बदलता रहा। उसका हृदय नाना प्रकारकी शङ्काओंका अविरल स्रोत बना हुआ था।

दो घड़ी बीतनेपर मनोहर जागा, बलराजसे बोला, सो गये क्या?

बलराज—नहीं, नींद नहीं आती।

मनोहर—अच्छा, तो अब रामका नाम लेकर तैयार हो जाओ, डरने या घबरानेकी कोई बात नहीं। अपने मरजादकी रक्षा करना मरदोंका काम है। ऐसे अत्याचारोंका हम और क्या जवाब दे सकते हैं? बेइज्जत होकर जीनेसे मर जाना अच्छा है! दिलको खूब संभालो। अपना काम करके सीधे यहाँ चले आना। अन्धेरी रात है, किसीकी नज़र भी नहीं पड़ सकती। थानेदार तुम्हें डरायेंगे,लेकिन खबरदार! डरना मत? बस, गाँवके लोगोंसे मेल रक्खोगे तो कोई तुम्हारा बाल भी बाँका न कर सकेगा। दुखरन भगत अच्छा आदमी नहीं हैं, उससे चौकन्ने रहना। हाँ, कादिर भरोसेका आदमी है। उसकी बातोंको बुरा मत मानना। मैं तो फिर लौटकर घर न आऊँगा, तुम्हीं घरके मालिक बनोगे, अब यह लड़कपन छोड़ देना,कोई चार बात कहे तो गम खाना। ऐसा कोई काम न करना कि बाप-दादेके नामको कलंक लगे। अपनी घरवालीको सिर मत चढ़ाना,उसे समझाते रहना कि सासके कहनेमें रहे। मैं तो देखने न आऊँगा, लेकिन इसी तरह घरमें राड़ मचता रहा तो घर मिट्टीमें मिल जायगा।

बलराजने अवरुद्ध कंठसे कहा,दादा, मेरी इतनी बात मानो, इस वखत सबुर कर जाओ,मैं कल एक-एककी खोपड़ी तोड़के रख दूँगा।

मनोहर—हाँ, तुम्हें कोई न मारे तो तुम संसारभरको मार गिराओ। फैज़ू और कर्तार क्या मिट्टीके लोंदे हैं? गौसखाँ भी पलटनमें रह चुका है। तुम लकड़ीमें उनसे पेस न पा सकोगे। वह देखो, हिरना निकल आया। महावीरजीका नाम लेकर उठ खड़े हो। ऐसे कामोंमें आगा-पीछा अच्छा नहीं होता। गाँवके बाहर-ही-बाहर चलना होगा, नहीं तो कुत्ते भूकेंगे और लोग जाग उठेंगे।

बलराज—मेरे तो हाथ-पैर काँप रहे हैं।

मनोहर—कोई परवा नहीं, कुल्हाड़ा हाथमें लोगे तो सब

ठीक हो जायगा। तुम मेरे बेटे हो, तुम्हारा कलेजा मजबूत है। तुम्हें अभी जो डर लग रहा है, वह तापके पहलेका जाड़ा है। तुमने कुल्हाड़ा कन्धेपर रक्खा, महावीरका नाम लेकर उधर चले, तो तुम्हारी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगेंगी। सिरपर खून सवार हो जायगा, बाजकी तरह सिकारपर झपटोगे, फिर तो मैं तुम्हें मना भी करूँ तो न सुनोगे। वह देखो, सियार बोलने लगे, आधी रात हो गयी। मेरा हाथ पकड़ लो और आगे-आगे चलो। जय महावीरकी!

२८

प्रेमशङ्करकी कृषिशाला अब नगरके रमणीय स्थानोंकी गणनामें थी। यहाँ ऐसी सफाई और सजावट थी कि प्रायः रसिकगण सैर करने आया करते। यद्यपि प्रेमशङ्कर केवल उसके प्रबन्धकर्ता थे, पर वस्तुतः असामियोंकी भक्ति और पूर्ण विश्वासने उन्हें उसका स्वामी बना दिया था। अब अपने इच्छानुसार नयी-नयी फसलें पैदा करते, नाना प्रकारकी परीक्षाएँ करते, पर कोई जरा भी न बोलता और बोलता ही क्यों, जब उनकी कोई परीक्षा असफल न होती थी। जिन खेतोंमें मुश्किलसे ५।७ मनकी उपज होती थी वहाँ अब १५-२० मनका औसत पड़ता था। उसपर बागकी आमदनी अलग थी। इन्हीं चार सालोंमें कलमी आम, बेर, नारङ्गी आदिके पेड़ोंमें फल लगने शुरू हो गये थे। शाक-भाजीकी पैदावार घाटेमें थी। प्रेमशङ्करमें व्यावसायिक संकीर्णता छूतक न गयी थी। जो सज्जन यहाँ आ जाते, उन्हें फूल-फलोंकी डाली अवश्य भेंट की जाती थी। प्रेमशङ्करकी देखादेखी हाजीपूरवालोंने भी अपने जीवनका कुछ ऐसा ढौल कर लिया था कि उनकी सारी आवश्यकताएँ उसी बगीचेसे पूरी हो जाती थीं। भूमिका आठवाँ भाग कपासके लिये अलग कर दिया गया था। अन्य प्रान्तोंसे उत्तम बीज मँगाकर बोये गये थे। गाँवके लोग स्वयं सूत कात लेते थे और गाँवका ही कोरी उसके कपड़े बुन

देता था। उसका नाम मस्ता था। पहले वह जुआ खेला करता था और कई बार चोरीमें पकड़ा गया था। लेकिन अब अपने श्रमसे गाँवके भले आदमियोंमें गिना जाता था। प्रेमशङ्करके उद्योगसे आसपासके गाँवोंमें भी कपासकी खेती होने लगी थी और कितने ही कोरियों और जुलाहोंके उजड़े हुए घर आबाद हो गये थे। देहातोंके मुकदमेबाज जमींदार और किसान बहुधा इसी जगह ठहरा करते थे। यहाँ उन्हें ईंधन, शाक-भाजी, नमक, तेलके लिये पैसे न खर्च करने पड़ते थे। प्रेमशङ्कर उनसे खूब बातें करते और उन्हें अपने बगीचेकी सैर कराते। साधु-सन्तोंका तो मानों यह अखाड़ा ही था। दो-चार मूर्त्तियाँ नित्यही पड़ी रहती थीं। न जाने उस भूमिमें क्या बरकत थी कि इतनी आतिथ्यसेवा करने-पर भी किसी पदार्थकी कमी न थी। हाजीपूरवाले तो उन्हें देवता समझते थे और अपने भाग्यको सराहते थे कि ऐसे पुण्यात्माने हमें उबारनेके लिये यहाँ निवास किया। उनके सदय, उदार, सरल स्वभावने मस्ता कोरीके अतिरिक्त गाँवके कई कुचरित्र मनुष्योंका उद्धार कर दिया था। भोला अहीर, जिसके मारे खलिहानमें अनाज न बचता था, दमड़ी पासी, जिसका पेशा ही लठैती था, अब गाँवके सबसे मेहनती और ईमानदार किसान थे।

प्रेमशङ्कर अक्सर कृषकोंकी आर्थिक दुरवस्थापर विचार किया करते थे। अन्य अर्थशास्त्रवेत्ताओंकी भाँति वह कृषकोंपर फजूल-खरची, आलस्य, अशिक्षा या कृषि-विधानसे अनभिज्ञताका दोष लगाकर इस प्रश्नको हल न करते थे। वह परोक्षमें कहा करते थे कि मैं कृषकोंको शायद ही कोई ऐसी बात बता सकता हूँ, जिसका उन्हें ज्ञान न हो। परिश्रमी तो इनसे अधिक कोई संसारमें न होगा। मितव्ययितामें, आत्मसंयममें, गृहप्रबन्धमें वे निपुण हैं। उनकी दरिद्रताका उत्तरदायित्व उनपर नहीं, बल्कि उन परिस्थितियोंपर है, जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और यह परिस्थितियाँ क्या हैं? आपसकी फूट, स्वार्थपरता

और एक ऐसी संस्थाका विकास, जो उनके पाँवकी बेड़ी बनी हुई है। लेकिन जरा और विचार कीजिये तो यह तीनों टहनियाँ एक ही शाखासे फूटी हुई प्रतीत होंगी और यह वही संस्था है जिसका अस्तित्व कृषकोंके रक्तपर अवलम्बित है। आपसमें विरोध क्यों है? दुरवस्थाओंके कारण, जिनकी इस वर्तमान शासनने सृष्टि की है। परस्पर प्रम और विश्वास क्यों नहीं है? इसलिये कि यह शासन इन सद्भावोंको अपने लिये घातक समझता है और उन्हें पनपने नहीं देता। इस परस्पर विरोधका सबसे दुःखजनक फल क्या है? भूमिका क्रमशः अत्यन्त अल्प भागोंमें विभाजित हो जाना और उसके लगानकी अपरिमित वृद्धि। प्रेमशङ्कर इस शासनके सुधारको तो मानव शक्तिसे परे समझते थे, लेकिन भूमिके बँटवारेका रोकना उन्हें साध्य जान पड़ता था और यद्यपि किसी आन्दोलनमें अगुआ बनना उन्हें पसन्द न था, किन्तु इस विषयमें वह इतने उत्सुक थे कि समाचारपत्रोंमें अपने मन्तव्योंको प्रकट करनेसे न रुक सके। इससे उनका उद्देश्य केवल यह था कि कोई मुझसे अधिक अनुभवशील, कुशल और प्रतिभाशाली व्यक्ति इस प्रश्नको अपने हाथमें ले ले।

एक दिन वह कई सहृदय मित्रोंके साथ बैठे हुए इसी विषयपर बातचीत कर रहे थे कि एक सज्जनने कहा, यदि आपका विचार है कि यह प्रथा कानूनसे बन्द की जा सकती है तो आपकी भ्रान्ति है। इस विषयुक्त पौधेकी जड़ें मनुष्यके हृदयमें है और जबतक इसे हृदयसे खोदकर न निकालियेगा, यह इसी प्रकार फूलता-फलता रहेगा।

प्रेमशङ्कर – कानूनसे कुछ-न-कुछ सुधार तो हो ही सकता है। इसपर उन महाशयोंने जोर देकर कहा, कदापि नहीं, बल्कि स्वार्थ प्रत्यक्षरूपसे स्फुटित होनेका अवसर न पाकर और भी भयङ्कर रूप धारण कर लेगा।

इसपर एक किसान, बँटवारेकी दरख्वास्त करके कचहरीसे

लौटा था और जो आज यहीं ठहरा हुआ था, बोल उठा, कहूँ कुछ न होई। हम तो आपे लोगनके पीछे-पीछे चलित है। जब आपे लोगनमें भाई-भाईमें निबाह नाहीं होय सकत है तो हमार कस होई। आपका नारायण सब कुछ दिहे हैं, मुदा आपे अपने भाईसे अलग रहत हौ।

ये उच्छृङ्खल शब्द प्रेमशङ्करके हृदयमें तीरके समान चुभ गये। सिर झुका लिया। मुखश्री मलिन हो गयी। मित्रोंने कृषक-की ओर तिरस्कारपूर्ण नेत्रोंसे देखा। यह एक जगत्व्यापार था। यहाँ व्यक्तियोंको खींचना नितान्त न्याय-विरुद्ध था, पर वह अक्खड़ देहाती सभ्यताके रहस्योंको क्या जाने, मुँहमें जो बात आयी, कह डाली। एक महाशयने कहा, निरे गँवार हो, जरा भी तमीज नहीं।

दूसरे महाशय बोले, अगर इतना ही ज्ञान होता तो देहाती क्यों कहलाते? न अवसरका ध्यान, न औचित्यका विचार, जो कुछ ऊटपटाँग मुँहमें आया, बक डाला।

बेचारे किसानको अब मालूम हुआ कि मुँहसे कोई अनुचित बात निकल गयी। लज्जित होकर बोला, साहब मैं गँवार मनई ई सब फेरफार का जानौं। जौन कुछ भूल चूक हो गयी होय माफ की जाय।

प्रेमशङ्कर—नहीं, नहीं, तुमने कोई अनुचित बात नहीं कही। मेरे लिये इस स्पष्ट कथनकी आवश्यकता थी। तुमने अच्छी शिक्षा दे दी। कोई सन्देह नहीं, कि शिक्षित जनोंमें भी विरोध और वैमनस्यका उतना ही प्रकोप है, जितना अशिक्षित लोगोंमें है और मैं स्वयं इस विषयमें दोषी हूँ, मुझे किसीको समझाने-का अधिकार नहीं।

मित्रगण कुछ देरतक और बैठे रहे, लेकिन प्रेमशङ्कर कुछ ऐसे दब गये कि फिर जबान ही न खुली। अन्तमें सब एक-एक करके चले गये।

सूर्य्यास्त हो रहा था। प्रेमशङ्कर घोर चिन्ताकी दशामें अपने झोपड़ेके सामने टहल रहे थे। उनके सामने अब यह समस्या थी कि ज्ञानशङ्करसे कैसे मेल हो। वह जितनाही विचार करते थे उतना ही अपनेको दोषी पाते थे। यह सब मेरी ही करनी है। जब असामियोंसे उनकी लड़ाई ठनी हुई थी, मुझे उचित न था कि असामियोंका पक्ष ग्रहण करता। माना कि ज्ञानशङ्करका अत्याचार था। ऐसी दशामें मुझे अलग रहना चाहिये था या उन्हें भ्रातृवत् समझना चाहिये था। यह तो मुझसे न हुआ। उल्टे उन्हींसे लड़ बैठा। माना कि उनके और मेरे सिद्धान्तोंमें घोर अन्तर है। लेकिन सिद्धान्त-विरोध परस्पर भ्रातृप्रेमको क्यों दूषित करे? यह भी माना कि जबसे मैं आया हूँ, उन्होंने मेरी अवहेलना ही की है, यहाँतक कि मुझे पत्नीप्रेमसे भी वंचित कर दिया, पर मैंने भी तो कभी उनसे मिले रहनेकी, उनके कटु व्यवहारको भूल जानेकी, उनकी अप्रिय बातोंको सह लेनेकी चेष्टा नहीं की। मुझसे एक अंगुल खसके तो मैं उनसे हाथभर हट गया। सिद्धान्त-प्रियताका यह आशय नहीं है कि आत्मीयजनोंसे विरोध कर लिया जाय। सिद्धान्तोंको मनुष्योंसे अधिक मान्य समझना अक्षम्य है। उनके हृदयको अपनी तरफसे साफ करनेका यह अच्छा अवसर है।

संध्या हो गयी थी। ज्ञानशङ्कर अपने सुरम्य बँगलेके सामने मौलवी ईजाद हुसेनके साथ बैठे बातें कर रहे थे। मौलवी साहबने सरकारी नौकरीमें मनोनुकूल सफलता न देख इस्तीफा दे दिया था और अब कुछ दिनोंसे जातिसेवामें लीन हो गये थे। उन्होंने "अंजुमन इत्तहाद" नामकी एक संस्था खोल ली थी, जिसका उद्देश्य हिन्दू-मुसलमानोंमें परस्पर प्रेम और मैत्री बढ़ाना था। यह संस्था चन्देसे चलती थी और इसी हेतुसे सैयद साहब यहाँ पधारे थे।

ज्ञानशङ्करने कहा, मुझे दिन-दिन तजरबा हो रहा है, कि

जमींदारी करनेके लिये बड़ी सख्तीकी जरूरत है। जमींदार नजर-नजराना, हरी-बेगार, डाँड़-बाँध, सब कुछ छोड़ सकता है; लेकिन लगान तो नहीं छोड़ सकता। वह भी अब बगैर अदालती कार्रवाईके नहीं वसूल होता।

ईजाद हुसेन—जनाब बजा फ़रमाते हैं, लेकिन गुलामने ऐसे रईसोंको भी देखा है जो कभी अदालतके दरवाजेतक न गये। जहाँ किसी असामीने सरकशी की, उसकी मरम्मत कर दी और लुत्फ़ यह कि कभी डण्डे या हण्टरसे काम नहीं लिया। गरमीमें झुलसती हुई धूप और जाड़ेमें बर्फ़का-सा ठण्डा पानी। बस,इसी लटकेसे उनकी सारी मालगुजारी वसूल हो जाती है। मई और जूनकी धूप जरा देर सिरपर लगी और असामीने कमर ढीली की।

ज्ञानशङ्कर—मालूम नहीं, ऐसे असामी कहाँ हैं। यहाँ तो ऐसे बदमाशोंसे पाला पड़ा है, जो बात-बातपर अदालतका रास्ता लेते हैं। मेरे ही मौजेको देखिये, कैसा तूफ़ान उठ गया और महज चरावरकी रोक देनेके पीछे।

इतनेमें डाक्टर इर्फ़ान अली बार-एट-लाकी मोटर आ पहुँची। ज्ञानशङ्करने उनका स्वागत किया।

डाक्टर—अब की आपने बड़ा इन्तजार कराया। मैं तो आपसे मिलनेके लिये गोरखपूर आनेवाला था।

ज्ञानशङ्कर—रियास तका काम इतना फैला हुआ है, कि कितना ही समेटूँ, नहीं सिमटता।

डाक्टर—आपको मालूम तो होगा, यहाँ युनिवर्सिटीमें इकनोमिक्सकी जगह खाली है। अब तो आप सिण्डिकेटमें आ गये हैं।

ज्ञानशङ्कर—जी हाँ, सिण्डिकेटमें तो लोगोंने ज़बरदस्ती धर घसीटा, लेकिन यहाँ रियासतके कामोंसे फुर्सत कहाँ कि इधर तवज्जह करूँ ? कुछ काग़ज़ात गये थे, लेकिन मुझे उनके देखनेका मौका ही न मिला।

डाक्टर—डाक्टर दासके चले जानेसे यह जगह खाली हो गयी है और मैं इसका उमेदवार हूँ।

ज्ञानशङ्करने आश्चर्य्यसे कहा, आप!

डाक्टर—जी हाँ, अब मैंने यही फैसला किया है। मेरी तबीयत रोज-ब-रोज वकालतसे बेजार होती जाती है।

ज्ञानशङ्कर—आखिर क्यों? आपकी वकालत तो ३-४ हजार-से कमकी नहीं। हुक्कामकी खुशामद तो नहीं खलती? या कांसेन्स (आत्मा) का खयाल है?

डाक्टर—जी नहीं, सिर्फ इसलिये कि इस पेशेमें इन्सानकी तबीयत बेजा जरपरस्तीकी तरफ मायल हो जाती है। कोई वकील कितना ही हकशिनास क्यों न हो, उसे हमदरदी और इन्सानियतसे वह खुशी नहीं होती जो एक शरीफ आदमीको होनी चाहिये। इसके खिलाफ आपसकी लड़ाइयों और दग़ा-बाजियोंसे एक खास दिलचस्पी हो जाती है। वह एक दूसरी ही दुनियाँमें पहुँच जाता है, जो लतीफ जजबातसे खाली है। मैं महीनोंसे इसी कशमकशमें पड़ा हुआ हूँ और अब यही इरादा है कि जितनी जल्द मुमकिन हो इस पेशेको सलाम करूँ।

यही बातें हो रही थीं कि फैजू और कर्तारसिंहने सामने आकर सलाम किया। ज्ञानशङ्करने पूछा, कहो, ख़ैरियत तो है?

फैजू—हजूर खैरियत क्या कहें! रातको किसीने खाँसाहब-को मार डाला।

ईजाद हुसेन और इर्फान अली चौंक पड़े, लेकिन ज्ञानशङ्कर लेशमात्र भी विचलित न हुए, मानों उन्हें यह बात पहलेसेही मालूम थी। बोले, तुम लोग कहाँ थे? कहीं सैर-सपाट करने चल दिये थे या अफीमकी पिनकमें पड़े हुए थे?

फैजू—हजूर, थे तो चौपालमेंही, पर किसीको क्या खबर यह वारदात होगी।

ज्ञान—क्यों, खबर क्यों न थी? जो आदमी साँपको पैरोंसे

कुचल रहा हो उसे यह मालूम होना चाहिये कि साँपके दाँत जहरीले होते हैं। ज़मींदारी करना साँपको नचाना है। वह सँपेरा अनाड़ी है जो साँपको काटनेका मौका दे। खैर कातिलका कुछ पता चला ?

फैजू जी हाँ, वही मनोहर अहीर है। उसने सवेरे ही थानेमें जाकर एकबाल कर दिया। दोपहरको थानेदार साहब आ गये और तहकीकात कर रहे हैं। खाँ साहबका तार हजूरको मिल गया था ? जिस दिन खाँसाहबने चरावरको रोकनेका हुक्म दिया, उसी दिन गाँववालोंमें एका हो गया। खाँसाहबने घबराकर हजूरको तार दिया। मैं ३ बजे तारघरसे लौटा तो गाँवमें मुकदमा लड़नेके लिये चन्देका गुट्ट हो रहा था। रातको यह वारदात हो गयी।

अकस्मात् प्रेमशङ्कर लाला प्रभाशङ्करके साथ आ गये। ज्ञानशङ्करको देखते ही प्रेमशङ्कर टूटकर उनसे गले मिले और पूछा, कब आये ? सब कुशल है न ?

ज्ञानशङ्करने रुखाईसे उत्तर दिया, कुशलका हाल इन आदमियोंसे पूछिये, जो अभी लखनपूरसे आये हैं। गाँववालोंने गौसखाँका काम तमाम कर दिया।

प्रेमशङ्कर स्तम्भित हो गये, मुँहसे निकला, अरे ! यह कब ?

ज्ञान—आज ही रातको।

प्रेम—बात क्या है ?

ज्ञान—गाँववालोंकी बदमाशी और सरकशीके सिवा और क्या बात हो सकती है। मैंने चरावरको रोकनेका हुक्म दिया था। वहाँ एक बाग लगानेका विचार था। बस, इतना बहाना पाकर सब खून खच्चरपर उद्यत हो गये।

प्रेम—कातिलका कुछ पता चला ?

ज्ञान—अभी तो मनोहरने थानेमें जाकर एकबाल किया है।

प्रेम—मनोहर तो बड़ा सीधा, गम्भीर पुरुष है।

ज्ञान—(व्यङ्गसे) जी हाँ, देवता था।

डाक्टर साहबने मार्मिक भावसे देखकर कहा, यह किसी एक आदमीका फैल हगिज नहीं है।

ज्ञान—यही मेरा भी खयाल है। मनोहरकी इतनी मजाल नहीं है कि वह अकेला यह काम कर सके। निस्सन्देह सारा गाँव मिला हुआ है। मनोहरको सबने तबेलेका बन्दर बना रक्खा है। देखिये, थानेदारकी तहकीकातका क्या नतीजा होता है। कुछ भी हो, अब मैं इस मौजेको वीरान करके ही छोड़ूँगा। क्यों फैजू, तुम्हारा क्या खयाल है? मनोहर अकेले यह काम कर सकता है?

फैजू—नहीं हजूर, साठ बरसका बुड्ढा भला क्या खाकर हिम्मत करता! और कोई चाहे उसका मददगार न हो, लेकिन उसका लड़का तो जरूर ही साथ रहा होगा।

कर्तार—वह बुड्ढा है तो क्या, बड़े जीवटका आदमी है। उसके सिवा गाँवमें किसीका इतना कलेजा नहीं है।

ज्ञान—तुम गँवार आदमी हो, इन बातोंको क्या समझो! तुम्हें तो भंगका गोला चाहिये। डाक्टर साहब, मुआमलेमें मुद्दई तो सरकार होगी, लेकिन आप भी मेरी तरफसे पैरवी कीजियेगा। मैंने फैसला कर लिया है, कि गाँवके किसी बालिग आदमीको बेदाग न छोड़ूँगा।

प्रेमशङ्करने दबी जबानसे कहा, अगर तुम्हें विश्वास हो कि यह एक आदमीका काम है तो सारे गाँवको समेटना उचित नहीं। ऐसा न हो कि गेहूँके साथ घुन भी पिस जाय।

ज्ञानशङ्कर क्रुद्ध होकर बोले, बहुत अच्छा हो, अगर आप इस विषयमें अपने सत्य और न्यायके नियमोंका स्वांग न रचें। यह उन्हींकी बर्कत है कि आज इन दुष्टोंको इतना साहस हुआ है। आप मुझे साफ-साफ कहनेपर मजबूर कर रहे हैं। ये सब आपके ही बलपर कूद रहे हैं। आपने प्रत्येक अवसरपर मेरे

विपक्षमें उनकी सहायता की है; उनसे भाईचारा किया है और उनके सिरपर हाथ रखनेके लिये हमेशा तैयार रहते हैं। आपके इसी भ्रातृभावने उनके सिर फिरा दिये। मेरा भय उनके दिलसे जाता रहा। आपके सिद्धान्तों और विचारोंका मैं आदर करता हूँ; लेकिन आप कड़वी नीमको दूधसे सींच रहे हैं और आशा करते हैं कि मीठे फल लगेंगे। ऐसे कुपात्रोंके साथ इन ऊँचे नियमोंका व्यवहार करना दीवानेके हाथमें मशाल दे देना है।

प्रेमशङ्करने फिर जबान न खोली और न सिर उठाया। लाला प्रभाशङ्करको ये बातें ऐसी बुरी लगीं कि वह तुरन्त उठकर चले गये। लेकिन प्रेमशङ्कर आत्मपरीक्षामें मग्न मूर्त्तिवत् बैठे रहे। दीन देहातियोंके साथ साधारण सज्जनताका बर्ताव करनेका परिणाम ऐसा भयङ्कर होगा, यह एक बिलकुल नया अनुभव था। केवल एक आदमीकी जान ही नहीं गयी; वरन् और भी कितने ही प्राणोंके बलिदान होनेकी आशङ्का थी। भगवन् उन गरीबोंपर दया करो। मैंने सच्चे हृदयसे उनकी सेवा नहीं की। द्वेषका भाव मुझे प्रेरित करता रहा। मैं ज्ञानशङ्करको नीचा दिखाना चाहता था। यह समस्या उसी द्वेषभावका दण्ड है। क्या एक लखनपूर ही अपने जमींदारके अत्याचारोंसे पीड़ित था? ऐसा कौनसा इलाका है, जो जमींदारके हाथों रक्तके आँसू न बहा रहा हो। तो लखनपूरवालोंके ही प्रति मेरी सहानुभूति क्यों इतनी प्रचण्ड हो गयी और फिर ऐसे अत्याचार क्या इससे पहले न होते थे? यह तो आये दिन ही होता रहता था; लेकिन कभी असामियोंको चूँ करनेकी हिम्मत न पड़ती थी। इस बार वह क्यों मार-काटपर उद्यत हो गये? इन शङ्काओंका उन्हें एक ही उत्तर मिलता था और वही उस उत्तरदायित्वके भारको और गुरुतर बना देता था। हाय! मैंने कितने प्राणोंको अपनी ईर्षाग्निके कुण्डमें झोंक दिया! अब मेरा कर्त्तव्य क्या है? क्या यह आग लगाकर दूरसे खड़ा तमाशा देखूँ? यह सर्वथा निन्द्य है। अब तो इन अभागों-

की यथायोग्य सहायता करनी ही पड़ेगी, चाहे ज्ञानशङ्करको कितना ही बुरा लगे। इसके सिवा मेरे लिये कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

प्रेमशङ्कर इन्हीं विचारोंमें डूबे हुए थे कि मायाशङ्करने आकर कहा, चाचाजी, अम्मा कहती हैं अब तो बहुत देर हो गयी, हाजीपूर कैसे जाइयेगा, यहीं भोजन कर लीजिये और आप यहीं रह जाइये।

प्रेमशङ्कर शोकमय विचारोंकी तरङ्गमें भूल गये थे कि अभी मुझे हाजीगञ्ज लौटना है। मायाको प्यार करके बोले, नहीं बेटा, मैं चला जाऊँगा, अभी ज्यादा रात नहीं गयी है। यहाँ रह जाऊँ, तो वहाँ बड़ा हर्ज होगा।

यह कहकर वह उठ खड़े हुए, ज्ञानशङ्करकी ओर करुण नेत्रोंसे देखा और बिना कुछ कहे ही चले गये। ज्ञानशङ्करने उनकी तरफ ताका भी नहीं।

उनके जानेके बाद डाक्टर महोदय बोले, मैं तो इनकी बड़ी तारीफ सुना करता था, पर पहली ही मुलाकातमें तबीयत आसूदा हो गयी। कुछ क्रुद्धसे मालूम होते हैं।

ज्ञान—बड़े भाई हैं, उनकी शानमें मैं क्या कहूँ! कुछ दिनों अमेरिका क्या रह आये हैं गोया हक और इन्साफ़का ठेका ले लिया है, हालाँ कि अभीतक अमेरिकामें भी यह खयालात अमलके मैदानसे कोसों दूर है। दुनियामें इन खयालोंके चर्चे हमेशा रहे हैं और हमेशा रहेंगे, देखना सिर्फ यह है कि वह कहाँतक अमलमें लाये जा सकते हैं। मैं खुद इन उसूलोंका कायल हूँ, पर मेरे खयालमें अभी बहुत दिनोंतक इस जमीनमें यह बीज सरसब्ज नहीं हो सकता है।

इसके बाद कुछ देरतक इस दुर्घटनाके सम्बन्धमें बातचीत होती रही। जब डाक्टर साहब और इजाद हुसेन चले गये तब ज्ञानशङ्कर घरमें जाकर बोले, देखा, भाईसाहबने लखनपूरमें क्या गुल खिलाया। अभी खबर आयी है, कि गौसखाँको लोगोंने मार डाला।

दोनों स्त्रियाँ हक्कीबक्की होकर एक दूसरीका मुँह ताकने लगीं।

ज्ञानशङ्करने फिर कहा, यह बरसोंसे वहाँ जा-जाकर असामियोंसे न जाने क्या कहते थे,न जाने क्या सिखाते थे, जिसका यह नतीजा निकला है। मैंने जब इनके वहाँ आने-जानेकी खबर पायी तो उसी वक्त मेरे कान खड़े हुए और मैंने इनसे विनय की थी कि आप गँवारोंको बहुत सिर न चढ़ायें। उन्होंने मुझे वचन भी दिया कि उनसे कोई सम्बन्ध न रक्खूँगा। लेकिन अपने आगे किसीको समझते ही नहीं। मुझे भय है, कि कहीं इस मामलेमें वह भी न फँस जायँ। पुलिसवाले एक ही कट्टर होते हैं। वह किसी-न-किसी मोटे असामीको जरूर फाँसेंगे। गाँववालोंपर जहाँ जरा सख्ती की कि सबके सब खुल पड़ेंगे और सारा अपराध भाई साहबके सिर डाल देंगे।

श्रद्धाने ज्ञानशङ्करकी ओर कातर नेत्रोंसे देखा और सिर झुका लिया। अपने मनके भावोंको प्रकट न कर सकी। विद्याने कहा, तुम जरा थानेदारके पास क्यों नहीं चले जाते? जैसे बने उन्हें राजी कर लो।

ज्ञान—हाँ, कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा, लेकिन एक छोटे आदमीकी खुशामद करना, उसके नखरे उठाना कितने अपमानकी बात है! भाई साहबको ऐसा न समझता था।

श्रद्धाने सिर झुकाये हुए सरोष स्वरसे कहा, पुलिसवाले उनपर जो अपराध लगावें, वह ऐसे आदमी नहीं हैं कि गाँववालोंको बहकाते फिरें; बल्कि अगर गाँववालोंकी नीयत उन्हें पहले मालूम हो जाती तो यह नौबत ही न आती। तुम्हें थानेदारकी खुशामद करनेकी कोई जरूरत नहीं। वह अपनी रक्षा आप कर सकते हैं।

विद्या—मैं तुम्हें बराबर समझाती आती थी कि देहातियोंसे राड़ न बढ़ाओ। बिल्ली भी भागनेकी राह नहीं पाती तो शेर हो जाती है। लेकिन तुमने कभी कान ही न दिये।

ज्ञान—कैसी बेसिर पैरकी बातें करती हो ? मैं इन टुकड़गदे किसानोंसे दबता फिरूँ ? जमींदार न हुआ कोई चरकटा हुआ ! उनकी मजाल थी कि मेरे मुकाबलेमें खड़े होते ? हाँ, जब अपने ही घरमें आग लगानेवाले मौजूद हों, तो जो कुछ न हो जाय वह थोड़ा है। मैं एक नहीं सौ बार कहूँगा, कि अगर भाई साहबने इन्हें सिर न चढ़ाया होता तो आज इनके हौसले इतने न बढ़ते।

विद्या—(दबी जबानसे) सारा शहर जिसकी पूजा करता है, उसे तुम घरमें आग लगानेवाला कहते हो ?

ज्ञान—यही लोकसम्मान तो इन सारे उपद्रवोंका कारण है।

श्रद्धा और ज्यादा न सुन सकी। उठकर अपने कमरेमें चली गयी। तब ज्ञानशङ्करने विद्यासे कहा,मुझे तो इनके फँसनेमें जरा भी सन्देह नहीं है।

विद्या—तुम अपनी ओरसे उनके बचानेमें कोई बात उठा न रखना,यह तुम्हारा धर्म है। आगे विधाताने जो लिखा है, वह तो होगा ही।

ज्ञान—भाभीकी तबीयतका कुछ और ही रङ्ग दिखाई देता है।

विद्या—तुम उनका स्वभाव जानते नहीं। वह चाहे दादाजीके सायेसे भी भागें, पर उनके नामपर जान देती हैं, हृदयमें उनकी पूजा करती हैं।

ज्ञान—इधर भी चलती हैं, उधर भी।

विद्या—इधर लोक-लाजसे चलती हैं, हृदय उधर ही है।

ज्ञान—तो फिर मुझे कोई और ही उपाय सोचना पड़ेगा।

विद्या—ईश्वरके लिये ऐसी बातें मुझसे न किया करो।

२६

श्रद्धाकी बातोंसे पहले तो ज्ञानशङ्करको कुछ शंका हुई, लेकिन विचार करनेपर यह शंका निवृत्त हो गयी ; क्योंकि इस मामलेमें प्रेमशंकरका अभियुक्त हो जाना अवश्यम्भावी था। ऐसी

अवस्थामें श्रद्धाके निबल क्रोधसे ज्ञानशङ्करको कोई हानि न हो सकती थी।

ज्ञानशङ्करने निश्चय किया कि इस विषयमें मुझे हाथ-पैर हिलानेकी कोई जरूरत नहीं है। सारी व्यवस्था मेरे इच्छानुकूल है। थानेदार स्वार्थवश इस मामलेको बढ़ायेगा, सारे गाँवको फँसानेकी चेष्टा करेगा और उसका सफल होना असंदिग्ध है। गाँवमें कितना ही एका हो, पर कोई-न-कोई मुखबिर निकल ही आयेगा। थानेदारने लखनपूरके जमींदारी दफ्तरकी जाँच पर-ताल अवश्य ही की होगी। वहाँ मेरे ऐसे दो-चार पत्र अवश्यही निकल आयँगे जिनसे गाँववालोंके साथ भाई साहबको सहानु-भूति और सदिच्छा सिद्ध हो सके। मैं अपने कई पत्रोंमें गौस-खाँको लिखा है कि भाई साहबका यह व्यवहार मुझे पसन्द नहीं। हाँ, एक बात हो सकती है। सम्भव है, कि गाँववाले रिश्वत देकर अपना गला छुड़ा लें और थानेदार अकेले मनोहरका चालान करे। लेकिन ऐसे संगीन मामलेमें थानेदारको इतना साहस नहीं हो सकता। वह यथासाध्य इस घटनाको महत्वपूर्ण सिद्ध करेगा। भाई साहबसे अधिकारिवर्ग उनके निर्भय लोक-वादके कारण पहलेसे ही बदगुमान हो रहे हैं। सब-इन्सपेक्टर उन्हें इस षड्यन्त्रका प्रेरक साबित करके अपना रङ्ग जरूर जमा-येगा। अभियोग सफल हो गया तो उसकी तरक्की भी होगी, पारितोषिक भी मिलेगा। गाँववाले कोई बड़ी रकम देनेकी सामर्थ्य नहीं रखते और थानेदार छोटी रकमके लिये अपनी आशाओंको मिट्टीमें न मिलायेगा। बन्धुविरोधका विचार मिथ्या है। संसारमें सब अपने ही लिये जीते और मरते हैं, भावु-कताके फेरमें पड़कर अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारना हास्यजनक है।

ज्ञानशङ्करका अनुमान अक्षरशः सत्य निकला। लखनपूरके प्रायः सभी बालिग आदमियोंका चालान हुआ। बिसेसर साहको टैक्सकी धमकीने भेड़िया बना दिया। जमींदारी दफ्तरका भी

निरीक्षण हुआ। एक सप्ताह पीछे हाजीपुरमें प्रेमशङ्करकी खाना-तलाशी हुई और वह हिरासतमें ले लिये गये।

सन्ध्याका समय था। ज्ञानशङ्कर मुन्नूको साथ लिये हवा खाने जा रहे थे कि डाकृर इर्फ़ान अलीने आकर यह समाचार कहा। ज्ञानशङ्करके रायें खड़े हो गये, और आँखोंमें आँसू भर आये। एक क्षणके लिये बन्धुप्रेमने क्षुद्रभावोंको दबा दिया, लेकिन ज्योंही जमानतका प्रश्न सामने आया; यह आवेग शान्त हो गया। घरमें खबर हुई तो कुहराम मच गया। श्रद्धा मूर्च्छित हो गयी, बड़ी बहू तसल्ली देने आयीं। मुन्नू भी भीतर चला गया और माँकी गोदमें सिर रख फूट-फूटकर रोने लगा।

प्रेमशङ्कर शहरसे कुछ ऐसे अलग रहते थे कि उनका शहरके बड़े लोगोंसे बहुत कम परिचय था। वह रईसोंसे बहुत कम मिलते-जुलते थे। कुछ विद्वज्जनोंने पत्रोंमें उनके कृषि-सम्बन्धी लेख अवश्य देखे थे और उनकी योग्यताके कायल थे; किन्तु उन्हें झक्की समझते थे। उनके सच्चे शुभचिन्तकोंमें अधिकांश कालेजोंके युवक, दफ्तरोंके कर्मचारी या देहातोंके लोग थे। उनके हिरासतमें आनेकी खबर पाते ही हजारों आदमी एकत्र हो गये और प्रेमशङ्करके पीछे-पीछे पुलिश-स्टेशनतक गये; लकिन उनमें कोई भी ऐसा न था, जो जमानत देनेका प्रयत्न कर सकता।

लाला प्रभाशङ्करने सुना तो उन्मत्तकी भाँति दौड़े हुए ज्ञानशङ्करके पास जाकर बोले, बेटा, तुमने तो सुना ही होगा, कुल-मर्यादा मिट्टीमें मिल गयी। (रोकर) भैयाकी आत्माको इस समय कितना दुःख हो रहा होगा। जिस मान-प्रतिष्ठाके लिये हमने जायदादें बर्बाद कर दीं, वह आज नष्ट हो गयी। हाय! भैया जीवनपर्यन्त कभी अदालतके द्वारपर नहीं गये। घरमें चोरियाँ हुईं, लेकिन कभी थानेमें इत्तला तक न की कि तहकीकात होगी और पुलिस दरवाजेपर आयेगी। आज उन्हींका प्रिय पुत्र·····क्यों बेटा, जमानत न होगी।

ज्ञानशङ्कर इस कातर अधीरतापर रुष्ट होकर बोले, मालूम नहीं, हाकिमोंकी मर्जीपर है।

प्रभा—तो जाकर हाकिमोंसे मिलते क्यों नहीं? कुछ तुम्हें भी अपनी इज्जतकी फिक्र है या नहीं?

ज्ञान—कहना बहुत आसान है, करना कठिन है।

प्रभा—भैया, कैसी बातें करते हो? यहाँके हाकिमोंमें तुम्हारा कितना मान है? बड़े साहब तक तुम्हारी कितनी खातिर करते हैं? यह लोग किस दिन काम आयेंगे? क्या इसके लिये कोई दूसरा अवसर आयेगा?

ज्ञान—अगर आपका यह आशय है कि मैं जाकर हाकिमोंकी खुशामद करूँ, उनसे रियायतकी याचना करूँ तो यह मुझसे नहीं हो सकता। मैं उनके खोदे हुए गढ़ेमें नहीं गिरना चाहता। मैं किस दावेपर उनकी जमानत कर सकता हूँ, जब मैं जानता हूँ कि वह अपनी टेक नहीं छोड़ेंगे, और मुझे भी अपने साथ ले डूबेंगे?

प्रभाशङ्करने लम्बी साँस भरकर कहा, हा भगवन्! यह भाई-भाइयोंका हाल है! मुझे मालूम न था कि तुम्हारा हृदय इतना कठोर है! तुम्हारा सगा भाई आफतमें पड़ा हुआ है और तुम्हारा कलेजा जरा भी नहीं पसीजता। खैर, कोई चिन्ता नहीं; अगर मेरा सामर्थ्यसे बाहर नहीं है, तो मेरे भाईका प्यारा पुत्र मेरे सामने यों अपमानित न होने पायेगा।

ज्ञानशङ्करको अपने चचाकी दयार्द्रतापर क्रोध आ रहा था। वह समझते थे कि केवल मेरी अवहेला करनेके लिये यह इतने प्रगल्भ हो रहे हैं। इनकी इच्छा है कि मुझे भी अधिकारियोंकी दृष्टिमें गिरा दें। लेकिन प्रभाशङ्कर बनावटी भावोंके मनुष्य न थे। वह कुल-प्रतिष्ठापर अपने प्राणतक समर्पण कर सकते थे। उनमें वह गौरवप्रेम था जो स्वयं उपवास करके आतिथ्य-सत्कारको अपना सौभाग्य समझता था, और जो अब, हा शोक! इस

देशसे लुप्त हो गया है। धन उनके विचारमें केवल मान-मर्य्यादकी रक्षाके लिये था, भोग-विलास और इन्द्रिय-सेवाके लिये नहीं। उन्होंने तुरन्त जाकर कपड़े पहने, चुग़ा पहना, अमामा बाँधा और एक पुराने रईसके वेशमें मैजिस्ट्रेटके पास जा पहुँचे। रातके ८ बज चुके थे, इसकी ज़रा भी परवाह न की। साहबके सामने उन्होंने जितनी दीनता प्रकट की, जितने विनीत शब्दोंमें अपनी संकट-कथा सुनायी, जितनी नीच खुशामद की, जिस भक्तिसे हाथ बाँधकर खड़े हो गये, अमामा उतारकर साहबके पैरोंपर रख दिया और रोने लगे, अपने कुल-मर्य्यादकी जो गाथा गायी और उसकी राज-भक्तिके जो प्रमाण दिये, उसे एक नव-शिक्षित युवक अत्यन्त लज्जाजनक ही नहीं; बल्कि हास्यास्पद समझता। लेकिन साहब पसीज गये, जमानत ले लेनेका वादा किया; पर रात हो जानेके कारण उस वक्त कोई कार्रवाई न हो सकी। प्रभाशङ्कर यहाँसे निराश लौटे। उनकी यह इच्छा कि प्रेमशङ्कर हिरासतमें रातको न रहें, पूरी न हो सकी। रातभर चिन्तामें पड़े हुए करवटें बदलते रहे। भैयाकी आत्माको कितना कष्ट हो रहा होगा। कई बार उन्हें ऐसा धोखा हुआ कि भैया द्वारपर खड़े रो रहे हैं। हाय! बेचारे प्रेमशंकरपर क्या बीत रही होगी! तङ्ग, अन्धेरी, दुर्गन्धयुक्त कोठरीमें पड़ा होगा, आँखों-से आँसू न थमते होंगे। इस वक्त उससे कुछ न खाया गया होगा। वहाँके सिपाही और चौकीदार उसे दिक कर रहे होंगे, मालूम नहीं, पुलिसवाले उसके साथ कैसा बर्ताव कर रहे हैं। न जाने उससे क्या कहलाना चाहते हों। इस विभागमें जाकर आदमी पशु हो जाता है। मेरा दयाशंकर पहले कैसा सुशील लड़का था, जबसे पुलिसमें गया है, मिज़ाज ही और हो गया। अपनी स्त्रीतककी बात नहीं पूछता। अगर मुझपर कोई मामला आ पड़े तो मुझसे बिना रिश्वत लिये न रहे। प्रेमशंकर पुलिस-वालोंकी बातोंमें न आता होगा और वह सब-के-सब उसे

और भी कष्ट दे रहे होंगे। भैया इसपर जान देते थे, कितना प्यार करते थे और आज इसकी यह दशा!

प्रातःकाल लाला प्रभाशङ्कर फिर मैजिस्ट्रेटके बँगलेपर गये, मालूम हुआ कि साहब शिकार खेलने चले गये हैं। वहाँसे पुलिसके सुपरिन्टेन्डेन्टके पास गये। यह महाशय अभी निद्रामें मग्न थे। उनसे १० बजेके पहले भेंट होनेकी सम्भावना न थी। बेचारे यहाँसे भी निराश हुए और तीसरे पहरतक बेदाना, बेपानी, हैरान-परेशान, इधर-उधर दौड़ते रहे, कभी इस दफ्तरमें जाते, कभी उस दफ्तरमें। उन्हें आश्चर्य होता था कि दफ्तरोंके छोटे कर्मचारी क्यों इतने बेमुरौवत और निर्दय होते हैं, सीधी बात करनी तो दूर रही, खोटी-खरी सुनानेमें भी सङ्कोच नहीं करते। अन्तमें ४ बजे मैजिस्ट्रेटने जमानत मंजूर की, लेकिन हजार-दो-हजारकी नहीं, पूरे १० हजारकी, और वह भी नक्द। प्रभाशङ्कर का दिल बैठ गया। एक बड़ी साँस लेकर वहाँसे उठे और धीरे-धीरे घर चले, मानों शरीर निर्जीव हो गया है। घर आकर वह चारपाईपर गिर पड़े और सोचने लगे १० हजारका प्रबन्ध कैसे करूँ? इतने रुपये मुझे विश्वासपर कौन देगा? तो क्या जायदाद रेहन रख दूँ? हाँ, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। मगर घरवाले किसी तरह राजी न होंगे, घरमें लड़ाई ठन जायगी। वह बहुत देरतक इसी हैस-बैसमें पड़े रहे, भोजनका समय आ पहुँचा। बड़ी बहू बुलाने आयीं। प्रभाशङ्करने उनकी ओर विनीत भावसे देखकर कहा, मुझे बिलकुल भूख नहीं है।

बड़ी बहू कैसी भूख है जो लगती ही नहीं? कल रात नहीं खाया, दिनको नहीं खाया, क्या इस चिन्तामें प्राण दे दोगे? जिन्हें चिन्ता होना चाहिये, जो उनका हिस्सा उड़ाते हैं उनके माथेपर तो बलतक नहीं है और तुम दाना-पानी छोड़े बैठे हो। अपने साथ घरके प्राणियोंको भी भूखों मार रहे हो। प्रभाशङ्करने सजल नेत्र होकर कहा, क्या करूँ मेरी तो भूख-प्यास बन्द-सी

हो गयी है! कैसा सुशील, कितना कोमलप्रकृति, कितना शांत-चित्त लड़का है। उसकी सूरत मेरी आँखोंके सामने फिर रही है, भोजन कैसे करूँ? विदेशमें था तो भूल गये थे, उसे खो बैठे थे, पर खोये हुए रत्नको पानेके बाद उसे चोरोंके हाथमें देखकर सब्र नहीं होता।

बड़ी बहू—लड़का तो ऐसा है कि भगवान सबको दें। बिलकुल वही लड़कपनका स्वभाव है; वही भोलापन, वही मीठी बातें, वही प्रेम, देखकर छाती फूल उठती है। घमण्ड तो छू नहीं गया। पर दाना-पानी छोड़नेसे तो काम न चलेगा, चलो, कुछ थोड़ा-सा खा लो।

प्रभाशङ्कर—१० हजार नकद जमानत माँगी गयी है।

बड़ी बहू—ज्ञानूसे कहते क्यों नहीं, कि मीठा-मीठा गप्प, कड़वा-कड़वा थू? प्रेमूका आधा नफा क्या श्रद्धाके भोजन वस्त्रोंमें ही खर्च हो जाता है?

प्रभाशङ्कर—उससे क्या कहूँ, सुने भी? वह पच्छिमी सभ्यताका मारा हुआ है, जो लड़केको बालिग होते ही माता-पितासे अलग कर देती है। उसने वह शिक्षा पायी है जिसका मूल तत्व स्वार्थ है। उसमें अब दया, विनय, सौजन्य कुछ भी न रहा। वह अब केवल अपनी इच्छाओंका, इन्द्रियोंका दास है।

बड़ी बहू—तो तुम इतने रुपयोंका क्या बन्दोबस्त करोगे?

प्रभाशङ्कर—क्या कहूँ, किसीसे ऋण लेना पड़ेगा।

बड़ी बहू—ऐसा जान पड़ता है कि थोड़ा-सा हिस्सा जो बचा हुआ है उसे भी अपने सामने ही ठिकाने लगा दोगे। यह तो कभी नहीं देखा कि जो रुपये एक बार लिये गये वह फिर दिये गये हों। बस, जमीनकेही माथे जाती है।

प्रभाशङ्कर—जमीन मेरी गुलाम है; मैं जमीनका गुलाम नहीं हूँ।

बड़ी बहू—मैं कर्ज न लेने दूँगी, जाने कैसा पड़े कैसा न पड़े,

अन्तमें सब बोझ तो हमारे ही सिर पड़ेगा। लड़कोंको कहीं बैठनेका ठाँव भी न रहेगा।

प्रभाशंकरने पत्नीकी ओर कठोर दृष्टिसे देखकर कहा, मैं तुमसे सलाह नहीं लेता हूँ और न तुमको इसका अधिकारी समझता हूँ, तुम उपकारको भूल जाओ, मैं नहीं भूल सकता। मेरा खून सुफेद नहीं है। लड़कोंकी तकदीरमें आराम लिखा होगा, आराम करेंगे, तकलीफ लिखी होगी, तकलीफ भोगेंगे। मैं उनकी तकदीर नहीं हूँ। आज दयाशङ्करपर कोई बात आ पड़े तो गहने बेच डालनेमें भी किसीको इनकार न होगा। मैं प्रेमू-को दयाशङ्करसे जौ भर भी कम नहीं समझता।

बड़ी बहूने फिर भोजन करनेके लिये अनुरोध किया और प्रभाशङ्कर फिर नहीं-नहीं करने लगे। अन्तमें उसने कहा, आज कद्दू के कबाब बने हैं। मैं जानती कि तुम न खाओगे तो क्यों बनवाती ?

प्रभाशङ्करकी उदासीनता लुप्त हो गयी। उत्सुक होकर बोले, किसने बनाये हैं ?

बड़ी बहू—बहूने।

प्रभा—अच्छा, तो थाली परसाओ, भूख तो नहीं है, पर दो-चार कौर खा ही लूँगा।

भोजनके पश्चात् प्रभाशङ्कर फिर उसी चिन्तामें मग्न हुए। रुपये कहाँसे आयें ? बेचारे प्रेमशङ्करको आज फिर हिरासतमें रात काटनी पड़ी। बड़ी बहूने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि मैं कर्ज न लेने दूँगी और यहाँ कर्जके सिवा और कोई तदबीर ही न थी। आज लालाजी फिर सारी रात जागते रहे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि घरवाले चाहे जितना विरोध करें; पर मैं कर्तव्य अवश्य पूरा करूँगा। भोर होते ही वह सेठ दीनानाथके पास जा पहुँचे और अपनी विपत्ति कथा कह सुनायी। सेठजी-से उनका पुराना व्यवहार था। उन्हींकी बदौलत सेठजी जमींदार

हो गये थे। मामला करनेपर राजी हो गये। लिखा-पढ़ी हुई और १० बजते-बजते प्रभाशंकरके हाथोंमें १० हजारकी थैली आ गयी। वह ऐसे प्रसन्न थे मानों कहीं पड़ा हुआ धन मिल गया हो। गद्‌गद् होकर बोले, सेठजी, किन शब्दोंमें आपको धन्यवाद दूँ, आपने मेरे कुलकी मर्यादा रख ली। भैयाकी आत्मा स्वर्गमें आपका यश गायेगी।

यहाँसे वह सीधे कचहरी गये और जमानतके रुपये दाखिल कर दिये। इस समय उनका हृदय ऐसा प्रफुल्लित था जैसे कोई बालक मेला देखने जा रहा हो। इस कल्पनासे उनका कलेजा उछला पड़ता था, कि भैया मेरी भक्तिपर कितने मुग्ध हो रहे होंगे।

११ बजेका समय था। मैजिस्ट्रेटके इजलासपर लखनपूरके अभियुक्त हाथोंमें हथकड़ियाँ पहने खड़े थे। शहरके सहस्रों मनुष्य इन विचित्र जीवधारियोंको देखनेके लिये एकत्र हो गये थे। सभी मनोहरको एक निगाह देखनेके लिये उत्सुक हो रहे थे। कोई उसे धिक्कारता था, कोई कहता था अच्छा किया। अत्याचारियोंके साथ ऐसा ही करना चाहिये। सामने एक वृक्षके नीचे बिलासी मन मारे बैठी हुई थी। बलराजके चेहरेपर निर्भयता झलक रही थी, डपटसिंह और दुखरन भगत चिन्तित दीख पड़ते थे। कादिरखाँ धैर्य्यकी मूर्त्ति बने हुए थे; लेकिन मनोहर लज्जा और पश्चात्तापसे उद्विग्न हो रहा था। वह अपने साथियोंसे आँखें न मिला सकता था। मेरी ही बदौलत गाँवपर यह आफत आयी है, यह खयाल उसके चित्तसे एक क्षणके लिये भी न उतरता था। अभियुक्तोंसे जरा हटकर बिसेसर साह खड़े थे—ग्लानिकी सजीव मूर्त्ति बने। पुलिसके कर्मचारी उन्हें इस प्रकार घेरे खड़े थे, जैसे किसी मदारीको बालकवृन्द घेरे रहते हैं। सबसे पीछे प्रेमशङ्कर थे, शान्त, गंभीर, और अदम्य। मैजिस्ट्रेटने सूचना दी—प्रेमशङ्कर जमानतपर रिहा किये गये।

प्रेमशङ्करने सामने आकर कहा, मैं इस दया-दृष्टिके लिये आपका अनुगृहीत हूँ, लेकिन जब मेरे ये निरपराध भाई बेड़ियाँ पहने खड़े हैं, तो मैं उनका साथ छोड़ना उचित नहीं समझता।

अदालतमें हजारों ही आदमी खड़े थे। सब लोग प्रेमशङ्करको विस्मित होकर देखने लगे। प्रभाशङ्कर करुणासे गद्गद् होकर बोले, बेटा, मुझपर दया करो, कुछ मेरी दौड़-धूप, कुछ अपनी कुल-मर्य्याद और कुछ अपने सम्बन्धियोंके शोक-विलापका ध्यान करो। तुम्हारे इस निश्चयसे मेरा हृदय फटा जाता है।

प्रेमशङ्करने आँखोंमें आँसू भरे हुए कहा, चाचाजी, मैं आपके पितृवत् प्रेम और सदिच्छाका हृदयसे अनुगृहीत हूँ। मुझे आज ज्ञात हुआ कि मानव-हृदय कितना पवित्र, कितना, उदार कितना वात्सल्यमय हो सकता है। पर मेरा साथ छूटनेसे इन बेचारों-की हिम्मत टूट जायेगी, ये सब हताश हो जायंगे; इसलिये मेरा इनके साथ रहना परमावश्यक है, मुझे यहाँ कोई कष्ट नहीं है। मैं परमात्माको धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे इन दीनों-को तसकीन और तसल्ली देनेका अवसर प्रदान किया। मेरी आपसे एक और विनती है। मेरे लिये वकीलकी जरूरत नहीं है। मैं अपनी निर्दोषिता स्वयं सिद्ध कर सकता हूँ। हाँ, यदि हो सके तो आप इन बेजबानोंके लिये कोई वकील ठीक कर लीजि-येगा, नहीं तो संभव है कि इनके ऊपर अन्याय हो जाये।

लाला प्रभाशङ्कर हतोत्साह होकर इजलासके कमरेसे बाहर निकल आये।

३०

इस मुकदमेने सारे शहरमें हलचल मचा दी। जहाँ देखिये, यही चर्चा थी। सभी लोग प्रेमशङ्करके आत्म-बलिदानकी प्रशंसा सौ-सौ मुँहसे कर रहे थे।

यद्यपि प्रेमशङ्करने स्पष्ट कह दिया था कि मेरे लिये किसी वकीलकी जरूरत नहीं है; पर लाला प्रभाशङ्करका जी न माना।

उन्हें भय था कि वकीलके बिना काम बिगड़ जायेगा। नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। कहीं मामला बिगड़ गया तो लोग यही कहेंगे कि लोभके मारे वकील नहीं किया, उसीका फल है। अपने मनमें भी यही पछतावा होगा। अतएव वह सारे शहरके नामी वकीलोंके पास गये। लेकिन कोई भी इस मुकदमेकी पैरवी करनेपर तैयार न हुआ। किसीने कहा, मुझे अवकाश नहीं है, किसीने कोई और ही बहाना करके टाल दिया। सबको विश्वास था कि अधिकारिवर्ग प्रेमशङ्करसे कुपित हो रहे हैं, उनकी वकालत करना स्वार्थ-नीतिके विरुद्ध है। प्रभाशङ्करका यह प्रयास सफल न हुआ तो उन्होंने अन्य अभियुक्तोंके लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। उनकी सहानुभूति अपने परिवारतक ही सीमित थी।

अभियोग तैयार हो गया और मैजिस्ट्रेटके इजलासमें पेशियाँ होने लगीं। थानेदारका बयान हुआ, फैजूका बयान हुआ, तहसीलदार, चपरासियों और चौकीदारोंके इजहार लिये गये। आठवें दिन ज्ञानशङ्कर इजलासके सामने आकर खड़े हुए। प्रभाशङ्करको ऐसा दुःख हुआ कि वह कमरेके बाहर चले गये और एक वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगे। सगे भाइयोंमें यह वैमनस्य! पुलिसका पक्ष सिद्ध करनेके लिये एक भाई दूसरे भाईके विरुद्ध साथी बने! दर्शकोंको भी कौतूहल हो रहा था कि देखें इनका क्या बयान होता है। सब टकटकी लगाये उनकी ओर ताक रहे थे। पुलिसको विश्वास था कि इनका बयान प्रेमशङ्करके लिये ब्रह्मफाँस बन जायगा; लेकिन उनको और उनसे अधिक दर्शकोंको कितना विस्मय हुआ जब ज्ञानशङ्करने लखनपूरवालोंपर अपने दिलका बुखार निकाला, प्रेमशङ्करका नामतक न लिया।

सरकारी वकीलने पूछा, आपको मालूम है, कि प्रेमशङ्कर उस गाँवमें अक्सर आया-जाया करते थे।

ज्ञान—उनका उस गाँवमें आधा हिस्सा है।

वकील—आप जानते हैं कि जब इन्स्पेक्टर जेनरल पुलिस-का दौरा हुआ था तब प्रेमशङ्करने लखनपूरवालोंकी बेगार बन्द करनेकी कोशिश की थी और तहसीलदारसे लड़नेपर आमादा हो गये थे ?

ज्ञान—मुझे इसकी खबर नहीं।

वकील—आप यह तो जानते ही हैं कि जब आपने बेशी लगानका दावा किया था तब प्रेमशङ्करने गाँववालोंको ५००) मुकदमेकी पैरवी करनेके लिये दिये थे ?

ज्ञान—इस विषयमें मुझे कुछ नहीं मालूम है।

ज्ञानशङ्करकी गवाही हो गयी। सरकारी वकीलका मुँह लटक गया। लेकिन दर्शकगण एक स्वरसे कहने लगे, "भाई फिर भी भाई ही है, चाहे एक दूसरेके खूनका प्यासा ही क्यों न हो।"

इसके बाद मिस्टर ज्वालासिंह इजलासपर आये। उन्होंने कहा, मैं यहाँ कई सालतक हाकिम बना रहा। लखनपूर मेरे ही इलाकेमें था। कई बार वहाँ दौरा करने गया। याद नहीं आता कि वहाँ गाँववालोंसे रसद या बेगारके बारेमें उससे ज्यादा झंझट हुआ हो जितना दूसरे गाँवोंमें होता है। मेरे इजलासमें एक बार बाबू ज्ञानशङ्करने इजाफा लगानका दावा किया था, लेकिन मैंने उसे खारिज कर दिया था।

सरकारी वकील—आपको मालूम है, कि उस मामलेकी पैरवीके लिये प्रेमशङ्करने लखनपूरवालोंको ५००) दिये थे ?

ज्वालासिंह—मालूम है। लेकिन जहाँतक मैं समझता था, उनको यह रुपये किसी दूसरे आदमीने गाँववालोंकी मददके लिये दिये थे।

वकील—आपको यह तो मालूम ही होगा कि प्रेमशङ्करकी उस गाँवमें बहुत आमदरफ्त रहती थी ?

ज्वाला—हाँ, वह ताऊन या दूसरी बीमारियोंके अवसरपर अक्सर वहाँ जाते थे।

यह गवाही भी पूरी हो गयी। सरकारी वकीलके सभी प्रश्न व्यर्थ सिद्ध हुए।

तब बिसेसर साह इजलासपर आये। उनका बयान बहुत विस्तृत, क्रमबद्ध और सारगर्भित था, मानों किसी उपन्यासकार-ने इस परिस्थितिकी कल्पनापूर्ण रचना की हो। सबको आश्चर्य हो रहा था कि इस अपढ़ गँवारमें इतना वाक्य-चातुर्य्य कहाँसे आ गया? उसके घटनाप्रकाशमें इतनी वास्तविकताका रङ्ग था कि उसपर विश्वास न करना कठिन था। गौसखाँके साथ गाँव-वालोंका शत्रुभाव, बेगारके अवसरोंपर उनसे हुज्जत और तक-रार, चरावरको रोक देनेपर गाँववालोंका उत्तेजित हो जाना और रातको सब आदमियोंका मिलकर गौसखाँका वध करनेकी तदबीरें सोचना, इन सभी बातोंकी अत्यन्त विशद विवेचना की गयी थी, मुख्यतः षड्यन्त्र-रचनाका वर्णन ऐसा मूर्तिमान और मार्मिक था कि उसपर चाणक्य भी मुग्ध हो जाता। रात-को नौ बजे मनोहरने आकर कादिरखाँसे कहा, बैठे क्या हो? चरावर रोक दी गयी है, चुप लगानेसे काम न चलेगा, इसका कुछ उपाय करो। कादिरखाँ चौकीपर बैठे नमाज पढ़नेके लिये वजू कर रहे थे, बोले, बैठ जाओ, अकेले हम तुम क्या बना लेंगे। जब मुसल्लम गाँवकी राय हो तभी कुछ हो सकता है, नहीं तो इसी तरह कारिन्दा हमको दबाता जायगा, एक दिन खेतसे भी बेदखल कर देगा, जाके दुखरन भगतको बुला लाओ। मनो-हर दुखरनके घर गये। मैं भी मनोहरके साथ गया। दुखरनने कहा, मेरे पैरमें काँटा लग गया है, मैं चल नहीं सकता। खाँ-साहबको यहीं बुला लाओ। मैं जाकर कादिरखाँको बुला लाया। मनोहर डपटसिंह और कल्लूको बुला लाये। कादिरखाँने कहा, हम लोग गँवार, हैं, अपने मनसे कोई बात करेंगे तो न जाने चित्त पड़े या पट, चलकर बाबू प्रेमशङ्करसे सलाह लो। डपटसिंह बोले, उनके पास जानेकी क्या जरूरत है, मैं जाकर उन्हें बुला

लाऊँगा। दूसरे दिन साँझको बाबू प्रेमशङ्कर एक्के पर सवार होकर आये। मैं दूकान बढ़ा रहा था, मनोहरने आकर कहा, चलो, बाबूसाहब आये हैं, मैं मनोहरके साथ कादिरके घर गया। प्रेमशङ्करने कहा, ज्ञानबाबू मेरे भाई हैं तो क्या, ऐसे भाईकी गर्दन काट लेनी चाहिये। कादिरने कहा, हमारी उनसे कोई दुश्मनी नहीं है, हमारा बैर तो गौसखाँसे है। इस हत्यारेने इस गाँवमें हमलोगोंका रहना मुश्किल कर दिया है, अब आप बताइये, हम क्या करें। मनोहरने कहा, यह बेइज्जती नहीं सही जाती। प्रेमशङ्कर बोले, मर्द हो करके इतना अपमान क्यों सहते हो? एक हाथमें तो काम तमाम होता है। कादिरखाँने कहा, कर तो डालें, पर सारा गाँव बँध जायेगा।

प्रेमशङ्कर बोले, ऐसी नादानी क्यों करो? सब मिलकर नाम किसी एक आदमीका ले लो, अकेले आदमीका यह काम भी नहीं है, तीन-तीन प्यादे हैं, गौसखाँ खुद बलवान आदमी है।

कादिर खाँ बोले, जो कहीं सारा गाँव फँस जाय तो? प्रेमशङ्करने कहा, ऐसा क्या अन्धेर है? वकील लोग किस मरजकी दवा हैं? इसी बीचमें मैं खाना खाने घर चला आया। प्रेमशङ्कर भी रातकोही एक्के पर लौट गये। रातको १२—१ बजे मुझे कुछ खटका हुआ, घरके चारों ओर घूमने लगा कि इतनेमें कई आदमी जाते दिखाई दिये। मैं समझ गया कि हमारे ही साथी हैं। कादिरका नाम लेकर पुकारा। कादिरने कहा, सामनेसे हट जाओ, टोंक मत मारो, चुपकेसे जाकर पड़ रहो। कादिर खाँसे अब न रहा गया। बिसेसरसाहकी ओर कठोर नेत्रोंसे देखकर कहा, 'बिसेसर' ऊपर अल्लाह है, कुछ उसका भी डर है?

सरकारी वकीलने कहा, चुप रहो, नहीं तो गवाहपर बेजा दबाव डालनेका दूसरा दफा लग जायेगा।

सन्ध्या समय ये लोग हिरासतमें बैठे हुए इधर-उधरकी बातें कर रहे थे। मनोहर अलग एक कोठरीमें रक्खा गया था।

कादिरने प्रेमशङ्करसे कहा, मालिक आप तो हक नाहक इस आफतमें फँसे, हमलोग ऐसे अभागे हैं कि जो हमारी मदद करता है, उसपर भी आँच आ जाती है। इतनी उमिर गुजर गयी, सैकड़ों पढ़े-लिखे आदमियोंको देखा, पर आपके सिवा और कोई ऐसा न मिला, जिसने हमारी गरदनपर छुरी न चलायी हो। विद्याकी सारी दुनियाँ बड़ाई करती है। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि विद्या पढ़कर आदमी और भी छली-कपटी हो जाता है। वह गरीबोंका गला रेतना सिखा देती है। आपको अल्लाहने सच्ची विद्या दी थी। उसके पीछे लोग आपके भी दुश्मन हो गये।

दुखरन—यह सब मनोहरकी करनी है। गाँवभरको डुबा दिया।

बलराज—न जाने उनके सिर कौन-सा भूत सवार हो गया? गुस्सा हमें भी आया था; लेकिन उनको तो जैसे नशा चढ़ जाय।

डपट—चरावरकी बिसात ही क्या थी, उसके पीछे यह तूफान!

कादिर—यारो! ऐसी बातें न करो, बेचारेने तुम लोगोंके लिये, तुम्हारे हककी रक्षा करनेके लिये यह सब कुछ किया। उसकी हिम्मत और जीवटकी तारीफ तो नहीं करते और उसकी बुराई करते हो! हम सबके सब कायर हैं, वही एक मर्द है।

कल्लू—बिसेसरका मति ही उल्टी हो गयी।

दुखरन—बयान क्या देता है; जैसे कोई तोता पढ़ रहा है।

डपट—क्या जाने किसके लिये इतना डरता है? कोई आगे-पीछे भी तो नहीं है।

कल्लू—अगर यहाँसे छूटा तो बच्चूके मुँहमें कालिख लगाके गाँवभरमें घुमाऊँगा।

डपट—ऐसा कंजूस है कि किसी भिखमंगेको देखता है तो छछूँदरकी तरह घरमें जाकर दबक जाता है।

कल्लू—सहुआइन उसकी भी नानी है, बिसेसर तो चाहे एक कौड़ी फेंक भी दे, वह दूकानपर रहती है तो गालियाँ छोड़ और कुछ नहीं देती, पैसेका सौदा लेने जाओ, तो धेलेका देती है। ऐसी डाँड़ी मारती कि कोई परख ही नहीं सकता।

बलराज—क्यों कादिर दादा, कालेपानी जाकर लोग खेती-बारी करते हैं न ?

कादिर—सुना है वहाँ ऊख बहुत होती है।

बलराज—तब तो चाँदी है, खूब ऊख बोयँगे।

कल्लू—लेकिन दादा तुम, चौदह बरस थोड़े ही जिओगे। तुम्हारी कबर कालेपानीमें ही बनेगी।

कादिर—हम तो लौट आना चाहते हैं, जिसमें अपनी हड्डा-वर दफन हो। वहाँ तुमलोग न जाने मिट्टीकी क्या गत करो।

दुखरन—भाई मरने-जीनेकी बात मत करो। मनाओ कि भगवान सबको जीता-जागता फिर अपने बाल बच्चोंमें ले आये।

बलराज—कहते हैं वहाँ पानी बहुत लगता है।

दुखरन—यह सब तुम्हारे बापकी करनी है। मारा, गाँव-भरका सत्यानाश कर दिया।

अकस्मात् कमरेका द्वार खुला और जेलके दारोगाने आकर कहा, बाबू प्रेमशंकर, आपके ऊपरसे सरकारने मुकदमा उठा लिया, आप बरी हो गये, आपके घर वाले बाहर खड़े हैं।

प्रेमशंकरको ग्रामीणोंके सरल वार्त्तालापमें बड़ा आनन्द आ रहा था। चौंक पड़े। ज्ञानशंकर और ज्वालासिंहके बयान उनके अनुकूल हुए थे, लेकिन यह आशय न था, कि वह इस आधारपर निर्दोष ठहराये जायँगे। वह तुरत ताड़ गये कि यह चचासाहब-की करामात है, और वास्तवमें था भी यही। प्रभाशंकरको जब वकीलोंसे कोई आशा न रही, तो उन्होंने कौशलसे काम लिया और दो ढाई हजार रुपयोंका बलिदान करके यह बरदान

पाया था। रिश्वत, खुशामद, मिथ्यालाप यह सभी उनकी दृष्टिमें हिरासतसे बचनेके लिये क्षम्य थे ?

प्रेमशंकरने जेलरसे कहा, यदि नियमोंके विरुद्ध न हो तो कम-से-कम मुझे रातभर और यहाँ रहनेकी आज्ञा दीजिये। जेलरने विस्मित होकर कहा, यह आप क्या कहते हैं ? आपका स्वागत करनेके लिये सैकड़ों आदमी बाहर खड़े हैं।

प्रेमशंकरने विचार किया, इन गरीबोंको मेरे यहाँ रहनेसे कितना ढाढ़स था। कदाचित् उन्हें आशा थी कि इनके साथ हम लोग भी बरी हो जायँगे। मेरे चले जानेसे ये सब निराश हो जायंगे। उन्हें तसल्ली देते हुए बोले, भाइयो मुझे विवश होकर तुम्हारा साथ छोड़ना पड़ रहा है, पर मेरा हृदय आप-केही साथ रहेगा। सम्भव है, बाहर जाकर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ। मैं प्रति दिन आपसे मिलता रहूँगा।

साथियोंसे बिदा होकर ज्योंही वह फाटकपर पहुँचे कि लाला प्रभाशंकरने दौड़कर उन्हें छातीसे लगा लिया। जेलके चपरासियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और इनाम माँगने लगे। प्रभाशंकरने हरएकको २) २) दिये। बग्घी चलनेही वाली थी कि बाबू ज्वालासिंह अपने मोटर-साइकिलपर आ पहुँचे और प्रेमशंकरके गले लिपट गये। प्रभाशंकर चाहते थे कि दोनों मित्रोंको अपने घर ले जायँ और उनकी दावत करें, किन्तु प्रेम-शंकरने पहले हार्जापुर जाकर फिर लौटनेका निश्चय किया। ज्योंही बग्घी बगीचेमें पहुँची, हलवाहे और माली, सब दौड़े और प्रेमशंकरके चारों ओर खड़े हो गये।

प्रेम—क्यों जी दमड़ी, जुताई हो रही है न ?

दमड़ीने लज्जित होकर कहा, मालिक, औरोंको तो नहीं कहता, पर मेरा मन काम करनेमें जरा भी नहीं लगता था। यही चिन्ता लगी रहती थी, कि आप न जाने कैसे होंगे ? (निकट आकर) भोला कल एक टोकरी अमरूद तोड़कर बेच लाया है।

भोला—दमड़ी तुमने सरकारके कानमें कुछ कहा तो ठीक न होगा। मुझे जानते हो कि नहीं? यहाँ जेहलसे नहीं डरते! जो कुछ कहना हो मुँहपर बरमला कहो।

दमड़ी तो तुम नाहक जामेसे बाहर हो गये। तुम्हें कोई कुछ थोड़ा ही कहता है?

भोला—तुमने कानाफूसी की क्यों? मेरी बात न कही होगी, किसी औरकी कही होगी? तुम कौन होते हो, किसीकी चुगली खाने वाले?

मस्ता कोरीने समझाया—भोला, तुम ख़ामख़ा झगड़ा करने लगते हो। तुमसे क्या मतलब? जिसके जीमें जो आता है, मालिकसे कहता है। तुम्हें क्यों बुरा लगता है?

भोला—चुगली खाने चले हैं, कुछ काम करें न धंधा, सारे दिन नशा खाये पड़े रहते हैं, इनका मुँह है कि दूसरोंकी शिकायत करें।

इतनेमें भवानीसिंह भी आ पहुँचे, जो मुखिया थे। यह विवाद सुना तो बोले—क्यों लड़े मरते हो यारो, क्या फिर दिन न मिलेगा! मालिकसे कुशल-क्षेम पूछना तो दूर रहा, कुछ सेवा टहल तो हो न सकी, लगे आपसमें तकरार करने।

इस सामयिक चेतावनीने सबोंको शान्त कर दिया। कोई दौड़कर झोंपड़ेमें झाड़ू लगाने लगा, किसीने पलंग डाल दिया, कोई मोढ़े निकाल लाया, कोई दौड़कर पानी लाया, कोई लालटेन जलाने लगा। भवानीसिंह अपने घरसे दूध लाये। जब तीनों सज्जन जलपान करके आरामसे बैठे तो ज्वालासिंहने कहा, इन आदमियोंसे आप क्योंकर काम लेते हैं? मुझे तो सभी निकम्मे जान पड़ते हैं।

प्रेमशङ्कर—जी नहीं, यह सब लड़ते हैं तो क्या, खूब मन लगाकर काम करते हैं। दिन भरके लिये जितना काम बता देता हूँ, उतना दोपहरतक ही कर डालते हैं।

लाला प्रभाशङ्कर जीमें डर रहे थे कि कहीं प्रेमशंकर अपने बरी हो जानेके विषयमें कुछ पूछ न बैठें। वह इस रहस्य-को गुप्त ही रखना चाहते थे। इसलिये वह ज्वालासिंहसे बातें करने लगे। जबसे इनकी बदली हो गयी थी, इन्हें शांति न नसीब हुई थी, ऊपरवाले नाराज, नीचेवाले नाराज, जमींदार नाराज, बात-बातपर जवाब तलब होते थे। एक बार मुअत्तल भी होना पड़ा था। कितना ही चाहा कि यहाँसे कहीं और भेज दिया जाऊँ; पर सफल न हुए। नौकरीसे तंग आ गये थे और अब इस्तीफा देनेका विचार कर रहे थे। प्रभाशंकरने कहा, बेटा, भूलकर भी इस्तीफा देनेका इरादा न करना, यह कोई मामूली ओहदा नहीं है। इसी ओहदेके लिये बड़े-बड़े रईसों और अमीरोंके माथे घिसे जाते हैं, और फिर भी कामना नहीं पूरी होती। यह सम्मान और अधिकार आपको और कहाँ प्राप्त हो सकता है ?

ज्वाला—लेकिन इस सम्मान और अधिकारके लिये अपनी आत्माका कितना हनन करना पड़ता है ? अगर निःस्पृह भावसे अपना काम कीजिये तो बड़े-बड़े लोग पीछे पड़ जाते हैं, अपने सिद्धान्तोंका स्वाधीनतासे पालन कीजिये, तो हाकिम लोग त्योरियाँ बदलते हैं। यहाँ उसीको सफलता होती है जो खुशा-मदी और चलता हुआ है, जिसे सिद्धान्तोंकी परवा नहीं। मैंने तो आजतक किसी सहृदय पुरुषको फलते-फूलते नहीं देखा। बस, शतरंजबाजोंकी चाँदी है। मैंने अच्छी तरह आजमा कर देख लिया। यहाँ मेरा निर्वाह नहीं है। अब तो यही विचार है कि इस्तीफा देकर इसी बगीचेमें आ बसूं और बाबू प्रेमशंकरके साथ जीवन व्यतीत करूँ, अगर इन्हें कोई आपत्ति न हो।

प्रेमशंकर—आप शौकसे आइये, लेकिन खूब दृढ़ होकर आइयेगा।

ज्वालासिंह—अगर कुछ कोर-कसर होगी, तो यहाँ पूरी

जायगी। प्रेमशंकरने अपने आदमियोंसे खेती-बारीके सम्बन्धमें कुछ बातें कीं और ८ बजते-बजते लाला प्रभाशंकरके घर चले।

३१

रातके १० बजे थे। ज्वालासिंह तो भोजन करके प्रभाशङ्करके दीवानखानेमें ही लेटे; लेकिन प्रेमशङ्करको मच्छरोंने इतना तंग किया कि नींद न आयी। कुछ देरतक तो वह पंखा झलते रहे, अन्तको जब भीतर न रहा गया तो व्याकुल हो बाहर आकर सहनमें टहलने लगे। सहनकी दूसरी ओर ज्ञानशङ्करका द्वार था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। नीरवताने प्रेमशंकरकी विचारध्वनिको गुंजित कर दिया। सोचने लगे, मेरा जीवन कितना विचित्र है! श्रद्धा जैसी देवीको पाकर भी मैं दाम्पत्य सुखसे वंचित हूं। सामने श्रद्धाका शयनगृह है; पर मैं उधर ताकनेका साहस नहीं कर सकता। वह इस समय कोई धर्मग्रन्थ पढ़ रही होगी; पर मुझे उसकी कोमल वाणी सुननेका अधिकार नहीं।

अकस्मात् उन्हें ज्ञानशङ्करके द्वारसे कोई स्त्री निकलती हुई दिखाई दी। उन्होंने समझा मजूरनी होगी, काम-धन्धेसे छुट्टी पा अपने घर जाती होगी। लेकिन नहीं, यह सिरसे पैरतक चादर ओढ़े हुए है। महरियाँ इतनी लज्जाशीला नहीं होतीं। फिर यह कौन है? चाल तो श्रद्धाकी सी है, कद भी वही है। पर इतनी रात गये, इस अन्धकारमें श्रद्धा कहाँ जायेगी? नहीं, कोई और होगी। मुझे भ्रम हो रहा है। इस रहस्यको खोलना चाहिये। यद्यपि प्रेमशङ्करको एक अपरिचित और अकेली स्त्रीके पीछे-पीछे भेदिया बनकर चलना सर्वथा अनुचित जान पड़ता था, पर इस गाँठको खोलनेकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह उसे रोक न सके।

कुछ दूरतक गलीमें चलनेके बाद वह स्त्री सड़कपर आ

पहुँची और दशाश्वमेध घाटकी ओर चली। सड़कपर लालटेनें जल रही थीं। रास्ता बन्द न था; पर बहुत कम लोग चलते दिखाई देते थे। प्रेमशङ्करको उस स्त्रीकी चालसे अब पूरा विश्वास हो गया कि वह श्रद्धा है। उनके आश्चर्यकी कोई सीमा न रही। यह इतनी रात गये इस तरफ कहाँ जाती है? उन्हें उसपर कोई सन्देह न हुआ। वे उसके पातिव्रत्यको अखण्ड और अविचल समझते थे। पर इस विश्वासने उनकी प्रश्नात्मक शंकाको और भी उत्तेजित कर दिया। उसके पीछे-पीछे चलते रहे, यहाँतक कि गंगातटकी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ आ पहुँचीं। गलीमें अन्धेरा था; पर कहीं-कहीं खिड़कियोंसे प्रकाशज्योति आ रही थी, मानों कोई सोता हुआ आदमी स्वप्न देख रहा हो। पग-पगपर साँडोंका सामना होता था। कहीं-कहीं कुत्ते भूमिपर पड़ी हुई पत्तलोंको चाट रहे थे। श्रद्धा सीढ़ियोंसे उतरकर गङ्गातटपर जा पहुँची। अब प्रेमशङ्करको भय हुआ, कहीं इसने अपने मनमें कुछ और तो नहीं ठाना है। उनका हृदय काँपने लगा। वह लपककर सीढ़ियोंसे उतरे और श्रद्धासे केवल इतनी दूर खड़े हो गये कि तनिक खटका होते ही एक छलाँगमें उसके पास जा पहुँचूँ। गङ्गा निद्रामें मग्न थीं। कहीं-कहीं जल-जन्तुओंके छपकनेकी आवाज आ जाती थी। सीढ़ियोंपर कितने ही भिक्षुक पड़े सो रहे थे। प्रेमशंकरको इस समय असह्य ग्लानि-वेदना हो रही थी। यह मेरी क्रूरताका—मेरी हृदयशून्यताका फल है। मैंने अपने सिद्धान्तप्रेम और आत्मगौरवके घमण्डमें इसके विचारोंकी अवहेलना की, इसके मनोभावोंको परोंसे कुचला, इसकी धर्मनिष्ठाको तुच्छ समझा। जब सारी बिरादरी मुझे दूधकी मक्खी समझ रही है, जब मेरे विषयमें नाना प्रकारके अपवाद फैले हुए हैं, जब मैं विधर्मी, नास्तिक और जातिच्युत समझा जा रहा हूँ, तब एक धार्मिक वृत्तिकी महिलाका मुझसे विमुख हो जाना सर्वथा

स्वाभाविक था। न जाने कितनी हृदय-वेदना, कितने आत्मिक कष्ट और मानसिक उत्तापके बाद, आज इस अबलाने ऐसा भयङ्कर संकल्प किया है।

श्रद्धा कई मिनट जलतटपर चुपचाप खड़ी रही। तब वह धीरे-धीरे पानीमें उतरी। प्रेमशङ्करने देखा, अब विलम्ब करनेका अवसर नहीं है। उन्होंने एक छलाँग मारा और अन्तिम सीढ़ीपर खड़े होकर श्रद्धाको जोरसे पकड़ लिया। श्रद्धा चौंक पड़ी, सशंक होकर बोली—कौन है, दूर हट!

प्रेमशङ्करने सदोष नेत्रोंसे देखकर कहा, मैं हूँ अभागा प्रेमशङ्कर! श्रद्धाने पतिकी ओर ध्यानसे देखा और भयभीत होकर बोली, आप—यहाँ?

प्रेमशङ्कर—हाँ, आज अदालतने मुझे बरी कर दिया। चचा-साहबके यहाँ दावत थी। भोजन करके निकला तो तुम्हें इधर आते देखा। साथ हो लिया। अब ईश्वरके लिये पानीसे निकलो। मुझपर दया करो।

श्रद्धा पानीसे निकलकर जीनेपर आयी और कर जोड़कर गङ्गाको देखती हुई बोली, माता, तुमने मेरी विनती सुन ली, किस मुँहसे तुम्हारा यश गाऊँ। इस अभागिनीको तुमने तार दिया।

प्रेम—तुम अन्धेरेमें इतनी दूर कैसे चली आयी? डर नहीं लगा?

श्रद्धा—मैं तो यहाँ कई दिनोंसे आती हूँ, डर किस बातका?

प्रेम—क्या यहाँके बदमाशोंका हाल नहीं जानतीं?

श्रद्धाने कमरसे छुरा निकाल लिया और बोली, मेरी रक्षाके लिये यह काफी है। संसारमें जब कोई सहारा नहीं होता, तो आदमी निर्भय हो जाता है।

प्रेम—घरके लोग तुम्हें यों आते देखकर अपने मनमें न जाने क्या कहते होंगे।

श्रद्धा—जो चाहे समझें, किसीके मनपर मेरा क्या बस है? पहले लोकलाजका भय था, अब वह भय नहीं रहा, उसका मर्म जान गयी। वह रेशमका जाल है, देखनेमें सुन्दर; किन्तु कितना जटिल। वह बहुधा धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म बना देता है।

प्रेमशङ्करका हृदय उछलने लगा, बोले—ईश्वर, क्या मेरा भाग्यचन्द्र फिर उदित होगा? श्रद्धा, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मेरी कितनी ही बार इच्छा हुई कि फिर अमेरिका लौट जाऊँ; किन्तु आशाका एक अत्यन्त सूक्ष्म, काल्पनिक बन्धन पैरोंमें बेड़ियोंका काम करता रहा। मैं सदैव अपने चारों ओर तुम्हारे प्रेम और सत्यव्रतको फैले हुए देखता हूँ। मेरे आत्मिक अन्धकारमें यही ज्योति दीपकका काम देती है। मैं तुम्हारी सदिच्छाओंको किसी सघन वृक्षकी भाँति अपने ऊपर छाया डालते हुए अनुभव करता हूँ। मुझे तुम्हारी अकृपामें दया, तुम्हारी निष्ठुरतामें हार्दिक स्नेह, तुम्हारी भक्तिमें अनुराग छिपा हुआ दीखता है। अब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे ही उद्धारके लिये तुम यह अनुष्ठान कर रही हो। यदि मेरा प्रेम भी निष्काम होता, तो मैं इस आत्मिक संयोगपर ही सन्तोष करता; किन्तु मैं रूप और रसका दास हूँ, इच्छाओं और वासनाओंका गुलाम, मुझे इस आत्मानुरागसे सन्तोष नहीं होता।

श्रद्धा—मेरे मनसे यह शङ्का कभी दूर नहीं होती कि आपसे मेरा मिलना अधर्म है और अधर्मसे मेरा हृदय काँप उठता है।

प्रेम—यह शङ्का कैसे शान्त होगी?

श्रद्धा—आप जानकर मुझसे क्यों पूछते हैं?

प्रेम—तुम्हारे मुँहसे सुनना चाहता हूँ।

श्रद्धा—प्रायश्चित्तसे।

प्रेम—वही प्रायश्चित्त जिसका विधान स्मृतियोंमें है?

श्रद्धा—हाँ, वही।

प्रेम—क्या तुम्हें विश्वास है कि कई नदियोंमें नहानेसे, कई लकड़ियोंके जलानेसे, घृणित वस्तुओंके खानेसे, ब्राह्मणोंके खिलानेसे मेरी अपवित्रता जाती रहेगी? खेद है, कि तुम इतनी विवेकशील होकर इतनी मिथ्यावादिनी हो।

श्रद्धाका एक हाथ प्रेमशङ्करके हाथमें था। यह कथन सुनते ही उसने हाथ खींच लिया और दोनों अंगूठोंसे दोनों कान बन्द करते हुए बोली, ईश्वरके लिये मेरे सामने शास्त्रोंकी निन्दा मत करो। हमारे ऋषि-मुनियोंने शास्त्रोंमें जो कुछ लिख दिया है, वह हमें मानना चाहिये। उनमें मीन-मेख निकालना हमारे लिये उचित नहीं। हममें इतनी बुद्धि कहाँ है, कि शास्त्रोंके सभी आदेशोंको समझ सकें? उनको माननेमेंही हमारा कल्याण है।

प्रेम—मुझसे वह काम करनेको कहती हो, जो मेरे सिद्धान्त और विश्वासके सर्वथा विरुद्ध है। मेरा मन इसे कदापि स्वीकार नहीं करता कि विदेशयात्रा कोई पाप है। ऐसी दशामें प्रायश्चित्तकी शर्त लगाकर तुम मुझपर बड़ा अन्याय कर रही हो।

श्रद्धाने लम्बी साँस खींचकर कहा, आपके चित्तसे अभी अहंकार नहीं मिटा। जबतक इसे न मिटाइयेगा, ऋषियोंकी बातें आपकी समझमें न आयेंगी।

यह कहकर वह सीढ़ियोंपर चढ़ने लगी। प्रेमशङ्कर कुछ न बोल सके। उसे रोकनेका भी साहस न हुआ। श्रद्धा देखते-देखते सामने गलीमें घुसी और अन्धकारमें विलुप्त हो गयी।

प्रेमशङ्कर कई मिनटतक वहीं चुपचाप खड़े रहे, तब वह सहसा इस अर्द्धचैतन्यावस्थासे जागे, जैसे कोई रोगी देरतक मूर्च्छित रहनेके बाद चौंक पड़े। अपनी अवस्थाका ज्ञान हुआ। हा! अवसर हाथसे निकल गया। मैंने विचारको मनुष्यसे उत्तम समझा। सिद्धान्त मनुष्यके लिये है, मनुष्य सिद्धान्तोंके लिये नहीं है। मैं इतना भी न समझ सका! माना, प्रायश्चित्तपर मेरा विश्वास नहीं है; पर उससे दो प्राणियोंका जीवन सुखमय हो

सकता था। इस सिद्धान्तप्रेमने दोनोंका ही सर्वनाश कर दिया। क्यों न चलकर श्रद्धासे कह दूँ कि मुझे प्रायश्चित्त करना अङ्गीकार है, अभी बहुत दूर न गयी होगी। उसका विश्वास मिथ्याही सही, पर कितना दृढ़ है! कितनी निःस्वार्थ पतिभक्ति है, कितनी अविचल धर्मनिष्ठा! प्रेमशङ्कर इन्हीं विचारोंमें डूबे हुए थे कि यकायक उन्होंने दो आदमियोंको ऊपरसे उतरते देखा। गहरे विचारके बाद मस्तिष्कको विश्रामकी इच्छा होती है। वह उन दोनों मनुष्योंकी ओर ध्यानसे देखने लगे। यह कौन है? इस समय यहाँ क्या करने आये हैं? शनैः शनैः वह दोनों नीचे आये और प्रेमशङ्करसे कुछ दूर खड़े हो गये। प्रेमशङ्करने उन दोनोंकी बातें सुनी तो आवाज पहचान गये। यह दोनों पद्मशङ्कर और तेजशङ्कर थे।

तेजशङ्करने कहा, तुम्हारी बुरी आदत है कि जिससे होता है उसीसे इन बातोंकी चर्चा करने लगते तो। यह सब बातें गुप्त रखनेकी हैं। खोल देनेसे उनका असर जाता रहता है।

पद्म—मैंने तो किसीसे नहीं कहा।

तेज—क्यों? आज ही बाबू ज्वालासिंहसे कहने लगे कि हम लोग साधु हो जायेंगे। कई दिन हुए अम्माँसे यही बात कही थी। इस तरह बकते फिरनेसे क्या फायदा? हमलोग साधु होंगे अवश्य, पर अभी नहीं। अभी इस 'बीसा" को सिद्ध कर लो, घरमें लाख दो लाख रुपये रख दो, बस निश्चिन्त होकर निकल खड़े हो। भैया घरकी कुछ खोज-खबर लेते ही नहीं, हम लोग भी निकल जायें तो लालाजी इतने प्राणियोंका पालन-पोषण कैसे करेंगे? इम्तहान तो मेरा दिया न दिया जायेगा, कौन भूगोल-इतिहास रटता फिरे और मैट्रिक होही गये तो कौन राजा हो जायेंगे? बहुत होगा कहीं १५-२०) के नौकर हो जायेंगे। तीन सालसे फेल हो रहे हैं, अबकी तो योंही कहीं पढ़नेको जगह न मिलेगी।

पद्म—अच्छा, अब किसीसे कुछ न कहूँगा। यह मन्त्र सिद्ध हो जाये तो चचासाहब मुकदमा जीत जायेंगे न?

तेज—अभी देखा नहीं क्या? लालाजी २० हजार जमानत देते थे; पर मैजिस्ट्रेट न लेता था। तीन ही दिन यहाँ आसन जमाया और आज वह बिलकुल बरी हो गये। एक कौड़ी भी जमानत न देनी पड़ी।

पद्म—चचासाहब बड़े अच्छे आदमी हैं। मुझे उनकी बहुत मुहब्बत लगती है। छोटे चचाकी ओर तो ताकते हुए भी डर मालूम होता है।

तेज—उन्होंने बड़े चचाको फँसाया है। डरता हूँ, नहीं एक सप्ताहभर भी आसन लगाऊँ, तो उनकी जान ही लेकर छोड़ूँ।

पद्म—मुझसे तो कभी बोलते ही नहीं। छोटी चचीका अदब करता हूँ, नहीं तो एक दिन मायाको खूब पीटता।

तेज—अबकी तो माया भी गोरखपूर जा रहा है। वहीं पढ़ेगा।

पद्म—जबसे मोटर आयी है, मायाका मिजाज ही नहीं मिलता। यहाँ कोई मोटरका भूखा नहीं है।

यों बातें करते हुए दोनों सीढ़ीपर बैठ गये। प्रेमशङ्कर उठकर उनके पास आये और कुछ कहना चाहते थे कि पद्मशङ्करने चौंककर जोरसे चीख मारी और तेजशङ्कर खड़ा होकर कुछ बुदबुदाने और छू-छू करने लगा। प्रेमशङ्कर बोले, डरो मत,मैं हूँ।

तेज—चचा साहब! आप यहाँ इस वक्त कैसे आये?

पद्म—मुझे तो ऐसी शङ्का हुई कि कोई प्रेत आ गया।

प्रेम—तुम लोग इस पाखण्डमें पड़कर अपना समय व्यर्थ गँवा रहे हो। यह बड़े जोखिमका काम है और तत्व कुछ नहीं। इन मन्त्रोंको जगाकर तुम जीवनमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। चित्त लगाकर पढ़ो, उद्योग करो, सच्चरित्र बनो। धन और कीर्तिका यही महामन्त्र है। यहाँसे उठो।

तीनों आदमी घरकी ओर चले। रास्तेभर प्रेमशंकर दोनों किशोरोंको समझाते रहे। घर पहुँचकर वे फिर निद्रादेवीकी

आराधना करने लगे, मच्छरोंकी जगह अब उनके सामने एक और बाधा आ खड़ी हुई। यह श्रद्धाका अन्तिम वाक्य था, तुम्हारे चित्तसे अभी अहंकार नहीं मिटा। प्रेमशंकर बड़ी निर्दयतासे अपने कृत्योंका समीक्षण कर रहे थे। अपने अन्तःकरणके एक-एक परदेको खोलकर देख रहे थे और प्रतिक्षण उन्हें विश्वास होता जाता था, कि मैं वास्तवमें अहंकारका पुतला हूँ। वह अपने किसी कामको, किसी संकल्पको, अहंकार-रहित न पाते थे। उनकी दया और दीनभक्तिमें भी अहंकार छिपा हुआ जान पड़ता था। उन्हें शंका हो रही थी, क्या सिद्धान्तप्रेम अहंकारका दूसरा स्वरूप है। इसके विपरीत श्रद्धाकी धर्मपरायणतामें अहंकारकी गन्ध तक न थी।

इतनेमें ज्वालासिंहने आकर कहा, क्या सोते ही रहियेगा? सबेरा हो गया।

प्रेमशंकरने चौंककर द्वारकी ओर देखा, तो वास्तवमें दिन निकल आया था। बोले, मुझे तो मच्छरोंके मारे नींद ही नहीं आयी। आखेंतक न झपकीं।

ज्वाला—और यहाँ एक ही करवटमें भोर हो गया।

प्रेमशंकर उठकर हाथ मुँह धोने लगे। आज उन्हें बहुत काम करना था। ज्वालासिंह भी स्नानादिसे निवृत्त हुए। अभी दोनों आदमी कपड़े पहन ही रहे थे कि तेजशङ्कर जलपानके लिये ताजा हलुआ, सेबका मुरब्बा, तले हुए पिस्ते और बादाम तथा गर्म दूध लाया। ज्वालासिंहने कहा, आपके चचासाहब बड़े मेहमानवाज आदमी हैं। ऐसा जान पड़ता है कि आतिथ्यसत्कारमें उन्हें हार्दिक आनन्द आता है और एक हम हैं कि मेहमानकी सूरत देखते ही मानों दब जाते हैं, उनका जो कुछ सत्कार करते हैं, वह केवल प्रथापालनके लिये, मनसे यही चाहते हैं कि किसी तरह यह व्याधि सिरसे टले।

प्रेम—वे पवित्र आत्माएँ अब संसारसे उठती जाती हैं।

अब तो जिधर देखिये, उधर स्वार्थ-सेवाका आधिपत्य है। चचासाहब जैसा भोजन करते हैं, वैसा अच्छे-अच्छे रईसोंको भी मयस्सर नहीं होता। वह स्वयं पाकशास्त्रमें निपुण हैं। लेकिन खानेका इतना शौक नहीं है, जितना खिलानेका। मेरा तो जी चाहता है कि अवकाश मिले तो यह विद्या उनसे सीखूँ।

दोनों मित्रोंने जलपान किया और लाला प्रभाशङ्करसे बिदा होकर घरसे निकले। ज्वालासिंहने कहा, कोई वकील ठीक करना चाहिये।

प्रेम—हाँ, यही सबसे जरूरी काम है। देखें, कोई महाशय मिलते हैं या नहीं। चचासाहबको तो लोगोंने साफ जवाब दे दिया था।

ज्वाला—डाक्टर इर्फानअलीसे मेरा खूब परिचय है। आइये, पहले वहीं चलें।

प्रेम—वह तो शायदही राजी हों। ज्ञानशङ्करसे उनकी बात-चीत पहले ही हो चुकी है।

ज्वाला—अभी वकालतनामा तो दाखिल नहीं हुआ। ज्ञान-शङ्कर ऐसे नादान नहीं हैं कि ख्वाहमख्वाह हजारों रुपयोंका खर्च उठायें। उनकी जो इच्छा थी, वह पुलिसके हाथों पूरी हुई जाती है। सारा लखनपूर चक्करमें फँस गया। अब उन्हें वकील रखकर क्या करना है!

डाक्टर महोदय अपने बागमें टहल रहे थे। दोनों सज्जनों-को देखते ही बढ़कर हाथ मिलाया और बङ्गलेमें ले गये।

डाक्टर—(ज्वालासिंहसे) आपसे तो एक मुद्दतके बाद मुलाकात हुई है। आजकल तो आप हरदोईमें हैं न? आपके बयानने तो पुलिसवालोंका बोलता बन्द कर दा। मगर याद रखिये, इसका परिणाम आपको उठाना पड़ेगा।

ज्वाला—उनकी नौबत ही न आयेगी। इन दोरङ्गी चालोंसे नफरत हो गयी। इस्तीफा देनेका फैसला कर चुका हूँ।

डाक्टर—हालत ही ऐसी है कि कोई खुद्दार आदमी उसे गवारा नहीं कर सकता। बस, यहाँ उन्हीं लोगोंकी चाँदी है, जिनके कान्शंस मुरदा हो गये हैं। मेरे ही पेशे को लीजिये, कहा जाता है कि यह आजाद पेशा है। लेकिन लाला प्रभाशङ्करको सारे शहरमें (प्रेमशङ्करकी तरफ देखकर) आपकी पैरवी करनेके लिये कोई वकील न मिला। मालूम नहीं, वह मेरे यहाँ तशरीफ क्यों नहीं लाये।

ज्वाला—उस गलतीकी तलाफी (प्रायश्चित्त) करनेके लिये हमलोग हाजिर हुए हैं। गरीब किसानोंपर आपको रहम करना पड़ेगा।

डाक्टर—मैं इस खिदमतके लिये हाजिर हूँ। पुलिससे मेरी पुरानी दुश्मनी है। ऐसे मुकदमोंकी मुझे तलाश रहती है। बस, यही मेरा आखिरी मुकदमा होगा। मुझे भी वकालतसे नफरत हो गयी है। मैंने युनिवर्सिटीमें दरख्वास्त दी है। मंजूर हो गयी तो बोरिया-बधना समेटकर उधरकी राह लूँगा।

३२

डाक्टर इर्फान अलीकी बातोंसे प्रेमशङ्करको बड़ी तसकीन हुई। मेहनतानेके सम्बन्धमें उनसे कुछ रिआयत चाहते थे; लेकिन संकोचवश कुछ कह न सकते थे। इतनेमें हमारे पूर्व-परिचित सैयद ईजाद हुसेनने कमरेमें प्रवेश किया और ज्वालासिंहको देखते ही सलाम करके उनके सामने खड़े हो गये। उनके साथ एक हिन्दू युवक और भी था, जो चाल-ढालसे धनाढ्य वैश्य जान पड़ता था!

ज्वालासिंह बोले—आइये, आइये, मिजाज तो अच्छा है। आजकल किसकी पेशीमें हैं?

ईजाद—जबसे हुजूर तशरीफ ले गये, मैंने भी नौकरीको सलाम किया। जिन्दगी शिकमपर्वरीमें गुजरी जाती थी, इरादा हुआ कुछ दिन कौमकी खिदमत करूँ। इसी गरजसे "अंजुमन

इत्तहाद" खोल रक्खी है। उसका मकसद हिन्दू-मुसलमानोंमें मेल-जोल पैदा करना है। मैं इसे कौमका सबसे अहम * मसला समझता हूँ। आप दोनों साहब अगर अंजुमनको अपने कदमोंसे मुमताज फरमायें तो मेरी खुशनसीबी ही है।

ज्वाला—आप वाक़ई कौमकी सच्ची खिदमत कर रहे हैं।

ईजाद शुक्र है, जनाबकी जबानसे यह कलाम निकला। यहाँ मुझे मियाँ "इत्तहाद" कहकर मेरा मजाक उड़ाया जाता है। अंजुमनपर आवाजें कसी जाती हैं। मुझे खुद मतलब और खुदगरज कहा जाता है। यह सब जिल्लत उठाता हूँ। दोनों कौमोंके बाहमी निफ़ाकको देखता हूँ तो जिगरके टुकड़े हो जाते हैं। वह मुहब्बत और एखलास जिसपर कौमकी हस्ती कायम है, रोज-ब-रोज गायब होता जाता है। अगर एक हिन्दू इस्लामपर यकीन लाता है तो शोर मच जाता है कि हिन्दू कौम तबाह हुई जाती है। अगर एक हिन्दू कोई ऊँचा ओहदा पा जाता है तो मुसलमानोंमें 'हाय! हाय!' की सदा उठने लगती है, कोई कहता है इसलाम गारत हुआ, कोई कहता है इसलामकी किश्त भँवरमें पड़ी। लाहौल विला कूअत। मजहब रूहानी तसकीन और निजातका जरिया है, न कि दुनियाके कमानेका ढकोसला। इस बाहमी कुदूरतको हमारे मुल्ला और पण्डित और भी भड़काते हैं। मेरी आवाज नक्कारखानेमें तूतीकी सदा है; पर कौमी दर्द, कौमी ग़ैरत चुप नहीं बैठने देती। गला फाड़-फाड़ चिल्लाता हूँ, कोई सुने या न सुने। अंजुमनमें इस वक्त १०० मेम्बर हैं। कोई ७० हिन्दू साहबान हैं और ३० मुसलमान। उसके इन्तजामसे एक कुतुबखाना और मदरसा चलता है। अंजुमनका इरादा है कि एक इत्तहादी इबादतगाह बनायी जाय, जिसके एक जानिब शिवाला हो और दूसरी जानिब मस्जिद। एक यतीमखानेकी बुनियाद डाल दी गयी है।

* महत्वपूर्ण

दोनों कौमोंके यतीमोंको दाखिल किया जाता है; मगर अभीतक इमारतें नहीं बन सकीं। यह सब इरादे रुपयेके मुहताज हैं। फर्कारने तो अपना सब कुछ निसार कर दिया। अब कौमको अख्तियार है, उसे चलाये या बन्द कर दे। क्यों डाक्टर साहब, मेरा हिब्बनामा आपने तैयार फरमाया ?

ईर्फानअली—कोई तातील आये तो इतमीनानसे आपका काम करूँ।

प्रेमशङ्करने श्रद्धाभावसे कहा, सैयद साहबकी जात कौमके लिये बर्कत है। मैं अंजुमनके लिये १००) को हक़ीर रक़म नज़र करता हूँ और यतीमखानेके लिये ५० मन गेहूँ, ५ मन शक्कर और २०) माहवार।

ईजादहुसेन—खुदा आपको सवाब अता करे। अगर इजाज़त हो तो जनाबका नाम भी ट्रस्टियोंमें दाख़िल कर लिया जाय।

प्रेमशङ्कर—मैं इस इज्जतके लायक नहीं हूँ।

ईजाद—नहीं जनाब, मेरी यह इल्तजा आपको कबूल करनी होगी। खुदाने आपको एक दर्दमन्द दिल अता किया है। क्यों नहीं, आप लाला जटाशङ्कर मरहूमके ख़लफ़ हैं, जिनकी ग़रीब-परवरीसे सारा शहर मालामाल होता था। यतीम आपको दुआएँ देंगे और अंजुमन हमेशा आपकी ममनून रहेगी।

इर्फ़ानअलीने ज्वालासिंहसे पूछा, आपका क़ायम यहाँ कब-तक रहेगा ?

ज्वाला—कुछ अर्ज नहीं कर सकता। आया तो इस इरादेसे हूँ कि बाबू प्रेमशङ्करकी गुलामीमें जिन्दगी गुजार दूँ। मुलाजमतसे इस्तीफा देना तै कर चुका हूँ।

इर्फानअली—वल्लाह! आप दोनों साहब बड़े जिन्दादिल हैं। दुआ कीजिये कि खुदा मुझे भी क़नाअत (संतोष) की दौलत अता करे और मैं भी आप लोगोंकी सोहबतसे फैज उठाऊँ।

ज्वालासिंहने मुस्कुराकर कहा, हमारे मुलाज़िमोंको बरी करा दीजिये तब हम शबोरोज आपके लिये दुआएँ करेंगे।

इर्फ़ानअली हँसकर बोले, शर्त तो टेढ़ी है, मगर मंजूर है। डाक्टर चोपड़ाका बयान अपने मुआफ़िक़ हो जाय तो बाज़ी अपनी है।

ईजाद—अब ज़रा इस गरीबकी भी खबर लीजिये। मेरे मुहल्लेमें रहते हैं, कपड़ेकी बड़ी दूकान है, इनके बड़े भाई इनसे बेरुखीसे पेश आते हैं, इन्हें जेबखर्चके लिये कुछ नहीं देते। हिसाब भी नहीं दिखाते, सारा नफा खुद हज्म कर जाते हैं, कल इन्हें बहुत सख्त-सुस्त कहा। जब इनका आधा हिस्सा है, तो यह क्यों न अपने हिस्सेका दावा करें। यह बालिग हैं, अपना फायदा-नुकसान समझते हैं, भाईकी रोटियोंपर नहीं रहना चाहते। बोलो, भाई मथुरादास, बारिस्टर साहबसे कहो, क्या कहते हो?

मथुरादासने जमीनकी तरफ देखा और ईजादहुसेनकीओर कनखियोंसे ताकते हुए बोले—मैं यही चाहता हूँ कि भैयासे आप मेरी राजी-खुशी करा दें। कल मैंने उन्हें गाली दे दी थी। अब वह कहते हैं, तू ही घर सम्भाल, मुझसे कोई वास्ता नहीं, कुञ्जियाँ सब फेंक दी हैं और दूकानपर नहीं जाते।

ईजादहुसेनने मथुरादासकी ओर वक्रदृष्टिसे देखकर कहा, साफ-साफ अपना मतलब क्यों नहीं कहते? आप इनका मंशा समझ गये होंगे। अभी नातजुरबेकार आदमी, बातचीत करनेकी तमीज नहीं है; जभी तो राज धक्के खाते हैं। इनका मंशा है कि आप दावा दायर करें; लेकिन यह मामलेको तूल नहीं देना चाहते, सिर्फ अलहदा होना चाहते हैं; क्यों ठीक है न?

मथुरादास—(सरल भावसे) जी हां, बस यही चाहता हूँ कि उनसे मेरी राजी-खुशी हो जाय।

मुंशी रमज़ानअली मुहरिर थे। ईजादहुसेन मथुरादासको

उनके कमरेमें ले गये। वहाँ खासा दफ्तर था, कई आदमी बैठे लिख रहे थे। रमजानअलीने पूछा, कितनेका दावा होगा ?

ईजाद – यही कोई एक लाखका।

रमजानअलीने वकालतनामा लिखा। कोर्टफीस, तलबाना, मेहनताना, नजराना आदि वसूल किये, जो मथुरादासने ईजाद-हुसेनकी ओर अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हुए दिये, जैसे कोई किसान पछता-पछताकर दक्षिणाके पैसे निकालता है और तब दोनों सज्जनोंने घरकी राह ली।

रास्तेमें मथुरादासने कहा, आपने जबर्दस्ती मुझे भैयासे लड़ा दिया। सैकड़ों रुपयेकी चपत पड़ गयी और अभी कोर्ट फीस बाकी ही है।

ईजादहुसेन बोले, एहसान तो न मानोगे कि भाईकी गुलामी से आज़ाद होनेका इन्तजाम कर दिया। आधी दूकानके मालिक बनकर बैठोगे, उल्टे और शिकायत करते हो ?

३३

डाक्टर प्रियनाथ चोपड़ा बहुत ही उदार, विचारशील और सहृदय सज्जन थे। चिकित्साका अच्छा ज्ञान था और सबसे बड़ी बात यह कि उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल और नम्र था। अगर रोगियोंके हिस्सेकी शाक, भाजी, दूध, मक्खन, उपले, ईंधनका एक भाग उनके घरमें पहुँच जाता था तो—यह केवल वहाँकी प्रथा थी। उनके पहले भी ऐसा ही व्यवहार होता था। उन्होंने इसमें हस्तक्षेप करनेकी जरूरत न समझी। इसलिये उन्हें कोई बदनाम न कर सकता था और न उन्हें स्वयं ही इसमें कुछ दूषण दिखाई देता था। वह कम वेतनवाले कर्मचारियोंसे केवल आधी फीस लिया करते थे और रातकी फीस भी मामूली ही रक्खी थी। उनके यहाँ सरकारी चिकित्सालयसे मुफ्त दवा मिल जाती थी, इसलिये उनकी अन्य डाक्टरोंसे अधिक चलती थी। इन कारणोंसे उनकी आमदनी बहुत अच्छी हो गयी थी। तीन

साल पहले वह वहाँ आये थे तो पैरगाड़ीपर चलते थे, अब एक फिटन थी, बच्चोंको हवा खिलानेके लिये छोटी-छोटी सेजगाड़ियाँ थीं, फर्निचर और कर्शे आदि अस्पतालकेही थे, नौकरोंका वेतन भी गाँठसे न देना पड़ता था। पर इतनी मितव्ययितापर भी वह अपनी अवस्थाकी तुलना जिलेके सबजजिनियर या कतिपय वकीलोंसे करते थे तो उन्हें विशेष आनन्द न होता था। यद्यपि उन्हें कभी-कभी ऐसे अवसर मिलते थे जो उनकी आर्थिक कामनाओंको सफल कर सकते थे; पर उनकी विचारशीलता कभी उन्हें बहकने न देती थी। कालेज छोड़नेके बाद कई वर्षतक उन्होंने निर्भीकतासे अपने कर्त्तव्यका पालन किया था; लेकिन जब कई बार पुलिसके विरुद्ध गवाही देनेपर मुँहकी खानी पड़ी तो चेत गये। वह नित्य पुलिसका रुख देखकर अपनी नीति स्थिर किया करते थे। तिसपर भी अपने निदानोंको पुलिसकी इच्छाके अधीन रखनेमें उन्हें मानसिक कष्ट होता था। अतएव जब गौसखाँकी लाश उनके पास निरीक्षणके लिये भेजी गयी तो वह बड़े असमंजसमें पड़े। निदान कहता था कि यह एक व्यक्तिका काम है, एक ही बारमें काम तमाम हुआ है; किन्तु पुलिसकी धारणा थी कि यह एक गुट्टका काम है। बेचारे बड़ी दुविधामें पड़े हुए थे। यह महत्वपूर्ण अभियोग था। पुलिसने अपनी सफलताके लिये कोई बात उठा न रक्खी थी। उसका खंडन करना उससे बैर मोल लेना था और अनुभवसे सिद्ध हो गया था कि यह बहुत महँगा सौदा है। गुनाह था मगर बेलज्जत। कई दिनतक इसी हैस-बैसमें पड़े रहे; पर बुद्धि कुछ काम न करती थी। इसी बीचमें एक दिन ज्ञानशङ्कर उनके पास रानी गायत्रीदेवीका एक पत्र और ५००) पारितोषिक लेकर पहुँचे। रानी महोदयाने उनकी कीर्ति सुनकर अपनी गुणग्राहकताका परिचय दिया था। उनसे शिशु-पालनपर एक पुस्तक लिखवाना चाहती थीं। इसके अतिरिक्त उन्हें अपना गृह चिकित्सक भी नियत किया था और प्रत्येक

"विजिट" के लिये १००) का वादा था। डाक्टर साहब फूले न समाये। ज्ञानशङ्करकी ओर अनुग्रहपूर्ण नेत्रोंसे देखकर बोले, श्रीमतीजीकी इस उदार गुण-ग्राहकताका धन्यवाद देनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं है। आप मुझे अपना सेवक समझिये। यह सब आपकी कृपादृष्टि है, नहीं तो मेरे जैसे हजारों डाक्टर पड़े हुए हैं। ज्ञानशङ्करने इसका यथोचित उत्तर दिया। इसके बाद देश-काल सम्बन्धी विषयोंपर वार्तालाप होने लगा। डाक्टर साहबका दावा था कि मैं चिकित्सामें आई० एम० एस० वालोंसे कहीं कुशल हूँ और ऐसे असाध्य रोगियोंका उद्धार कर चुका हूँ, जिन्हें सर्वज्ञ आई० एम० एस० वालोंने जवाब दे दिया था। लेकिन फिर भी मुझे इस जीवनमें इस पराधीनतासे मुक्त होनेकी कोई आशा नहीं। मेरे भाग्यमें विलायतके नवशिक्षित युवकोंकी मातहती लिखी हुई है।

ज्ञानशङ्करने इसके उत्तरमें देशकी राजनीतिक परिस्थितिका उल्लेख किया। चलते समय उनसे बड़े निःस्वार्थ भावसे पूछा, लखनपूरके मामलेमें आपने क्या निश्चय किया? लाश तो आपके यहाँ आयी होगी?

प्रियनाथ—जी हाँ, लाश आयी थी। चिह्नोंसे तो यह पूर्णतः सिद्ध होता है, कि यह केवल एक आदमीका काम है; किन्तु पुलिस इसमें कई आदमियोंको घसीटना चाहती है। आपसे क्या छिपाऊँ, पुलिसको असन्तुष्ट नहीं कर सकता; लेकिन यों निरपराधियोंको फँसाने हुए आत्माको घृणा होती है।

ज्ञानशङ्कर—सम्भव है, आपने चिह्नोंसे जो राय स्थिर की हैं वही मान्य हों; लेकिन वास्तवमें यह हत्या कई आदमियोंकी साजिशसे हुई है। लखनपूर मेरा ही गाँव है।

प्रियनाथ—अच्छा, लखनपूर आपका ही गाँव है? तो यह कारिन्दा आपका नौकर था?

ज्ञान—जी हाँ, और बड़ा स्वामिभक्त, अपने काममें कुशल।

गाँववालोंको उससे केवल यही चिढ़ थी कि वह उनसे मिलता न था, प्रत्येक विषयमें मेरे ही हानि-लाभका विचार करता था। यह उसकी स्वामिभक्तिका दण्ड है। लेकिन मैं इस घटनाको पुलिसका दृष्टिसे नहीं देखता। हत्या हो गयी, एकने की या कई आदमियोंने मिलकर की। मेरे लिये यह समस्या इससे कहीं जटिल है। प्रश्न जमींदार और किसानोंका है। अगर हत्याकारियोंको उचित दण्ड न दिया गया तो इस तरहकी दुर्घटनाएँ आये दिन होने लगेंगी और जमींदारोंको अपनी जान बचाना कठिन हो जायेगा।

प्रस्तुत प्रश्नको यह नया स्वरूप देकर ज्ञानशंकर विदा हुए। यद्यपि हत्याके सम्बन्धमें डाक्टर साहबकी अब भी वही राय थी; लेकिन अब यह गुनाह बेलज्जत न था। ५००) का पारितोषिक, १००) फीस, सालमें हजार दो हजार मिलते रहनेकी आशा, उसपर पुलिसकी खुशनूदी अलग। अब आगे-पीछेकी जरूरत न थी। हाँ, अब अगर भय था तो डाक्टर इर्फानअलीकी जिरहोंका। डाक्टर साहबकी जिरह प्रसिद्ध थी। अतएव प्रियनाथने इस विषयके कई ग्रन्थोंका अवलोकन किया और अपने पक्षसमर्थनके तत्त्व खोज निकाले। कितने ही बेगुनाहोंकी गर्दनपर छुरी फिर जायेगी, इसकी उन्हें एक क्षणके लिये भी चिन्ता न हुई। इस ओर उनका ध्यान ही न गया। ऐसे अवसरों पर हमारी दृष्टि कितना संकीर्ण हो जाती है।

दिनके १० बजे थे। डाक्टर महोदय ग्रन्थोंकी एक पोट लेकर फिटनपर सवार हो कचहरी चले। उनका दिल धड़क रहा था, जिरहमें उखड़ जानेकी शंका लगी हुई थी। वहाँ पहुँचते ही मैजिस्ट्रेटने उन्हें तलब किया। जब वह कटघरेके सामने आकर खड़े हुए और अभियुक्तोंको अपनी ओर दीन नेत्रोंसे ताकते देखा तो एक क्षणके लिये उनका चित्त अस्थिर हो गया। लेकिन यह एक क्षणिक आवेश था, आया और चला

गया। उन्होंने बड़ी तात्त्विक गंभीरता और मर्मज्ञतापूर्ण भावसे इस हत्याकांडका विवेचन किया। चिह्नोंसे यह केवल एक आदमीका काम मालूम होता है। लेकिन हत्याकारियोंने बड़ी चालाकीसे काम लिया है। इस विषयमें वे बड़े सिद्धहस्त हैं। मृत्युका कारण कुल्हाड़ी या गंडासेका आघात नहीं है, बल्कि गलेका घोंटना है और कई आदमियोंकी सहायताके बिना गौसखाँ जैसे बलिष्ठ मनुष्यका गला घोंटना असम्भव है। प्राणान्त हो जानेपर एक वारसे उसकी गर्दन काट ली गयी है, जिसमें यह एकही व्यक्तिका कृत्य समझा जाय।

इर्फान अलीकी जिरह शुरू हुई।

आपने कौनसा इम्तहान पास किया है?

मैं लाहौरका एल०एम०एस० और कलकत्तेका एम०बी० हूँ।

आपकी उम्र क्या है।

४० वर्ष।

आपका मकान कहाँ है?

दिल्ली।

आपकी शादी हुई है? अगर हुई है तो औलाद हैं या नहीं?

मेरी शादी हो गया है और कई औलादें हैं।

उनकी परवरिशपर आपका माहवार कितना खर्च होता है?

इर्फानअली यह प्रश्न ऐसे पांडित्यपूर्ण-स्वाभिमानसे पूछ रहे थे, मानों इन्हींपर मुकदमेका दारमदार है। प्रत्येक प्रश्नपर ज्वालासिंहकी ओर गर्वके साथ देखते थे, मानों उनसे अपनी प्रखर नैयायिकताकी प्रशंसा चाहते हैं। लेकिन इस अन्तिम प्रश्नपर मैजिस्ट्रेटने एतराज किया, "इस प्रश्नसे आपका क्या अभिप्राय है?"

इर्फानअलीने गर्वसे कहा,—अभी मेरा मन्शा जाहिर हुआ जाता है।

यह कहकर उन्होंने प्रियनाथसे जिरह शुरू की। बेचारे प्रिय-

नाथ मनमें सहमे जाते थे। मालूम नहीं,यह महाशय मुझे किस जालमें फाँस रहे हैं।

इर्फानअली—आप मेरे आखिरी सवालका जवाब दीजिये।

मेरे पास इसका कोई हिसाब नहीं है।

आपके यहाँ माहवार कितना दूध आता है और उसकी क्या कीमत देनी पड़ती है?

इसका हिसाब मेरे नौकर रखते हैं।

घीपर माहवार क्या खर्च होता है?

मैं अपने नौकरोंसे पूछे बगैर इन गृहसम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे सकता।

इर्फानअलीने मैजिस्ट्रेटसे कहा, मेरे सवालोंके काबिल इत-मीनान जवाब मिलने चाहिये।

मैजिस्ट्रेट—मैं नहीं समझता, कि इन सवालोंसे आपका मंशा क्या है?

इर्फानअली—मेरा मंशा गवाहकी एखलाकी हालतका परदा फाश करना है। इन सवालोंसे मैं यह साबित करना चाहता हूँ, कि वह बहुत ऊँचे उसूलोंका आदमी नहीं है।

मैजिस्ट्रेट—मैं इन प्रश्नोंको दर्ज करनेसे इन्कार करता हूँ।

इर्फानअली तो मैं भी जिरह करनेसे इन्कार करता हूँ।

यह कहकर बारिस्टर साहब इजलाससे बाहर निकल आये और ज्वालासिंहसे बोले, आपने देखा, यह हजरत कितनी बेजा तरफदारी कर रहे हैं। वल्लाह! मैं डाक्टर साहबके लत्ते उड़ा देता। यहाँ ऐसी-वैसी जिरह न करते। मैं साफ साबित कर देता कि जो आदमी छोटी-छोटी रकमोंपर गिरता है, वह ऐसे बड़े मामलेमें बेलौस नहीं रह सकता। कोई मुजायका नहीं, दीवानीमें चलने दीजिये, वहाँ इनकी खबर लूँगा।

इसके एक घण्टा पीछे मैजिस्ट्रेटने फैसला सुना दिया। सब अभियुक्त सेशन सुपुर्द हुए।

सन्ध्या हो गयी थी। ये विपत्तिके मारे फिर हवालात चले। सबोंके मुखपर उदासी छायी हुई थी। प्रियनाथके बयानने उन्हें हताश कर दिया था। वह यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे, कि ऐसा उच्च पदाधिकारी प्रलोभनोंके फेरमें पड़कर असत्य-की ओर जा सकता है। सभी गर्दन झुकाये चले जाते थे। अकेला मनोहर रो रहा था।

इतनेमें प्रियनाथकी फिटन सड़कसे निकली। अभियुक्तोंने उन्हें अवहेलनापूर्ण नेत्रोंसे देखा। मानों कह रहे थे, 'आपको हम दीन-दुखियारोंपर तनिक भी दया न आयी।' डाक्टर साहबने भी उन्हें देखा, आँखोंमें ग्लानिका भाव झलक रहा था।

३४

जब मुकदमा सेशन सुपुर्द हो गया और ज्ञानशङ्करको विश्वास हो गया कि अब अभियुक्तोंका बचना कठिन है, तब उन्होंने गौसखाँकी जगहपर फैजुल्लाहको नियुक्त किया और खुद गोरखपूर चले आये। यहाँसे गायत्रीकी कई चिट्ठियाँ गयी थीं। मायाशङ्करको भी साथ लाये। विद्याने बहुत कहा कि मेरा जी घबरायेगा, पर उन्होंने न माना।

इस एक महीनेमें ज्ञानशङ्करने वह समस्या हल कर ली थी, जिसपर वह कई सालोंसे विचार कर रहे थे, उन्होंने वह मार्ग निर्धारित कर लिया था, जिससे गायत्रीदेवीके हृदयतक पहुँच सकें। इस मार्गकी दो शाखाएँ थीं, एक विरोधात्मक और दूसरी विधानात्मक। ज्ञानशङ्करने यही दूसरा मार्ग ग्रहण करना निश्चय किया। गायत्रीके धार्मिक भावोंको हटाना जो किसी गढ़की दुर्भेद्य दीवारोंकी भाँति उसको वासनाओंसे बनाये हुए थे, दुस्तर था। ज्ञानशङ्कर एक बार इस प्रयत्नमें असफल हो चुके थे और कोई कारण नहीं था कि उस साधनका आश्रय लेकर वह फिर असफल न हों। इसकी अपेक्षा दूसरा मार्ग सुगम और सुलभ था। उन धार्मिक भावोंको हटानेके बदले

उन्हें और दृढ़ क्यों न कर दूँ ? इमारतको विध्वंस करनेके बदले उसी भित्तिपर क्यों न और रद्दे चढ़ा दूँ ? पानीके बहावका रुख पलटनेकी जगह धाराको और तेज क्यों न कर दूँ ? उसको अपना बनानेके बदले क्यों न आप ही उसका हो जाऊँ ?

ज्ञानशङ्करने गोरखपुर आकर पहलेसे भी अधिक उत्साह और अध्यवसायसे काम करना शुरू किया। धर्मशालाका काम स्थगित हो गया था। अबकी ठेकेदारोंसे काम न लेकर उन्होंने उसे अपनी ही निगरानीमें बनवाना शुरू किया। उसके सामने ही एक ठाकुरद्वारेका शिलारोपण भी कर दिया। वह नित्य प्रति प्रातःकाल मोटरपर सवार होकर घरसे निकल जाते और इलाके का चक्कर लगाकर सन्ध्यातक लौट आते। किसी कारिन्दे या कर्मचारीकी मजाल न थी कि एक कौड़ीतक खा सके, किसी शहना या चपरासीकी ताब न थी, कि असामियोंपर किसी प्रकारकी सख्ती कर सके और न किसी असामीका दिल था कि लगान चुकानेमें एक दिनका भी विलम्ब कर सके। सहकारी बैंकका काम भी चल निकला। किसान महाजनोंके जालसे मुक्त होने लगे और उनमें यह सामर्थ्य होने लगी कि खरीददारोंके भावपर जिन्स न बेचकर अपने भावपर बेच सकें। ज्ञानशङ्करका यह सुप्रबन्ध और कार्यपटुता देखकर गायत्रीकी सदिच्छा श्रद्धा-का रूप धारण करती जाती थी। वह विविध रूपसे प्रत्युपकार-की चेष्टा करती।—विद्याके लिये तरह-तरहके सौगात भेजती और मायाशङ्करपर तो जान ही देती थी। उसकी सवारीकेलिये दो टाँघन थे, पढ़ानेके लिये दो मास्टर। एक सुबहको आता था, दूसरा शामको। उसकी टहलके लिये अलग दो नौकर थे। उसे अपने सामने बुलाकर नाश्ता कराती थी। आप अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर उसे खिलाती। उसे कहानियाँ सुनाती और उसकी कहानियाँ सुनती। उसे आये दिन इनाम देती रहती। मायाशङ्कर अपनी माँको भूल गया। वह ऐसा समझदार, ऐसा

मिष्टभाषी, ऐसा विनयशील, ऐसा सरल बालक था, कि थोड़े ही दिनोंमें गायत्री उसे हृदयसे प्यार करने लगी।

ज्ञानशङ्करके जीवनमें भी एक विशेष परिवर्त्तन हुआ। अब वह नित्य सन्ध्या समय भागवतकी कथा सुना करते। दो-चार साधु-सन्त जमा हो जाते, मेल-जोलके दस-पाँच सज्जन आ जाते, मुहल्लेके दो-चार श्रद्धालु पुरुष आ बैठते और एक छोटी-मोटी धार्मिक सभा हो जाती। यहाँ कृष्ण भगवानकी चर्चा होती; उनकी प्रेमकथाएँ सुनाई जातीं और कभी-कभी कीर्तन भी होता था। लोग प्रेममें मग्न होकर रोने लगते और सबसे अधिक अश्रुवर्षा ज्ञानशङ्करकी ही आँखोंसे होती थी। वह प्रेमके हाथों बिक गये थे।

एक दिन गायत्रीने कहा, अब तो आपके यहाँ नित्य कृष्ण-चर्चा होती है, परदेका प्रबन्ध हो जाय तो मैं भी आया करूँ। ज्ञानशङ्करने श्रद्धापूर्ण नेत्रोंसे गायत्रीको देखकर कहा, यह सब आपहीके सत्संगका फल है। आपने ही मुझे यह भक्ति-मार्ग दिखाया है और मैं आपको ही अपना गुरु मानता हूँ। आजसे कई मास पहले मैं मायामोहमें फँसा हुआ, इच्छाओंका दास, वासनाओंका गुलाम और सांसारिक बन्धनोंमें जकड़ा हुआ था। आपने मुझे बता दिया कि संसारमें निर्लिप्त होकर क्योंकर रहना चाहिये। इतनी सम्पत्तिशालिनी होकर भी आप संन्यासिनी हैं। आपके जीवनने मेरे लिये सदुपदेशका काम किया है।

गायत्री ज्ञानशङ्करको विद्या और ज्ञानका अगाध सागर समझती थीं। वह महान् पुरुष जिसकी लेखनीमें यह सामर्थ्य हो कि मुझे रानीके पदसे विभूषित करा दे, जिसकी वक्तृताओंको सुनकर बड़े-बड़े अङ्गरेज उच्चाधिकारी दङ्ग रह जायँ, जिसके सुप्रबन्धकी आज सारे जिलेमें धूम है, मेरा इतना भक्त हो, इस कल्पनासे ही उसका गौरवशील हृदय विह्वल हो गया। ऐसे सम्मानोंके अवसरोंपर उसे अपने स्वामीकी याद आ जाती थी।

विनीत भावसे बोली, बाबूजी यह सब भगवानकी दया है, उन्होंने आपको यह भक्ति प्रदान की है, नहीं तो लोग यावज्जीवन धर्मोपदेश सुनते रह जाते हैं और फिर उनके ज्ञानचक्षु नहीं खुलते। कहीं स्वामीसे आपकी भेंट हो गयी होती तो आप उनके दर्शन मात्रसेही मुग्ध हो जाते। वह धर्म और प्रेमके अवतार थे। मैं जो कुछ हूँ, उन्होंकी बनायी हुई हूँ। यथासाध्य उन्हींकी शिक्षाओंका पालन करती हूँ, नहीं तो मेरी इतनी गति कहाँ थी कि भक्तिरसका स्वाद पा सकती।

ज्ञानशङ्कर—मुझे भी यही खेद है कि उन महात्माके दर्शनोंसे वंचित रह गया। जिसके सदुपदेशमें यह महान् शक्ति है वह स्वयं कितना प्रतिभाशाली होगा! मैं कभी-कभी स्वप्नमें उनके दर्शनसे कृतार्थ हो जाता हूँ। कितनी सौम्य मूर्ति थी, मुखारविन्दसे प्रेमकी ज्योति-सी प्रसारित होती हुई जान पड़ती है। साक्षात् कृष्ण भगवानके अवतार मालूम होते हैं।

दूसरे दिनसे परदेकी आयोजना हो गयी और गायत्री नित्य प्रति इन सत्संगोंमें भाग लेने लगी। भक्तोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। कीर्तनके समय लोग भावोन्मत्त होकर नाचने लगते। गायत्रीके हृदयमें भी यही प्रेमतरंगें उठतीं, यहाँतक कि ज्ञानशङ्कर भी स्थिरचित्त न रह सकते। कृष्णके पवित्र प्रेमकी लीलायें उनके चित्तको भी एक क्षणके लिये प्रेमसे आभासित कर देती थीं। और इस प्रकाशमें उन्हें अपनी कुटिलता और क्षुद्रता अत्यन्त घृणोत्पादक दीख पड़ती। लेकिन सत्सङ्गके समाप्त होते ही यह क्षणिक ज्योति फिर स्वार्थान्धकारमें विलीन हो जाती थी। बालक कृष्णकी भोली-भाली क्रीड़ाएँ, उनकी वह मनोहर तोतली बातें, यशोदाका वह विलक्षण पुत्रप्रेम, गोपियोंकी वह आत्मविस्मृति, प्रीतिके वह भावमय रहस्य, वह अनुरागके उद्गार, वह बंसीकी मतवाली तान, वह यमुनातटके विहारकी कथाएँ लोगोंको अतीव आनन्दप्रद आत्मिक उल्लासका अनुभव देती थीं।

भूतवादियोंकी दृष्टिमें ये कथाएँ कितनी ही लज्जास्पद क्यों न हों; पर उन भक्तोंके अन्तःकरण इनके श्रवणमात्रसे ही गद्गद् हो जाते थे, राधा और यशोदाका नाम आते ही आँखोंसे आँसू-की झड़ी लग जाती थी। कृष्णके नाममें क्या जादू है, इसका अनुभव हो जाता था।

एकबार वृन्दावनसे रासलीला-मण्डली आयी और महीनेभर तक लीला करती रही। सारा शहर देखनेको फट पड़ता था। ज्ञानशङ्कर प्रेमकी मूर्ति बने हुए लोगोंका आदर-सत्कार करते। छोटे-बड़े सबको खातिरसे बैठाते। स्त्रियोंके लिये विशेष प्रबन्ध कर दिया गया था। यहाँ गायत्री उनका स्वागत करती, उनके बच्चोंको प्यार करती और मिठाई-मेवे बाँटती। जिस दिन कृष्णके मथुरा-गमनकी लीला हुई, दर्शकोंकी इतनी भीड़ हुई कि साँस लेना मुश्किल था। यशोदा और नन्दकी हृदयविदारिणी बातें सुनकर दर्शकोंमें कोहराम मच गया। रोते-रोते कितने ही भक्तोंकी घिग्घी बँध गयी और गायत्री तो मूर्च्छित होकर गिर ही पड़ी। होश आनेपर उसने अपनेको अपने शयनगृहमें पाया। कमरेमें सन्नाटा छाया था, केवल ज्ञानशङ्कर खड़े उसे पंखा झल रहे थे। गायत्रीपर इस समय अलसता छायी हुई थी जब मनुष्य किसी थके हुए पथिककी भाँति अधीर होकर छाँहकी ओर दौड़ता है। उसका हृदय निर्मल, विशुद्ध प्रेमसे परिपूर्ण हो रहा था। उसने ज्ञानशङ्करको बैठ जानेका संकेत किया और तब शैशवोचित सरलतासे उनकी गोदमें सिर रखकर आकांक्षापूर्ण भावसे बोली, मुझे वृन्दावन ले चलो।

तीसरे दिन रासलीला समाप्त हुई। उसी दिन ज्ञानशङ्कर गायत्रीको सङ्ग ले बड़े समारोहके साथ वृन्दावन चले।

३५

सेशन्स जजके इजलासमें एक महीनेसे मुकदमा चल रहा है। अभियुक्तोंने फिर सफाई दी। आज मनोहरका बयान था।

इजलासमें एक मेला-सा लगा हुआ था। मनोहरने बड़ी निर्भीक दृढ़ताके साथ सारी घटना आदिसे अन्ततक बयान की और यदि जनताको अधिकार होता तो अन्य अभियुक्तोंका वेदाग छूट जाना निश्चय था; किन्तु अदालत जाब्ते और नियमोंके बन्धनमें जकड़ी हुई थी। वह जानकर अनजान बननेपर बाध्य थी। मनोहरके अन्तिम वाक्य बड़े मार्मिक थे—सरकार, माजरा यही है जो मैंने आपसे अरज किया! मैंने गौसखाँको इसी कुल्हाड़ी-से और इन्हीं हाथोंसे मारा, कोई मेरा साथी, मेरा सलाहकार मेरी मददगार नहीं था। अब आपको अख्तियार है, चाहे सारे गाँवको फाँसीपर चढ़ा दें, चाहे कालेपानी भेज दें, चाहे छोड़ दें। फैजू, बिसेसर, दारोगाने जो कुछ कहा है, सब झूठ है। दरोगाजीकी बात तो मैं नहीं चलाता, पर सरकार फैजू और बिसेसरको अपने घरपर बुलायें और दिलासा दें कि पुलिस तुम्हारा कुछ न कर सकेगी तो मेरी सच-झूटकी परख हो जाय और मैं क्या कहूँ! उन लोगोंका काठका कलेजा होगा जो इतने गरीबोंको बेकसूर फाँसीपर चढ़वाये देते हैं। भगवान झूठ-सच सब देखते हैं। बिसेसर और फैजूकी तो थोड़ी औकात है और दरोगाजी झूठकी रोटी ही खाते हैं; पर डाक्टर साहब इतने बड़े आदमी और ऐसे विद्वान् होकर कैसे झूठी गङ्गामें तैरने लगे; इसका मुझे अचरज है। इसके सिवा और क्या कहा जाय कि गरीबोंका नसीबा ही खोटा है कि बिना कसूर किये फाँसी पाते हैं। अब सरकारसे और पञ्चोंसे यही विनती है कि तुम इस घड़ी न्यायके आसनपर बैठे हो, अपने इन्साफसे दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर दो।

अदालत उठी। यह दुखियारे हवालात चले। और सभोंने तो मनको समझा लिया था कि भाग्यमें जो कुछ बदा है, वह होकर रहेगा; पर दुखरन भगतकी छातीपर साँप लोटता रहता था। उसे रह-रहकर उत्तेजना होती थी कि अवसर पाऊँ तो

मनोहरको खूब आड़े हाथों लूँ। किन्तु मजबूर था; क्योंकि मनोहर सबसे अलग रक्खा जाता था। हाँ, वह बलराजको ताना दे-देकर अपने चित्तको दाहको शान्त किया करता था। आज मनोहरका बयान सुनकर उसे और भी चिढ़ हुई, जब चिड़ियाँ खेत चुग गयी तो यह हाँक लगाने चले हैं। उस घड़ी अकल कहाँ चली गयी थी, जब एक जरा-सी बातपर कुल्हाड़ा बाँधकर घरसे चले थे। इस समय मार्गमें उसे मनोहर-पर अपना क्रोध उतारनेका मौका मिल गया। बोला—आज क्या भूठ-मूठमें बकबाद कर रहे थे। आदमीको तीर चलानेके पहले ही सोच लेना चाहिये कि यह किसको लगेगा? जब तीर कमानसे निकल गया तो फिर पछतानेसे क्या होता है? तुम्हारे कारण सारा गाँव चौपट हो गया। अनाथ लड़कों और औरतों-की कौन सुध लेनेवाला है? बेचारे रोटियोंको तरसते होंगे। तुमने सारे गाँवको मटियामेट कर दिया।

मनोहरको स्वयं आठों पहर यही शोक सताया करता था। गौसखाँका बध करते समय भी उसे यही चिन्ता थी। इसीलिये उसने खुद थानेमें जाकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। गाँवको आफतसे बचानेके लिये उसके किये जो कुछ हो सकता था, वह उसने किया और उसे दृढ़ विश्वास था कि चाहे मुझे अपने दुष्कृत्यपर कितना ही पश्चात्ताप हो रहा हो, अन्य लोग मुझे क्षम्य ही न समझते होंगे; मुझसे सहानुभूति भी रखते होंगे। मुझे जलानेके लिये अन्दरकी आग क्या कम है कि ऊपरसे भी तेल छिड़का जाय। वह दुखरनकी ये कटु बातें सुनकर बिलबिला उठा, जैसे पके हुए फोड़ेमें ठेस लग जाय। कुछ जवाब न दे सका।

आज अभियुक्तोंके लिये प्रेमशङ्करने जेलके दारोगाकी अनु-मतिसे कुछ स्वादिष्ट भोजन बनवाकर भेजे थे। अपने उच्च सिद्धान्तोंके विरुद्ध जेलखानेके छोटे-छोटे कर्मचारियोंकी भी

खातिर और खुशामद किया करते थे, जिसमें वह अभियुक्तोंपर कृपादृष्टि रक्खें। जीवनके अनुभवोंने उन्हें बतला दिया था कि सिद्धान्तोंकी अपेक्षा मनुष्य अधिक आदरणीय वस्तु है। औरोंने तो इच्छापूर्ण भोजन किया; लेकिन मनोहर इस समय हृदय-तापसे विकल था। उन पदार्थोंकी रुचिवर्द्धक सुगन्धि भी उसकी क्षुधाको जागृत न कर सकी। आज वह शब्द उसके कानोंमें गूँज रहे थे, जो अबतक केवल हृदयमें ही सुनाई देते थे—तुम्हारे कारण सारा गाँव मटियामेट हो गया, तुमने सारे गाँवको चौपट कर दिया। हाँ, यह कलङ्क मेरे माथेपर सदाके लिये लग गया, अब यह दाग कभी न छूटेगा। जो अभी बालक हैं वे मुझे गालियाँ दे रहे होंगे। उनके बच्चे मुझे गाँवका द्रोही समझेंगे। जब मरदोंके यह विचार हैं, जो सब बातें जानते हैं, जिन्हें भली भाँति मालूम है, कि मैंने गाँवको बचानेके लिये अपनी ओरसे कोई बात उठा नहीं रक्खी और जो यह अंधेर हो रहा है वह समयका फेर है, तो भला स्त्रियाँ क्या कहती होंगी, जो बेसमझ होती हैं? बेचारी बिलासी गाँवमें किसीको मुँह न दिखा सकती होगी। उसका घरसे निकलना मुश्किल हो गया होगा और क्यों न कहें? उनके सिरपर बीत रही है तो कहेगा कौन? अभी तो अगहनी घरमें खानेको हो जायेगी; लेकिन खेत तो बोये न गये होंगे, चैतमें जब एक दाना भी न उपजेगा, बाल-बच्चे दाने-दानेको रोयेंगे, तब उनकी क्या दशा होगी! मालूम होता है, इस कम्बलमें खटमल हो गये हैं, नोचे डालते हैं और यह रोना साल-दो-सालका नहीं है, कहीं सब काले-पानी भेज दिये गये, तो जन्मभरका रोना है। कादिर मियाँका लड़का तो घर सम्हाल लेगा; लेकिन और सभी मिट्टीमें मिल जायेंगे और यह सब मेरी करनीका फल है।

सोचते-सोचते मनोहरको झपकी आ गयी। उसने स्वप्न देखा कि एक चौड़े मैदानमें हजारों आदमी जमा हैं, फाँसी खड़ी

है और मुझे फाँसीपर चढ़ाया जा रहा है। हजारों आँखें मेरी ओर घृणाकी दृष्टिसे ताक रही हैं। चारों तरफसे यही ध्वनि आ रही है, इसीने सारे गाँवको चौपट किया। फिर उसे ऐसी भावना हुई कि मैं मर गया हूँ और कितने ही भूत-पिशाच मुझे चारों ओरसे घेरे हुए हैं, और कह रहे हैं, कि इसीने हमें दाने-दानेको तरसाकर मार डाला, यही पापी है, इसे पकड़कर आगमें झोंक दो। मनोहरके मुखसे सहसा एक चीख निकल आयी, आँखें खुल गयीं, कमरा खूब अन्धेरा था; लेकिन जागनेपर भी वही पैशाचिक, भयङ्कर मूर्त्तियाँ उसके चारों तरफ मँडराती हुई जान पड़ती थीं, मनोहरकी छाती बड़े वेगसे धड़क रही थी, जी चाहता था, बाहर निकल भागूँ; किन्तु द्वार बन्द थे।

अकस्मात् मनोहरके मनमें यह विचार अङ्कुरित हुआ—क्या मैं यही सब कौतुक देखने और सुननेके लिये जीऊँ? सारा गाँव, सारा देश मुझसे घृणा कर रहा है। बलराज भी मनमें मुझे गालियाँ दे रहा होगा। उसने मुझे कितना समझाया, लेकिन मैंने एक न मानी। लोग कहते होंगे, सारे गाँवको बँधवाकर अब यह मुस्टंडा बना हुआ है; इसे तनिक भी लज्जा नहीं, सिर पटककर मर क्यों नहीं जाता? बलराजपर भी चारों ओरसे बौछारें पड़ती होंगी, सुन-सुनकर कलेजा फटता होगा। अरे!—भगवान! यह कैसा उजाला है! नहीं, उजाला नहीं है। किसी पिशाचकी लाल लाल आँखें हैं, मेरी ही तरफ लपकी आ रही हैं, या नारायण! क्या करूँ? मनोहरकी पिंडलियाँ काँपने लगीं, यह लाल आँखें प्रति क्षण उसके समीप आती जाती थीं। वह न तो उधर देखही सकता था और न उधरसे आँखें ही हटा सकता था, मानों किसी आसुरिक शक्तिने उसके नेत्रोंको बाँध दिया हो। एक क्षणके बाद मनोहरको एककी जगह कई आँखें दिखाई देने लगीं, नहीं, प्रज्वलित, अग्निमय, रक्तयुक्त नेत्रोंका एक समूह है, धड़ नहीं, सिर नहीं, कोई अङ्ग नहीं, केवल विदग्ध आँखें ही हैं, जो मेरी तरफ

टूटे हुए तारोंकी भाँति सर्राटा भरता चली आती हैं। एक पल और हुआ, ये नेत्र-समूह शरीरयुक्त होने लगे और गौसखाँके आहत स्वरूपमें बदल गया। यकायक बाहर धड़ाकेकी आवाज हुई। मनोहर बदहवास होकर पीछेकी दीवारकी ओर भागा, लेकिन एक ही पगमें दीवारसे टकराकर गिर पड़ा, सिरमें चोट आयी, फिर उसे जान पड़ा कि कोई द्वारका ताला खोल रहा है, तब किसीने पुकारा 'मनोहर! मनोहर!' मनोहरने आवाज पहचानी जेलका दारोगा था। उसकी जानमें जान आयी। कड़ककर बोला,—'हाँ साहब, जागता हूँ।' पैशाचिक जगत्से निकलकर वह फिर चैतन्य संसारमें आया। उसे अब नेत्र-समूहका रहस्य खुला। दारोगाकी लालटेनकी ज्योति थी,जो किवाड़की दरारों-से कोठरीमें आ रही थी। इसी साधारण-सी बातने उसे इतना सशंक कर दिया था। दारोगा आज गश्त करने निकला था।

दारोगाके चले जानेके बाद मनोहर कुछ सावधान हो गया। शङ्कोत्पादक कल्पनाएँ शान्त हुईं; लेकिन अपने तिरस्कार और अपमानकी चिन्ताओंने फिर आ घेरा। सोचने लगा, एक वह हैं जो उजड़े हुए गाँवोंको आबाद करते हैं और जिनका यश संसार गाता है। एक मैं हूँ, जिसने गाँवको उजाड़ दिया। अब कोई भोरके समय मेरा नाम न लेगा। ऐसा जान पड़ता है कि सभी डामिल जायेंगे, एक भी न बचेगा। अभी न जाने कितने दिन यह मामला चलेगा। महीने भर लगे, दो महीने लग जायें, इतने दिनोंतक मैं सबकी आँखोंमें काँटेकी तरह खटकता रहूँगा, सब मुझे कोसेंगे, गालियाँ दिया करेंगे। आज दुखरनने कह ही सुनाया, कल कोई और ताने देगा, कादिरखाँको भी यह कैद अखरती हो होगी। और तो और, कहीं बलराज भी न खुल पड़े। हा! मुझे उसकी जवानीपर भी तरस न आया, मेरा लाल, मेरे ही हाथों···मैं अपने जवान बेटेको अपने ही हाथों···हा भग-वान्, अब यह दुःख नहीं सहा जाता, फाँसी अभी न जाने कब

होगी, कौन जाने कहीं सबके साथ मेरा भी डामुल हो जाय, तब तो मरते दमतक इन लोगोंके जले-कटे वचन सुनने पड़ेंगे। बलराज, तुझे कैसे बचाऊँ ? कौन जाने हाकिम यही फैसला करे कि यह जवान है, इसीने कुल्हाड़ा मारा होगा। हा भगवान ! तब क्या होगा ! क्या अपनी ही आँखोंसे यह नहीं ऐसे जीनेसे तो मरना ही अच्छा है। नकटा जिया बुरे हवाल। बस, एक ही उपाय है—हाँ !!

३६

फैजुल्लाहखाँका गौसखाँके पदपर नियुक्त होना गाँवके दुखियारोंके घावपर नमक छिड़कना था। पहले ही दिनसे खींच तान होने लगी और फैजूने विरोधाग्निका शान्त करनेकी कोई जरूरत न समझी। अब वह मुसल्लम गाँवके सत्ताधारी शासक थे। उनका हुक्म कानूनके तुल्य था। किसीको चूँ करनेकी मजाल न थी। गाँवका दूध-घी, उपले-लकड़ी, घास-पयाल,कद्दू-कुम्हड़े, हल-बैल सब उनके थे। जो अधिकार गौसखाँको जीवन-पर्यन्त न प्राप्त हुए वह समयके उलट-फेर और सौभाग्यसे फैजूल्लाहको पहले ही दिनसे प्राप्त हो गये। अन्याय और स्वेच्छाके मैदानमें अब उनके घोड़ोंको किसी ठोकरका भय न था। पहले कर्तारसिंहकी ओरसे कुछ शङ्का थी; किन्तु उनकी नीति-कुशलताने शीघ्र ही उसकी अभक्तिको परास्त कर दिया। वह अब उनका आज्ञाकारी सेवक,उनका परम शुभेच्छु था। वह अब गला फाड़-फाड़कर रामायणका पाठ करता, सारे गाँवके ईंट पत्थर जमा करके चौपालके सामने ढेर लगा दिये और उनपर घड़ों पानी चढ़ाता। घंटों चन्दन रगड़ता, घंटों भंग घोटता,कोई रोक-टोक करनेवाला न था। फैजुल्लाहखाँ नित्य प्रातःकाल टाँघनपर सवार होकर गाँवका चक्कर लगाते, कर्तार और बिन्दा महाराज लट्ठ लिये उनके पीछे-पीछे चलते। जो कुछ नोचे-खसोटे मिल जाता, वह लेकर लौट आते थे। यों तो समस्त गाँव उनके अत्याचारसे

पीड़ित था, पर मनोहरके घरपर इन लोगोंकी विशेष कृपा थी। मूलमेंही बिलासीपर बकाया लगानका नालिश हुई और उसके सब जानवर कुर्क हो गये। फैजू को पूरा विश्वास था कि अबकी खेतमें किसीसे मालगुजारी वसूल ता होगी नहीं, सभोंपर बेदखलीके दावे कर दूँगा और एक ही हल्लेमें सबको समेट लूँगा। मुसल्लम गाँवका बेदखल कर दूँगा, आमदनी चटपट दूनी हो जायेगी। पर इस दुष्कल्पनासे उन्हें सन्तोष न होता था। डाँट-फटकार, गाली-गलौजके बिना रोब जमाना कठिन था। अतएव नियमपूर्वक इस नीतिका सदुपयोग किया जाने लगा। बिलासी मारे डरके घरमेंसे निकलती ही न थी। उसकी रब्बी खेतमें खड़ी सूख रही थी, पानी कौन दे? न बैल अपने थे और न किसीसे माँगनेका ही मुँह था।

एक दिन सन्ध्या समय बिलासी अपने द्वारपर बैठी रो रही थी। यही उसका मामूल था। मनोहरकी आत्महत्याकी खबर उसे कई दिन पहले मिल चुकी थी। उसे अपने सर्वनाशका इतना शोक न था, जितना इस बातका कि कोई उसकी बात पूछनेवाला न था। जिसे देखिये, उसे जली-कटी सुनाता था। न कोई उसके घर आता न जाता। यदि वह बैठे-बैठे उकताकर किसीके घर चली जाती, तो वहाँ भी उसका अपमान किया जाता। वह गाँवकी नागिन समझी जाती थी, जिसके विषने समस्त गाँवको कालका ग्रास बना दिया। और तो और, उसकी बहू भी उसे ताने देती थी। सहसा उसने सुना कि सुक्खू चौधरी अपने मन्दिरमें आकर बैठे हैं। वह तुरत मन्दिरकी ओर चली। वह सहानुभूतिकी प्यासी थी। सुक्खू इन घटनाओंके विषयमें क्या कहते हैं, यह जाननेकी उसे उत्कट इच्छा थी। उसे आशा थी कि सुक्खू अवश्य निष्पक्ष भावसे अपनी सम्मति प्रकट करेंगे। जब वह मन्दिरके निकट पहुँची तो गाँवकी कितनी ही नारियों और बालकोंको वहाँ जमा पाया।

सुक्खूकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, सिरपर एक कंटोप था और शरीर पर एक रामनामी चादर। बहुत उदास और दुःखी जान पड़ते थे। नारियाँ उनसे गौसखाँकी हत्याकी चर्चा कर रही थीं। मनोहरकी खूब ले-दे हो रही थी। बिलासी मन्दिरके निकट पहुँचकर ठिठक गयी कि इतनेमें सुक्खूने उसे देखा और बोले, आओ बिलासी, आओ बैठो, मैं तो तुम्हारे पास आप ही जानेवाला था।

बिलासी—तुम तो कुशलसे रहे?

सुक्खू—जीता हूँ, बस यही कुशल है। जेलसे छूटा तो बद्रीनाथ चला गया, वहाँसे जगन्नाथ होता हुआ चला आता हूँ। बद्रीनाथमें एक महात्माके दर्शन हो गये, उनसे गुरुमंत्र भी ले लिया। अब माँगता खाता फिरता हूँ। गृहस्थीके जंजालसे छूट गया।

बिलासीने डरते-डरते पूछा, यहाँका हाल तो तुमने सुना ही होगा?

सुक्खू—हाँ, जबसे आया हूँ वही चर्चा हो रही है और उसे सुनकर मुझे तुमपर ऐसी श्रद्धा हो गयी है कि तुम्हारी पूजा करनेको जी चाहता है। तुम क्षत्राणी हो; अहीरकी कन्या होकर भी क्षत्राणी हो। तुमने वही किया जो क्षत्राणियाँ किया करती हैं। मनोहर भी क्षत्री है, उसने वही किया जो क्षत्री करते हैं, वह वीर आत्मा था। इस मन्दिरमें अब उसकी समाधि बनेगी और उसीकी पूजा होगी। इसमें अभीतक कसी देवताकी स्थापना नहीं हुई है, अब उसी वीर मूर्त्तिकी स्थापना होगी। उसने गाँवकी लाज रख ली, स्त्रीकी मर्जाद रख ली, यह सब क्षुद्र आत्माएँ बैठी उसे बुरा-भला कह रही हैं। कहती हैं, उसने गाँवका सर्वनाश कर दिया। इनमें लज्जा नहीं है, अपनी मर्जाद-का कुछ गौरव नहीं है। उसने गाँवका सर्वनाश नहीं किया, उसे वीरगति दे दी, उसका उद्धार कर दिया। नारियोंकी रक्षा करना पुरुषोंका धर्म है। मनोहरने अपने धर्मका पालन किया।

उसको बुरा वही कह सकता है जिसकी आत्मा मर गयी है,जो बेहया हो गया है। गाँवके दस-पाँच पुरुष फाँसी चढ़ जायें तो कोई चिन्ता नहीं। यहाँ एक-एक स्त्रीके पीछे लाखों सिर कट गये हैं। सीताके पीछे रावणका राज्य विध्वंस हो गया। द्रौपदीके पीछे १८ लाख योधा मर मिटे। इज्जतके लिये दस-पाँच जानें चली जायँ तो क्या बड़ा बात है! धन्य है मनोहर, तेरे साहसको, तेरे पराक्रमको, तेरे कलेजेको।

सुक्खूका एक एक शब्द वीर रसमें डूबा हुआ था। बिलासीके हृदयमें वह गुदगुदी हो रही थी, जो अपनी सराहना सुनकर हो सकती है। जी चाहता था, सुक्खूके चरणोंपर सिर रख दूँ; किन्तु अन्य स्त्रियाँ सुक्खूकी ओर कुतूहलसे ताक रही थीं कि यह क्या बकता है।

एक क्षणके बाद सुक्खूने बिलासीसे पूछा, खेती-बारीका क्या हाल है?

बिलासीके खेत सूख रहे थे, पर अपनी विपत्ति-कथा सुनाकर वह सुक्खूको दुःखी नहीं करना चाहती थी। बोली,दादा,तुम्हारी दयासे खेती अच्छी हो गयी है, कोई चिन्ता नहीं है। कई और साधु आ गये, जो सुक्खूके साथी जान पड़ते थे। उन्होंने धूनी जलायी और चरसके दम लगाने शुरू किये। गाँवके लोग भी एक-एक करके वहाँसे चलने लगे। जब बिलासी जाने लगी तो सुक्खूने कहा, बिलासी, मैं पहर रात रहे यहाँसे चला जाऊँगा, घूमता-घामता कई महीनोंमे आऊँगा। तब यहाँ मूर्त्तिकी स्थापना होगा। हम उस यज्ञके लिये भीख माँगकर रुपये जमा करते हैं। तुम्हें किसी बातकी तकलीफ हो तो कहो।

बिलासी—नहीं दादा, तुम्हारी दयासे कोई तकलीफ नहीं है।

सुक्खू तो प्रातःकाल चले गये,पर बिलासीपर उनकी भावपूर्ण बातोंका गहरा असर पड़ा। अब वह किसी दलित दीनकी

भाँति गाँववालोंके व्यंग और लांछन न सुनती और न किसीको उसपर उतनी निर्भयतासे आक्षेप करनेका साहस ही होता था। इतना ही नहीं, बिलासीकी बातचीत, चाल-ढालसे अब आत्म-गौरव टपका पड़ता था। कभी-कभी वह बढ़कर बातें करने लगती, पड़ोसियोंसे कहती—"तुम अपनी लाज बेचकर अपनी चमड़ीको बचाओ, यहाँ इज्जतके पीछे जानतक दे देते हैं। मैं विधवा हो गयी तो क्या, घर सत्यानास हुआ तो क्या, किसीके सामने आँख तो नीची नहीं हुई। अपनी लाज तो रक्खी।" पतिकी मृत्यु और पुत्रका वियोग अब उतना असह्य न था।

एक दिन उसने इतनी डींग मारी कि उसका बहूसे न रहा गया। चिढ़कर बोली—अम्माँ, ऐसी बातें करके घावपर नमक न छिड़को, तुम सब सुख-विलास कर चुकी हो, अब विधवा ही हो गयी तो क्या, उन दुखयारियोंसे पूछो, जिनकी अभी पहाड़-सी उमिर पड़ी है, जिन्होंने अभी जिन्दगीका कुछ सुख नहीं जाना है। अपनी मरजाद सबको प्यारी होती है; पर उसके लिये जनमभरका रँडापा सहना कठिन है। तुम्हें क्या, आज नहीं कल गौड़ होतीं! तुम्हारे भी खेलने-खानेके दिन होते तो देखती कि अपनी लाजको कितनी प्यारी समझती हो।

बिलासी तिलमिला उठी। उस दिनसे बहूसे बोलना छोड़ दिया, यहाँतक कि बलराजकी भी चर्चा न करती। जिस पुत्र पर जान देती थी, उसके नामसे भी घृणा करने लगी, बहूके इन अरुचिकर शब्दोंने उस मातृस्नेहका अन्त कर दिया, जो २५ सालसे जीवनका अवलम्ब और आधार बना हुआ था। कुछ दिनोंतक तो उसने मौनरूपसे अपना कोप प्रकट किया; किन्तु जब यह प्रयोग सफल होता न दीख पड़ा तो उसने बहूकी निन्दा करनी शुरू की। गाँवमें कितनी ही ऐसी वृद्धा महिलाएँ थीं, जो अपनी बहुओंसे जला करती थीं। उन्हें बिलासीसे सहानुभूति हो गयी। शनैः शनैः यह कैफियत हुई कि बिलासीके बरोठेमें सासोंकी नित्य

बैठक होती और बहुओंके खूब दुखड़े रोये जाते। उधर बहुओंने भी अपनी आत्मरक्षाके लिये एक सभा स्थापित की। इसकी बैठक नित्य दुखरन भगतके घर होती। बिलासीकी बहू इस सभाकी संचालिका थी। इस प्रकार दोनोंमें विरोध बढ़ने लगा। यहाँकी बातें किसी-न-किसी प्रकार वहाँ जा पहुँचतीं और वहाँकी बातें भी किसी गुप्त दूती द्वारा यहाँ आ जातीं। उनके उत्तर दिये जाते, उत्तरोंके प्रत्युत्तर मिलते और नित्य यही कार्य्यक्रम चलता रहता था। इस प्रश्नोत्तरमें जो आकर्षण था, वह अपनी विपत्ति और विडम्बनापर आँसू बहानेमें कहाँ था? इस व्यंग-संग्राममें एक सजीव आनन्द था। द्वेषकी कानाफूसी शायद मधुर गानसे भी अधिक शोकहारा होती है!

यहाँ तो यह हाल था, उधर फसल खेतोंमें सूख रही थी। मियाँ फैजुल्लाह सूखे खेतोंको देखकर खिल जाते थे। देखते-देखते चैतका महीना आ गया, मालगुजारीका तकाजा होने लगा। गाँवके बचे हुए लोग अब चेते। वह भूल-से गये थे कि मालगुजारी भी देना है। दरिद्रतामें मनुष्य प्रायः भाग्यका आश्रित हो जाता है। फैजुल्लाहने सख्ती करनी शुरू की। किसीको चौपालके सामने धूपमें खड़ा करते, किसीको मुश्कें कसकर पिटवाते। दीन-नारियोंके साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता, किसीकी चूड़ियाँ तोड़ी जातीं, किसीके जूड़े नोचे जाते। इन अत्याचारोंको रोकनेवाला अब कौन था? सत्याग्रहमें अन्यायको दमन करनेकी शक्ति है, यह सिद्धान्त भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध हो गया। फैजू जानता था कि पत्थरको दबानेसे तेल न निकलेगा, लेकिन इन अत्याचारोंसे उसका उद्देश्य गाँववालोंका मान-मर्दन करना था। इन दुष्कृत्योंसे उसकी पशुवृत्तिको असीम आनन्द मिलता था।

धीरे-धीरे जेठ भी गुजरा, लेकिन लगानकी एक कौड़ी न वसूल हुई, खेतमें अनाज होता तो कोई-न-कोई महाजन

खड़ा हो जाता। लेकिन सूखी खेतीको कौन पूछता है ? अन्तमें ज्ञानशङ्करने बेदखली दायर करनेकी ठान ली। इसीकी देर थी, नालिश हो गयी; किन्तु गाँवमें रुपयोंका बन्दोबस्त न हो सका। उज्रदारी करनेवाला भी कोई न निकला। सबको विश्वास था, कि एकतरफा डिग्री होगी और सब-के-सब बेदखल हो जायेंगे। फैजू और कर्तार बगलें बजाते फिरते थे। अब मैदान मार लिया है! खाँ साहब गये तो क्या, गाँव साफ हो गया। कोई दखीलकार असामी रहेगा ही नहीं, जितनी चाहें जमीनका दर बढ़ा सकते हैं। हजारकी जगह दो हजार वसूल होंगे। इस कारगुजारीका सेहरा मेरे सिर बँधेगा। दूर-दूरतक मेरी धूम हो जायगी। इन कल्पनाओंसे फैजू सियाँ फूले न समाते।

निदान फैसलेकी तारीख आ गयी। कर्तारसिंहने मलमलका ढीला कुरता और गुलाबी पगड़ी निकाली, जूतेमें कड़वा तेल भरा, लाठीमें तेल मला, बाल बनवाये और माथेपर भभूत लगाई। फैजुल्लाहखाँने चारजामेकी मरम्मत करायी, अपनी काली अचकन और सुफेद पगड़ी निकाली। बिन्दा महाराजने भी धुली हुई गाढ़ेकी मिर्जई और गेरूमें रँगी हुई धोती पहनी। बेगारोंके सिरोंपर कम्बल, टाट आदि लादे गये और तीनों आदमी कचहरी चलनेको तैयार हुए। केवल खाँ साहबकी नमाजकी देर थी।

किन्तु गाँवमें जरा भी हलचल न थी। मर्दोंमें कादिरके छोटे लड़केके सिवा और सभी नीच जातियोंके लोग थे, जिन्हें मान-अपमानका ज्ञान ही न था और वह बेचारा कानूनी बातोंसे अनभिज्ञ था। झपटके दिलमें ऐसा हौल समाया हुआ था कि घरसे बाहर ही न निकलते थे। रहीं स्त्रियाँ, वे दीन अबलाएँ कानूनका मर्म क्या जानें! आज भी नियमानुसार उनके दोनों अखाड़े जमे हुए थे। बूढ़ियाँ कहती थीं खेत निकल जायें, हमारी बलासे, हमें क्या करना है ? आज मरे कल दूसरा दिन, रहे भी तो हमारे किसकाम आयेंगे! इन रानियोंका घमण्ड तो

चूर हो जायेगा ! यहाँतक कि विलासी भी, जो इस सारी विपत्ति-कथाकी कैकेयी थी आज निश्चिन्त बैठी हुई थी। विपक्षी-दलको आज सन्धि-प्रार्थनाकी इच्छा हो रही थी; लेकिन कुछ तो अभिमान और कुछ प्रार्थनाकी स्वीकृतिकी निराशा इच्छा-को व्यक्त न होने देती थी ।

आठ बजे खाँ साहबकी नमाज पूरी हुई, उधर बिन्दा महा-राजने चबेना खाकर तम्बाकू फाँका और कर्तारसिंहने घोड़ेको लानेका हुक्म दिया, कि इतनेमें सुक्खू चौधरी सामनेसे आते हुए दिखाई दिये। वही पहलेका-सा वेश था; सिरपर कन्टोप, ललाटपर चन्दन, गलेमें चादर, हाथमें एक चिपटा। आकर चौपालमें जमीनपर बैठ गये। गाँवके लड़के, जो उनके साथ दौड़ते आये थे, बाहर ही रुक गये फैजूने पूछा, चौधरी, कहो, खैरियतसे तो रहे। तुम्हें जेलसे निकले कितना अरसा हुआ?

चौधरीने कर्तारसे चिलम ली, एक लम्बा दम लगाया और मुँहसे धुएँका बादल निकालते हुए बोले, आज बेदखलीकी तारीख है न ?

कर्तार—कागद-पत्तर देखा जाय तो जान पड़े। यहाँ नित्त एक-न-एक मामला लगा ही रहता है। कहाँतक कोई याद रक्खे !

चौधरी—बेगारोंपर एक विपत्ति तो थी ही, यह एक और बला सवार हो गयी ।

फैजू—मैं मजबूर हो गया। क्या करता ? जाब्ते और कानून से बँधा हुआ हूँ। चैत, वैशाख, जेठ—तीन महीनेतक तकाजे करता रहा, इससे ज्यादा मेरे बसमें और क्या था ?

यह कहकर उन्होंने चौधरीकी ओर इस अन्दाजसे देखा, मानों वह शील और दयाके पुतले हैं।

चौधरी—अगर आज सब रुपये वसूल हो जायें तो मुकदमा खारिज हो जायेगा न ?

फैजूने विस्मित होकर चौधरीको देखा और बोले—खर्चेका सवाल है।

चौधरी—अच्छा, बतलाइये, आपके कुल कितने रुपये होते हैं? खर्च भी जोड़ लीजिये।

यह कहकर चौधरीने कमरसे नोटोंका एक पुलिन्दा निकाला, एक थैलीमेंसे कुछ रुपये भी निकाले और खाँसाहबकी ओर प्रतीक्षा भावसे देखने लगे। फैजूके होश उड़ गये, कर्तारके चेहरेका रंग उड़ गया, मानों घरसे किसीके मरनेकी खबर आ गयी हो। बिन्दा महराजने ध्यानसे रुपयोंको देखा। उन्हें संदेह हो रहा था, कि यह कोरे इन्द्रजाल न हों। किसीके मुँहसे बात न निकलती थी। जिस आशालताको बरसोंसे पाल और सींच रहे थे, वह आँखके सामने एक पशुके विकराल मुखका ग्रास बनी जाती थी। इस सुअवसरके लिये उन लोगोंने कितनी आयोजनाएँ की थीं, कितनी कूटनीतिसे काम लिया था, कितने अत्याचार किये थे और जब वह शुभ घड़ी आयी, तो निर्दय भाग्यविधाता उसे हाथोंसे छीने लेता था। गौसखाँका खून रंग लाकर अब निष्फल हुआ जाता था। आखिर फैजूने बड़े गम्भीर भावसे कहा—इसका फैसला तो अब अदालतके हाथ है।

अदालतका नाम लेकर वह चौधरीको भयभीत करना चाहते थे।

चौधरी—अच्छी बात है, तो वहीं चलो।

कर्तारने नैतिक सर्वज्ञताके भावसे कहा, पहले ये लोग मोहलतकी दर्खास्त दें, उस दर्खास्तपर हमारी तरफसे उजुरदारी होगी, इसपर हाकिम जो कुछ तजवीज करेगा वह होगा। हम लोग रुपया कैसे ले सकते हैं? जाब्तेके खिलाफ है।

बिन्दा महराजके सम्मुख एक दूसरी ही समस्या उपस्थित थी—इसे इतने रुपये कहाँ मिल गये? अभी जेलसे छूटकर आया है। गाँववालोंसे फूटी कौड़ी भी न मिली होगी। इसके

पास जो लेई पूँजी थी, वह तालाब और मंदिर बनवानेमें खर्च हो गयी। अवश्य इसे कोई ऐसी जड़ी-बूटी हाथ लग गयी है, जिससे यह रुपये बना लेता है। साधुओंके हाथमें बड़े-बड़े करतब होते हैं।

फैजू समझ गये कि इस धाँधलीसे काम न चलेगा। कहीं इसने अदालतके सामने जाकर सब रुपये गिन दिये, तो अपना-सा मुँह लेकर रह जाना पड़ेगा। निराश होकर जूते उतार दिये और नालिशकी परतें निकालकर हिसाब जोड़ने लगे, उसपर अदालत का खर्च, अमलोंकी रिश्वत, वकीलका मेहनताना, जमींदारका नजराना आदि और बढ़ाया तब बोले, कुल १७५०) होते हैं।

चौधरी—फिर देख लीजिये, कोई रकम रह न गयी हो। मगर यह समझ लेना कि हिसाबसे एक कौड़ी भी बेसी ली तो तुम्हारा भला न होगा।

बिन्दा महराजने सशंक होकर कहा, खाँसाहब, जरा फिर-से जोड़ लो।

कर्तार—सब जोड़ा जोड़ाया है, रात-दिन तो यही किया करते हैं, लाओ निकालो १७५०)।

चौधरी—१७५०) लेना है, तो अदालतमें हो लेना, यहाँ तो मैं १००० से बेसी न दूँगा।

फैजू—और अदालतका खर्च ?

सहसा चौधरीने अपना चिमटा उठाया और इतने जोरसे फैजुल्लाहके सिरपर मारा कि वह जमीनपर गिर पड़ा। तब बोले, यही अदालतका खर्च है, जो चाहे और ले लो। बेईमान, पापी कहींका। कारिंदा बना फिरता है। कलका बनिया आजका सेठ! इतनी जल्द आँखोंमें चरबी छा गयी। तू भी तो किसी जमींदार-का असामी है, तेरा घर देख आया हूँ, तेरे माँ-बाप, भाई बन्द, सबका हाल देख आया हूँ। वहाँ उन सबका बेगार भरते-भरते कचूमर निकला जाता है। तूने चार अक्षर पढ़ लिये तो जमीनपर पाँव नहीं रखता, दीन-दुखियारोंको लूटता फिरता है। ८००) की

नालिश है, १००) अदालतका खरचा है। मैं कचहरी जाकर पेशकारसे पूछ आया। उसके तू १७५०) माँगता है। और क्यों रे ठाकुर, तू भी इस तुरुकके साथ पड़कर अपनेको भूल गया? चिल्ला-चिल्लाकर रामायण पढ़ता है, भागवतकी कथा कहता है, ईंट-पत्थरके देवता बनाकर पूजता है, क्या पत्थर पूजते-पूजते तेरा हृदय भी पत्थरका हो गया? यह चन्दन क्यों लगाता है? तुझे इसका क्या अधिकार है? तू धनके पीछे धरमको भूल गया? तुझे धन चाहिये? तेरे भागमें धन लिखा है, तो यह थैली उठा ले। (यह कहकर चौधरीने रुपयोंकी थैली कर्तारकी ओर फेंकी) देख तो तेरे भागमें धन है या नहीं? तेरा मन इतना पापी हो गया है, कि तू सोना भी छुए तो मिट्टी हो जायेगा। थैली छूकर देख ले, अभी ठीकरी हुई जाती है।

कर्तारने पहले बड़ी धृष्ट अश्रद्धासे बातें करनी शुरू की थीं। वह यह दिखाना चाहता था— मैं साधुओंका भेष देखकर रोबमें आनेवाला आदमी नहीं हूँ। ऐसे भोले-भाले काठके उल्लू कहीं और होंगे। पर चौधरीकी यह हिम्मत देखकर और यह कठोपदेश सुनकर उसकी अभक्ति लुप्त हो गयी। उसे अब ज्ञान हुआ कि यह वह चौधरी नहीं है जो गौसखाँकी हाँ में-हाँ मिलाया करता था; किन्तु बिना परीक्षा किये वह अब भी भक्तिसूत्रमें न बँधना चाहता था। यहाँतक कि वह उनकी सिद्धिका परदा खोलकर उनकी खबर लेनेपर भी उतारू था। उसने थैलीको ध्यानसे देखा, रुपयोंसे भरी हुई थी। तब उसने डरते-डरते थैली उठायी; किंतु उसके छूते ही एक अत्यन्त विस्मयकारी दृश्य दिखाई दिया। रुपये ठीकरे हो गये! यह कोई मायालीला थी, अथवा कोई जादू या सिद्धि, कौन कह सकता है! मदारीका खेल था या नजरबंदी का तमाशा, चौधरी ही जानें। रुपयोंकी जगह साफ लाल-लाल ठीकरे झलक रहे थे। कर्तारके हाथसे थैली छूटकर गिर पड़ी, वह हाथ बाँधकर बड़ी भक्ति-भावसे चौधरीके पैरोंपर गिर पड़ा और

बोला, बाबा, मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैं अधम, पापी, दुष्ट हूँ; मेरा उद्धार कीजिये। मैं अब आपकी ही सेवामें रहूंगा, मुझे इस लोभके गड्ढेसे निकालिये।

चौधरी—दीनोंपर दया करो और वही पुण्य तुम्हें इस गड्ढेसे निकालेगा। दया ही सब मन्त्रोंका मूल है।

फैजू मियाँ गर्द झाड़कर उठ बैठे थे। वृद्ध, दुर्बल चौधरी उस समय उनकी आँखोंमें एक देव-सा दीख पड़ता था। यह चमत्कार देखकर वह भी दङ्ग रह गये। अपनी खता माफ कराने लगे—बाबाजी, क्या करें, जञ्जालमें फँसकर सभी कुछ करना पड़ता है! अहलकार, अमले, अफसर, अर्दली, चपरासी सभीकी खातिर करनी पड़ती है। अगर यह चालें न चलें तो उनका पेट कैसे भरें? यहाँ एक दिन भी निबाह न हो। अब मुझे भी गुलामीमें कबूल कीजिये।

कर्तारने चिलमपर चरस रखकर चौधरीको दी। बिन्दा महराजका संशय भी मिट चुका था। बोले, कुछ जलपानकी इच्छा हो तो शर्बत बनाऊँ। फैजुल्लाहने उनके बैठनेको अपना कालीन बिछा दिया। चौधरी प्रसन्न हो गये। अपनी झोलीसे एक जड़ी निकालकर तीनोंको दी और कहा, यह मिर्गीकी आजमायी हुई दवा है, जनमकी मिर्गी भी इससे जाती रहती है, इसे हिफाजतसे रखना और देखो, आजही मुकदमा उठा लेना, यह एक हजारके नोट हैं, गिन लो, सब असामियोंको अलग अलग बेबाकीकी रसीद दे देना। अब मैं जाता हूँ। कुछ दिनोंमें फिर आऊँगा।

३७

प्रातःकाल ज्योंही मनोहरकी आत्महत्याका समाचार विदित हुआ, जेलमें हाहाकार मच गया। जेलके दारोगा, अमले, सिपाही, पहरेदार—सबके हाथोंके तोते उड़ गये। जरा देरमें पुलिसको खबर मिली, तुरंत छोटे-बड़े अधिकारियोंका दल आ पहुँचा।

मौकेकी जाँच होने लगी, जेल कर्मचारियोंके बयान लिखे जाने लगे। एक घण्टेमें सिविल सरजन और डाक्टर प्रियनाथ भी आ गये, फिर मैजिस्ट्रेट,कमिश्नर और सिटी मैजिस्ट्रेटका आगमन हुआ। दिनभर तहकीकात होती रही, दूसरे दिन भी यही जमघट रहा और यही कार्य्यवाही होती रही; लेकिन साँप मर चुका था, उसकी बाँबीको लाठीसे पीटना व्यर्थ था। हाँ, जेल-कर्मचारियोंपर बन आयी, जेल दारोगा ६ महीनेके लिये मुअत्तल कर दिये गये; रक्षकोंपर कड़े जुर्माने हुए। जेलके नियमोंमें सुधार किया गया, खिड़कियोंपर दोहरी छड़ें लगा दी गयीं, शेष अभियुक्तोंके हाथोंमें हथकड़ियाँ न डाली गयी थीं, अब दोहरी हथकड़ियाँ डाल दी गयीं। प्रेमशङ्कर यह खबर पाते ही दौड़े हुए जेल आये; पर अधिकारियोंने उन्हें फाटकके सामनेसे ही भगा दिया। अबतक जेल-कर्मचारियोंने उनके साथ सब प्रकारकी रियायत की थी, अभियुक्तोंसे उनकी मुलाकात करा देते थ, उनके यहाँसे आया हुआ भोजन अभियुक्तोंतक पहुँचा देते थे। पर आज उन सबका रुख बदला हुआ था। प्रेमशङ्कर जेलके सामने खड़े सोच रहे थे, अब क्या करूँ कि पुलिसका प्रधान अफसर जेलसे निकला और उन्हें देखकर बोला, यह तुम्हारे ही उपदेशोंका फल है, तुम्हींने शेष अपराधियोंको बचानेके लिये यह आत्महत्या करायी है। जेलके दारोगाने भी उनसे इसी तरहकी बातें कीं। इन तिरस्कारोंसे प्रेमशङ्करको बड़ा दुःख हुआ। जीवन उन्हें नये-नये अनुभवोंकी पाठशाला-सी जान पड़ता था। यह पहला ही अवसर था, कि उनकी दयार्द्रता और सदिच्छाकी अवहेलना की गयी। वह आध घण्टेतक चिन्तामें डूबे वहीं खड़े रहे, तब अपने झोंपड़ेकी ओर चले, मानों अपने किसी प्रियबन्धुकी दाहक्रिया करके आ रहे हों।

घर पहुँचकर वह फिर उन्हीं विचारोंमें मग्न हुए। कुछ समझमें न आता कि जीवनका क्या लक्ष्य बनाया जाये। क्षुद्र-

लौकिकतासे चित्तको घृणा होती थी और उत्कृष्ट नियमोंपर चलनेके नतीजे उल्टे होते थे। उन्हें अपनी विवशताका ऐसा निराशाजनक अनुभव कभी न हुआ था। मानवबुद्धि कितनी भ्रमयुक्त है; उसकी दृष्टि कितनी संकीर्ण! इसका ऐसा स्पष्ट प्रमाण कभी न मिला था। यद्यपि वह अहंकारको अपने पास न आने देते थे, पर वह किसी गुप्त मार्गसे उनके हृदयस्थलमें पहुँच जाता था। अपने सद्कार्योंको सफल होते देखकर उनका चित्त उल्लसित हो जाता था और हृदयकर्णोंमें किसी ओरसे मन्द-स्वरोंमें सुनाई देता था—मैंने कितना अच्छा काम किया! लेकिन ऐसे प्रत्येक अवसरपर, एक ही क्षणके उपरान्त,उन्हें कोई ऐसी चेतावनी मिल जाती थी, जो उनके अधिकारको चूर-चूर कर देती थी: मूर्ख! तुझे अपनी सिद्धान्तप्रियताका अभिमान है! देख, वह कितने कच्चे हैं। तुझे अपनी बुद्धि और विद्याका घमण्ड है! देख, वह कितनी भ्रांतिपूर्ण है। तुझे अपने ज्ञान और सदाचारका गरूर है! देख वह कितना अपूर्ण और भ्रष्ट है। क्या तुम्हें निश्चय है कि तुम्हारी ही उत्तेजनाएँ गौसखाँकी हत्याका कारण नहीं हुईं? तुम्हारे ही कटूपदेशोंने मनोहरकी जान नहीं ली? तुम्हारे ही वक्र नीतिपालनने ज्ञानशङ्करको, श्रद्धाको तुमसे विमुख नहीं किया।

यह सोचते-सोचते उनका ध्यान अपनी आर्थिक कठिनाइयों-की ओर गया। अभी न जाने यह मुकदमा कितने दिनों चलेगा? इर्फानअली कोई तीन हजार ले चुके और शायद अभी उनका इतना ही बाकी है। गन्ने तैयार हैं; लेकिन हजार रुपयेसे ज्यादा न ला सकेंगे। बेचारे गाँववालोंको कहाँतक दबाऊँ? फलोंसे जो कुछ मिला, वह सब खर्च हो गया, किसीको अभी हिसाब तक नहीं दिखाया। न जाने यह सब अपने मनमें क्या समझते हों। लखनपूरकी कुछ खबर न ले सका। मालूम नहीं, उन दुखि-यारियोंपर क्या बीत रही है।

अकस्मात् भोलाकी स्त्री बुधिया आकर बोली, बाबूजी, दो दिनसे घरमें चूल्हा नहीं जला और आपका हलवाहा मेरी जान खाये जाता है। बताइये, मैं क्या करूँ? क्या चोरी करूँ? दिन-भर चक्की पीसती हूँ और जो कुछ पाती हूँ, वह सब इसी गृह-स्तीमें झोंक देती हूँ, तिसपर भी भरपेट दाना नसीब नहीं होता। आप उसके हाथमें तलब न दिया करें। सब जुएमें उड़ा देता है। आप उसे न डाँटते हैं, न समझाते हैं। आप समझते हैं कि मजूरी बढ़ाते ही वह ठीक हो जायगा। आप उसे हजार-का महीना भी दें तो भी उसके लिये पूरे न पड़ेंगे। आजसे आप तलब मेरे हाथ दिया करें।

प्रेमशङ्कर—जुआ खेलना तो उसने छोड़ न दिया था?

बुधिया—वही दो एक महीने नहीं खेला था। बीच-बीचमें भी कभी छोड़ देता है, लेकिन उसका तो लत पड़ गयी है। आप तलब मुझे दे दिया करें, फिर देखूँ कैसे जुआ खेलता है। आपका सीधा सुभाव है, जब माँगता है तभी निकालकर दे देते हैं।

प्रेम—मुझसे तो वह यही कहता है कि मैंने जुआ छोड़ दिया। जब कभी रुपये माँगता है, तो यही कहता है कि खानेको नहीं है। न दूँ तो क्या करूँ?

बुधिया—तभी तो उसके मिजाज नहीं मिलते। कुछ पेशगी तो नहीं ले गया है?

प्रेम—उसीसे पूछो; ले गया होगा तो बतायेगा न।

बुधिया—आपके यहाँ हिसाब-किताब नहीं है क्या?

प्रेम—मुझे कुछ याद नहीं है।

बुधिया—आपको याद नहीं है तो वह बता चुका। शराबियों जुआरियोंके भी कहीं ईमान होता है?

प्रेम—क्यों, क्या शराबसे ईमान धुल जाता है?

बुधिया—धुल नहीं जाता और क्या? देखिये, बुलाके आपके

मुँहपर पूछती हूँ। या नारायन, निगोड़ा तलब-की-तलब उड़ा देता है, उसपर पेशगी लेकर खेल डालता है। अब देखूँ, कहाँसे भरता है।

यह कहकर वह झल्लायी हुई गयी और ज़रा देरमें भोलाको साथ लिये आयी। भोलाकी आँखें लाल थीं। लज्जासे सिर झुकाये हुए था। बुधियाने पूछा, बताओ, तुमने बाबूजीसे कितने रुपये पेशगी लिये हैं?

भोलाने स्त्रीकी ओर सरोष नेत्रोंसे देखकर कहा—तू कौन होती है पूछनेवाली? बाबूजी जानते नहीं क्या?

बुधिया—बाबूजी ही तो पूछते हैं, नहीं तो मुझे क्या पड़ी थी?

भोला—इनके ऊपर लाख आते हैं और मैं इनका जनम-भरका गुलाम हूँ।

बुधिया—देखा बाबूजी! कहती न थी, वह कुछ न बतायेगा? जुआरी कभी ईमानके सच्चे हुए हैं कि यही होगा?

भोला—तू समझती है, कि मैं बातें बना रहा हूँ। बातें उनसे बनायी जाती हैं, जो दिलके खोटे होते हैं, जो एक धेला देकर पैसेका काम कराना चाहते हैं। देवताओंसे बात नहीं बनायी जाती। यह जान इनकी है, यह तन इनका है, इशारा भर मिल जाय।

बुधिया—अरे जा, जालिये कहींके! बाबूजी बीसों बार समझाके हार गये। तुझसे एक जुआ तो छोड़ा जाता नहीं, तू और क्या करेगा? जानपर खेलनेवाले और होते हैं।

भोला—झूठी कहींकी, मैं कब जुआ खेलता हूँ?

प्रेम—सच कहना भोला, क्या तुम अब भी जुआ खेलते हो तुम मुझसे कई बार कह चुके हो कि मैंने बिलकुल छोड़ दिया।

भोलाका गला भर आया। नशेमें हमारे मनोभाव अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाते हैं। वह जोरसे रोने लगा। जब ग्लानिका वेग कम हुआ, तो सिसकियाँ लेता हुआ बोला—मालिक यह

आपका एक हुकुम है, जिसे मैंने टाला है। और कोई बात नहीं टाली। आप मुझे यहीं बैठाकर सिरपर १०० जूते गिनकर लगायें, तब यह भूत उतरेगा। मैं रोज सोचता हूँ कि अब कभी न खेलूँगा, पर साँझ होते ही मुझे जैसे कोई ढकेलकर फड़की ओर ले जाता है। हा! मैं आपसे झूठ बोला, आपसे कपट किया। भगवान मेरी गति करेंगे? यह कहकर वह फिर फूट-फूटकर रोने लगा।

लज्जाभावकी यह पवित्रता देखकर प्रेमशङ्करकी आँखें भी भर आयीं। वह शराबी और जुआरी भोला, जिसे वह नीच समझते थे, ऐसा पवित्रात्मा, ऐसा निर्मल-हृदय था! उन्होंने उसे गलेसे लगा लिया; तुम क्यों रोते हो? मैं तुम्हें कुछ कहता थोड़े ही हूँ?

भोला - आपका कुछ न कहना ही तो मुझे मारे डालता है। मुझे गालियाँ दीजिये, कोड़ोंसे मारिये, तब यह नशा उतरेगा। हम लातोंके देवता बातोंसे नहीं मानते।

प्रेम—तुम्हारी तलब बुधियाको दे दिया करूँ?

भोला—जी हाँ, आजसे मुझे एक कौड़ी भी न दिया करें।

प्रेम - (बुधियासे) लेकिन जो यह जुएसे भी बुरी कोई आदत पकड ले तो?

बुधिया—जुएसे बुरी चोरी है। जिस दिन इसे चोरी करते देखूँगी, जहर दे दूँगी। मुझे राँड़ बनना मंजूर है, चोरकी लुगाई नहीं बन सकती।

उसने भोलाका हाथ पकड़कर घर चलनेका इशारा किया और प्रेमशङ्करके लिये एक जटिल समस्या छोड़ गयी।

३५

डा० इर्फान अली बैठे सोच रहे थे कि मनोहरकी आत्महत्या का शेष अभियुक्तोंपर क्या असर पड़ेगा। कानूनी ग्रन्थोंका ढेर

सामने रक्खा हुआ। बीचमें विचार करने लगते थे, मैंने यह मुक-दमा नाहक लिया। रोज १००) का नुकसान हो रहा है और अभी मालूम नहीं, कितने दिन लगेंगे। लाहौल! फिर रुपयेकी तरफ ध्यान गया! कितना ही चाहता हूँ, कि दिलको इधर न आने दूँ, मगर ख्याल आ ही जाता है। वकालत छोड़ते भी नहीं बनती। ज्ञानशङ्करसे प्रोफेसरीके लिये कह तो आया है, लेकिन जो सचमुच यह जगह मिल गयी तो टेढ़ी खीर होगी। मैं अब ज्यादा दिनोंतक इस पेशेमें रह नहीं सकता, और न सही तो सेहतके लिये जरूर हो छोड़ देना पड़ेगा। बस, यही चाहता हूँ कि घर बैठे १०००) माहवारी रकम मिल जाया करे। अगर प्रोफेसरीसे १०००) भी मिले तो भी काफी होगा। नहीं, अभी छोड़नेका वक्त नहीं आया। ३ सालतक सख्त मेहनत करनेके बाद अलबत्ता छोड़नेका इरादा कर सकता हूँ। लेकिन इन तीन बरसोंतक मुझे चाहिये कि रियायत और मुरौवतको बाला-यताक रख दूँ। सबसे पूरा मेहनताना लूँ, वरना आजकलकी तरह फँसता रहा तो जिन्दगी भर छुटकारा न होगा।

हाँ, तो आज इस मुकदमेंमें बहस होगी। उफ़! अभीतक तैयार नहीं हो सका। गवाहोंके बयानोंपर निगाह डालनेका भी मौका न मिला। खैर, कोई मुजायका नहीं। कुछ-न-कुछ बातें तो याद ही हैं। बहुत कुछ उधरके वकीलकी तकरीरसे सूझ जायेगी। जरा नमक-मिर्च और मिला दूँगा, खासा बहस हो जायगी। यह तो रोजका ही काम है, इसकी क्या फिक्र ...

इतनेमें अमौलीके राजा साहबका मोटर आ पहुँचा। डाक्टर साहबने बाहर निकलकर राजा साहबका स्वागत किया। राजा साहब अँग्रेजीमें कोरे, लेकिन अंग्रेजी रहन-सहन, रीति-नीतिमें पारंगत थे। उनके कपड़े विलायतसे सिलकर आते थे, लड़कों को पढ़ानेके लिये लेडियाँ नौकर थीं और रियासतका मैनेजर भी अंग्रेज था। राजा साहबका अधिकांश समय अंग्रेजी दूकानों-

की सैर करनेमें कटता था। टिकट और सिक्के जमा करनेका शौक था, थियेटर जानेमें कभी नागा न करते थे। कुछ दिनोंसे उनके मैनेजरने रियासतकी आमदनीपर हाथ लपकाना शुरू किया था। इसलिये उन्हें हटाना चाहते थे; किन्तु अंग्रेज अधिकारियोंके भयसे साहस न होता था। मैनेजर स्वयं राजा साहबको कुछ न समझता था, आमदनीका हिसाब देना तो दूर रहा। राजा साहब इस मामलेको दीवानीमें लानेका विचार कर रहे थे। लेकिन मैनेजर साहबकी जजसे गहरी मैत्री थी; इसलिये अदालतके और वकीलोंने इस मुकदमेको हाथमें लेनेसे इनकार कर दिया था। निराश होकर राजा साहबने इर्फानअलीकी शरण ली थी। डाक्टर साहब देरतक उनकी बातें सुनते रहे, बीच-बीचमें तस्कीन देते जाते थे, आप घबरायें नहीं। मैं मैनेजर साहबसे एक-एक कौड़ी वसूल कर लूँगा। यहाँके वकील दब्बू हैं, खुशामदी टट्टू—पेशेको बदनाम करनेवाले। हमारा पेशा आजाद है। हककी हिमायत करना हमारा काम है, चाहे बादशाहसे ही क्यों न मुकाबला करना पड़े। आप ज़रा भी तरद्दुद न करें, मैं सब बातें ऐसी खूबसूरतीसे तय कर दूँगा कि आपपर छींटा भी न आने पायेगा। अकस्मात् तारके चपरासीने आकर डाक्टर साहबको एक तारका लिफाफा दिया। ज्ञानशङ्करने एक मुकदमेकी पैरवी करनेके लिये ५००) रोजपर बुलाया था।

डाक्टर महोदयने राजा साहबसे कहा, यह पेशा बड़ा मूजी है, कभी आरामसे बैठना नसीब नहीं होता। रानी गायत्रीदेवीका तार है, गोरखपूर बुला रही हैं।

राजा—मैं अपने मुकदमेकी मुलतवी नहीं कर सकता। मुमकिन है मैनेजर कोई और चाल खेल जाय।

डाक्टर—आप मुतलक अन्देशा न करें, मैंने मुकदमेको हाथमें ले लिया। अपने दीवान साहबको भेज दीजियेगा, वकालतनामा तैयार हो जायेगा। मैं कागजात देखकर फौरन दावा

दायर कर दूँगा। गोरखपूर गया भी तो आपके कागजात लेता जाऊँगा।

घड़ीमें १० बजे। खानसामाने दस्तरखान बिछाया। भोजनालय इस दफ्तरके बगलमें ही था; मसालेकी सुगन्ध कमरेमें फैल गयी। लेकिन डाकृर साहब अपने शिकार फँसानेमें तल्लीन थे। भय होता था, मैं भोजन करने चला जाऊँ और शिकार हाथसे निकल न जाय। लगभग आध घंटेतक वह राजासे मुकदमेके सम्बन्धमें बातें करते रहे। राजा साहबके जानेके बाद वह दस्तरखानपर बैठे। खाना ठंडा हो गया था। दो-चार ही कौर खाने पाये थे कि ११ बजे। दस्तरखानसे उठ बैठे। जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और कचहरी चले। रास्तेमें पछताते जाते थे कि भरपेट खाने भी न पाया। आज पुलाव कैसा लजीज बना था। इस पेशेका बुरा हो, खानेकी फुर्सत नहीं। हाँ, रानीको क्या जवाब दूँ? नीति तो यही है कि जबतक किसानोंका मामला तय न हो जाय, कहीं न जाऊँ। लेकिन यह ४००) रोजका नुकसान कैसे बर्दास्त करूँ? फिर एक बड़ी रियासतसे ताल्लुक हो रहा है; सालमें सैकड़ों मुकदमे होते होंगे, सैकड़ों अपीलें होती होंगी। वहाँ अपना रङ्ग जरूर जमाना चाहिये। मुहर्रिर साहब सामने ही बैठे थे, पूछा—क्यों मुन्शीजी, रानी साहबाको क्या जवाब दूँ? आपके खयालमें इस वक्त वहाँ मेरा जाना मुनासिब है?

मुहर्रिर—हजूर किसीके ताबेदार नहीं हैं, शौकसे जायें। सभी वकला यहां करते हैं। ऐसे मौकेको न छोड़ें।

डाकृर—बदनामी होती है।

मुहर्रिर—जरा भी नहीं। जब यही आम रिवाज है, तो कौन किसे बदनाम कर सकता है?

इन शब्दोंने इर्फान अलीकी दुविधाओंको दूर कर दिया। औंघतेको ठेलनेका बहाना मिल गया। ज्योंही मोटर कचहरीमें

पहुँचो, प्रेमशङ्कर दौड़े हुए आये और बोले, मैं तो बड़ी चिन्ता-में था, पेशी हो गयी।

डाक्टर—अमौलीके राजा साहब आ गये। इससे जरा देर हो गयी, खाना भी नहीं नसीब हुआ। इस पेशेकी न जाने क्यों लोग इतनी तारीफ करते हैं? असलमें इससे बदतर कोई पेशा नहीं। थोड़े दिनोंमें आदमी कोल्हूका बैल बन जाता है।

प्रेमशङ्कर—आप उधर कहाँ तशरीफ लिये जाते हैं?

डाक्टर—जरा सब-जजके इजलासमें एक बात पूछने। आप चलें, मैं अभी आता हूँ।

प्रेम—सरकारी वकीलने बहस शुरू कर दी है।

डाक्टर—कोई मुजायका नहीं, करने दीजिये। मैं उसका जवाब पहलेसेही तैयार कर चुका हूँ।

प्रेमशङ्कर उनके साथ सब-जजके इजलासतक गये। डाक्टर साहब लगभग एक घण्टेतक दफ्तरवालोंसे बातें करते रहे। अन्तमें निकले तो बड़े संकोचभावसे बोले, आपको यहाँ खड़े-खड़े बेहद तकलीफ हुई, मुआफ फरमाइयेगा। मुझे यह कहते हुए आपसे बहुत नादिम होना पड़ता है कि मैं तीन-चार दिन इस मुकदमेकी पैरवी न कर सकूँगा।

प्रेम—यह तो आपने बुरी खबर सुनायी। आप खुद अन्दाज कर सकते हैं कि ऐसे नाजुक मौकेपर आपका न रहना कितना जुल्म है।

डाक्टर—मजबूर हूँ, आपके भाई साहबने तारसे गोरखपूर बुलाया है।

प्रेम—इस खबरसे मेरी तो रूह ही फना हो गयी।

आप इन बेचारे किसानोंको मँझधारमें छोड़े देते हैं। ख्याल फरमाइये इनकी क्या हालत होगी। यहाँ इतने तङ्ग वक्तमें कोई दूसरा वकील भी तो नहीं मिल सकता।

डा०—मुझे खुद निहायत अफसोस है। मगर जबतक दूकान

है, तबतक खरीदारोंकी खातिर करनी ही पड़ेगी। यह पेशा ऐसा मनहूस है कि इसमें आईनपर कायम रहना दुश्वार है। मुझे इन मुसीबतजदोंका खुद खयाल है, लेकिन मिस्टर ज्ञानशंकरको नाराज भी तो नहीं कर सकता। और जनाब, साफ बात तो यह है कि जब काफिर हुए तो शराबसे क्यों तोबा करें? जब वकालतका सियाह जामा पहना तो उसपर शराफतका सुफेद दाग क्यों लगायें? जब लूटनेपर आये तो दोनों हाथोंसे क्यों न समेटें? दिलमें दौलतका अरमान क्यों रह जाय? बनियोंको लोग ख्वामख्वाह लालची कहते हैं। इस लक़बका हक़ हमको है। दौलत हमारा दीन है, हमारा ईमान है। यह न समझिये, कि इस पेशेमें जो लोग चोटीपर पहुँच गये हैं, वे ज्यादा रोशन-खयाल हैं। नहीं जनाब, वे बगुले भगत है। ऐसे ख़ामोश बैठे रहते हैं, गोया दुनियाँसे कोई वास्ता ही नहीं, लेकिन शिकार नजर आते ही आप उनकी झपट और फुरती देखकर दंग हो जायेंगे। जिस तरह कसाब, बकरेको सिर्फ उसके वजनके एत-बारसे देखता है, उसी तरह हम इन्सानको महज इस एतबारसे देखते हैं कि वह कहाँतक आँखका अंधा और गाँठका पूरा है। लोग इसे आजाद पेशा कहते हैं, मैं इसे इन्तहा दरजेकी गुलामी कहता हूँ। अभी चन्द महाने हुए मेरे भाईकी शादी दरपेश थी। सादातके कस्बेमें बरात गयी था। तीन दिन बरात वहाँ मुकीम रही। मैं रोज सवेरे वहाँ चला आता था और रातकी गाड़ीसे लौट जाता था। सभी रस्में मेरा गैरहाजिरीमें अदा हुईं। एक दिन भी कचहरीका नागा नहीं किया। मैं अपनी इस हवसको मकरूह समझता हूँ और जिन्दगीभर उस आदमीका शुक्रगुजार रहूँगा, जो मुझे इस मर्जसे नजात दे दे।

यह कहकर डाक्टर साहब मोटरपर आ बैठे और एक क्षणमें घर पहुँच गये। १ बजे गाड़ी जाती थी। सफरका सामान होने लगा। दो चमड़ेके सन्दूक, एक हैण्डबेग, हैट रखनेका

सन्दूक, आफिस-बक्स, भोजन सामग्रियोंका सन्दूक आदि सभी सामान बग्घीपर लादा गया। प्रत्येक वस्तुपर डाक्टर साहबका नाम लिखा हुआ था। समय बहुत कम था, डाक्टर साहब घरमें न गये। मोटरपर बैठना ही चाहते थे कि महरीने आकर कहा, हजूर, जरा अन्दर चलें, बेगम साहबा बुला रही हैं, मुनीराको कई दस्त और कै आये हैं।

डा०—तो जरा काफूरका अर्क क्यों नहीं पिला देतीं? खानेमें कोई बदपरहेजी हुई होगी। चीखने-चिल्लानेकी क्या जरूरत है?

महरी—हजूर, दवा तो पिलायी है, जरा आप चलकर देख लें। बेगम साहबा डाक्टर बुलानेको कहती हैं।

इर्फानअली झल्लाये हुए अन्दर गये और बेगमसे बोले,तुमने यह क्या जरासी बातका तूफान मचा रक्खा है?

बेगम—मुनीराकी हालत अच्छी नहीं मालूम होती। जरा चल कर देखो तो। उसके हाथ-पाँव अकड़ जाते हैं। मुझे तो खौफ होता है, कहीं कालरा न हो।

इर्फान—यह सब तुम्हारा बहम है। सिर्फ खाने-पीनेकी बेएहतियाती है और कुछ नहीं। अर्क काफूर दो-दो घंटे बाद पिलाती रहो;शामतक सारी शिकायत दूर हो जायेगी। घबरानेकी जरूरत नहीं। इसी ट्रेनसे जरा गोरखपूर जा रहा हूँ। तीन-चार दिनमें वापस आऊँगा। रोजाना खैरियत इत्तला देती रहना। मैं रानी गायत्राके बंगलेमें ठहरूँगा।

बेगमने उन्हें तिरस्कार भावसे देखकर कहा, लड़कीकी यह हालत है और आप उसे छोड़े चले जाते हैं। खुदा न करे, उसकी हालत ज्यादा खराब हुई तो?

इर्फान—तो मैं रहकर क्या करूँगा? उसकी तीमारदारी तो मुझसे होगी ही नहीं और न बीमारीसे मेरी दोस्ती है कि मेरे साथ रिआयत करे।

बेगम—लड़कीकी जानको खुदाके हवाले करते हो, लेकिन

रुपये खुदाके हवाले नहीं किये जाते। लाहौल बिलाकूवत! आदमीमें इन्सानियत न हो, औलादकी मुहब्बत तो हो? दौलत-की हवस औलादकेही लिये होती है, जब औलाद ही न रही, तो रुपयोंका क्या अलाव लगेगा?

इर्फान—तुम अहमक हो, तुमसे कौन सिर-मगजन करे?

यह कहकर वह बाहर चले आये, मोटरपर बैठे और स्टेशन की तरफ चल पड़े।

३९

सैयद ईजाद हुसेनका घर दारानगरकी एक गलीमें था। बरामदेमें दस-बारह वस्त्रविहीन बालक एक फटे हुए बोरियेपर बैठे करीमा और खालिकबारीकी रट लगाया करते थे। कभी-कभी जब वे उमंगमें आकर उच्च स्वरसे अपने पाठ याद करने लगते तो कानों पड़ी आवाज न सुनाई देती, मालूम होता है, बाजार लगा हुआ हो। इस हरबोंगमें लौंडे गालियाँ बकते, एक दूसरेको मुँह चिढ़ाते, चुटकियाँ काटते। यदि कोई लड़का शिकायत करता तो सब-के-सब मिलकर ऐसा कोलाहल मचाते कि उसकी आवाज ही दब जाती थी। बरामदेके मध्यमें मौलवी साहबका तख्त था। उसपर एक दढ़ियल मौलवी, लुंगी बाँधे, एक मैला-कुचैला तकिया लगाये अपना मदरिया पिया करते और इस कलरवमें भी शान्तिपूर्वक झपकियाँ लेते रहते थे। उन्हें हुक्का पीनेका रोग था। एक किनारे अंगीठीमें उपले सुलगा करते थे और चिमटा पड़ा रहता था। चिलम भरना बालकों-के मनोरञ्जनकी मुख्य सामग्री थी। उनकी शिक्षोन्नति चाहे बहुत प्रशंसाके योग्य न हो, लेकिन गुरुसेवामें सब-के-सब निपुण थे। यही सैयद ईजाद हुसेनका "इत्तहादी यतीमखाना" था।

किन्तु बरामदेके ऊपरवाले कमरेमें कुछ और ही दृश्य था। साफ-सुथरा फर्श बिछा हुआ था, कालीन और मसनद भी

करीनेसे सजे हुए थे। पानदान, खसदान, उगालदान आदि मौकेसे रखे हुए थे। एक कोनेमें नमाज़ पढ़नेकी दरी बिछी हुई थी। तस्वीर खूँटीपर लटक रही थी। छतमें झालरदार छतगीर थी, जिसकी शोभा रङ्गीन हाँड़ियोंसे और भी बढ़ गयी थी। दीवारें बड़ी-बड़ी तस्वीरोंसे अलंकृत थीं।

प्रातःकाल था। मिर्जासाहब मसनद लगाये हारमोनियम बजा रहे थे। उनके सम्मुख तीन छोटी-छोटी सुन्दर बालिकाएँ बैठी हुई डाकृर एकबालकी सुविख्यात रचना 'शिवाजी'के शेरोंको मधुर स्वरमें गा रही थीं। ईजाद हुसेन स्वयं उनके साथ गाकर तालस्वर बताते जाते थे। यह "इत्तहादी यतीमखाने" की लड़कियाँ बतायी जाती थीं; किन्तु वास्तवमें एक उन्हींकी पुत्री और दो भाँजिया थीं। "इत्तहाद" के प्रचारमें यह त्रिमूर्ति लोगोंको वशीभूत कर लेती थी। एक घण्टेके अभ्यासके बाद मिर्जासाहबने प्रसन्न हो सगर्व नेत्रोंसे लड़कियोंको देखा और उन्हें छुट्टी दी। इसके बाद लड़कोंकी बारी आयी। किन्तु यह मकतबवाले दुर्बल, वस्त्रहीन बालक न थे। थे तो चार ही, पर चारों स्फूर्ति और सजीवताकी मूर्ति थे। सुन्दर, सुकुमार, सुवस्त्रित, चहकते हुए घरमेंसे आये और फर्शपर बैठ गये। मिर्जा साहबने फिर हारमोनियमके स्वर मिलाये और लड़कोंने हक़ानीमें एक गजल गानी शुरू की, जो स्वयं मिर्जासाहबकी सुरचना थी। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकताकी एक सुन्दर वाटिकासे उपमा दी गयी थी और जनतासे अत्यन्त करुण और प्रभावयुक्त शब्दोंमें प्रेरणा की गयी थी, कि वह इस बागको अपनाये, उसकी रमणीकताका आनन्द उठाये, और द्वेष तथा वैमनस्यकी कण्टकमय झाड़ियोंमें न उलझे। लड़कोंके सुकोमल, ललित स्वरोंमें यह ग़ज़ल ग़ज़ब ढाती थी। भावोंके व्यक्त करनेमें भी यह बहुत चतुर थे। यह "इत्तहादी यतीमखाने" के लड़के बताये जाते थे; किन्तु वास्तवमें यह मिर्जा साहबकी दोनों बहनोंके पुत्र थे।

मिर्ज़ासाहब अभी गानाभ्यासमें मग्न थे कि इतनेमें एक आदमी नीचेसे आया और सामने खड़ा होकर बोला, लाला गोपालदासने भेजा है और कहा है आज हिसाब चुकता न हो गया तो कल नालिश कर दी जायगी। कपड़ेका व्यवहार महीने दो महिनेका है और आपको कपड़े लिये हुए तीन सालसे ज्यादा हो गये।

मिर्ज़ासाहबने ऐसा मुँह बनाया, मानों समस्त संसारका चिन्ताभार उन्हींके सिरपर लदा हुआ हो और बोले, नालिश क्यों करेंगे? कह दो थोड़ा-सा जहर भेज दें, खाकर मर जाऊँ। किसी तरह दुनियासे नजात मिले। उन्हें तो खुदाने लाखों दिये हैं, घरमें रुपयेके ढेर लगे हुए हैं, उन्हें क्या खबर कि यहाँ जान-पर क्या गुज़र रही है? कुन्बा बड़ा, आमदनीका कोई ज़रिया नहीं, दुनिया चालाक, हत्थे नहीं चढ़ती, क्या करूँ, मगर इन्शा अल्लाह -एक महीनेके अन्दर आकर सब नया-पुराना हिसाब साफ कर दूँगा। अबकी मुझे वह चाल सूझी है, जो कभी पट ही नहीं पड़ सकती। इन लड़कोंकी गज़लें सुनकर मजलिसें फड़क उठेंगी। जाकर सेठजीसे कह दो, जहाँ इतने दिनों सब्र किया है, एक महीना और करें।

प्यादेने हँसकर कहा, आप तो मिर्ज़ासाहब. ऐसी ही बातें करके टाल देते हैं और वहाँ मुझपर लताड़ पड़ती है। मुनीमजी कहते हैं, तुम जाते ही न होगे या कुछ ले देके चले आते होगे।

मिर्ज़ासाहबने एक चवन्नी उसके भेंट की। उसके चले जाने-के बाद उन्होंने मौलवी साहबको बुलाया और बोले, क्यों मियाँ अमजद, मैंने तुमसे ताकीद कर दी थी कि कोई आदमी ऊपर न आने पाये। इस प्यादेको क्यों आने दिया? मुँहमें दही जमा हुआ था? इतना कहते न बनता था, कि कहीं बाहर गये हुए हैं। अगर इस तरह तुम लोगोंको आने दोगे तो सुबहसे शाम-तक ताँता लगा रहेगा। आखिर तुम किस मरजकी दवा हो?

अमजद—मैं तो उससे बार बार कहता रहा कि मिर्जासाहब कहीं बाहर गये हुए हैं, लेकिन वह जबरदस्ती जीनेपर चढ़ आया, क्या करता ? उससे फौजदारी करता ?

मिर्जा—बेशक, उसे धक्का देकर हटा देना चाहिये था।

अमजद—तो जनाब रूखी रोटियों और पतली दालमें इतनी ताकत नहीं होती, उसपर दिमाग लौंडे चर जाते हैं। हाथापाई किस बूतेपर करूँ ? कभी सालनतक तो नसीब नहीं होता। दरवाजेपर पड़ा-पड़ा मसाले और प्याजकी खुशबू लिया करता हूँ। सारा घर पुलाव और जरदे उड़ाता है, यहाँ खुश्क रोटियों पर ही बसर है। दस्तरखानपर खानेको तरस गया। रोज वही मिट्टीकी प्याली सामने आ जाती है। मुझे भी तर माल खिलाइये, फिर देखूँ, कौन घरमें कदम रखता है।

मिर्जा—लाहौल विलाकूवत, तुम हमेशा पेटका ही रोना रोते रहे। अरे मियाँ, खुदाका शुक्र करो, कि बैठे-बैठे रोटियाँ तो तोड़नेको मिल जाती हैं, वरना इस वक्त कहीं फक-फक फाँयँ-फाँयँ करते होते।

अमजद—आपसे दिलकी बात कहता हूँ तो आप गालियाँ देने लगते हैं। लीजिये जाता हूँ, अब अगर फिर सूरत दिखाऊँ, तो समझियेगा कोई कमीना था। खुदाने मुँह दिया तो रोजी भी देगा, इस सुदेशीके जमानेमें मैं भूखों न मरूँगा।

यह कहकर मियाँ अमजद सजल नेत्र हो उतरने लगे, कि ईजाद हुसेनने फिर बुलाया और नम्रतासे बोले, आप तो बस जरा सी बातपर बिगड़ जाते हैं। देखते नहीं हो, यहाँ घरमें कितना खर्च है ? औलादकी कसरत खुदाकी मार है, उसपर रिश्तेदारोंका बटोर टिड्डियोंका दल है,जो आनकी आनमें दरख्त को ठँठ कर देता है। क्या करूँ ? औलादकी परवरिश फर्ज ही है और रिश्तेदारोंसे बेमुरौवती करना अपनी आदत नहीं। इस जालमें फँसकर तरह-तरहकी चालें चलता हूँ,

तरह-तरहके स्वाँग भरता हूँ, फिर भी चूल नहीं बैठती। अब अन्दर ताकीद कर दूँगा, कि जो कुछ पके वह आपको जरूर मिले। देखिये, अब कोई ऊपर न आने पाये।

अमजद—मैंने तो कसम खा ली है।

ईजाद—अरे मियाँ, कैसी बातें करते हो? ऐसी कस्में दिनमें सैकड़ों बार खाया करते हैं। जाइये देखिये, फिर कोई शैतान आया है।

मियाँ अमजद नीचे आये तो सचमुच एक शैतान खड़ा था, ठिंगना क़द, उठा हुआ शरीर, श्याम वर्ण, तंजेबका नीचा कुरता पहने हुए, अमजदको देखते ही बोला, मिर्जाजीसे कह दो वफाती आया है।

अमजदने कड़ककर कहा—मिर्जा साहब कहीं बाहर तशरीफ ले गये हैं।

वफाती—मियाँ,क्यों झूठ बोलते हो? अभी गोपालदासका आदमी मिला था। कहता था, ऊपर कमरेमें बैठे हुए हैं। इतनी जल्द क्या उड़कर चले गये?

अमजद—उसने तुम्हें झाँसा दिया होगा। मिर्जासाहब कल-सेही नहीं हैं।

वफाती—तो मैं जरा ऊपर जाकर देख ही न आऊँ?

अमजद—ऊपर जानेका हुक्म नहीं है, बेगमात बैठी होंगी! यह कहकर वे जीनेका द्वार रोककर खड़े हो गये, वफातीने उनका हाथ पकड़कर अपनी ओर घसीट लिया और जीनेपर चढ़ा। अमजदने पीछेसे उनको पकड़ लिया। वफातीने झल्लाकर ऐसा झोंका दिया, कि मियाँ अमजद गिरे और लुढ़कते हुए नीचे आ गये। लौण्डोंने जोरसे कहकहा मारा। वफातीने ऊपर जाकर देखा तो मिर्जा साहब साक्षात् मसनद लगाये विराजमान हैं। बोला, वाह मिर्जाजी वाह,आपका निराला हाल है कि घरमें बैठे रहते हैं और नीचे मियाँ अमजद कहते हैं, बाहर

गये हुए हैं। अब भी दाम दीजियेगा या हसरके दिन ही हिसाब होगा? दौड़ते-दौड़ते तो पैरोंमें छाले पड़ गये।

मिर्जा—वाह,इससे बेहतर क्या होगा? हश्रके दिन तुम्हारी कौड़ी-कौड़ी चुका दूँगा। उस वक्त जिन्दगीभरकी कमाई पास रहेगी, कोई दिक्कत न होगी।

वफाती—लाइये लाइये, आज दिलवाइये, बरसों हो गये। आप यतीमखानेके नामपर चारों तरफसे हज़ारों रुपये लाते हैं, मेरा क्यों नहीं देते?

मिर्जा—मियाँ, कैसी बातें करते हो? दुनियाँ न ऐसी अन्धी है, न ऐसी अहमक। अब लोगोंके दिल पत्थर हो गये हैं, कोई पसीजता ही नहीं। अगर इस तरह रुपये बरसते तो तकाजोंमें ऐसा क्या मजा है जो उठाया करता? यह अपनी बेबसी है, जो तुम लोगोंसे नादिम कराती है। खुदाके लिये एक माह और सब्र करो, दिसम्बरका महीना आने दो। जिस तरह क्वार और कातिक हकीमोंके फस्लके दिन होते हैं, उसी तरह स्तिम्बरमें हमारी भी फस्ल तैयार होती है। हरएक शहरमें जलसे होने लगते हैं। अबकी मैंने वह मंत्र जगाया है, जो कभी खाली जा ही नहीं सकता।

वफाती—इस तरह हीला-हवाला करते तो आपको बरसों हो गये। आज कुछ-न-कुछ पिछले हिसाबमें तो दे दीजिये।

मिर्जा—आज तो अगर हलाल भी कर डालो, तो लाशके सिवा और कुछ न पाओगे।

वफाती निराश होकर चला गया। मिर्जा साहबने अबकी जाकर जीनेका द्वार भीतरसे बन्द कर दिया और फिर हारमोनियम संभाला कि अकस्मात् डाकियेने पुकारा। मिर्जा साहब चिट्ठियोंके लिये बहुत उत्सुक रहा करते थे, जाकर द्वार खोला और समाचारपत्रों तथा चिट्ठियोंका एक पुलिंदा लिये प्रसन्नमुख ऊपर आये। पहला पत्र उनके पुत्रका था, जो प्रयागमें कानून

पढ़ रहे थे। उन्होंने एक सूट और कानूनी पुस्तकोंके लिये रुपये माँगे थे। मिर्जाजीने झुँझलाकर पत्रको पटक दिया। जब देखो, रुपयोंका तकाजा, गोया यहाँ रुपये फलते हैं। दूसरा पत्र एक अनाथ बालकका था। मिर्जाजीने इसे सावधानीसे सन्दूकमें रखा। तीसरा पत्र एक सेवासमितिका था, उसने 'इत्तहादी' अनाथालयके लिये २०) महीनेकी सहायता देनेका निश्चय किया था। इस पत्रको पढ़कर वह उछल पड़े और उसे कई बार आँखोंसे लगाया। इसके बाद समाचारपत्रोंकी बारी आयी। लेकिन मिर्जाजीकी निगाह लेखों या समाचारोंपर न थी, वह केवल 'इत्तहादी' अनाथालयकी प्रशंसाके इच्छुक थे। पर इस विषयमें उन्हें बड़ी निराशा हुई, किसी पत्रमें भी इसकी चर्चा न देख पड़ी। सहसा उनकी निगाह एक ऐसी खबरपर पड़ी कि वह खुशीके मारे फड़क उठे! गोरखपूरमें सनातनधर्म-सभाका अधिवेशन होनेवाला था। ज्ञानशङ्कर प्रबन्धक मन्त्री थे। विद्वज्जनोंसे प्रार्थना की गयी थी कि वह उत्सवमें सम्मिलित होकर उसकी शोभा बढ़ायें। मिर्जा साहब यात्राकी तैयारियाँ करने लगे।

४०

महाशय ज्ञानशङ्करका धर्मानुराग इतना बढ़ा कि सांसारिक बातोंसे उन्हें अरुचि-सी होने लगी, दुनियासे जी उचाट हो गया। वह अब भी रियासतका प्रबन्ध उतने ही परिश्रम और उत्साहसे करते थे, लेकिन अब सख्तीकी जगह नरमीसे काम लेते थे। निर्दिष्ट लगानके अतिरिक्त प्रत्येक असामीसे ठाकुरद्वारे और धर्मशालेका चन्दा भी लिया जाता था, पर इस रकमको वह इतनी नम्रतासे वसूल करते थे कि किसीको शिकायत न होती थी। अब वह इखराज, इजाफा और बकायेके मुकदमे बहुत कम दायर करते, असामियोंको बैंकसे नाममात्र ब्याज लेकर रुपये देते और

डेवढ़े सवाईकी जगह केवल अष्टांश ही वसूल करते। इन कामों-से जितना अवकाश मिलता, उसका अधिकांश ठाकुरद्वारे और धर्मशालाकी निगरानीमें व्यय करते। दूर-दूरसे कुशल कारीगर बुलाये गये थे, जो पच्चीकारी, गुलकारी, चित्रांकण, कटाव, जड़ावकी कलाओंमें निपुण थे। जयपुरसे संगमर्मरकी गाड़ियाँ भरी चली आती थीं। चुनार, ग्वालियर आदि स्थानोंसे तरह-तरहके पत्थर मँगवाये जाते थे। ज्ञानशङ्करकी परम इच्छा थी, कि यह दोनों इमारतें अद्वितीय हों, और गायत्री तो यहाँतक तैयार थी कि रियासतकी सारी आमदनी निर्माण-कार्य्यकेही भेंट हो जाये तो चिन्ता नहीं, मैं केवल सीरकी आमदनीपर निर्वाहकर लूँगी। लेकिन ज्ञानशङ्कर आमदनीके ऐसे-ऐसे विधान ढूँढ़ निकालते थे, कि इतना कुछ व्यय होनेपर भी रियासतकी वार्षिक आयमें जरा भी कमी न होती थी। बड़े-बड़े ग्रामोंमें पाँच, छः बाजार लगवा दिये, दो तीन नालोंपर पुल बनवा दिये, कई जगह पानीको रोकनेके लिये बाँध बँधवा दिये, सिंचाईकी कल मँगाकर किरायेपर लगाने लगे, तेल निकालनेका एक बड़ा कारखाना खोल दिया। इन आयोजनोंसे इलाकेका नफा घटनेके बदले कुछ और बढ़ गया। गायत्री तो उनकी कार्य्यपटुताकी इतनी कायल हो गयी थी कि किसी विषयमें जबान न खोलती।

ज्ञानशङ्करके आहार-व्यवहार, रंग-ढंगमें भी अब विशेष अन्तर दीख पड़ता था। सिरपर बड़े-बड़े केश थे, बूटकी जगह प्रायः खड़ाऊँ, कोटके बदले एक ढीला-ढाला घुटनियोंसे नीचे तकका गेरुवे रङ्गमें रंगा हुआ कुरता पहनते थे। यह पहनावा उनके सौम्य रूपपर बहुत खिलता था। उनके मुखारविन्दपर अब एक दिव्य ज्योति आभासित होती थी और बातोंमें अनुपम माधुर्य्यपूर्ण सरलता थी। अब तर्क और न्यायसे उन्हें रुचि न थी, इस तरह बातें करते मानों उन्हें दिव्यज्ञान प्राप्त हो गया है। यदि कोई उनसे भक्ति या प्रेमके विषयमें शङ्का करता तो वह उसका उत्तर

एक मार्मिक मुस्कानसे देते थे, जो हजारों दलीलोंसे अधिक प्रभावोत्पादक होती थी।

उनके दीवानखानेमें अब कुरसियों और मेजोंके स्थानपर एक साफ सुथरा फर्श था, जिसपर मसनद और गावतकिये लगे हुए थे। सामने एक चन्दनके सुन्दर रत्न-जटित सिंहासनपर कृष्णकी बालमूर्त्ति विराजमान थी। कमरेमें नित्य अगरकी बत्तियां जला करती थीं। उसके अन्दर जाते ही सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न हो जाता था। उसकी स्वच्छता और सादगी हृदयको भक्तिभावसे परिपूर्ण कर देती थी। वह श्रीवल्लभ सम्प्रदायके अनुयायी थे; फूलोंसे, ललित गानसे, सुरम्य दृश्योंसे, काव्यमय भावोंसे उन्हें विशेष रुचि हो गयी थी, जो आध्यात्मिक विकासका लक्षण है। सौन्दर्य्योपासना ही उनके धर्मका प्रधान तत्व था, इस समय वह एक सितारियेसे सितार बजाना सीखते थे, सितारपर सूरके पदोंको सुनकर वह मस्त हो जाते थे।

गायत्रीपर इस प्रेमभक्तिका रङ्ग और भी गाढ़ा चढ़ गया था। वह मीराबाईके सदृश कृष्णकी मूर्तिको स्नान कराती, वस्त्राभूषणोंसे सजाती, उनके लिये नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोग बनाती और मूर्त्तिके सम्मुख अनुराग-मग्न होकर घण्टों कीर्तन किया करती। आधी रातक उनकी क्रीड़ाएँ और लीलाएँ सुनती और सुनाती। अब उसने परदा करना छोड़ दिया था, साधु-सन्तोंके साथ बैठकर उनकी प्रेम और ज्ञानकी बातें सुना करती। लेकिन इस सत्संगसे शान्ति मिलनेके बदले उसका हृदय सदैव एक तृष्णा, एक विरहमय कल्पनासे विकल रहता था। उसकी हृदयवीणा एक अज्ञात आकांक्षासे गूँजती रहती थी। वह स्वयं निश्चय न कर सकती थी, कि मैं क्या चाहती हूँ? वास्तवमें वह राधा और कृष्णके प्रेमतत्वको समझनेमें असमर्थ थी। उसकी भौतिक दृष्टि उस प्रेमके ऐन्द्रिक स्वरूपसे आगे न बढ़ सकती थी और उसका हृदय इन प्रेम-सुख-कल्पनाओंसे तृप्त न होता।

वह उन भावोंको अनुभव करना चाहती थी। विरह और वियोग ताप और व्यथा, मान और मनावन, रास और विहार, आमोद और प्रमोदका प्रत्यक्ष स्वरूप देखना चाहती थी। पहले पतिप्रेम उसका सवस्व था, नदी अपने पेटमें ही हलकोरे लिया करती थी। अब उसे उस प्रेमका स्वरूप कुछ मिटा हुआ, फीका, विकृत, मालूम होता था। नदी उमड़ गया थी। पतिभक्तिका वह बाँध जो कुलमर्य्यादा और आत्मगौरवपर आरोपित था, इस प्रेम-भक्तिकी बाढ़में टूट गया। भक्ति लौकिक बन्धनोंको कब ध्यान में लाती है? वह अब उन भावनाओं और कल्पनाओंको बिना किसी आत्मिक संकोचके हृदयमें स्थान देती थी, जिन्हें वह पहले अग्नि-ज्वाला समझा करती थी। उसे अब केवल कृष्ण-क्रीड़ाके दर्शनमात्रसे संतोष न होता था। वह स्वयं कोई-न-कोई रास रचना चाहती थी। वह उन मनोभावोंको वाणीसे, कर्मसे व्यवहारसे व्यक्त करना चाहती थी, जो उसके हृदयस्थलमें पक्षियोंकी भाँति अबाध्य रूपसे उड़ा करते थे और उसका कृष्ण कौन था; वह स्वयं इसे स्वीकार करनेका साहस न कर सकती थी, पर उसका स्वरूप ज्ञानशङ्करसे बहुत मिलता था। वह अपने कृष्णको इसी रूपमें प्रकट देखती थी।

गायत्रीका हृदय पहले भी उदार था। अब वह और भी दान-शीला हो गयी थी। उसके यहाँ अब नित्य सदाव्रत चलता था और जितने साधु सन्त आ जायँ, सबको इच्छापूर्वक भोजन वस्त्र दिया जाता था। वह देशकी धार्मिक और पारमार्थिक संस्थाओं-की भी यथासाध्य सहायता करती रहती थी। अब उसे सना-तनधर्मसे विशेष अनुराग हो गया। अतएव अबकी जब सना-तनधर्म-मंडलका वार्षिकोत्सव गोरखपूरमें होना निश्चय किया गया, तब सभासदोंने बहुमतसे रानी गायत्रीको सभापति नियुक्त किया। यह पहला अवसर था कि यह सम्मान एक विदुषी महिलाको प्राप्त हुआ। गायत्रीको रानीकी पदवी मिलनेसे

भी इतनी खुशी न हुई थी जितनी इस सम्मानपदसे हुई। उसने ज्ञानशङ्करको, जो सभाके मंत्री थे, बुलाया और अपने गहनोंका सन्दूक देकर बोली, इसमें ५० हजारके गहने हैं, मैं इन्हें सनातन धर्म-सभाको समर्पण करती हूँ।

समाचारपत्रोंमें यह खबर छप गयी। तैयारियाँ होने लगीं। मन्त्रीजीका यह हाल था कि दिनको दिन और रातको रात न समझते। ऐसा विशाल सभाभवन कदाचित् ही पहले कभी बना हो, मेहमानोंके आगत-स्वागतका ऐसा उत्तम प्रबन्ध कभी न किया गया था, उपदेशकोंके लिये ऐसे बहुमूल्य उपहार न रखे गये थे और न जनताने कभी सभासे इतना अनुराग ही प्रकट किया था। स्वयंसेवकोंके दलके दल भडकीली वर्दियाँ पहने चारों तरफ दौड़ते फिरते थे। पण्डालके अहातेमें सैकड़ों दूकानें सजी हुई नजर आती थीं। एक सरकस और दो नाटक-समितियाँ बुलायी गयी थीं। सारे शहरमें चहल-पहल देख पड़ती थी। बाजारोंमें भी विशेष सजावट और रौनक थी। सड़कोंपर दोनों तरफ बन्दनवारें और पताकाएँ शोभायमान थीं।

जलसेके एक दिन पहले उपदेशकगण आने लगे। उनके लिये स्टेशनपर मोटरें खड़ी रहती थीं। इनमें कितने ही महानुभाव संन्यासी थे। वह तिलकधारी पण्डितोंको तुच्छ समझते थे और मोटरपर बैठनेके लिये अग्रसर हो जाते थे। एक संन्यासी महात्मा, जो विद्यारत्नकी पदवीसे अलंकृत थे, मोटर न मिलनेसे इतने अप्रसन्न हुए कि बहुत आरजू-मिन्नत करनेपर भी फिटन पर न बैठे। सभा-भवनतक पैदल आये।

लेकिन जिस समारोहसे सैयद ईजाद हुसेनका आगमन हुआ वह और किसीको नसीब न हुआ। जिस समय वह पंडालमें पहुँचे, जलसा शुरू हो गया था और एक विद्वान् पण्डितजी विधवा-विवाहपर भाषण कर रहे थे। ऐसे निन्द्य विषयपर गम्भीरतासे विचार करना अनुपयुक्त समझकर वह इसकी खूब हँसी उड़ा

रहे थे और यथोचित हास्य और व्यंग, धिक्कार और तिरस्कारसे काम लेते थे।

"सज्जनो, यह कोई कल्पित घटना नहीं, मेरी आँखों देखी बात है। मेरे पड़ोसमें एक बाबूसाहब रहते हैं। एक दिन वह अपनी मातासे विधवा-विवाहकी प्रशंसा कर रहे थे। माताजी चुपचाप सुनती जाती थीं। जब बाबूसाहबका वार्ता समाप्त हुई तो माताने बड़े गम्भीर भावसे कहा, बेटा, मेरी एक बिनती है, उसे मानो, क्यों मेरा भी किसीसे पाणिग्रहण नहीं करा देते? देशभरकी विधवाएँ सोहागिनी हो जायँगी तो मुझसे क्योंकर रहा जायगा?" श्रोताओंने प्रसन्न होकर तालियाँ बजायीं, कहकहोंसे पण्डाल गूँज उठा।

इतनेमें सैयद ईजाद हुसेनने पण्डालमें प्रवेश किया। आगे-आगे चार लड़के एक कतारमें थे, दो हिन्दू, दो मुसलमान। हिन्दू बालकोंकी धोतियाँ और कुरते पीले थे, मुसलमान बालकोंके कुरते और पाजामे हरे। इनके पीछे चार लड़कियोंकी पंक्ति थी,—दो हिन्दू और मुसलमान। उनके पहनावमें भी वही अन्तर था। सभोंके हाथोंमें रङ्गीन झंडियाँ थीं, जिनपर उज्ज्वल अक्षरोंमें अङ्कित था—'इत्तहादी यतीमखाना।' इनके पीछे सैयद ईजाद हुसेन थे—गौरवर्ण, श्वेत केश, सिरपर हरा अमामा, काले अल्पाकेका आबा, सुफेद तंजेबकी अचकन, सलेमशाही जूते सौम्य और प्रतिभाकी प्रत्यक्ष मूर्ति थे। उनके हाथमें भी वैसी ही झण्डी थी। उनके पीछे उनके सुपुत्र सैयद ईर्शादहुसेन थे—लंबा कद, नाकपर सुनहरी ऐनक, अलबर्ट फैशनकी दाढ़ी, तुरकी टोपी, नीची अचकन, सजीवताकी प्रत्यक्ष मूर्ति मालूम होते थे। सबसे पीछे साजिन्दे थे। एकके हाथमें हारमोनियम था, दूसरेके हाथमें तबले, शेष दो आदमी करताल लिये हुए थे। इन सबोंकी वर्दी एक ही तरहकी थी और उनकी टोपियोंपर "अंजुमन इत्तहाद" कि मोहर लगी हुई थी। पण्डालमें कई हजार आदमी जमा थे।

सबके सब 'इत्तहाद'के प्रचारकोंकी ओर टकटकी बाँधकर देखने लगे। पण्डितजीका रोचक व्याख्यान फीका पड़ गया। उन्होंने बहुत उछल-कूद की, अपनी सम्पूर्ण हास्यशक्ति व्यय कर दी, अश्लील कवित्त सुनाये, एक भद्दी-सी गजल भी बेसुरे रागसे गायी, पर रंग न जमा। समस्त श्रोतागण "इत्तहादियों" पर आसक्त हो रहे थे। ईजाद हुसेन एक शानके साथ मञ्चपर जा पहुँचे, वहाँ कई संन्यासी, महात्मा, उपदेशक चाँदीकी कुरसियोंपर बैठे हुए थे। सैयद साहबको सबने ईर्षापूर्ण नेत्रोंसे देखा और जगहसे न हटे। केवल भक्त ज्ञानशङ्कर ही एक व्यक्ति थे, जिन्होंने उनका सहर्ष स्वागत किया और मञ्चपर उनके लिये एक कुरसी रखवा दी। लड़के और साजिन्दे मंचके नीचे बैठ गये। उपदेशकगण मन-ही-मन ऐसे कुढ़ रहे थे, मानों हंस-समाजमें कोई कौवा आ गया हो। दो-एक सहृदय महाशयोंने दबी जबानसे फबतियाँ भी कसीं, पर ईजाद हुसेनके तीवर जरा भी मैले न हुए। वह इस अवहेलनाके लिये तैयार थे। उनके चेहरेसे वह शान्तिपूर्ण दृढ़ता झलक रही थी, जो कठिनाइयोंकी परवा नहीं करती और काँटोंमें भी राह निकाल लेती है।

पण्डितजीने अपना रङ्ग जमते न देखा तो अपनी वक्तृता समाप्त कर दी और जगहपर आ बैठे। श्रोताओंने समझा, अब इत्तहादियोंके राग सुननेमें आयेंगे, सबने कुरसियाँ आगे खसकायीं और सावधान हो बैठे; किन्तु उपदेशक-समाज इसे कब पसन्द कर सकता था कि कोई मुसलमान उनसे बाजी ले जाय। एक संन्यासी महात्माने चट अपना व्याख्यान शुरू कर दिया। यह महाशय वेदान्तके पण्डित और योगाभ्यासी थे। संस्कृतके उद्भट विद्वान् थे। वह सदैव संस्कृतमेंही बोलते थे। उनके विषयमें किवदन्ती थी, कि संस्कृत ही उनकी मातृभाषा है। उनकी वक्तृताको लोग उसी शौकसे सुनते थे, जैसे चण्डूलका गाना सुनते हैं। किसीकी भी समझमें कुछ न आता था, पर उनकी विद्वत्ता और

वाक्यप्रवाहका रोब लोगोंपर छा जाता था। वह एक विचित्र जीव समझे जाते थे और यही उनकी बहुप्रियताका मंत्र था। श्रोतागण कितने ही ऊबे हुए हों, उनके मञ्चपर आते ही उठनेवाले बैठ जाते थे, जानेवाले थम जाते थे। महफिल जम जाती थी। इसी घमंडपर इस वक्त उन्होंने अपना भाषण आरम्भ किया; पर आज उनका जादू भी न चला। इत्तहादियोंने उनका रङ्ग भी फीका कर दिया। उन्होंने संस्कृतकी झड़ी लगा दी, खूब तड़पे, खूब गरजे, पर यह भादोंकी नहीं, चैतकी वर्षा थी। अन्तमें वह भी थककर बैठ रहे और अब किसी अन्य उपदेशकको खड़े होनेका साहस न हुआ। इत्तहादियोंने मैदान मार लिया।

ज्ञानशङ्करने खड़े होकर कहा, अब इत्तहाद संस्थाके संचालक सैयद ईजाद हुसैन अपनी अमृतवाणी सुनायेंगे। आप लोग ध्यान-पूर्वक श्रवण करें।

सभाभवनमें सन्नाटा छा गया। लोग सँभल बैठे। ईजाद हुसैनने हारमोनियम उठाकर मेजपर रक्खा, साजिन्दोंने साज निकाले, अनाथ बालक-वृन्द वृत्ताकार बैठे। सैयद इर्शाद हुसैनने इत्तहाद सभाकी नियमावलीका पुलिन्दा निकाला, एक क्षणमें ईश-वन्दनाके मधुर-स्वर पंडालमें गूँजने लगे। बालकोंकी ध्वनिमें एक खास लोच होता है; उनका परस्पर स्वरमें स्वर मिलाकर गाना, उसपर साजोंका मेल, एक समाँ छा गया—सारी सभा मुग्ध हो गयी।

राग बन्द हो गया और सैयद ईजाद हुसैनने बोलना शुरू किया, प्यारे दोस्तो, आपको हैरत होगी कि हंसोंमें यह कौवा क्योंकर आ घुसा, औलियाके जमघटमें यह भाँड़ कैसे पहुँचा। यह मेरी तकदीरकी खूबी है। उलमा फरमाते हैं, जिस्म हादिस (अनित्य) है, रूह कदीम (नित्य) है। मेरा तजर्बा बिल्कुल इसके बरअक्स (उल्टा) है। मेरे जाहिरमें कोई तबदीली नहीं हुई, नाम वही है, लम्बी दाढ़ी वही है, लिबास-पोशाक वही है, पर मेरे

रूहकी काया पलट गयी। जाहिरसे मुगालतेमें न आइये, दिलमें बैठकर देखिये, वहाँ मोटे हरूफमें लिखा हुआ है :—

'हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा'

लड़कों और साजिन्दोंने एकबालकी गजल अलापनी शुरू की, सभा लोट-पोट हो गयी। लोगोंकी आँखोंसे गौरवकी किरणें-सी निकलने लगीं, कोई मूँछोंपर ताव देने लगा, किसीने बेबसीकी लम्बी साँस खींची, किसीने अपनी भुजाओंपर निगाह डाली और कितनेही सहृदय सज्जनोंकी आँखें भर आयीं। विशेष करके इस मिसरेपर :

'हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्ताँ हमारा'

तो सारी मजलिस तड़प उठी, लोगोंने कलेजे थाम लिये, 'बन्देमातरम्' से भवन गूँज उठा। गाना बन्द होते ही फिर व्याख्यान शुरू हुआ :—

'भाइयो' मजहब दिलकी तस्कीनके लिये है, दुनिया कमानेके लिये नहीं, मुल्की हकूक हासिल करनेके लिये नहीं। वह आदमी जो मजहबकी आड़में दौलत और इज्जत हासिल करना चाहता है, अगर हिन्दू है तो मलिच्छ है, मुसलमान है तो काफिर है, हाँ काफिर है, मरदूद है, रूसियाह है।

करतलध्वनिसे पंडाल काँप उठा।

'हम सत्तर पुश्तोंसे इसी सरजमीनका दाना खा रहे हैं, इसी सरजमीनके आब व गिल (पानी और मिट्टी) से हमारी शिरशिरी हुई है। तुफ है उस मुसलमानपर जो हिजाज और एराकको अपना वतन कहता है।

फिर तालियाँ बजीं। एक घंटेतक व्याख्यान हुआ। सैयद साहबने सभापर मानों मोहनी डाल दी। उनकी गौरवयुक्त विनम्रता, उनकी निर्भीक यथार्थवादिता, उनकी मीठी चुटकियाँ, उनकी जातीयतामें डूबी हुई वाक्य-कुशलता, उनकी उत्तेजनापूर्ण

आलोचना, उनके स्वदेशाभिमान, उसपर उनके शब्दप्रवाह, भावोत्कर्ष और राष्ट्रीय गानने लोगोंको उन्मत्त कर दिया। हृदयोंमें जागृतिकी तरंगें उठने लगीं। कोई सोचता था, न हुए मेरे पास एक लाख रुपये, नहीं तो इसी दम लुटा देता। कोई मनमें कहता था, बाल-बच्चोंकी चिन्ता न होती तो गलेमें झोली लटकाकर जातिके लिये भिक्षा माँगता।

इस तरह जातीय भावोंको उभारकर भूमिको पोली बनाकर सैयद साहब मतलबपर आये, बीज डालना शुरू किया।

'दोस्तो, अब मजहबपरवरीका जमाना नहीं रहा, पुरानी बातोंको भूल जाइये। एक जमाना था कि आरियोंने यहाँके अस्ली बाशिन्दोंपर सदियोंतक हुकूमत की, आज वही शूद्र आरियोंमें घुले-मिले हुए हैं। दुश्मनोंको अपने सलूकसे दोस्त बना लेना आपके बुजुर्गोंका जौहर था। वह जौहर आपमें मौजूद है। आप बारहा हमसे गले मिलनेके लिये बढ़े, लेकिन हम पिदरम सुलताँ-बूदके जोममें हमेशा आपसे दूर भागते रहे। लेकिन दोस्तो, हमारी बदगुमानी नाराज न हो, तुम जिन्दा कौम हो, तुम्हारे दिलोंमें दर्द है, हिम्मत है, फैयाजी है, हमारी तंगदिलीको भूल जाइये, उसी बेगाना कौमका एक फर्द यह हकीर आज आपकी खिदमतमें इत्तहादका पैगाम लेकर हाजिर हुआ है. उसकी अर्ज कबूल कीजिये, यह फकीर इत्तहादका सौदाई है, इत्तहादका दीवाना है, उसका हौसला बढ़ाइये, इत्तहादका यह नन्हासा मुर्झाया हुआ पौदा आपकी तरफ भूखी, प्यासी आँखोंसे ताक रहा है, उसे अपनी दरियादिलीके उबलते हुए चश्मोंसे सैराब कर दीजिये तब आप देखेंगे कि यह पौदा कितनी जल्द तनावर दरख्त हो जाता है। और उसके मीठे फलोंसे कितनोंकी जबानें तर होती हैं, हमारे दिलमें बड़े-बड़े हौसले हैं, बड़े-बड़े मंसूबे हैं। हम इत्तहादकी सजासे इस पाक जमीनके एक-एक गोशेको भर देना चाहते हैं। अबतक जो कुछ किया है, आपहीने किया है, आइन्दा जो

कुछ करेंगे, आप ही करेंगे। चन्देकी फिहरिस्त देखिये,वह आपके ही नामोंसे भरी हुई है और हक पूछिये तो आपही उसके बानी हैं। रानी गायत्री कुँवर साहिबाकी सख़ावतकी इस वक्त सारी दुनियामें शोहरत है, भगत ज्ञानशङ्करकी कौमपरस्ती क्या पोशीदा है ? वजीर ऐसा, बादशाह ऐसा, ऐसी पाक रूहें जिस कौममें हों, वह खुशनसीब है। आज जब मैंने इस शहरकी पाक जमीनपर कदम रखा, तो बाशिन्दोंके एखलाक़ और मुरौवत,मेहमानबाज़ी और खातिरदारीने मुझे हैरतमें डाल दिया। तहक़ीक़ करनेसे मालूम हुआ कि यह इसी मजहबी जोशकी बरकत है, यह प्रेमके औतार सिरी किरिश्नकी भगतीका असर है, जिसने लोगोंको इन्सानियतके दरजेसे उठाकर फरिश्तोंका हमसर बना दिया है। हजरात, मैं अर्ज नहीं कर सकता कि मेरे दिलमें सिरी किरिश्नजीकी कितनी इज्जत है। इससे चाहे मेरी मुसलमानीपर ताने ही क्यों न दिये जायँ, पर मैं बेखौफ कहता हूँ कि वह रूहे पाक उलूहियत (ईश्वरत्व) के उस दरजेपर पहुँची हुई थी, जहाँतक किसी नबी या पैगम्बरको पहुँचना नसीब न हुआ। आज इस सभामें मैं सच्चे दिलसे अंजुमन इत्तहादको उसी रूहेपाकके नाम मानून (समर्पित) करता हूँ। मुझे उम्मीद ही नहीं, यकीन है कि उनके भगतोंके सामने मेरा सवाल खाली न जायगा। इत्तहादी यतीमखानेके बच्चे और बच्चियाँ आपहीकी तरफ बेकस-निगाहोंसे देख रही हैं। यह कौमी भिखारी आपके दरवाजेपर खड़ा दोआएँ दे रहा है। इस लम्बी दाढ़ीपर निगाह डालिये, इन सुफेद बालोंकी लाज रखिये।

फिर हारमोनियम बजा, तबलेपर थाप पड़ी, करतालने झंकार ली और ईजाद हुसेनकी करुणरसपूर्ण गजल शुरू हुई। श्रोताओंके कलेजे मसोस उठे। चन्देकी अपील हुई तो रानी गायत्रीकी ओरसे १०००)की सूचना हुई,भक्त ज्ञानशङ्करने यतीमखानेके लिये एक गाय भेंट की, चारों तरफसे लोग चन्दा देने-

को लपके। इधर तो चन्देकी सूची चक्कर लगा रही थी, उधर इर्शाद हुसेनने अंजुमनके पंम्फलेट तमगे बेचने शुरू किये। तमगे अतीव सुन्दर बने हुए थे। लोगोंने शौकसे हाथों-हाथ लिये। एक क्षणमें हजारों वक्षस्थलोंपर यह तमगे चमकने लगे। हृदयों-पर दोनों तरफसे इत्तहादकी छाप पड़ गयी। कुल चन्देका योग ५०००) हुआ। ईजादहुसेनका चेहरा फूलकी तरह खिल उठा। उन्होंने फिर लोगोंको धन्यवाद देते हुए एक गजल गायी और आजकी कार्यवाही समाप्त हुई। रातके दस बजे थे।

जब ईजादहुसेन भोजन करके लेटे और खमीरेका रसपान करने लगे तब उनके सुपुत्रने पूछा, इतनी उम्मेद तो आपको भी न थी।

ईजाद—हरगिज नहीं। मैंने ज्यादासे ज्यादा १०००) का अन्दाज किया था, मगर आज मालूम हुआ कि ये सब कितने अहमक होते हैं। इसी अपीलपर किसी इसलामी जलसेमें मुश्किलसे १००) मिलते, इन बछियाके ताउओंकी खूब तारीफ कीजिये। हजो मलीहकी हदतक हो तो मुजायका नहीं, फिर इनसे जितना चाहे वसूल कर लीजिये।

इर्शाद—आपकी तकरीर लाजवाब थी।

ईजाद—उसीपर तो जिन्दगीका दारमदार है। न किसीके नौकर न गुलाम। बस, दुनियामें कामयाबीका नुसखा है, तो वह शतरञ्जबाजी है। आदमी जरा लस्सान (वाक्चतुर) हो, जरा मर्दुम शनास हो और जरा गिरहबाज हो, बस उसकी चाँदी है। दौलत उसके घरकी लौंडी है।

इर्शाद—सच फरमाइयेगा अब्बा जान, क्या आपका कभी यह खयाल था कि यह सब दुनियासाजी है।

ईजाद—क्या मुझे मामूली आदमियोंसे भी गया गुजरा समझते हो? यह दगाबाजी है, पर करूँ क्या? औलाद और खानदानकी मुहब्बत अपनी नजातकी फिक्रसे ज्यादा है।

४१

जलसा बड़ी सुन्दरतासे समाप्त हुआ। रानी गायत्रीके व्याख्यानपर समस्त देशमें वाह वाह मच गयी। उसमें सनातन-धर्म-संस्थाका ऐतिहासिक दिग्दर्शन करानेके बाद, उसकी उन्नति और पतन, उसके उद्धार और सुधार और उसकी विरोधी तथा सहायक शक्तियोंका बड़ी योग्यतासे निरूपण किया गया था। संस्थाकी वर्तमान दशा और भावी लक्ष्यकी बड़ी मार्मिक आलोचना की गयी थी। पत्रोंमें उस वक्तृताको पढ़कर लोग चकित हो जाते थे और जिन्होंने उसे अपने कानोंसे सुना, वे उसका स्वर्गीय आनन्द कभी न भूलेंगे। क्या वाक्यशैली थी, कितनी सरल, कितनी मधुर, कितनी प्रभावशाली, कितनी भावमयी! वक्तृता क्या थी—एक मनोहर गान था!

तीन दिन बीत चुके थे। ज्ञानशङ्कर अपने भव्य-भवनमें समाचारपत्रोंका एक दफ्तर सामने रखे बैठे हुए थे। आजकल उनका यही काम था, कि पत्रोंमें जहाँ कहीं इस जलसेकी आलोचना हुई तुरत काटकर रख लेते। गायत्री अब ज्ञानशङ्करको देवतुल्य समझती थी। उन्हींकी बदौलत आज समस्त देशमें उसकी सुकीर्तिकी धूम मची हुई थी। उनके इस अतुल उपकारका एक ही उपहार था और वह प्रेमपूर्ण श्रद्धा थी।

सन्ध्या हो गयी थी, कि अकस्मात् ज्ञानशङ्कर पत्रोंकी एक पोट लिये हुए अन्दर गये और गायत्रीसे बोले, देखिये, रायसाहबने यह नशा शिगोफा छोड़ा।

गायत्रीने भौंहें चढ़ाकरे कहा, मेरे सामने उनका नाम न लीजिये; मैंने उनकी कितनी चिरौरी की थी कि एक दिनके लिये जलसेमें अवश्य आइये, पर उन्होंने जरा भी परवा न की, पत्रका उत्तरतक न दिया। बाप हैं तो क्या, मैं उनके हाथों भी अपना अपमान नहीं सह सकती!

ज्ञान—मैंने तो समझा था, यह उनकी लापरवाही है, लेकिन

इस पत्रसे विदित होता है कि आजकल वह एक दूसरी ही धुनमें हैं। शायद इसी कारण अवकाश न मिला हो।

गायत्री—क्या बात हैं, किसी अङ्गरेजसे लड़ तो नहीं बैठे?

ज्ञान—नहीं, आजकल एक सङ्गीत-सभाकी तैयारी कर रहे हैं।

गायत्री—उनके यहाँ तो बारहो मास सङ्गीत-सभा होती रहती है!

ज्ञान—नहीं, यह उत्सव बड़ी धूमसे होगा। देशके समस्त गवैयोंके नाम निमन्त्रणपत्र भेजे गये हैं, यूरोपसे भी कई जगद्विख्यात गायनाचार्य बुलाये जा रहे हैं। रईसों और अधिकारियोंको दावत दी गयी है। एक सप्ताहतक जलसा होगा। यहाँके सङ्गीतशास्त्र और पद्धतिमें सुधार करना उसका उद्देश्य है।

गायत्री—हमारा सङ्गीतशास्त्र ऋषियोंका रचा हुआ है, उसमें कोई क्या सुधार करेगा? इसी भैरव और ध्रुपदके शब्द यशोदानन्दनकी वंशीसे निकलते थे। पहले कोई गा तो ले, सुधारना तो छोटी मुँह बड़ी बात है।

ज्ञान—रायसाहबको कोई और चिन्ता तो है नहीं, एक न एक स्वाँग रचते रहते हैं। कर्ज बढ़ता जाता है, रियासत बोझसे दबी जाती है, पर वह अपनी धुनमें किसीकी कब सुनते हैं। मेरा अनुमान है, कि इस समय उयपर कोई ३॥ लाखका देना है।

गायत्री—इतना धन कृष्ण भगवानकी सेवामें खर्च करते तो परलोक बन जाता। चिट्ठियाँ तो खोलिये, जरूर उनका कोई पत्र होगा।

ज्ञान—हाँ, देखिये, यह लिफाफा उन्हींका मालूम होता है। हाँ, उन्हींका है, मुझे बुला रहे हैं और आपको भी बुला रहे हैं।

गायत्री—मैं जा चुकी। जब वह वहाँ आनेमें अपनी हेठी समझते हैं, तो मुझे क्या पड़ी है कि उनके जलसों-तमाशोंमें जाऊँ? हाँ, विद्याको चाहे पहुँचा दीजिये, मगर शर्त यह है कि आप भी दो दिनसे ज्यादा वहाँ न

ज्ञान—इसके विषयमें सोचकर निश्चय करूँगा। यह दो पत्र बरहल और आमगाँवके कारिन्दोंके हैं। दोनों लिखते हैं कि असामी सभाका चन्दा देनेसे इन्कार करते हैं।

गायत्रीकी तिउरियाँ बदल गयीं। प्रेमकी देवी क्रोधकी मूर्ति बन गयी। बोली, क्या देहातोंमें भी यह दवा फैलने लगी? कारिन्दोंको लिख दीजिये कि इन पाजियोंके घरमें आग लगवा दें और उन्हें कोड़ोंसे पिटवायें। उनका यह दिन कि मेरी आज्ञा का अनादर करें! देवकीनन्दन, तुम इन नर-पिशाचोंको क्षमा करो। आप आज ही वहाँ आदमी रवाना करें। मैं यह अवज्ञा नहीं सह सकती। यह सबके सब कृतघ्न हैं। किसी दूसरे राजमें होते तो आटे-दालका भाव खुलता। मैं इनके साथ इतनी रिआयत करती हूँ, उनकी मददके लिये तैयार रहती हूँ, उनके लिये नुकसान उठाती हूँ और उसका यह फल!

ज्ञान—यह मुंशी रामसनेहीका पत्र है, लिखते हैं, ठाकुरद्वारेका काम तीन दिनसे बन्द है। बेगारोंको कितनी ताकीद की जाती है, मगर कामपर नहीं आते।

गायत्री—उन्हें मजूरी तो दी जाती है न?

ज्ञान—जी हाँ, लेकिन जमींदारीकी दरसे दी जाती है। जमींदारी शरह ≠) है। आम शरह ।≠) है।

गायत्री—आप उचित समझें तो रामसनेहीको लिख दीजिये कि ।) के हिसाबसे मजूरी दी जाय।

ज्ञान—लिख तो दूँ, वास्तवमें ≠) में एक पेट भी नहीं भरता, लेकिन इन मूर्ख, उजड्ड गँवारोंपर दया भी की जाय तो वह समझते हैं कि दब गये। कलको ।≠) माँगने लगेंगे और फिर बात भी न सुनेंगे।

गायत्री—तो फिर लिख दीजिये कि बेगारोंको जबरदस्ती पकड़वा लें। अगर न आयें तो उन्हें गाँवसे निकाल दीजिये। हम स्वयं दयाभावसे उनके साथ चाहे जो सलूक करें, मगर यह

कदापि नहीं हो सकता कि कोई असामी मेरे सामने हेकड़ी जताये। अपना रोब और भय बनाये रखना चाहिये।

ज्ञान—यह पत्र अमेलियाके बाजारसे आया है। ठेकेदार लिखता है कि लोग गोलेके भीतर गाड़ियाँ नहीं लाते। बाहर ही पेड़ोंके नीचे अपना सौदा बेचते हैं। कहते हैं, हमारा जहाँ जी चाहेगा बैठेंगे। ऐसी दशामें ठीका रद्द कर दिया जाये, अन्यथा मुझे बड़ी हानि होगी।

गायत्री बाजारके बाहर भी तो मेरी ही जमीन है। वहाँ किसीको दूकान रखनेका क्या अधिकार है?

ज्ञान—कुछ नहीं, बदमाशी है। बाजारमें रुपये पीछे एक पैसा बयाई देनी पड़ती है, तौल ठीक-ठीक होती है, कुछ धर्मार्थ कटाती देनी पड़ती है, बाहर मनमाना राज है।

गायत्री—यह क्या बात है कि जो काम जनताके सुभीते और आरामके लिये किये जाते हैं, उनका भी लोग विरोध करते हैं।

ज्ञान—कुछ नहीं, यह मानव प्रकृति है। मनुष्यको स्वभावतः दबावसे, रोक-थामसे, चाहे वह उसीके उपकारके लिये क्यों न हो, चिढ़ होती है। किसान अपने मूर्ख पुरोहितके पैर धो-धो पीयेगा, लेकिन कारिन्दाको, चाहे वह विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हो, सलाम करनेमें भी उसे संकोच होता है। यों चाहे वह दिनभर धूपमें खड़ा रहे, लेकिन कारिन्दा या चपरासीको देख-कर चारपाईसे उठना भी उसे असह्य होता है। वह आठो पहर अपनी दीनता और विवशताके भारसे दबा रहना नहीं चाहता। अपनी खुशीसे नीमकी पत्तियाँ चबायेगा, लेकिन जबरदस्ती दूध और शर्बत भी न पीयेगा। यह जानते हुए भी हम उनपर सख्ती करने लिये बाध्य हैं।

इतनेमें मायाशङ्कर एक पीताम्बर ओढ़े हुए ऊपरसे उतरा। अभी उसकी उम्र १४ वर्षसे अधिक न थी, किन्तु मुखपर एक

विलक्षण गम्भीरता और विचारशीलता झलक रही थी, जो इस अवस्थामें बहुत कम देखनेमें आती है। ज्ञानशङ्करने पूछा, कहाँ चले मुन्नू ?

मायाने तीव्र नेत्रोंसे देखते हुए कहा, घाटकी तरफ सन्ध्या करने जाता हूँ।

ज्ञान—आज सरदी बहुत है। यहीं बागमें क्यों नहीं कर लेते ?

माया—वहाँ एकान्तमें चित्त खूब एकाग्र हो जाता है।

यह चला गया तो ज्ञानशङ्करने कहा, इस लडकेका स्वभाव विचित्र है। समझमेंही नहीं आता। सवारियाँ सब तैयार हैं, पर पैदल ही जायगा। किसीको साथ भी नहीं लेता।

गायत्री—महरियाँ कहती हैं अपना बिछावनतक किसीको नहीं छूने देते। वह बेचारियाँ इनका मुँह जोहा करती हैं कि कोई काम करनेको कहें, पर इन्हें किसीसे कुछ मतलब ही नहीं।

ज्ञान—इस उम्रमें कभी-कभी यह सनक सवार हो जाया करती है। संसारकी कुछ ज्ञान तो होता नहीं, पुस्तकोंमें जिन नियमोंकी सराहना की गयी है, उनके पालन करनेको प्रस्तुत हो जाता है। लेकिन मुझे तो यह कुछ मंदबुद्धि-सा जान पड़ता है। इतना बड़ा हुआ, पैसेकी कदर ही नहीं जानता। अभी १००) दे दीजिये, तो शामतक पास कौड़ी न रहेगी। न जाने कहाँ उड़ा देता है; किन्तु इसके साथ हो माँगता कभी नहीं। जबतक खुद न दीजिये, अपनी जबानसे कभी न कहेगा।

गायत्री—मेरी समझमें तो यह पूर्वजन्ममें कोई संन्यासी रहे होंगे।

ज्ञानशङ्करने आजकी गाड़ीसे बनारस जाकर विद्याको साथ लेते हुए लखनऊ जानेका निश्चय किया। गायत्री बहुत कहने-सुननेपर भी राजी न हुई।

४२

राय कमलानन्दको देखे हुए हमें लगभग सात वर्ष हो गये, पर इस कालक्षेपका उनपर कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। बल-पौरुष रङ्ग-ढङ्ग सब कुछ वही है। यथापूर्व उनका समय सैर और शिकार, पोलो और टेनिस, राग और रङ्गमें व्यतीत होता है। योगाभ्यास भी करते जाते हैं। धनपर वह कभी लोलुप नहीं हुए और अब भी उसका आदर नहीं करते। जिस कामकी धुन हुई, उसे करके छोड़ते हैं, इसकी जरा भी चिन्ता नहीं करते कि रुपये कहाँसे आयेंगे। वह अब भी सलाहकारी सभाके मेम्बर हैं। इस बीचमें दो बार चुनाव हुआ और दोनों बार वही बहुमतसे चुने गये। यद्यपि किसानों और मध्य श्रेणीके मनुष्योंको भी वोट देनेका अधिकार मिल गया था, तथापि रायसाहबके मुकाबलेमें कौन जीत सकता था? किसानोंके वोट उनके और उनके अन्य भाइयोंके हाथोंमें थे, और मध्य श्रेणीके लोगोंको जातीय संस्थाओंमें चन्दे देकर वशीभूत कर लेना कठिन न था।

रायसाहब इतने दिनोंतक मेम्बर बने रहे, पर उन्हें इस बातका अभिमान था कि मैंने अपनी ओरसे कौंसिलमें कभी कोई प्रस्ताव नहीं किया। वह कहते, मुझे खुशामदी टट्टू कहनेमें अगर किसीको आनन्द मिलता है तो कहे, मुझे देश और जातिका द्रोही कहनेसे अगर किसीका पेट भरता हो तो भरे, मुझे कोई शिकायत नहीं है, पर मैं अपने स्वभावको नहीं बदल सकता। अगर रस्सी तुड़ाकर मैं जङ्गलमें अबाध्य फिर सकूँ तो मैं आज ही खूँटा उखाड़ फेंकूँ। लेकिन जब जानता हूँ कि रस्सा तुड़ानेपर भी मैं बाड़ेसे बाहर नहीं जा सकता; बल्कि ऊपरसे और डंडे पड़ेंगे तो फिर खूँटपर चुपचाप खड़ा क्यों न रहूँ? और कुछ नहीं, तो मालिककी कृपा-दृष्टि तो रहेगी? जब राज-सत्ता अधिकारियोंके हाथोंमें है; हमारे असहयोग या असम्मतिसे उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता, तो इसकी क्या जरूरत है कि हम व्यर्थ अधिकारियोंपर टीका

टिप्पणी करने बैठें और उनकी आँखोंमें खटकें। हम काठके पुतले हैं, तमाशे दिखानेके लिये खड़े किये गये हैं, इसलिये हमें डोरीके इशारेपर नाचना चाहिये। यह हमारी खामखियाली है कि हम अपनेको राष्ट्रका प्रतिनिधि समझते हैं। जाति हम जैसोंका जिसका अस्तित्व ही उसके रक्तपर अवलम्बित है, कभी अपना प्रतिनिधि न बनायेगी। जिस दिन जातिमें अपना हानि-लाभ समझनेकी शक्ति होगी, हम और आप खेतोंमें कुदाली चलाते नजर आयेंगे। हमारा प्रतिनिधित्व सम्पूर्णतः हमारी स्वार्थपरता और सम्मानलिप्सापर निर्भर है, हम जातिके हितैषी नहीं हैं, हम उसे केवल स्वार्थसिद्धिका यंत्र बनाये हुए हैं। हमलोग अपने वेतन-की तुलना अंग्रेजोंसे करते हैं। क्यों? हमें तो यह सोचना चाहिये कि ये रुपये हमारी मुट्ठीमें न आकर यदि जातिकी उन्नति और उपकारमें खर्च हों, तो अच्छा है। अंग्रेज अगर दोनों हाथोंसे धन बटोरते हैं तो बटोरने दीजिये। वे इसी उद्देश्यसे इस देशमें आये हैं। उन्हें हमारे जातिप्रेमका दावा नहीं है। हम तो जाति-भक्तिकी हाँक चलाते हुए भी देशका गला घोंटे देते हैं। हम अपने जातीय व्यवसायके अधःपतनका रोना रोते हैं। मैं कहता हूँ, आपके हाथों यह दशा और भी असाध्य हो जायगी। हम अगणित मिलें खोलेंगे, बड़ी संख्यामें कारखाने कायम करेंगे, परिणाम क्या होगा? हमारे देहात वीरान हो जायेंगे; हमारे कृषक कारखानोंके मजूर बन जायंगे। राष्ट्रका सत्यानास हो जायेगा। आप इसीको जातीय उन्नतिकी चरम सीमा समझते हैं, मेरी समझमें यह जातीयताका घोर अधःपतन है। जातिकी जो कुछ दुर्गति हुई है हमारे हाथों हुई है। हम जमींदार हैं, साहूकार हैं, वकील हैं, सौदागर हैं, डाक्टर हैं, पदाधिकारी हैं। इनमें कौन जातिकी सच्ची वकालत करनेका दावा कर सकता है? आप जातिके साथ बड़ी भलाई करते हैं, तो कौंसिलमें अनिवार्य शिक्षाका प्रस्ताव पेश करा देते हैं। अगर आप जातिके सच्च

नेता होते,तो यह निरंकुशता कभी न करते। कोई अपनी इच्छाके विरुद्ध स्वर्ग भी नहीं चाहता। हममें तो कितने ही महोदयोंने बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्राप्त की हैं। पर इस उच्च शिक्षाने हममें सिवा विलासलालसा और सम्मानप्रेम, स्वार्थसिद्धि और अहम्मन्यताके और कौनसा सुधार कर दिया? हम अपने घमण्डमें अपनेको जातिका अत्यावश्यक अंग समझते हैं, पर वस्तुतः हम कीट-पतंगसे भी गये-बीते हैं। जाति-सेवा करनेके लिये दो हजार रुपये मासिक मोटर, बिजली, पंखे, फिटन; नौकर या चाकरकी क्या जरूरत है? आप रूखी रोटियाँ खाकर जातिकी सेवा इससे कहीं उत्तम रीतिसे कर सकते हैं। आप कहेंगे, वाह, हमने परिश्रमसे विद्योपार्जन किया है; क्या इसीलिये? तो जब अपने कायिक सुखभोगके लिये इतना अध्यवसाय किया है,तब जातिपर इसका क्या एहसान? आप किस मुँह से जातिके नेतृत्वका दावा करते हैं? आप मिलें खोलते हैं, तो समझते हैं हमने जातिकी बड़ी सेवा की; पर यथार्थमें आपने दस-बीस हजार आदमियोंको बनवास दे दिया। आपने उनके नैतिक और सामाजिक पतनका सामान पैदा कर दिया। हाँ, आपने और आपके साझदारोंने ४५) प्रति सैकड़ेका लाभ अवश्य उठाया। तो भई, जबतक यह धींगाधींगी चलती है चलने दो, न तुम मुझे बुरा कहो न मैं तुम्हें बुरा कहूँ। हम और आप, नरम और गरम दोनोंही जातिके शत्रु हैं। अन्तर यह है, कि मैं अपनेको शत्रु समझता हूँ और आप अहङ्कारके मदमें अपनेको उनका मित्र समझते हैं।

इन तर्कोंको सुनकर लोग उन्हें बक्की और झक्की कहते थे। अवस्थाके साथ राय साहबका संगीत-प्रेम और भी बढ़ता जाता था। अधिकारियोंसे मुलाकातका उन्हें अब उतना व्यसन नहीं था। जहाँ कहीं किसी उस्तादकी खबर पाते, तुरत बुलाते और यथायोग्य उसका सम्मान करते। संगीतकी वर्तमान अभिरुचिको देखकर उन्हें भय होता था, कि अगर कुछ दिनों यही

दशा और रही तो इसका स्वरूप ही मिट जायेगा, देश और भैरव की तमीज भी किसीको न होगी। वह संगीतकलाको जातिकी सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति समझते थे। उसकी अवनति उनकी समझमें जातीय पतनका निकृष्टतम स्वरूप था। व्ययका अनुमान चार लाख किया गया था। रायसाहबने किसीसे सहायता माँगना उचित न समझा था, लेकिन कई रईसोंने स्वयं २-२ लाखके वचन दिये थे। तब भी रायसाहबपर २-२॥ लाखका भार पड़ना सिद्ध था। युरोपसे ६ नामी सङ्गीतज्ञ आ गये थे, २ जर्मनी से, २ इटलीसे, फ्रांस और १ इङ्गलिस्तानसे। मैसूर, ग्वालियर, ढाका, जयपुर, काश्मीरके उस्तादोंको मिनन्त्रणपत्र भेज दिये गये थे। रायसाहबका प्राइवेट सेक्रेटरी सारे दिन पत्रव्यवहार-में व्यस्त रहता था, तिसपर भी चिट्ठियोंकी इतनी कसरत हो जाती थी कि बहुधा रायसाहबको स्वयं जवाब लिखने पड़ते थे। इसी कामको निवटानेके लिये उन्होंने ज्ञानङ्करको बुलाया और वह आज ही विद्याके साथ आ गये थे। रायसाहबने गायत्री-के न आनेपर बहुत खेद प्रकट किया और बोले, वह इसीलिये नहीं आयी है कि मैं सनातनधर्मके उत्सवमें न आ सका था। अब रानी हो गयी हैं, क्या इतना गर्व भी न होगा? यहाँ तो मरने-की भी छुट्टी न थी, जाता क्योंकर?

ज्ञानशङ्कर रातभरके जागे थे, भोजन करके लेटे तो तीसरे पहर उठे। रायसाहब दीवानखानेमें बैठे हुए चिट्ठियाँ पढ़ रहे थे। ज्ञानशङ्करको देखकर बोले, आइये, भगतजी आइये, तुमने तो काया ही पलट दी, बड़े भाग्यवान हो कि इतनी ही अवस्थामें ज्ञान प्राप्त कर लिया। यहाँ तो मरनेके किनारे आये, पर अभी माया-मोहसे मुक्त न हुआ। यह देखो, पूनासे प्रोफेसर माधा-लकरने यह पत्र भेजा है। उन्हें न जाने कैसे यह शङ्का हो गयी है कि मैं इस देशमें विदेश सङ्गीतका प्रचार करना चाहता हूँ। इसपर आपने मुझे खूब आड़े हाथों लिया है।

ज्ञानशङ्कर मतलबकी बात छेड़नेके लिये अधीर हो रहे थे, अवसर मिल गया। बोले आपने युरोपसे लोगोंको नाहक बुलाया, इसीसे जनताको ऐसी शङ्काएँ हो रही हैं। उन लोगोंकी कुछ फीस तय हो गयी है?

रायसाहब—हाँ, यह तो पहली बात थी। दो सज्जनोंको फीस तो रोजाना दो-दो हजार है। सफरका खर्च अलग। जर्मनीके दोनों महाशय डेढ़-डेढ़ हजार रोजाना लेंगे। केवल इटलीके दोनों आदमियोंने निस्स्वार्थ भावसे शरीक होना स्वीकार किया है।

ज्ञान—अगर यह चारों महाशय यहाँ १५ दिन भी रहें, तो एक लाख रुपये तो उन्हींको चाहिये?

राय—हाँ, इससे क्या कम होगा?

ज्ञान—तो कुल खर्च चाहे ५-५॥ लाखतक जा पहुँचे।

राय—तखमीना तो ४ लाखका किया गया था, लेकिन शायद इससे कुछ ज्यादा पड़ जाय।

ज्ञान—यहाँके रईसोंने भी कुछ हिम्मत दिखायी?

राय—हाँ, कई सज्जनोंने वचन दिये हैं। सम्भव है, दो लाख मिल जायँ।

ज्ञान—अगर वह अपने वचन पूरे भी कर दें तो आपको २॥-३ लाखकी जेरबारी होगी।

रायसाहबने व्यङ्गपूर्ण हास्यके साथ कहा, मैं इसे जेरबारी नहीं समझता। धन सुखभोगके लिये है, उसका और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं धनको अपनी इच्छाओंका गुलाम समझता हूँ, उसका गुलाम बनना नहीं चाहता।

ज्ञान—लेकिन वारिसोंको भी तो सुखभोगका कुछ-न-कुछ अधिकार है?

रायसाहब—संसारमें सब प्राणी अपने कर्मानुसार सुख-दुःख भोगते हैं। मैं किसीके भाग्यका विधाता नहीं हूँ।

ज्ञान—क्षमा कीजियेगा, यह शब्द ऐसे पुरुषके मुँहसे शोभा नहीं देते जो अपने जीवनका अधिकांश बिता चुका हो।

रायसाहबने कठोर स्वरसे कहा, तुमको मुझे उपदेश करनेका कोई अधिकार नहीं है। मैं अपनी सम्पत्तिका स्वामी हूँ। उसे अपनी इच्छा और रुचिके अनुसार खर्च करूँगा। यदि इससे तुम्हारे सुख-स्वप्न नष्ट होते हैं तो हों, मैं इसकी परवा नहीं करता। यह मुमकिन नहीं कि सारे संसारमें इस कान्फ्रेंसकी सूचना देनेके बाद अब मैं उसे स्थगित कर दूँ। मेरी सारी जायदाद बिक जाये तोभी मैंने जो काम उठाया है, उसे अन्ततक पहुँचाकर छोड़ूँगा। मेरी समझमें नहीं आता, कि तुम कृष्णके ऐसे भक्त और त्याग तथा वैराग्यके ऐसे साधक होकर माया मोहमें इतने लिप्त क्यों हो? जिसने कृष्णका दामन पकड़ा, प्रेमका आश्रय लिया, भक्तिकी शरण गही, उसके लिये सांसारिक विभव क्या चीज है! तुम्हारी बातें सुनकर और तुम्हारे चित्तकी यह वृत्ति देखकर मुझे संशय होता है, कि तुमने यह बहुरूप धरा है और प्रेम-भक्तिका स्वाद नहीं पाया। कृष्णका अनुरागी, कभी इतना संकीर्ण-हृदय नहीं हो सकता। मुझे अब शङ्का हो रही है कि तुमने यह जाल कहीं सरलहृदया गायत्रीके लिये न फैलाया हो।

यह कहकर रायसाहबने ज्ञानशङ्करको तीव्र नेत्रोंसे देखा। उनके सन्देहका निशाना इतना ठीक बैठा था, कि ज्ञानशङ्करका हृदय काँप उठा। इस भ्रमका मूलोच्छेदन करना परमावश्यक था। रायसाहबके मनमें इसका जगह पाना अत्यन्त भयङ्कर था। इतना ही नहीं, इस भ्रमको दूर करनेके लिये निर्भीकताकी आवश्यकता थी। शिष्टाचारका समय न था। बोले, आपके मुखसे स्वांग और बहुरूपकी लांछना सुनकर एक मसल याद आती है; लेकिन आपपर उसे घटित करना नहीं चाहता। जो प्राणी धर्मके नामपर विषय-वासना और विष-पानको स्तुत्य समझता हो, वह यदि दूसरोंकी धार्मिक वृत्तिको पाखण्ड समझे तो क्षम्य है।

रायसाहबने ज्ञानशङ्करको फिर चुभती हुई दृष्टिसे देखा और कड़ी आवाजसे बोले—तुम्हें सच कहना होगा।

ज्ञानशङ्करको ऐसा अनुभव हुआ, मानों उनके हृदयपरसे कोई परदा-सा उठा जा रहा है। उनपर एक अर्द्ध विस्मृतकी दशा छा गयी। दीन भावसे बोले—जी हाँ, सच कहूँगा।

राय—तुमने यह जाल किसके लिये फैलाया है?

ज्ञान—गायत्रीके लिये।

राय—तुम उससे क्या चाहते हो?

ज्ञान—उसकी सम्पत्ति और उसका प्रेम।

रायसाहब खिलखिलाकर हँसे। ज्ञानशङ्करको जान पड़ा, मैं कोई स्वप्न देखते-देखते जाग उठा। उनके मुँहसे जो बातें निकली थीं, वह उन्हें याद थीं। उनका कृत्रिम क्रोध शान्त हो गया था, उसकी जगह उस लज्जा और दीनताने ले ली थी, जो किसी अपराधीके चेहरेपर नजर आती है। वह समझ गये कि रायसाहबने मुझे अपने आत्मबलसे वशीभूत करके मेरी दुष्कल्पनाओंको स्वीकार करा लिया। इस समय वह उन्हें अत्यन्त भयावह रूपमें देख पड़ते थे। उनके मनमें इस अत्याचारका प्रत्याघात करनेकी घातक चेष्टा लहरें मार रही थी, पर इसके साथ ही उनपर एक विचित्र भय आच्छादित हो गया था। वह इस शैतानके सामने अपनेको सर्वथा निर्बल और अशक्त पाते थे। इन परिस्थितियोंसे वह ऐसे उद्विग्न हो रहे थे, कि जी चाहता था आत्महत्या कर लूँ। जिस भवनका वह ६-७ वर्षोंसे एक-एक ईंट जोड़कर बना रहे थे, वह इस समय हिल रहा था और निकट था कि गिर पड़े। उसे सम्भालना उनकी शक्तिसे बाहर था। शोक! मेरे मन्सूबे मिट्टीमें मिल जाते हैं। इधरसे भी गया उधरसे भी गया। यकायक रायसाहब बोले,—बेटा, तुम व्यर्थ मुझपर इतना कोप कर रहे हो, मैं इतना क्षुद्रहृदय नहीं हूँ कि तुम्हें गायत्रीकी दृष्टिमें गिराऊँ। उसकी जायदाद तुम्हारे हाथ लग जाय तो मेरे लिये

इससे ज्यादा हर्षकी बात और क्या होगी? लेकिन तुम्हारी चेष्टा उसकी जायदाद ही तक रहती तो मुझे कोई आपत्ति न होती। आखिर वह जायदाद किसी न किसीको मिलेगी ही, और जिन्हें मिलेगी वह मुझे तुमसे ज्यादा प्यारे नहीं हो सकते। किन्तु मैं उसके सतीत्वको उसकी जायदादसे कहीं ज्यादा बहुमूल्य समझता हूँ और उसपर किसीकी लोलुप दृष्टिका पड़ना सहन नहीं कर सकता। तुम्हारी सच्चरित्रताकी मैं सराहना किया करता था, तुम्हारी योग्यता और कार्यपटुताका मैं कायल था, लेकिन मुझे इसका गुमान भी न था कि तुम इतने स्वार्थभक्त हो। तुम मुझे पाखण्डी और विषयी कहते हो, मुझे इसका जरा भी दुःख नहीं है; अनात्मवादियोंको ऐसी शङ्का होनी स्वाभाविक है, किन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने कभी सौंदर्यको वासनाकी दृष्टिसे नहीं देखा। मैं सौन्दर्यकी उपासना करता हूँ, उसे अपने आत्मनिग्रहका साधन समझता हूँ, उससे आत्मबल संग्रह करता हूँ, उसे अपनी कुचेष्टाओंकी सामग्री नहीं बनाता। और मान लो मैं विषयी ही सही, बहुत दिन बीत गये हैं, थोड़े दिन और बाकी हैं, जैसा अबतक रहा वैसा ही आगे भी रहूँगा; अब मेरा सुधार नहीं हो सकता। लेकिन तुम्हारे सामने अभी सारी उम्र पड़ी हुई है; इसलिये मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ कि इच्छाओंके, कुवासनाओंके गुलाम मत बनो। तुम इस भ्रममें पड़े हुए हो कि मनुष्य अपने भाग्यका विधाता है। यह सर्वथा मिथ्या है। हम तकदीरके खिलौने हैं, विधाता नहीं। वह हमें अपने इच्छानुसार नचाया करती है। तुम्हें क्या मालूम है कि जिसके लिये तुम सत्यासत्यमें विवेक नहीं करते, पुण्य और पापको समान समझते हो, वह उस शुभ मुहूर्त्त तक सभी विघ्न-बाधाओंसे सुरक्षित रहेगा? सम्भव है कि ठीक उस समय जब जायदादपर उसका नाम चढ़ाया जा रहा हो, एक फूंसी उसका काम तमाम कर दे। यह न समझो कि मैं तुम्हारा बुरा

चेत रहा हूँ, तुम्हें आशाओंकी असारताका केवल एक स्वरूप दिखाना चाहता हूँ। मैंने तकदीरकी कितनी ही लीलाएँ देखी हैं और स्वयं उसका सताया हुआ हूँ। उसे अपनी शुभ कल्पनाओंके साँचेमें ढालना हमारी सामर्थ्यसे बाहर है। मैं नहीं कहता कि तुम अपने और अपनी सन्तानके हितकी चिन्ता मत करो, धनोपार्जन न करो। नहीं, खूब धन कमाओ और खूब समृद्धि प्राप्त करो; किन्तु अपनी आत्मा और ईमानको उसपर बलिदान न करो। धूर्तता और पाखण्ड, छल और कपटसे बचते रहो। मेरी जायदाद २० लाखसे कमकी मालियत नहीं है। अगर दो चार लाख कर्ज ही हो जायँ तो तुम्हें घबराना न चाहिये। क्या इतनी सम्पत्ति मायाशङ्करके लिये काफी नहीं है। तुम्हारी पैत्रिक सम्पत्ति भी २ लाखसे कमकी नहीं है। अगर इसे काफी नहीं समझते तो गायत्रीकी जायदादपर भी निगाह रखो, इसे मैं बुरा नहीं कहता। अपने सुप्रबन्धसे, कार्यकुशलतासे, किफायतसे, हितेच्छासे, उसके कृपापात्र बन जाओ, न कि उसके भोलेपन, उसकी सरलता और मिथ्या भक्तिको अपनी कूटनीतिका लक्ष्य बनाओ और प्रेमका स्वाँग भरकर उसके जीवनरत्नपर हाथ बढ़ाओ।

इतनेमें प्राइवेट सेक्रेटरी साहब आये। रायसाहब उनकी ओर आकृष्ट हो गये। ज्ञानशंकर रो रहे थे। भेद खुल जानेका शोक था, चिरसंचित अभिलाषाओंके विनष्ट हो जानेका दुःख, कुछ ग्लानि, कुछ अपनी दुर्जनताका खेद, कुछ निर्बल क्रोध। तर्कनाशक्ति इतने आघातोंका प्रतिरोध न कर सकती थी।

ज्ञानशङ्कर उठकर बागमें एक बेंचपर जा बैठे। माघका महीना था और संध्याका समय। लेकिन उन्हें इस समय जरा भी सरदी न लगती थी। समस्त शरीर अन्तरस्थ चिन्तादाहसे खौल रहा था। रायसाहबका उपदेश सम्पूर्णतःविस्मृत हो गया था। केवल यह चिन्ता थी कि गिरती हुई दीवारको क्योंकर

थामें, मरती हुई अभिलाषाओंको क्योंकर संभालें ? यह महाशय कहते हैं कि मैं गायत्रीसे कुछ न कहूँगा, लेकिन इनका एतबार ही क्या ? इन्होंने जहाँ उसके कान भरे, वह मेरी सूरतसे घृणा करने लगेगी। गौरवशील स्त्री है, उसे अपने सतीत्वपर घमण्ड है। यद्यपि उसे मुझसे प्रेम है, किन्तु अभीतक उसका आधार धर्मपर है, मनोवेगोंपर नहीं। उसकी स्थितिका क्या भरोसा ? दुष्ट अपनी जायदादका सर्वनाश तो किये ही डालता है, उधरका द्वार भी बन्द किये देता है कि मुझे कहीं निकलनेका मार्ग ही न मिले। मैं इतनी निराशाओंका भार नहीं सह सकता। इस जीवनमें अब कोई आनन्द नहीं रहा। जब अभिलाषाओंका ही अन्त हुआ जाता है तब जीकर क्या करना है ? हा ! क्या सोचता था और क्या हो रहा है !

रायसाहब तो शामको क्लब चले गये और ज्ञानशङ्कर उसी निर्जन स्थानपर बैठे हुए जीवन और मृत्युका निर्णय करते रहे। उनकी दशा उस व्यापारीकी-सी थी जिसका सब कुछ जलमग्न हो गया हो या उस विद्यार्थीकी-सी जो वर्षोंके कठिन श्रमके बाद परीक्षामें गिर गया हो। जब बागमें खूब ओस पड़ने लगी तो वह उठकर कमरेमें चले गये। फिर उन्हीं चिन्ताओंने आ घेरा। जीवनमें अब निराशा और अपमानके सिवा और कुछ नहीं रहा। ठोकरें खाता रहूँगा। जीवनका अन्त ही अब मेरे डूबते हुए बेड़ेको पार लगा सकता है। रायसाहब इतने नीच नहीं हैं कि मरनेपर भी मुझे बदनाम करें। उन्होंने बहुत सच कहा था कि मनुष्य अपने भाग्यका खिलौना है। मैं इस दशामें हूँ कि मृत्यु ही मेरे सारे दुःखोंका एकमात्र उपाय है। सामान्यतः लोग यही समझेंगे कि मैंने संसारसे विरक्त होकर प्राण त्याग दिये, मायामोहके बन्धनसे मुक्त हो गया। ऐसी मुक्त आत्माके लिये यह अन्धकारमय जगत अनुकूल न था। विद्याकी निगाहमें मेरा आदर कई गुना बढ़ जायेगा और गायत्री तो मुझे कृष्णका

अवतार समझने लगेगी। बहुत सम्भव है, कि मेरी आत्माको प्रसन्न करनेके लिये वह मायाको गोद ले ले। चचा और भाई दोनों मुझपर कुपित हैं। मौत उनको भी नर्म कर देगी। और मुश्किल ही क्या है? कल गोमती स्नान करने जाऊँ। एक सीढ़ी भी और नीचे उतर गया तो काम तमाम है! बीस हजार जो मैं नगद छोड़े जाता हूँ, विद्याके निर्वाहके लिये काफी है। लखनपूरकी आमदनी अलग।

यह सोचते-सोचते ज्ञानशङ्कर इतने शोकातुर हुए कि जोर-जोरसे सिसकियाँ भरकर रोने लगे। यही जीवनका फल है! इसी लिये दुनियाँभरके मन्सूबे बाँधे थे! यह दुष्ट कमलानन्द मेरी गरदनपर छुरी फेर रहा है। यही निर्दय मेरी जानका गाहक हो रहा है।

इतनेमें विद्यावती आ गयी और बोली, आज दादाजी और तुमसे कुछ तकरार हो गयी क्या? मुखतार साहब कहते थे कि रायसाहब बड़े क्रोधमें थे। तुम नाहक उनके बीचमें बोला करते हो, वह जो कुछ करें करने दो। अम्मा समझाते-समझाते मर गयीं, इन्होंने कभी रत्तीभर परवा न की! अपने सामने वह किसीको कुछ समझते ही नहीं।

ज्ञान—मैंने तो केवल इतना कहा था कि आपको व्यर्थ २-३ लाख रुपये फूँक देना उचित नहीं है; बस, इतनी-सी बातपर बिगड़ गये।

विद्या—यह तो इनका स्वभाव ही है। जहाँ इनकी बात किसीने काटी और यह आग हुए। बुरा मुझे भी लग रहा है, पर मुँह खोलते काँपती हूँ।

ज्ञान—मुझे इनकी जायदादकी परवा नहीं है। मैंने वृन्दा-वनविहारीका आश्रय लिया है, अब किसी बातकी अभिलाषा नहीं, लेकिन यह अनर्थ नहीं देखा जाता।

विद्या चली गयी। थोड़ी देरमें महाराजने भोजनकी थाली

लाकर रख दी। लेकिन ज्ञानशङ्करको कुछ खानेकी इच्छा न हुई, थोड़ा-सा दूध पी लिया और फिर विचारोंमें मग्न हुए—स्त्रियोंके विचार कितने संकुचित होते हैं, तभी तो इन्हें संतोष हो जाता है। वह समझती हैं, आदमीको चैनसे भोजन वस्त्र मिल जायँ, गहने ज़ेवर बनते जायँ, संतानें होता जायँ, बस और क्या चाहिये; मानों मानव-जीवन भी अन्य जीवधारियोंकी भाँति केवल स्वाभाविक आवश्यकताएँ पूरी करनेके ही लिये है। विद्याको कितना संतोष है! लोग स्त्रियोंके इस गुणकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। मेरा विचार तो यह है कि यह धैर्य और सन्तोष उनकी बुद्धिहीनताका प्रमाण है। उनमें इतनी बुद्धि सामर्थ्य ही नहीं होता कि अवस्था और स्थितिका यथार्थ अनुमान कर सकें। रायसाहबकी फूँक-ताप विद्याको भी अखरती है, लेकिन कुछ बोलती नहीं, जरा भी चिन्तित नहीं है। यह नहीं समझती कि यह सरासर अपनी ही हानि, अपना ही सर्वनाश है। दशाने कैसा पलटा खाया है। अगर मेरे मन्सूबे सायल हो जाते तो दो चार वर्षमें मैं ३ लाख रुपये वार्षिकका आदमी होता। १०-१५ वर्षोंमें मैं अतुल सम्पत्तिका स्वामी होता ·····लेकिन मनकी मिठाई खानेसे क्या होता है!

ज्ञानशङ्कर बड़ी गम्भीर प्रकृतिके मनुष्य थे। उनमें शुद्ध संकल्पकी भी कमी न थी। झोंकोंमें उनके पैर न उखड़ते थे, कठिनाइयोंमें उनकी हिम्मत न छूटती थी। गोरखपूरमें उनपर चारों ओरसे दाँव-पेंच होते रहे, लेकिन उन्होंने कभी परवा न की। लेकिन उनकी अविचलता वह न थी जो परिस्थिति-ज्ञान-शून्यताकी हदतक जा पहुँचती है। वह उन जुआरियोंमें न थे जो अपना सब कुछ एक दाँवपर हारकर अकड़ते हुए चलते हैं। छोटी-छोटी हारोंका, छोटी-छोटी असफलताओंका असर उनपर न होता था, लेकिन उन मन्तव्योंका नष्ट-भ्रष्ट हो जाना, जिनपर जीवन उत्सर्ग कर दिया गया हो, धैर्यको भी विचलित, अस्थिर

कर देता है। और फिर यहाँ केवल नैराश्य और शोक न था। लोकनिन्दा और उपहासकी आगमें जलना भी था। मेरे छल-कपटका परदा खुल गया! मेरी भक्ति और धर्मनिष्ठाकी, मेरे वैराग्य और त्यागकी, मेरे उच्चादर्शोंकी, मेरे पवित्र आचरण-की कलई खुल गयी! संसार अब मुझे यथार्थ रूपमें देखेगा। अबतक मैंने अपनी तर्कनाओंसे, अपनी प्रगल्भतासे, अपनी कलुषताको छिपाया। अब वह बात कहाँ!

ज्ञानशङ्करको नींद न आयी। जरा आँखें झपक जातीं तो भयावह स्वप्न दिखाई देने लगते। कभी देखते, मैं गोमतीमें डूब गया हूँ और मेरा शव चितापर जलाया जा रहा है। कभी नजर आता, मेरा विशाल भवन विध्वंस हो गया है और मायाशङ्कर उसके भग्नावशेषपर बैठा हुआ रो रहा है। एक बार ऐसा जान पड़ा कि गायत्री मेरी ओर कोपदृष्टिसे देखकर कह रही है, तुम मक्कार हो, मेरी आँखोंसे दूर हो जाओ।

प्रातःकाल ज्ञानशङ्कर उठे तो चित्त बहुत खिन्न था, ऐसे अलसाये हुए थे, मानों कोई मंजिल तय करके आये हों। उन्होंने किसीसे कुछ बातचीत न की, धोती उठायी और पैदल गोमतीकी ओर चले। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, लेकिन तमाखूवालों-की दूकानें खुल गयी थीं। ज्ञानशङ्करने सोचा, क्या तमाखूही जीवनकी मुख्य वस्तु है, कि सबसे पहले इसकी दूकान खुलती है? जरा देरमें 'मलाई मक्खन' की ध्वनि कानोंमें आयी। दुष्ट कितना जीभ ऐंठकर बोलता है। समझता होगा कि यह कर्ण-कटु शब्द रुचिवर्धक होंगे। भला गाता तो एक बात भी थी। अच्छा, "चाय गरम" भी आ पहुँची। गर्म तो अवश्य ही होगी, बिना फूँके पियो तो जीभ जल जाय, मगर स्वाद वही गर्म पानीका। यह कौन महाशय घोड़ा दौड़ाये चले आते हैं, कोई फौजी अफसर हैं। घोड़ा जरा ठोकर ले तो साहब बहादुरकी हड्डियाँ चूर हो जायँ।

वह गोमतीके तटपर पहुँचे तो भक्तजनोंकी भीड़ देखी। श्यामल जलधारापर श्यामल कुहिरघटा छायी हुई थी। सूर्यकी सुनहरी किरणें इस श्याम घटामें प्रविष्ट होनेके लिये उत्सुक थीं। दो-चार नौकाएँ पानीमें खड़ी काँप रही थीं।

ज्ञानशङ्करने धोती एक चौकीपर रख दी और पानीमें घुसे तो सहसा उनकी आँखें सजल हो गयीं। कमरतक पानीमें गये, और आगे बढ़नेका साहस न हुआ। अपमान और नैराश्यके जिन भावोंने उनकी प्रेरणाओंको उत्तेजित कर रखा था, वह अकस्मात् शिथिल पड़ गये। कितने रण-मदके मतवाले रणक्षेत्र में आकर पीठ फेर लेते हैं। मृत्यु दूरसे इतनी विकराल नहीं दीख पड़ती, जितनी सम्मुख आकर। सिंह कितना भयंकर जीव है, इसका अनुमान उसे सामने देखकर ही हो सकता है। पहाड़ों को दूरसे देखो तो ऊँची मेड़के सदृश देख पड़ते हैं। उनपर बढ़ना आसान मालूम होता है; किन्तु समीप जाइये तो उनकी गगनस्पर्शी चोटियोंको देखकर चित्त कैसा भयभीत हो जाता है! ज्ञानशङ्करने मरनेको जितना सहज समझा था उससे कहीं कठिन ज्ञात हुआ। उन्हें विचार हुआ, मैं कैसा मन्दबुद्धि हूँ कि एक ज़रा-सी बातके लिये प्राण देनेपर तत्पर हो रहा हूँ। माना, मैं रायसाहबकी नजरोंमें गिर गया, माना गायत्री भी मुझे मुँह न लगायेगी और विद्या भी मुझसे घृणा करने लगेगी, तब भी क्या मैं जीवनमें कुछ काम नहीं कर सकता? अपना जीवन सफल नहीं बना सकता? संसारका कर्मक्षेत्र इतना तंग नहीं है। मैं इस समय आजसे ६-७ वर्ष पूर्वकी अपेक्षा कहीं अच्छी दशामें हूँ। मेरे २० हजार रुपये बैंकमें जमा हैं, २००) मासिककी आमदनी गाँवसे है, बंगला है, मोटर हैं, मकान किरायेपर उठा दूँ तो ५०-६०) माहवार और मिलने लगें। अगर किसीकी चाकरी न करूँ तो भी एक भले आदमीकी भाँति जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। रायसाहब यदि मेरी कलई खोल दें तो क्या मैं उनकी ख़बर नहीं

ले सकता ? उन्हें अपने कलमके जोरसे इतना बिगाड़ सकता हूँ कि वह किसीको मुँह दिखाने योग्य न रहेंगे। गायत्री भी मेरे पंजोमें है,मेरी तरफसे जरा भी निगाह मोटी करे तो आनकी-आनमें उसे इस उच्चासनसे गिरा सकता हूँ। उसे मैंने ही इतना नेकनाम बनाया है, और बदनाम भी कर सकता हूँ। मेरी बुद्धि न जाने कहाँ चली गयी थी ! कूटनीतिकी रंगभूमि क्या इतनी संकीर्ण है ? अबतक मुझे जो कुछ सफलता हुई है इसीकी बदौलत हुई है, तो अब मैं उसका दामन क्यों छोड़ूँ ? उससे निराश क्यों हो जाऊँ ? अगर इस टूटी हुई नौकापर बैठकर मैंने आधी नदी पार कर ली है तो अब उसपरसे जलमें क्यों कूद पड़ूँ ?

ज्ञानशङ्कर स्नान करके जलसे निकल आये। उनका चेहरा विजय-ज्योतिसे चमक रहा था।

लेकिन जिस प्रकार विजयी सेना शत्रुदलको मैदानसे हटाकर और भी उत्साहित हो जाती है और शत्रुको इतना निर्बल और अपंग बना देती है कि फिर उसके मैदानमें आनेकी संभावना ही न रहे, उसी प्रकार ज्ञानशङ्करके हौसले भी बढ़े। सोचा, इसकी नौबत ही क्यों आने दूँ कि मुझपर चारों ओरसे आक्षेप होने लगें, और मैं अपनी सफाई देता फिरूँ ? मैं मरकर नेकनाम बनना चाहता था। क्यों न मारकर वही उद्देश्य पूरा करूँ ? इस समय यही पुरुषोचित्त कर्त्तव्य है। मरनेसे मारना कहीं सुगम है। भाग्यविधाता ! तुम्हारी लीला कितनी विचित्र है ! तुमने मुझे मृत्युके मुँहसे निकाल लिया ! बाल-बाल बचा ! मैं अब भी अपने मनसूबोंको पूरा कर सकता हूँ; विभव, यश, सुकीर्त्ति, सब कुछ मेरे अधीन है, केवल थोड़ी-सी हिम्मत चाहिये। ईश्वरका कोई भय नहीं, वह सर्वज्ञ है, परदा तो केवल मनुष्योंकी आँखोंपर डालना है। और मैं इस काममें सिद्धहस्त हूँ।

ज्ञानशङ्कर एक किरायेके ताँगेपर बैठकर घर आये। रास्ते-

भर वह इन्हीं विचारोंमें लीन रहे। उनकी ऋद्धिप्राप्तिके मार्गमें रायसाहब ही बाधक हो रहे थे। इस बाधाको हटाना आवश्यक था। पहले ज्ञानशङ्करने निराश होकर इस मार्गसे लौट जानेका निश्चय किया था। अपने प्राण देकर इस संकटसे निवृत्त होना चाहते थे। अब उन्होंने रायसाहबकोही अपनी आकांक्षाओंकी वेदीपर बलिदान करनेकी ठानी। संसार इसे हिंसा कहेगा, उसकी दृष्टिमें यह घोर पाप है सर्वथा अक्षम्य, अमानुषीय। लेकिन दार्शनिक दृष्टिसे देखिये तो इसमें पापका सम्पर्कतक नहीं है। रायसाहबके मरनेसे किसीकी क्या हानि होगी? उनके बाल-बच्चे नहीं हैं जो अनाथ हो जायेंगे, वह कोई ऐसा महान् कार्य्य नहीं कर रहे हैं जो उनके मर जानेसे अधूरा रह जायगा, उनकी जायदादका भी ह्रास नहीं होता; बल्कि एक ऐसी व्यवस्थाका आरोपण हुआ जाता है जिससे वह सुरक्षित रहेगी। समाज और अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंके अनुसार तो इसे हत्या कह ही नहीं सकते। नैतिक दृष्टिसे भी इसपर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। केवल धार्मिक दृष्टिसे इसे पाप कहा जा सकता है। और लौकिक नीतिके अनुसार तो यह काम केवल सराहनीय ही नहीं, परमावश्क है। यह जीवन-संग्राम है। इस क्षेत्रमें विवेक, धर्म और नीतिका गुजर नहीं। यह कोई धर्मयुद्ध नहीं है। यहाँ कपट, दगा, फरेब सब कुछ उपयुक्त है, अगर उससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता हो। यहाँ छापा मारना, आड़से शस्त्र चलाना, विजय-प्राप्तिके साधन हैं। यहाँ औचित्य अनौचित्यका निर्णय हमारी सफलताके अधीन है। अगर जीत गये तो सारे धोखे और मुगालते सुअवसरके नामसे पुकारे जाते हैं, हमारी कार्यकुशलताकी प्रशंसा होती है। हारे तो उन्हें पाप कहा जाता है। बस, इस पत्थरको मार्गसे हटा दूँ और मेरा रास्ता साफ है।

ज्ञानशंकरने नाना प्रकारके तर्कोंसे इन मनोगत विचारोंको

उसी तरह प्रोत्साहित किया, जैसे कोई कबूतरबाज बहके हुए कबूतरोंको दाने बिखेर-बिखेरकर अपनी छतरीपर बुलाता है। अंतमें उनकी हिंसात्मक प्रेरणा दृढ़ हो गयी। जगत हिंसाके नामसे काँपता है, हिंसकपर बिना समझे-बूझे चारों ओरसे वार होने लगते हैं, वह दुरात्मा है, दण्डनीय है, उसका मुँह देखना भी पाप है, लेकिन यह अनन्त संसार केवल मूर्खोंकी बस्ती है, इसके विचारोंका, इसके भावोंका सम्मान करना काँटोंपर चलना है। यहाँ कोई नियम नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं, कोई न्याय नहीं। इसकी जबान बन्द करनेका बस एक ही उपाय है। इसकी आँखोंपर परदा डाल दो और वह तुमसे जरा भी उतराज न करेगी; इतना ही नहीं, तुम समाजके सम्मानके अधिकारी हो जाओगे।

घर पहुँचकर ज्ञानशंकर तुरन्त रायसाहबके पुस्तकालयमें गये और अङ्गरेजीका वृहत् रसायनकोष निकालकर विषाक्त पदार्थोंके गुण और प्रभावका अन्वेषण करने लगे।

४३

दो दिन हो गये और ज्ञानशङ्करने रायसाहबसे मुलाकात न की। रायसाहब उन निर्दय पुरुषोंमें न थे जो घाव लगाकर उसपर नमक छिड़कते हैं। वह जब किसीपर नाराज होते तो यह मानी हुई बात थी कि उसका नक्षत्र बलवान है, सौभाग्यचन्द्र उसके दाहिने हैं क्योंकि क्रोध शान्त होते ही वह अपने कटु-व्यवहारोंका बड़ी उदारताके साथ प्रायश्चित्त किया करते थे। एक बार एक टहलुवेको इसलिये पीटा था कि उसने फर्शपर पानी गिरा दिया था। दूसरे ही दिन पाँच बीघे जमीन उसे मुआफी दे दी। एक कारिन्देसे गबनके मामलेमें बहुत बिगड़े और अपने हाथोंसे हंटर लगाये; किन्तु थोड़े ही दिन पीछे उसका वेतन बढ़ा दिया। हाँ, यह आवश्यक था कि चुपचाप धैर्य्यके साथ उनकी बातें सुन ली जायँ, उनसे बतबढ़ाव न किया जाय।

ज्ञानशङ्करको धिक्कारनेके एक ही क्षण पीछे उन्हें पश्चात्ताप होने लगा, भय हुआ कि कहीं वह रूठकर चल न दें। संसारमें ऐसा कौन प्राणी है जो स्वार्थके लिये अपनी आत्माका हनन न करता हो। मैं खुद भी तो निःस्पृह नहीं हूँ। जब संसारकी यही प्रथा है तो मुझे उनका इतना तिरस्कार करना उचित न था : कमसे कम मुझे उनके आचरणको कलङ्कित न करना चाहिये था; विचार-शील पुरुष हैं, उनके लिये इशारा काफी था। लेकिन मैंने गुस्सेमें आकर खुली-खुली गालियाँ दीं। अतएव आज वह भोजन करने बैठे तो महराजसे कहा, बाबूजीको भी यहाँ बुला लो और उनकी थाली भी यहाँ लाओ। न आयें तो कहना आप न चलेंगे तो वह भी भोजन न करेंगे। ज्ञानशङ्कर राजी न होते थे, पर विद्याने समझाया, चले क्यों नहीं जाते? जब वह बड़े होकर बुलाते हैं तो न जानेसे उन्हें दुःख होगा। उनकी आदत है कि गुस्सेमें जो कुछ मुँहमें आया, बक जाते हैं, लेकिन पीछेसे लज्जित होते हैं। ज्ञानशङ्कर अब कोई हीला न कर सके। रोनी सूरत बनाये हुए आये और रायसाहबसे जरा हटकर आसनपर बैठ गये। रायसाहबने कहा, इतनी दूर क्यों बैठे हो? मेरे पास आ जाओ। देखो, आज मैंने तुम्हारे लिये कई अंग्रेजी चीजें बन-वायी हैं। लाओ, महराज, यहीं थाली रक्खो।

ज्ञानशङ्करने दबी जबानसे कहा, मुझे तो इस समय जरा भी इच्छा नहीं है, क्षमा कीजिये।

रायसाहब—इच्छा तो सुगन्धसे हो जायगी, थाली सामने तो आने दो। महराजको मैंने इनाम देनेका वादा किया है। उसने अपनी सारी अक्ल खर्च कर दी होगी।

महराजने थाली लाकर ज्ञानशङ्करके सामने रख दी। ज्ञान-शङ्करके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं, एक रङ्ग आता था, एक रङ्ग जाता था, छाती बड़े वेगसे धड़क रही थी। भयने आशाको दबा लिया था। वह किसी प्रकार यहाँसे भागना चाहते थे।

यह दृश्य उनके लिये असह्य था। उनके शरीरका एक-एक अङ्ग थर थर काँप रहा था, यहाँतक कि स्वर भी भङ्ग हो रहा था। उन्हें इस समय अनुभव हो रहा था, कि जान लेना जान देनेसे कहीं दुस्तर है।

रायसाहबने पाँच ही चार कौर खाये थे कि सहसा उन्होंने थालीसे हाथ खींच लिया और ज्ञानशङ्करको तीव्र और मर्मभेदी दृष्टिसे देखा। ज्ञानशङ्करके प्राण सूख गये। रायसाहबने यदि गोली चलायी होती तौभी उन्हें इतनी चोट न लगती। संज्ञा-शून्यसे हो गये। ऐसा जान पड़ता था, मानों कोई आकर्षणशक्ति प्राणोंको खींच रही है। अपनी नावको भँवरमें डूबते पाकर भी कोई इतना भयभीत, इतना असावधान न होता होगा। राय-साहबकी तीव्र दृष्टिने सिद्ध कर दिया कि रहस्य खुल गया, मेरे सारे यत्न, सारी आयोजनाएँ, निष्फल हो गयीं। हा हतभाग! कहींका न रहा! क्या जानता था कि यह महाशय ऐसे आत्म-दर्शी हैं।

इतनेमें रायसाहबने अपमानसूचक भावसे मुस्कराकर कहा, मैंने एक बार तुमसे कह दिया कि धन-सम्पत्ति तुम्हारे भाग्यमें नहीं है, तुम जो चालें चलोगे वह सब उलटी पड़ेंगी, केवल लज्जा और ग्लानि हाथ रहेगी।

ज्ञानशङ्करने अज्ञान भावसे कहा, मैंने आपका आशय नहीं समझा।

रायसाहब—बिलकुल झूठ है, तुम मेरा आशय खूब समझ रहे हो, इससे ज्यादा कुछ कहूँगा तो उसका परिणाम अच्छा न होगा। मैं चाहूँ तो सारी रामकहानी तुम्हारी जबानसे कहला लूँ, लेकिन इसकी जरूरत नहीं, तुम्हें बड़ा भ्रम हुआ। मैं तुम्हें बड़ा चतुर समझता था, लेकिन अब विदित हुआ कि तुम्हारी निगाह बहुत मोटी है। तुम्हारा इतने दिनोंतक मुझसे सम्पर्क रहा, लेकिन अभीतक तुम मुझे पहचान न सके। तुम सिंहका

शिकार बाँसकी तीलियोंसे करना चाहते हो, इसलिये अगर उस के दबोचमें आ जाओ तो वह तुम्हारा अपना दोष है। मुझे मनुष्य मत समझो, मैं सिंह हूँ! अगर अभी अपने दाँत और पंजे दिखा दूँ तो तुम काँप उठोगे। यद्यपि यह थाल २०-२५ आदमियोंको सुलानेके लिये काफी है, शायद एक कौर खानेके बाद उन्हें दूसरे कौरकी नौबत न आयेगी, लेकिन मैं पूरा थाल हजम कर सकता हूँ और तुम्हें मेरे माथेपर बल भी न दिखाई देगा। मैं शक्तिका उपासक हूँ, ऐसी वस्तुएँ मेरे लिये दूध और पानी हैं।

यह कहते-कहते रायसाहबने थालसे कई कौर उठाकर जल्द जल्द खाये। अकस्मात् ज्ञानशङ्कर तेजीसे लपके, थाल उठाकर भूमिपर पटक दिया और रायसाहबके पैरोंपर गिरकर बिलख-बिलख रोने लगे। रायसाहबकी योगसिद्धिने आज उन्हें परास्त कर दिया, उन्हें आज ज्ञात हुआ कि यह चूहे और सिंहकी लड़ाई है।

रायसाहबने उन्हें उठाकर बिठा दिया और बोले—लाला, मैं इतना कोमल-हृदय नहीं हूँ कि इन आँसुओंसे पिघल जाऊँ। आज मुझे तुम्हारा यथार्थ रूप दिखाई दिया। तुम अधमस्वार्थके पंजेमें दबे हुए हो। यह तुम्हारा दोष नहीं, तुम्हारी धर्मविहीन शिक्षाका दोष है। तुम्हें आदिसेही भौतिक शिक्षा मिली। हृदय-के भाव दब गये। तुम्हारे गुरुजन स्वयं स्वार्थके पुतले थे। उन्होंने कभी सरल संतोषमय जीवनका आदर्श तुम्हारे सामने नहीं रखा। तुम अपने घरमें, स्कूलमें, जगतमें नित्य देखते थे कि बुद्धिबलका कितना मान है, तुमने सदैव इनाम और पदक पाये, कक्षामें तुम्हारी प्रशंसा होती रही, प्रत्येक अवसरपर तुम्हें आदर्श बनाकर दूसरोंको दिखाया जाता था। तुम्हारे आत्मिक विकास-की ओर किसीने ध्यान नहीं दिया, तुम्हारे मनोगत भावोंको, तुम्हारे उद्गारोंको सन्मार्गपर ले जानेकी चेष्टा नहीं की गयी, तुमने धर्म और भक्तिका प्रकाश कभी नहीं देखा, जो मनपर छाये

हुए तिमिरको नष्ट करनेका एक ही साधन है। तुम जो कुछ हो, अपनी शिक्षा-प्रणालीके बनाये हुए हो। पूर्व संस्कारोंने जो अङ्कुर जमाया था, उसे शिक्षाने सघन वृक्ष बना दिया। तुम्हारा कोई दोष नहीं, काल और देशका दोष है। मैं क्षमा करता हूँ और ईश्वरसे विनती करता हूँ कि वह तुम्हें सद्बुद्धि दे।

रायसाहबके ओठ नाले पड़ गये, मुख कान्तिहीन हो गया, आँखें पथराने लगीं। माथेपर स्वेदबिन्दु चमकने लगे, पसीनेसे सारा शरीर तर हो गया, साँस बड़े वेगसे चलने लगी। ज्ञानशङ्कर उनकी यह दशा देखकर विकल हो गये, काँपते हुए हाथोंसे पंखा झलने लगे. लेकिन रायसाहबने इशारा किया कि यहाँसे चले जाओ, मुझे अकेला रहने दो और तुरन्त भीतरसे द्वार बन्द कर लिया। ज्ञानशङ्कर मूर्तिवत् द्वारपर खड़े थे, मानों किसीने उनके पैरोंको गाड़ दिया हो। इस समय उन्हें अपने कुकृत्यपर इतना अनुताप हो रहा था, कि जी चाहता था उसी थालका एक कौर खाकर इस जीवनका अन्त कर लूँ। पहले रायसाहबकी अभिमानपूर्ण बातें सुनकर उन्हें आशा हो गयी थी कि विषका इनपर कुछ असर न होगा, लेकिन अब इस आशाकी जगह भय हो रहा था, कि उन्होंने अपनी योगशक्तिका भ्रमात्मक अनुमान किया था। क्या करूँ? किसी डाक्टरको बुलाऊँ? उस धनलिप्सा का सत्यानाश हो, जिसने मेरे मनमें यह विषम प्रेरणा उत्पन्न की, जिसने मुझसे यह हत्या करायी। हा कुटिल स्वार्थ! तूने मुझे नरपिशाच बना दिया! मैं क्यों इनका शत्रु हो रहा हूँ? इसी जायदादके लिये, इसी रियासतके लिये, इसी सम्पत्तिके लिये। क्या वही सम्पत्ति मेरे हाथोंमें आकर दूसरोंको मेरा शत्रु न बना देगी? कौन कह सकता है, कि मेरा भी यही अन्त न होगा?

ज्ञानशङ्करने द्वारपर कान लगाकर सुना। ऐसा जान पड़ा कि रायसाहब हाथ-पैर पटक रहे हैं। मारे भयके ज्ञानशङ्करको रोमाञ्च हो गया। उन्हें अपनी अधम नीचता, अपनी घोरतम पैशा

चिक प्रवृत्तियोंपर ऐसा शोकमय पश्चात्ताप कभी न हुआ था। उन्हें इस समय परिणामकी चिन्ता न थी, न यह शंका थी कि मेरा क्या हाल होगा। बस, यही धड़का लगा हुआ था कि राय साहबकी न जानें क्या गति हो रही है। कोई जबरदस्ती भी करता तो वह वहाँसे न हटते। मालूम नहीं, एक क्षणमें क्या हो जाय?

इतनेमें महराज थालीमें कुछ और पदार्थ लाया। उसे देखते ही ज्ञानशङ्करका रक्त सूख गया। समझ गये कि अब प्राण न बचेंगे। यह दुष्ट अभी यहाँका हाल देखकर शोर मचा देगा, खोज पूछ होने लगेगी, गिरफ्तार हो जाऊँगा। वह इस समय उन्हें काल-स्वरूप देख पड़ता था। उन्होंने उसे समीप न आने दिया, दूरसेही कहा, हमलोग भोजन कर चुके, अब और कुछ न लाओ।

महराजने बन्द किवाड़ोंको कुतूहलसे देखा और आगे बढ़नेकी चेष्टा की कि अकस्मात् ज्ञानशंकर बाजकी तरह झपटे और उसे जोरसे धक्का देकर कहा, तुमसे कहता हूँ कि यहाँ किसी चीजकी जरूरत नहीं है, बात क्यों नहीं सुनते? महराज हक्का-बक्का होकर ज्ञानशंकरका मुँह ताकने लगा। ज्ञानशंकर इस समय उस सशंक दशामें थे, जब कि मनुष्य पत्तेका खड़का सुनकर लाठी सम्भाल लेता है। उन्हें अब रायसाहबकी चिन्ता न थी, उनके विचारमें वह चिन्ताकी उद्घाटक शक्तिसे बाहर हो गये थे। वह अब अपनी जानकी खैर मना रहे थे। सम्पूर्ण इच्छा-शक्ति इस रहस्यको गुप्त रखनेमें व्यस्त हो रही थी।

यकायक भीतरसे द्वार खुला और रायसाहब बाहर निकले। उनका मुखड़ा रक्तवर्ण हो रहा था। आँखें भी लाल थीं। पसीनेसे तर थे; मानों कोई लोहार भट्ठीके सामनेसे उठकर आया हो। दोनों थाल समेटकर एक जगह रख दिये गये थे। कटोरे भी साफ थे। सब भोजन एक अँगीठीमें जल रहा था। अग्नि उन पदार्थोंका रसास्वादन कर रही थी।

क्षणमात्रमें ज्ञानशंकरके विचारोंने पलटा खाया। जबतक

उन्हें शंका थी कि रायसाहब दम तोड़ रहे हैं तबतक वह उनकी प्राण-रक्षाके लिये ईश्वरसे प्रार्थना कर रहे थे। जब बाहर खड़े निश्चय हो गया कि रायसाहबके प्राणान्त हो गये तब वह अपनी जानकी खैर मनाने लगे। अब उन्हें सामने देखकर क्रोध आ रहा था कि यह मर क्यों न गये। इतना तिरस्कार, इतना मानसिक कष्ट व्यर्थ सहना पड़ा! उनकी दशा इस समय उस थके-माँदे हलवाहेकी-सी हो रही थी जिसके बैल खेतसे द्वारपर आकर बिदक गये हों; दिनभरके कठिन परिश्रमके बाद सारी रात अन्धेरेमें बैलोंके पीछे दौड़नेकी सम्भावना उसकी हिम्मत-को तोड़े डालती हो।

रायसाहबने बाहर निकलकर कई बार जोरसे साँस ली,मानों दम घुट रहा हो, तब काँपते हुए स्वरसे बोले, मरा नहीं, लेकिन मरनेसे बदतर हो गया। यद्यपि मैंने विषको योगक्रियाओंसे निकाल दिया लेकिन ऐसा मालूम हो रहा है कि मेरी धमनियोंमें रक्तकी जगह कोई पिघली हुई धातु दौड़ रही है! यह दाह मुझे कुछ दिनोंमें भस्म कर देगी। अब मुझे फिर पोलो और टेनिस खेलना नसीब न होगा। मेरे जीवनकी अनन्त शोभाका अन्त हो गया। अब जीवनमें वह आनन्द कहाँ जो शोक और चिन्ताको तुच्छ समझता था। मैंने वाणीसे तो तुम्हें क्षमा कर दिया है; लेकिन मेरी आत्मा तुम्हें क्षमा न करेगी। तुम मेरे लड़के हो, मैं तुम्हारे पिताके तुल्य हूँ, लेकिन हम अब एक दूसरेका मुँह न देखेंगे। मैं जानता हूँ कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह हमारे वर्तमान लोकव्यवहारका दोष है; किन्तु यह जानकर भी हृदयको संतोष नहीं होता। यह सारी विडम्बना इसी जायदादका फल है। इसी जायदादके कारण हम और तुम एक दूसरेके खूनके प्यासे हो रहे हैं। संसारमें जिधर देखो, ईर्षा और द्वेष आघात और प्रत्याघातका साम्राज्य है,भाई-भाईका बैरी,बाप-बेटेका बैरी, पुरुष-स्त्रीका बैरी,इसी जायदादके लिये,इसी धनके लिये। इसके

हाथों जितना अनर्थ हुआ, हो रहा है और होगा, उसके देखते कहीं अच्छा था कि अधिकारकी प्रथा ही मिटा दी जाती। यही वह खेत है जहाँ छल और कपटके पौधे लहराते हैं, जिसके कारण संसार रणक्षेत्र बना हुआ है, इसीने मानवजातिको पशुओंसे भी नीचे गिरा दिया है।

यह कहते-कहते रायसाहबकी आँखें बन्द हो गयीं। वह दीवारका सहारा लिये हुए दीवानखानेमें आये और फर्शपर गिर पड़े। ज्ञानशङ्कर भी पीछे-पीछे थे, मगर इतनी हिम्मत न पड़ती थी कि उन्हें सम्भाल लें। नौकरोंने यह हालत देखी तो दौड़े और उन्हें उठाकर कोचपर लिटा दिया। गुलाब और केवड़ेका जल छिड़कने लगे। कोई पंखा झलने लगा, कोई डाक्टरके लिये दौड़ा। सारे घरमें खलबली मच गयी। दीवानखानेमें एक मेला-सा लग गया। दस मिनटके बाद राय साहबने आँखें खोलीं और सबको हट जानेका इशारा किया। लेकिन जब ज्ञानशङ्कर भी औरोंके साथ जाने लगे तो राय साहबने उन्हें बैठनेका संकेत किया और बोले, यह जयदाद नहीं है, इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। इस भूमिपर मेरा क्या अधिकार है? मैंने इसे बाहुबलसे नहीं लिया। नवाबोंके जमानेमें किसी सूबेदारने इस इलाकेकी आमदनी वसूल करनेके लिये मेरे दादाको नियुक्त किया था। मेरे पितापर भी नवाबोंकी कृपादृष्टि बनी रही। इसके बाद अंगरेजोंका जमाना आया और यह अधिकार पिताजीके हाथसे निकल गया। लेकिन राजविद्रोहके समय पिताजीने तनमनसे अंगरेजोंकी सहायता की। शान्ति स्थापित होनेपर हमें वही पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासतकी हकीकत है। हम केवल लगान वसूल करनेके लिये रखे गये हैं। इसी दलालीके लिये हम एक दूसरेके खूनसे अपने हाथ रंगते हैं, इसी दीन हत्याको हम रोब कहते हैं, इसी कारिन्दगरीपर हम फूले नहीं समाते। सरकार अपना मतलब निकालनेके लिये हमें

इस इलाकेका मालिक कहती है, लेकिन जब सालमें दो बार हम से मालगुजारी वसूल की जाती है, तब हम मालिक कहाँ रहे ? यह सब धोखेकी टट्टी है। तुम कहोगे, यह सब कोरी बकवाद है, रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड़ क्यों नहीं देते ? हा ! यही तो रोना है कि इस रियासतने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी कामके नहीं रहे। हम पालतू चिड़िया हैं, हमारे पंख शक्तिहीन हो गये हैं। हममें अब उड़नेकी सामर्थ्य नहीं है। हमारी दृष्टि सदैव अपने पिंजरेके कुलिहये और प्यालीपर रहती है। हमने अपनी स्वाधीनताको मीठे टुकड़ोंपर बेच दिया है।

रायसाहबके चेहरेपर एक दुस्सह आन्तरिक वेदनाके चिह्न दिखाई देने लगे। लेटे थे, कराहकर उठ बैठे। मुखाकृति विकृत हो गयी, पीड़ासे विकल हृदयस्थलपर हाथ रक्खे हुए बोले, आह ! बेटा, तुमने वह हलाहल खिला दिया कि कलेजेके टुकेड़े टुकड़े हुए जाते हैं। अब प्राण न बचेंगे। अगर एक मरणासन्न पुरुषके शापमें कुछ भी शक्ति है तो तुम्हें इस रियासतका सुख भोगना नसीब न होगा। जाओ, आँखोंके सामनेसे हट जाओ, संभव है, मैं इस क्रोधावस्थामें तुम्हें दोनों हाथोंमें दबाकर मसल डालूँ। मैं अपने आपेमें नहीं हूँ। मेरी दशा मतवाले सर्पकी-सी हो रही है। मेरी आँखोंसे दूर हो जाओ और फिर कभी मुँह मत दिखाना। मेरे मर जानेपर तुम्हें आनेका अखतियार है। और याद रखो कि अगर तुम फिर कभी गोरखपूर गये, या गायत्रीसे कोई सम्बन्ध रक्खा तो तुम्हारे हकमें बुरा होगा। मेरे दूत परछाहींकी भाँति तुम्हारे साथ लगे रहेंगे। तुमने इस चेतावनीका जरा भी उल्लङ्घन किया तो फिर जीते न बचोगे। हाय ! शरीर फुँका जाता है; पापी दुष्ट, अभी गया नहीं, शेरखाँ ·· कोई है !·····मेरी पिस्तौल लाओ, (चिल्लाकर) मेरी पिस्तौल लाओ····· क्या सब मर गये ?

ज्ञानशङ्कर तुरन्त उठकर वहाँसे भागे। अपने कमरेमें आकर द्वार बन्द कर लिया। जल्दीसे कपड़े पहने, मोटर साइकिल निकलवायी और सीधे रेलवे स्टेशनकी ओर चले। विद्यासे मिलनेका भी अवसर न मिला।

४४

सन्ध्याका समय था। बनारसके सेशन जजके इजलासमें हजारों आदमी जमा थे। लखनपूरके मामलेसे जनताको अब एक विशेष अनुराग हो गया था। मनोहरकी आत्महत्याने उसकी चर्चा सारे शहरमें फैला दी थी। प्रत्येक पेशीके दिन नगरकी जनता अदालतमें आ जाती थी। जनताको अभियुक्तोंकी निर्दोषिताका पूरा विश्वास हो गया था। मनोहरके आत्मघातकी विविध प्रकारसे मीमांसा की जाती थी और सभीका तत्व यही निकलता था कि वही कातिल था, और लोग तो केवल अदालतके कारण फँसा दिये गये हैं। डाक्टर प्रियनाथ और इर्फान अलीकी स्वार्थपरतापर खुली-खुली चोटें की जाती थीं। प्रेमशङ्करकी निष्काम सेवाकी सभी सराहना करते थे। इस मुकदमेने उन्हें बहुजनप्रिय बना दिया था।

आज फैसला सुनाया जानेवाला था; इसलिये जमाव भी और दिनोंसे अधिक था। लखनपूरके लोग तो आये ही थे, आसपासके देहातोंसे लोग बड़ी संख्यामें आ पहुँचे थे। ठीक ४ बजे जजने तजवीज सुनायी। बिसेसर साह रिहा हो गये, बलराज और कादिरखाँको कालापानी हुआ, शेष अभियुक्तोंको ७-७ वर्षका सपरिश्रम कारावास दिया गया। बलराजने बिसेसरको सरोष नेत्रोंसे देखा जो कह रहे थे कि अगर क्षणभरके लिये भी छूट जाऊँ तो खून पी लूँ। कादिरखाँ बहुत दुखी और उदास थे। यह तजवीज सुनी तो आँसूकी कई बूँदें मोछोंपर गिर पड़ीं। जीवनका अन्त ही हो गया, कब्रमें पैर लटकाये बैठे थे, सजा मिली कालेपानीकी! चारों ओर कुहराम मच गया। दर्शक

गण अभियुक्तोंकी ओर लपके, पर रक्षकोंने किसीको उनसे कुछ सुननेकी आज्ञा न दी। मोटर तैयार खड़ी थी, सातों आदमी उसमें बिठाये गये, खिड़कियाँ बन्द कर दी गयीं और मोटर जेलकी तरफ चली।

प्रेमशङ्कर चिन्ता और शोककी मूर्ति बने एक वृक्षके नीचे खड़े सकरुण नेत्रोंसे मोटरकी ओर ताक रहे थे, जैसे गाँवकी स्त्रियाँ सिवानपर खड़ी सजल नेत्रोंसे ससुराल जानेवाली लड़की की पालकीको देखती है। मोटर दूर निकल गयी तो दर्शकोंने उन्हें घेर लिया और तरह-तरहके प्रश्न करने लगे। प्रेमशङ्कर उनकी ओर मर्माहत भावसे देखते थे, पर कुछ उत्तर न देते थे। सहसा उन्हें कोई बात याद आ गयी। जेलकी ओर चले। जनताका दल भी उनके साथ-साथ चला। सबको आशा थी कि शायद अभियुक्तोंको देखनेका, उनकी बातें सुननेका सौभाग्य प्राप्त हो जाय। अभी यह लोग कचहरीके अहातेसे निकले ही थे कि डाक्टर इर्फानअली अपनी मोटरपर दिखाई दिये। आज ही गोरखपूरसे लौटे थे। हवा खाने जा रहे थे। प्रेमशङ्करको देखते ही मोटर रोक ली और पूछा कहिये, आज तजवीज सुना दी गयी।

प्रेमशङ्करने रुखाईसे उत्तर दिया, जी हाँ।

इतनेमें सैकड़ों आदमियोंने चारों ओरसे मोटरको घेर लिया और एक तगड़े आदमीने सामने आकर कहा,—"इन्हींकी गरदनपर इन बेगुनाहोंका खून है।

सैकड़ों स्वरोंसे निकला—मोटरसे खींच लो, जरा इनकी खिदमत कर दी जाय। इसने जितने रुपये लिये हैं, सब इसके पेटसे निकाल लो।

उसी बृहदकाय पुरुषने इर्फानअलीका पहुँचा पकड़कर इतने जोरसे झटका दिया कि वह बेचारे गाड़ीसे बाहर निकल पड़े। जबतक मोटरमें थे क्रोधसे चेहरा लाल हो रहा था। नीचे

आकर धक्के खाये तो प्राण सूख गये। दयाप्रार्थी नेत्रोंसे प्रेमशङ्करको देखा। वह हैरान थे कि क्या करूँ? उन्हें पहले कभी ऐसी समस्या नहीं हल करनी पड़ी थी और न उस श्रद्धाका ही कुछ ज्ञान था जो लोगोंकी उनमें थी। हाँ, वह सेवाभाव जो दीन जनोंकी रक्षाके लिये उद्यत रहता था, सजग हो गया। उन्होंने इर्फान अलीका दूसरा हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा और क्रोधोन्मत्त होकर बोले, —यह क्या करते हो, हाथ छोड़ दो।

एक बलवान युवक बोला—इनकी गर्दनपर गाँवभरका खून सवार है।

प्रेमशङ्कर—खून इनकी गर्दनपर नहीं, इनके पेशेकी गर्दनपर सवार है।

युवक—इनसे कहिये, इस पेशेको छोड़ दें।

कई कण्ठोंसे आवाज आयी, बिना कुछ जलपान किये इनकी अक्ल ठिकाने न आयेगी।

सैकड़ों आवाजें आयीं - हाँ, हाँ, लगे—बे-भावकी पड़े!

प्रेमशङ्करने गरजकर कहा —खबरदार, जो एक हाथ भी उठा; नहीं तो तुम्हें यहाँ मेरी लाश दिखाई पड़ेगी। जबतक मुझमें खड़े होनेकी शक्ति है, तुम इनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते।

इस वीरोचित ललकारने तत्क्षण असर किया। लोग डाक्टर साहबके पाससे हट गये। हाँ, उनकी सेवा-सत्कारके ऐसे सुन्दर अवसरके हाथसे निकल जानेपर आपसमें कानाफूसी करते रहे। डाक्टर साहबने ज्योंही मैदान साफ़ पाया, कृतज्ञ नेत्रोंसे प्रेमशङ्करको देखा और मोटरपर बैठकर हवा हो गये। हजारों आदमियोंने तालियाँ बजायीं—भागा! भागा!

प्रेमशङ्कर बड़े सङ्कटमें पड़े हुए थे। प्रति क्षण यही शङ्का होती थी, कि ये लोग न जाने क्या ऊधम मचायें। किसी बग्घी या फिटनको आते देखकर उनका दिल धड़कने लगता था, कि ये लोग कहीं उसे रोक न लें। वह किसी तरह उनसे

पीछा छुड़ाना चाहते थे, पर इसका कोई उपाय न सूझता था। हजारों झल्लाये हुए आदमियोंको काबूमें लाना कठिन था। सोचते थे; अबकी तो मेरी धमकीने काम किया, कौन कह सकता है, कि दूसरी बार भी वह उपयुक्त होगी? कहीं पुलिस आ गयी तो अनर्थ ही हो जायेगा। अवश्य दो-चार आदमियोंकी जान-पर आ बनेगी। वह इन्हीं चिन्ताओंमें डूबे हुए आगे बढ़े। रास्ते-मेंही डाक्टर प्रियनाथका बँगला था। वह इस वक्त बरामदेमें टहल रहे थे। टेनिसका रैकेट हाथमें था। शायद गाड़ीकी राह देख रहे थे। यह भीड़-भाड़ देखी तो अपने फाटकपर आकर खड़े हो गये।

सहसा किसीने कहा—जरा इनकी भी खबर लेते चलो। सच पूछो, तो इन्हीं महाशयने बेचारोंकी गर्दन काटी है।

कई आदमियोंने इसका अनुमोदन किया—हाँ, हाँ, पकड़ लो, जाने न पाये।

जबतक प्रेमशङ्कर डाक्टर साहबके पास पहुँचें-पहुँचें तबतक सैकड़ों आदमियोंने उन्हें घेर लिया। उसी बलिष्ट युवकने आगे बढ़कर डाक्टर साहबके हाथसे रैकेट छीन लिया और कहा, बता इये साहब, लखनपूरके मामलेमें कितनी रिश्वत खायी है?

कई आदमियोंने कहा,—बोलते क्यों नहीं, कितने रुपये उड़ाये थे?

डाक्टर महोदयने चिल्ला-चिल्लाकर नौकरोंको पुकारना शुरू किया; किन्तु नौकरोंने आना उचित न समझा।

एक आदमी बोला—वह बिना समझावन-बुझावनके न बतायेंगे।

प्रियनाथ—मैं सबको जेल भिजवा दूँगा, रैसकल्स!

डाक्टर साहबने भय दिखाकर काम निकालना चाहा; पर यह न समझे कि साधारणतः जो लोग आँखके इशारेपर काँप उठते हैं, वे विद्रोहके समय गोलियोंकी भी परवा नहीं करते। उनके

मुँहसे इतना निकलना था, कि लोगोंके तेवर बदल गये। शोर मचा, जाने न पावे मारकर गिरा दो, देखा जायगा।

इतनेमें प्रेमशंकर डाक्टर साहबके पास जाकर खड़े हो गये, सैकड़ों लाठियाँ, छतरियाँ और छड़ियाँ उठ चुकी थीं। प्रेमशंकरको सम्मुख देखकर सबकी सब हवामें तनी रह गयीं। केवल एक लाठी न रुक सकी। वह प्रेमशङ्करके कंधेमें जोरसे लगी।

उसी बलिष्ठ युवकने डाक्टर साहबको धिक्कार कर कहा, उनके पीछे क्या चोरोंकी तरह छिपे खड़े हो। सामने आ जाओ तो मजा चखा दूँ। खूब रिश्वतें ले-लेकर खफीफको शदीद और शदीदको खफीफ बनाया।

अभी यह वाक्य पूरा न होने पाया था कि लोगोंने प्रेमशङ्करको लड़खड़ाकर जमीनपर गिरते देखा। किसीने किसीसे कुछ कहा नहीं, पर सबको किसी अनिष्टकी सूचना हो गयी। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोगोंकी उद्दण्डता शङ्कामें परिवर्तित हो गयी। लोग पूछने लगे, यह किसकी लाठी थी? यह किसने मारा, उसके हाथ तोड़ दो, पकड़कर गर्दन मरोड़ दो? किसकी लाठी थी, सामने क्यों नहीं आता? क्या ज्यादा चोट आयी?

सहसा डाक्टर प्रियनाथने उच्च स्वरसे कहा, अधमरा ही क्यों छोड़ दिया? एक लाठी और क्यों न जड़ दो कि काम तमाम हो जाता? मूर्खो! तुम्हारा अपराधी तो मैं था, इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?

यह कहकर वह प्रेमशङ्करके पास घुटनोंके बल बैठ गये और घावको भली भाँति देखा। कन्धेकी हड्डी टूट गयी थी। तुरन्त रुमाल निकालकर कन्धेमें पट्टी बाँधी। तब अस्पताल जाकर एक चारपाई लिवा लाये और प्रेमशंकरको उठाकर ले गये। हजारों आदमी अस्पतालके सामने चिन्तामें डूबे खड़े थे। सबको यही भय हो रहा था, कि कहीं चोट ज्यादा न आ गयी हो। लेकिन जब डाक्टर साहबने मरहम-पट्टीके बाद आकर कहा, चोट तो

बहुत ज्यादा आयी है, कंधेकी हड्डी टूट गयी है, लेकिन आशा है कि बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे, तब लोगोंके चित्त शान्त हुए। एक-एक करके सभी वहाँसे चले गये।

लाला प्रभाशंकरको ज्योंही यह शोकसंवाद मिला वह बद-हवास दौड़े हुए आये और प्रेमशंकरके पास बैठकर देरतक रोते रहे। प्रेमशंकर सचेत हो गये थे। हाँ, विषम पीड़ासे विकल थे। डाक्टरने बोलने या हिलनेको मना कर दिया था, इसलिये चुपचाप पड़े हुए थे। लेकिन जब प्रभाशंकरको बहुत अधीर देखा तो धीरेसे बोले, आप घबरायें नहीं, मैं जल्द अच्छा हो जाऊँगा। कन्धोंमें दर्द हो रहा है, इसके सिवा मुझे और कोई कष्ट नहीं है। ये बातें सुनकर प्रभाशंकरको तस्कीन हुई। चलते समय उन्होंने डाक्टर साहबके पास जाकर बड़े विनीत भावसे कहा—बाबूजी, यह लड़का मेरे कुलका दीपक है, आप इसपर कृपा-दृष्टि रखियेगा। इसके प्राण बच गये तो यथाशक्ति आपकी सेवा करनेमें कोई बात उठा न रक्खूँगा। यद्यपि मैं किसी लायक नहीं हूँ, तथापि अपनेसे जो कुछ हो सकेगा वह अवश्य आपकी भेंट करूँगा।

प्रियनाथने कहा,—लालाजी, आप यह क्या कहते हैं? अगर मैं इनकी सेवा-सुश्रूषामें तन-मनसे न लगूँ, तो मुझसे ज्यादा कृतघ्न प्राणी संसारमें न होगा। मेरे ही कारण इन्हें यह चोट आयी है। अगर यह वहाँ न होते तो मेरी हड्डियोंका भी पता न मिलता। इन्होंने जानपर खेलकर मेरी प्राणरक्षा की। इनका एहसान कभी मेरे सिरसे नहीं उतर सकता।

तीन-चार दिनमें प्रेमशंकर इतने स्वस्थ हो गये कि तकियेके सहारे बैठ सके। लकड़ी लेकर औषधालयके बरामदोंमें टहलने भी लगे। उनका कुशल-समाचार पूछनेके लिये प्रति दिन शहरसे सैकड़ों आदमी आते रहते थे। प्रेमशंकर सबसे डाक्टर साहबकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते। प्रियनाथके सेवाभावने उन्हें मोहित

कर दिया था। वह दिनमें कई बार उन्हें देखने आते। कभी-कभी समाचारपत्र पढ़कर सुनाते, उनके लिये अपने घरमें विशेष रीतिसे भोजन बनवाते! प्रेमशङ्कर मनमें बहुत लज्जित थे, कि ऐसे सज्जन ऐसे देवतुल्य पुरुषके विषयमें मैंने क्यों अनुचित सन्देह किये। वह अपनी विमल श्रद्धासे उस अभक्तिकी पूर्ति कर रहे थे।

एक सप्ताह बीत चुका था। प्रेमशङ्कर उदास बैठे हुए सोच रहे थे, कि उन दीन अभियुक्तोंका अब क्या हाल होगा? मैं यहाँ पड़ा हुआ हूँ, अपीलका अभीतक कुछ निश्चय न हो सका और अपील होगी कैसे? इतने रुपये कहाँसे आयेंगे? आजकल तो न्याय गरीबोंके लिये एक अलभ्य वस्तु हो गया है. पग-पगपर रुपयेका खर्च! और यह क्या मालूम कि अपीलका नतीजा हमारे अनुकूल होगा? कहीं येही सजाएँ बहाल रह गयीं, तो अपील करना निष्फल हो जायेगा; लेकिन कुछ भी हो, अपील करनी चाहिये। रुपयेका कोई-न-कोई उपाय निकल ही आयेगा और कुछ न होगा तो दूकान-दूकान और घर-घर घूमकर चन्दा माँगूँगा। दीनोंसे स्वभावतः लोगोंकी सहानुभूति होती है। सम्भव है, काफी धन हाथ आ जाय। ज्ञानशङ्करको बुरा लगेगा, लगे, इसमें मेरा कुछ बस नहीं। क्या उन्हें इस दुर्घटनाकी खबर न मिली होगी। आना तो दूर रहा, एक पत्र भी न लिखा, कि मुझे तस्कीन होती।

वह इन्हीं विचारोंमें मग्न थे, कि प्रियनाथ आ गये और बोले, आप इस समय बहुत चिन्तित मालूम होते हैं। थोड़ी-सी चाय पी लीजिये, चित्त प्रसन्न हो जाय।

प्रेमशङ्कर—जी नहीं, बिलकुल इच्छा नहीं है। आप मुझे यहाँसे कबतक बिदा करेंगे।

प्रियनाथ—अभी शायद आपको यहाँ एक सप्ताह और नजर-बन्द रहना पड़ेगा, अभी हड्डीके जुड़नेमें थोड़ी-सी कसर है और फिर ऐसी जल्दी क्या है? यह भी तो आपका ही घर है।

प्रेमशंकर—आप मेरे सिरपर उपकारोंका इतना बोझ रखते जाते हैं, कि मैं शायद हिल भी न सकूँ। यह आपकी कृपा, स्नेह और शालीनताका फल है, कि मुझे पीड़ाका कष्ट कभी जान ही न पड़ा। मुझे याद नहीं आती कि इतनी शांति कहीं और मिली हो। आपकी हार्दिक समवेदनाने मुझे दिखा दिया कि संसारमें भी देवताओंका वास हो सकता है। सभ्य जगतपरसे मेरा विश्वास उठ गया था। आपने उसे फिर जीवित कर दिया।

प्रेमशंकरकी नम्रता और सरलता डाक्टर महोदयके हृदयको दिनोंदिन मोहित करती जाती थी। ऐसे शुद्धात्मा, साधु और निःस्पृह पुरुषका श्रद्धापात्र बनकर उनकी क्षुद्रताएँ और मलिनताएँ आपही आप मिटती जाती थीं। वह ज्योति दीपककी भाँति उनके अन्तःकरणके अन्धेरेको विच्छिन्न किये देती थी। इस श्रद्धारत्नको पाकर वह ऐसे मुग्ध थे, जैसे कोई दरिद्र पुरुष अनायास कोई सम्पत्ति पा जाय। उन्हें सदैव यही चिन्ता रहती थी, कि कहीं यह रत्न मेरे हाथसे निकल न जाय। उन्हें कई दिनोंसे यह इच्छा हो रही थी, कि लखनपूरके मुकदमेके विषयमें प्रेमशंकरसे अपनी स्थिति स्पष्ट रूपसे प्रकट कर दें; पर इसका कोई अवसर न पाते थे। इस समय अवसर पाकर बोले, आप मुझे बहुत लज्जित कर रहे हैं। किसी दूसरे सज्जनके मुँहसे ये बातें सुनकर मैं अवश्य समझता कि वह मुझे बना रहा है। आप मुझे इससे कहीं ज्यादा विवेक-परायण और सच्चरित्र समझ रहे हैं, जितना मैं हूँ। साधारण मनुष्योंकी भाँति लोभमें ग्रसित; इच्छाओंका दास और इन्द्रियोंका भक्त हूँ। मैंने अपने जीवनमें घोर पाप किये हैं। यदि वह आपसे बयान करूँ तो आप चाहे कितने ही उदार क्यों न हों, मुझे तुरन्त नजरोंसे गिरा देंगे। मैं स्वयं अपने कुकृत्योंका परदा बना हुआ हूँ, उन्हें बाह्य आडम्बरोंसे ढाँके हुए हूँ, लेकिन इस मुकदमेके सम्बन्धमें जनताने मुझे जितना बदनाम कर रक्खा है, उसका मैं भागी नहीं हूँ। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि मुझपर

जो आक्षेप किये गये हैं वे सर्वथा निर्मूल हैं। सम्भव है हत्या-निरूपणमें मुझे भ्रम हुआ हो और अवश्य हुआ है, लेकिन मैं इतना निर्दय और विवेकहीन नहीं हूँ कि अपने स्वार्थके लिये इतने निरपराधियोंका गला काटता। यह मेरी दासवृत्ति है जिसने मेरे माथेपर अपयशका टीका लगा दिया।

प्रेमशङ्करने ग्लानिमय भावसे कहा—भाई साहब, आपकी इस बदनामीका सारा दोष मेरे सिर है। मैं ही आपका अपराधी हूँ। मैंने ही दूसरोंके कहनेमें आकर आपपर अनुचित सन्देह किये। इसका मुझे जितना दुःख और खेद है वह आपसे कह नहीं सकता। आप जैसे साधु पुरुषपर ऐसा घोर अन्याय करनेके लिये परमात्मा मुझे न जाने क्या दण्ड देंगे। पर आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि मेरी अल्पज्ञतापर विचारकर मुझे क्षमा कीजिये।

प्रियनाथके हृदयपारसे एक बोझ-सा उतर गया। प्रेमशङ्कर इसके ३-४ दिन बाद हाजीपुर लौट आये, पर डाक्टर साहब रोज सन्ध्या समय उनसे मिलने आया करते। अब वह पहलेसे कहीं ज्यादा कर्त्तव्यपरायण हो गये थे। १० बजेके पहले प्रातःकाल चिकित्सा भवनमें आ बैठते, रोगियोंकी दशा ध्यानसे देखते, उन्हें सान्त्वना देते। इतना ही नहीं, पहले वह पूरी फीस लिये बिना जगहसे हिलते न थे, अब बहुधा गरीबोंको देखने बिना फीस लिये ही चले जाते। छोटे-छोटे कर्मचारियोंसे आधी ही फीस लेते। नगरकी सफाईका नियमानुसार निरीक्षण करते। जिस गली या सड़कसे निकल जाते लोग बड़े आदरसे उन्हें सलाम करते। चन्द ही महीनोंमें सारे नगरमें उनका बखान होने लगा। काशीका प्रसिद्ध समाचारपत्र 'गौरव' उनका पुराना शत्रु था। पहले उनपर खूब चोटें किया करता था। अब वह भी उनका भक्त हो गया। उसने अपने एक लेखमें यह आलोचना की, "काशीके लिये यह परम सौभाग्यकी बात है कि बहुत दिनोंके बाद उसे ऐसा प्रजावत्सल, ऐसा सहृदय, ऐसा

कर्त्तव्यपरायण डाक्टर मिला। चिकित्सकका लक्ष्य धनोपार्जन नहीं, यशोपार्जन होना चाहिये और महाशय प्रियनाथने अपने व्यवहारसे सिद्ध कर दिया है कि वह इस उच्चादर्शका पालन करना अपना ध्येय समझते हैं।" डाक्टर साहबको सुकीर्तिका स्वाद मिल गया। अब दीनोंकी सेवासे उनका चित्त जितना उल्लसित होता था उतना पहले संचित धनकी बढ़ती हुई संख्याओंसे भी न हुआ था। यद्यपि धनकी तृष्णासे वह अभी मुक्त नहीं हुए थे, पर कीर्तिलाभकी सदिच्छाने धनलिप्साको परास्त कर दिया था। प्रेमशङ्करके सम्मुख जाते ही उनका हृदय ओसबिन्दुओंसे धुले हुए फूलोंके सदृश निर्मल हो जाता, बिखर उठता। उस सरल, संतोषमय, कामनारहित जीवनके सामने उन्हें अपना धनलालसा तुच्छ मालूम होने लगती थी। सन्तान-की चिन्ताका बोझ कुछ हलका हो जाता था। जब इस दशामें भी हम संतुष्ट और प्रसन्न रह सकते हैं, यशस्वी बन सकते हैं, दूसरोंका सहायता कर सकते हैं, प्रेम और श्रद्धाके पात्र बन सकते हैं, तो फिर धनपर जान देना व्यर्थ है। उन्हें ज्ञात होता था कि सफल जीवनके लिये धन कोई अनिवार्य्य साधन नहीं है। उन्हें खेद होता था कि मेरी आवश्यकताएं क्यों इतनी बढ़ी हुई हैं, मैं डाक्टर होकर रसनाका दास क्यों बना हुआ हूँ, सुन्दर वस्त्रोंपर क्यों मरता हूँ। इन्हींके कारण तो मैं सारे नगर में बदनाम था, लोभी, स्वार्थी, निर्दय बना हुआ था और अब भी हूँ। लोगोंको शंका होती थी कि कहीं यह रोगको बढ़ा न दे, इसलिये जल्दी कोई मुझे बुलाता न था। इन विचारोंका डाक्टर साहबके रहन-सहनपर प्रभाव पड़ने लगा।

एक दिन डाक्टर साहब किसी मरीजको देखकर लौटते हुए प्रेमशङ्करकी कृषिशालाके सामनेसे निकले। १० बज गये थे। धूप तेज थी। सूर्य्यकी प्रखर किरणें आकाशमण्डलको बाणोंसे छेदती हुई जान पड़ती थीं। डाक्टर साहबके जीमें आया, देखता

चलूँ, क्या कर रहे हैं। अन्दर पहुँचे तो देखा कि वह अपने झोंपड़े के सामने वृक्षके नीचे खड़े गेहूँके पोले बिखेर रहे थे। कई मजूर लौनी कर रहे थे। प्रियनाथको देखते ही प्रेमशङ्कर झोपड़ेमें आ गये और बोले, धूप तेज है।

प्रियनाथ लेकिन आप तो इस तरह काममें लगे हुए हैं, मानों धूप है ही नहीं।

प्रेम- उन मजूरोंको देखिये। धूपकी कुछ परवा नहीं करते।

प्रिय वे मजूर हैं, इसके आदी हैं।

प्रेम—हमें इस कृत्रिम जीवनने चौपट कर दिया, नहीं तो हम भी ऐसे ही आदी होते और श्रमको बुरा न समझते।

प्रेमशङ्कर कुछ और कहना चाहते थे कि इतनेमें दो वृद्धाएँ सिरपर लकड़ीके गट्ठे रखे आयीं और पूछने लगीं—सरकार, लकड़ी ले लो। इन स्त्रियोंके पीछे-पीछे कई लड़के भी लकड़ीके बोझ लिये हुए थे। सबोंके कपड़े तरबतर हो रहे थे। छाती और पसलीकी हड्डियाँ निकली हुई थीं, ओठ सूखे हुए, देहपर मैल जमी हुई, उसपर सूखे हुए पसीनेकी धारियाँ-सी बन गयी थीं। प्रेमशङ्करने लकड़ीके दाम पूछे, सबके गट्ठे उतरवा लिये; लेकिन देखा तो सन्दूकमें पैसे न थे। गुमास्ताको रुपया भुनानेको दिया। दोनों वृद्धाएँ वृक्षके नीचे छाँहमें बैठ गयीं और लड़के बिखरे हुए दाने चुन-चुन खाने लगे। प्रेमशङ्करको उनपर दया आ गयी। थोड़े-थोड़े मटर सब लड़केको दिये। दोनों स्त्रियाँ आशीष देती हुई बोलीं,—बाबूजी, नारायण तुम्हें सदा सुखी रखें। इन बेचारोंने अभी कलेवा नहीं किया है।

प्रेम—तुम्हारा घर कहाँ है?

एक बुढ़िया—सरकारने लखनपूरका नाम सुना होगा।

प्रियनाथ—आपने गट्ठे देखे नहीं, सबोंने खूब कैंची लगायी है।

प्रेमशङ्कर—दरिद्रता सब कुछ करा देती है। (वृद्धासे) तुम लोग इतनी दूर लकड़ी बेचने आ जाती हो?

वृद्धा—क्या करें मालिक, बीचमें और कोई बस्ती नहीं है। घड़ी रातके चले हैं, दुपहरी हो गयी, किसी पेड़के नीचे पड़े रहेंगे, दिन ढलेगा तो साँझतक घर पहुँचेंगे। करमका लिखा भोग हैं, जो कभी न करना पड़ा था वह मरते समय करना पड़ा।

प्रेम—आजकल गाँवका क्या हाल है?

वृद्धा—क्या हाल बतायें सरकार, जमींदारकी निगाह टेढ़ी हो गयी, सारा गाँव बँध गया, कोई डामिल गया, कोई कैद हो गया, उनके बाल-बच्चे अब दाने-दानेको तरस रहे हैं। मेरे दो बेटे थे दो हलकी खेती होती थी। एक तो डामिल गया, दूसरेकी सालभरसे कुछ टोह ही नहीं मिली। बैल थे, वे चारे बिना टूट गये, खेतीबारी कौन करे, बहुएँ हैं, वे बाहर आ जा नहीं सकतीं। मैं ही उपले बेंचकर ले जाती हूँ, तो सबके मुँहमें दाना पड़ता हैं। पोते थे, उन्हें भगवानने पहले ही ले लिये। बुढ़ापेमें यही भोगना लिखा था।

प्रेम—तुम डपटसिंहकी माँ तो नहीं हो?

वृद्धा हाँ, सरकार, आप कैसे जानते हैं?

प्रेम—ताऊनके दिनोंमें जब तुम्हारे पोते बीमार थे, तब मैं वहीं था। कई बेर और हो आया हूँ। तुमने मुझे पहचाना नहीं, मेरा नाम प्रेमशङ्कर है।

वृद्धाने थोड़ा-सा घूँघट निकाल लिया। दीनताकी जगह लज्जाका हलका-सा रङ्ग चेहरेपर आ गया। बोली,—हाँ बेटा, अब मैंने पहचाना, आँखोंसे अच्छी तरह सूझता नहीं। भैया, तुम जुग-जुग जियो। आज सारा गाँव तुम्हारा यश गा रहा है, तुमने अपनीवाली कर दी, पर भागमें जो कुछ लिखा था वह कैसे टलता! बेटा, सारे गाँवमें हाहाकार मचा हुआ है। दुखरन भगतको तो जानते हो होगे, यह बुढ़िया उन्हींकी घरवाली है। पुराना खाती थी, नया रखती थी, अब घरमें कुछ नहीं रहा। यह दोनों लड़के बन्धूके हैं, एक रङ्गीका लड़का है और ये दोनों कादिर

मियाँके पोते हैं। न जाने क्या हो गया कि घरमें मरदोंके जाते ही जैसे बरक्कत ही उठ गयी। सुनती थी कि कादिरमियाँके पास बड़ा धन है। पर इतने ही दिनोंमें यह हाल हो गया कि लड़के मजूरी न करें, तो मुँहमें मक्खी आये-जाये। भगवान इस कलमुँहे फैजूका सत्यानास करे, इसने और भी अंधेर मचा रखा है, अबतक तो उसने गाँवभरको बेदखल कर दिया होता; पर नारायन सुक्खू चौधरीका भला करे कि उन्होंने सारी बाकी कौड़ी पाई-पाई चुका दी। पर अबकी उन्होंने खबर न ली और फिर अकेला आदमी सारे गाँवको कहाँतक सँभालें! साल दो सालकी बात हो तो निबाह दे, यहाँ तो उम्र-भरका रोना है! कारिंदा चपरासी अभीसे धमका रहे हैं कि अबकी बेदखल करके तभी दम लेंगे। अबकी साल तो कुछ आधे-साझेमें खेती हो गयी थी। खेत निकल जायेंगे तो क्या जाने क्या गति होगी?

यह कहते-कहते बुढ़िया रोने लगी। प्रेमशङ्करकी आँखें भी भर गयीं, पूछा—बिसेसर साहका क्या हाल है?

बुढ़िया—क्या जानूँ भैया, मैंने तो सालभरसे उनके द्वारपर झाँका भी नहीं। अब कोई उधर नहीं जाता। ऐसे आदमीका मुँह देखना पाप है। लोग दूसरे गाँवसे नोन-तेल लाते हैं। वह भी अब घरसे बाहर नहीं निकलता, दूकान उठा दी है। घरमें बैठा न जाने क्या-क्या करता है? जो दूसरेको गड्ढा खोदेगा, उसके लिये कुआँ तैयार है। देखा तो नहीं, पर सुनती हूँ, जबसे यह मामला उठा है, उसके घरमें किसीको चैन नहीं है। एक-न-एक परानीके सिर भूत आया ही रहता है। ओझे-सयाने रात-दिन जमा रहते हैं। पूजा-पाठ, जप-तप हुआ करता है। एक दिन बिलासीसे रास्तेमें मिल गये थे। रोने लगा, बहुत पछताता था, कि मैंने दूसरोंकी बातोंमें आकर यह कुकर्म किया। मनोहर उसके गले पड़ा हुआ है। मारे डरके साँझसे केवाड़ बंद हो जाता है। रातको बाहर नहीं निकलता। मनोहर रात दिन

उसके द्वारपर खड़ा रहता है, जिसको पाता है, उसीको चपेट लेता है। सुनती हूँ, अब गाँव छोड़कर किसी दूसरे गाँवमें बसनेवाला है।

प्रेमशङ्कर यह बातें सुनकर गहरे सोचमें डूब गये। मैं कितना बेपरवाह हूँ। इन बेचारोंको सजा पाये हुए सालभर होने आते हैं और मैंने उनके बाल-बच्चोंकी सुधितक न ली। वह सब अपने मनमें क्या कहते होंगे? ज्ञानशङ्करसे बात हार चुका हूँ। लेकिन अब वहाँ जाना पड़ेगा। अपने वचनके पीछे इतने दुखियारोंको मरने दूँ? यह नहीं हो सकता, इनका जीवन मेरे वचनसे कहीं ज्यादा मूल्यवान् है। अकस्मात् बुढ़ियाने कहा—कहो भैया, अब कुछ नहीं हो सकता? लोग कहते हैं, अभी किसी और बड़े हाकिमके यहाँ फरियाद लग सकती है।

प्रेमशङ्करने इसका कुछ उत्तर न दिया। धनका प्रबन्ध तो बहुत कठिन न था; लेकिन उन्हें अपीलसे उपकार होनेकी बहुत कम आशा थी। वकीलोंकी भी यही राय थी। इसीलिये वह इस प्रश्नको टालते आते थे। डाक्टर साहबसे भी उन्होंने अपीलकी चर्चा कभी न की थी। प्रियनाथ उनके मुखकी ओर ध्यानसे देख रहे थे। उनके मनके भावोंको भाँप गये और उनके असमंजसको दूर करनेके लिये बोले—बूढ़ी, हाँ फरियाद लग सकती है, उसका बन्दोबस्त हो रहा है, धीरज रक्खो, जल्द ही अपील दायर कर दी जायेगी।

वृद्धा—बेटा, दूधों नहाव, पूतों फलो। सुनती हूँ, कोई बड़ा डाक्टर था, उसीने जमींदारसे कुछ ले-देकर इन गरीबोंको फँसा दिया। न हो, तुम दोनों उसी डाक्टरके पास जाकर हाथ-पैर जोड़ो, कौन जाने तुम्हारी बात मान जाये। उसके आगे भी तो बाल-बच्चे होंगे? क्यों हम गरीबोंको बेकसूर मारता है? किसीकी हाय बटोरना अच्छा नहीं होता।

प्रेमशंकर जमीनमें गड़े जाते थे। डाक्टर साहबको कितना

दुःख हो रहा होगा,अपने मनमें कितने लज्जित हो रहे होंगे,कहीं बुढ़िया गाली न देने लगे, इसे कैसे चुप कर दूँ। इन विचारों-से वह बहुत विकल हो रहे थे; किन्तु प्रियनाथके चेहरेपर उदारता झलक रही थी, नेत्रोंसे वात्सल्यभाव प्रस्फुटित हो रहा था। मुस्कुराते हुए बोले—हम लोग उस डाकूरके पास गये थे। उसे खूब समझाया। है तो लालची, पर कहने-सुननेसे राहपर आ गया है, अब सच्ची गवाही देगा।

इतनेमें मस्ता पैसे लेकर आ गया। प्रेमशंकरने लकड़ीके दाम दिये, बुढ़िया लकड़ीके साथ आशीर्वाद देकर चली गयी। द्वारपर पहुँचकर उसने फिर कहा,—भैया, भूल मत जाना, धरमका काम है, तुम्हें बड़ा जस होगा।

उनके चले जानेके बाद कुछ देरतक प्रेमशंकर और प्रिय-नाथ दोनों मौन बैठे रहे। प्रेमशंकरका मुँह संकोचने बन्द कर दिया था, डाक्टरका लज्जाने।

सहसा प्रियनाथ खड़े हो गये और निश्चयात्मक भावसे बोले,—भाईसाहब, अवश्य अपील कीजिये। आप आज ही इलाहाबाद चले जाइये। आजके दृश्यने मेरे हृदयको हिला दिया। ईश्वरने चाहा तो अबकी सत्यकी विजय होगी।

४५

डाकूर इर्फानअली उस घटनाके बाद हवा खाने न जा सके, सीधे घरकी ओर चले। रास्तेभर उन्हें संशय हो रहा था कि कहीं उन उपद्रवियोंसे फिर मुठभेड़ न हो जाये, नहीं तो अबकी जानके लाले पड़ जायँगे। आज बड़ी खैरियत हुई कि प्रेमशंकर मौजूद थे, नहीं तो इन बदमाशोंके हाथों मेरी न जाने क्या दुर्गति होती। जब वह अपने घरपर सकुशल पहुँच गये और बरामदेमें आरामकुरसीपर लेटे, तो इस समस्याकी आलोचना करने लगे। अबतक वह न्याय और सत्यके निर्भीक समर्थक समझे जाते थे। पुलिसके विरुद्ध सदैव उनकी तलवार निकली ही रहती थी,यही

उनकी सफलताका तत्व था। वह बहुत अध्ययनशील, तत्वान्वेषी, तार्किक वकील न थे; लेकिन उनकी निर्भीकता इन सारी त्रुटियोंपर परदा डाल दिया करती थी। पर इस लखनपूरवाले मुकदमेमें पहली बार उनकी स्वार्थपरताकी कलई खुली। पहले वह प्रायः पुलिससे हारकर भी जीतमें रहते थे, जनताका विश्वास उनके ऊपर जमा रहता था; बल्कि और बढ़ जाता था। आज पहली बार उन्हें सच्ची हार हुई, जनताका विश्वास उनपरसे उठ गया। लोकमतने उनका तिरस्कार कर दिया। उनके कानोंमें उपद्रवियोंके ये शब्द गूँज रहे थे, "इन दोनोंका खून इन्हींकी गर्दनपर है।" इर्फानअली उन मनुष्योंमें न थे, जिनकी आत्मा ऋद्धि-लालसाके नीचे दबकर निर्जीव हो जाती है। वह सदैव अपने इष्ट-मित्रोंसे कठिनाइयोंका रोना रोया करते थे और निस्सन्देह ये आँसू उनके हृदयसे निकलते थे। वह बार बार इरादा करते थे, कि इस पेशेको छोड़ दें; लेकिन जुआरियोंकी प्रतिज्ञाकी भाँति उनका निश्चय भी दृढ़ न होता था; बल्कि दिनोंदिन वह लोभमें और भी डूबते जाते थे। उनकी दशा उस पथिककी-सी थी जो संध्या होनेके पहले ठिकानेपर पहुँचनेके लिये कदम तेज़ीसे बढ़ाता है। इर्फानअली वकालत छोड़नेके पहले इतना धन कमा लेना चाहते थे, कि जीवन सुखसे व्यतीत हो। अतएव वह लोभमार्गमें और भी तीव्र गतिसे चल रहे थे।

लेकिन आजकी घटनाने उन्हें मर्माहत कर दिया। अबतक उनकी दशा उन रईसोंकी-सी थी, जो वहमकी दवा किया करते हैं। कभी कोई स्वादिष्ट अवलेह बनवा लिया, कभी कोई सुगन्धित अर्क खिंचवा लिया और रुचिके अनुसार उसका सेवन करते रहे। किन्तु आज उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं एक जीर्ण रोगसे ग्रसित हूँ, अब अर्क और अवलेहसे काम न चलेगा। इस रोगका निवारण तेज नश्तरों और तीक्ष्ण औषधियोंसे होगा। मैं सत्यका सेवक बनता था। वास्तवमें मैं अपनी इच्छाओंका दास हूँ। प्रेमशंकरने

मुझे नाहक बचा लिया, जरा दो-चार चोटें पड़ जातीं तो मेरी आँखें और खुल जातीं।

मुआजल्लाह! मैं कितना स्वार्थी हूँ। अपने स्वार्थके सामने दूसरोंकी जानकी भी परवा नहीं करता। मैंने इस मुआमलेमें आदिसे अन्ततक कपट व्यवहारसे काम लिया। कभी मिसलोंको गौरसे नहीं पढ़ा, कभी जिरहके प्रश्नोंपर विचार नहीं किया, यहाँ तक कि गवाहोंके बयान भी आद्योपान्त न सुने, कभी दूसरे मुकदमेमें चला जाता था, कभी मित्रोंसे बातें करने लगता था। मैंने थोड़ा-सा अध्ययन किया होता, तो प्रियनाथकी चुटकियों-पर उड़ा देता, मुखबिरको दो-चार जिरहोंमें उखाड़ सकता था, थानेदारका बयान भी कुछ ऐसा प्रामाणिक न था; लेकिन मैंने तो अपने कर्त्तव्यपर कभी विचार ही नहीं किया। अदालतमें इस तरह जा बैठता था; जैसे कोई मित्रोंकी सभामें जा बैठता हो; मैं इस पेशेको बुरा कहता हूँ, यह मेरी मक्कारी है, हमारी अनीति है, जिसने इस पेशेको बदनाम कर रक्खा है। उचित तो यह है कि हमारी दृष्टि सत्यपर हो, पर इसके बदले हमारी निगाह सदैव रुपयेपर रहती है। खुदाने चाहा तो आइन्दासे अब वही करूँगा जो मुझे करना चाहिये, हाँ, अबसे ऐसा ही होगा। अब मैं भी प्रेमशङ्करके जीवनको अपना आदर्श बनाऊँगा, सन्तोष और सेवाके सन्मार्गपर चलूँगा।

जबतक प्रेमशङ्कर औषधालयमें रहे, इर्फानअली प्रायः नित्य उनका समाचार पूछने जाया करते थे। उनके धैर्य और साहस-पर डाक्टर साहबको आश्चर्य होता था। प्रेमशङ्करके प्रति उनकी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। अपने मुवक्किलोंके साथ उनका व्यवहार अब अधिक विनयपूर्ण होता था। वह उनके मुआमले ध्यानसे देखते, एक समय एकसे अधिक मुकदमा न लेते और एक मुकदमेको इजलासपर छोड़कर दूसरे मुकदमेकी पैरवी करने की तो उन्होंने मानों शपथ ही खा ली। वह अपील करनेके लिये

बार-बार प्रेमशङ्करको प्रेरित करना चाहते थे, पर अपनी असज्जनताको याद करके सकुच जाते थे। अन्तमें उन्होंने सीतापुर जाकर बाबू ज्वालासिंहसे इस विषयमें परामर्श करनेका निश्चय किया ; किन्तु वह महाशय अभीतक दुविधेमें पड़े हुए थे। वह प्रेमशङ्करको कई बार लिख चुके थे कि त्याग पत्र देकर शीघ्र ही आपकी सेवामें आता हूँ ; लेकिन फिर कोई-न-कोई ऐसी बात आ जाती थी, कि उन्हें अपने इरादेको स्थगित करनेपर विवश होना पड़ता था। बात यह थी कि शीलमणि उनके इस्तीफा देने पर राजी न होती थी। वह कहती—बलासे तुम्हारे अफसर तुमसे अप्रसन्न हैं, तरक्की नहीं होती है, न सही। तुम्हारे हाथोंमें न्याय करनेका अधिकार तो है ? अगर तुम्हारे विधातागण तुम्हारे व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर तुम्हें पदच्युत कर दें,तो तुम्हें अपील करनी चाहिये और चोटीके हाकिमोंसे लड़ना चाहिये। यह नहीं कि अफसरोंने जरा तीवर बदला और तुमने भयभीत होकर त्यागपत्र देनेकी ठान ली। तुम्हारी इस अकर्मण्यतासे तुम्हारे कितने ही न्यायशील, आत्माभिमानी सहवर्गियोंकी हिम्मत टूट जायेगी और वह भाग निकलनेका उपाय करने लगेंगे। विभाग सज्जनोंसे खाली हो जायेगा और वही खुशामदी टट्टू हाकिमोंके इशारोंपर नाचनेवाले बाकी रह जायेंगे। ज्वालासिंह इस दलीलका कोई जवाब न दे सकते थे। जब डाक्टर इर्फानअली सिरपर जा पहुँचे, तो वह अपनी शिथिलता और अधिकार-प्रेमका दोष शीलमणिपर रखकर अपनेको मुक्त न कर सके।

शीलमणि समझ गयी कि अब इन्हें रोकना कठिन है, मेरी एक न सुनेंगे। ज्योंही अवसर मिला उसने ज्वालासिंहसे पूछा-डाक्टर साहबको क्या जवाब दिया ?

ज्वाला—जवाब क्या देना है, इस्तीफा दिये देता हूँ। अब हीला-हवाला करनेसे काम न चलेगा। जबतक मैं न जाऊँगा, बाबू प्रेमशङ्कर कुछ न कर सकेंगे। दुर्भाग्यसे वह मुझपर उससे

कहीं ज्यादा विश्वास करते हैं, जिसके योग्य मैं हूँ। अपीलकी अवधि बीत जायगी तो फिर कुछ बनाये न बनेगी। अपीलके सफल होनेकी बहुत कुछ आशा है और अगर मेरे सदुद्योगसे कई निरपराधोंकी जानें बच जायें, तो मुझे अब एक क्षण भी विलम्ब न करना चाहिये।

शीलमणि—तो बहुत दिनोंकी छुट्टी क्यों नहीं ले लेते?

ज्वालासिंह—तुम तो जान-बूझकर अनजान बनती हो। वहाँ मुझे कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ेंगी, जो दासत्वकी बेड़ियाँ पहने हुए नहीं कर सकता। रुपयेके लिये चन्दे माँगना, वकीलोंसे मिलना-जुलना, लखनपूरवालोंके कष्टनिवारणकी आयोजना करना, यह सभी काम करने पड़ेंगे। पुलिसवालोंकी निगाहपर चढ़ जाऊँगा, अधिकारिवर्ग तन जायेंगे, तो इस बेड़ीको काट ही क्यों न दूँ? मुझे पूरा विश्वास है, कि मैं स्वाधीन होकर जितनी जाति-सेवा कर सकता हूँ, उतनी इस दशामें कभी न कर सकूँगा।

शीलमणि बहुत देरतक उनसे तर्क-वितर्क करती रही, अन्तमें क्रुद्ध होकर बोली,—उँह, जो इच्छा हो करो, मुझे क्या करना है। जैसे सूखा सावन वैसा भरा भादों। आप ही पछताओगे। यह सब आदर-सम्मान तभीतक है, जबतक हाकिम हो। जब जातिसेवकोंमें जा मिलोगे, तो कोई बात भी न पूछेगा। क्या वहाँ सबके सब सज्जन ही भरे हुए हैं? अच्छे-बुरे सभी जगह होते हैं। प्रेमशङ्करकी तो मैं नहीं कहती, वह देवता हैं; लेकिन जातिसेवकोंमें तुम्हें सैकड़ों आदमी ऐसे मिलेंगे, जो स्वार्थके पुतले हैं और सेवाभेष बनाकर गुलछर्रे उड़ाते हैं। वह निःस्पृह पवित्र आत्माओंको फूटी आँख नहीं देख सकते। तुम्हें उनके बीचमें रहना दूभर हो जायेगा, उनका अन्याय, कपटव्यवहार और संकीर्णता देखकर तुम कुढ़ोगे; पर उनसे कुछ कह न सकोगे। इसलिये जो कुछ करो, सोच-समझकर करो।

ये वही बातें थीं, जो ज्वालासिंहने स्वयं शीलमणिसे कही थीं। कदाचित् यही बातें सुन-सुनकर वह इस्तीफेके विपक्षमें हो गयी थीं। पर इस समय वह यह निराशाजनक बातें न सुन सके, उठकर बाहर चले आये और उसी आवेशमें त्यागपत्र लिखना शुरू किया।

४६

कई महीने बीत चुके, लेकिन प्रेमशङ्कर अपील दायर करनेका निश्चय न कर सके। जिस काममें उन्हें किसी दूसरेसे मदद मिलनेकी आशा न होती थी, उसे वह बड़ी तत्परतासे करते थे; लेकिन जब कोई उन्हें सहारा देनेके लिये हाथ बढ़ा देता था तब उनपर एक विचित्र शिथिलता-सी छा जाती थी। इसके सिवा धनाभाव भी अपीलका बाधक था। दिवानीके खर्चने उन्हें इतना जेरबार कर दिया था कि हाईकोर्ट जानेकी हिम्मत न पड़ती थी। यद्यपि कितने ही आदमियोंको उनसे श्रद्धा थी और वह इस पुण्य-कार्य्यके लिये पर्याप्त धन एकत्र कर सकते थे, पर उनकी स्वाभाविक सरलता और कातरता इस आधारको उनकी कल्पनामें भी न आने देती थी।

एक दिन संध्या समय प्रेमशङ्कर बैठे हुए समाचारपत्र देख रहे थे। गोरखपूरके सनातनधर्म महोत्सवका समाचार मोटे अक्षरोंमें छपा हुआ दिखाई दिया। गौरसे पढ़ने लगे। ज्ञान-शङ्करको उन्होंने मनमें धूर्त और स्वार्थपरायणताका समझ रखा था। अब उनकी इस सत्यनिष्ठा और धर्मपरायणका वृत्तान्त पढ़कर उन्हें अपनी संकीर्णतापर अत्यन्त खेद हुआ। मैं कितना निर्बुद्धि हूँ! ऐसी दिव्य और निर्मल आत्मापर अनुचित सन्देह करने लगा? ज्ञानशङ्करके प्रति उनके हृदयमें भक्तिकी तरंगें-सी उठने लगीं। उनकी सराहना करनेकी ऐसी उत्कट इच्छा हुई, कि उन्होंने मस्ता और भोलाको कई बार पुकारा। जब उनमें-

से किसीने जवाब न दिया तो वह मस्ताकी झोंपड़ीकी ओर चले कि अकस्मात् दुर्गा, मस्ता और कृषिशालाके कई और नौकर एक मनुष्यको खींच-खींचकर लाते हुए दिखाई दिये। सबके सब उसे गालियाँ दे रहे थे और मस्ता रह-रहकर एक धौल जमा देता था। प्रेमशङ्करने आगे बढ़कर तीव्र स्वरमें कहा, क्या है भोला, इसे क्यों मार रहे हो ?

मस्ता—भैया, यह न जाने कौन आदमी है। फाटकसे चिमटा खड़ा था। अभी मैं फाटक बन्द करने गया तो इसे देखा। मुझे देखते ही और भी दबक गया। बस, मैंने चुपकेसे आकर सबको साथ लिया और बच्चूको पकड़ लिया। जरूर-से-जरूर कोई चोर है।

प्रेम—चोर सही, तुम्हारा कुछ चुराया तो नहीं ? फिर क्यों मारते हो ?

यह कहते हुए वह अपने बरामदेमें आकर बैठ गये। चोरको भी लोगोंने वहीं लाकर खड़ा किया। ज्योंही लालटेनके प्रकाश-में उसकी सूरत दिखाई दी, प्रेमशङ्करके मुँहसे सहसा एक चीख-सी निकल आयी, अरे यह तो बिसेसर साह है !!

बिसेसरने आँसू पोंछते हुए कहा, हाँ सरकार, मैं बिसेसर ही हूँ।

प्रेमशङ्करने अपने नौकरोंसे कठोर स्वरमें कहा, तुम लोग निरे गँवार और मूर्ख हो। न जाने तुम्हें कभी समझ आयेगी भी या नहीं।

मस्ता—भैया, हम तो बार-बार पूछते रहे कि तुम कौन हो ? यह कुछ बोले ही नहीं, तो मैं क्या करता ?

प्रेम—बस, चुप रह गँवार कहींका !

नौकरोंने देखा कि हमसे भूल हो गयी, चुपकेसे एक-एक करके सरक गये। प्रेमशङ्करको क्रोधमें देखकर सबके सब थर-थर काँपने लगते थे। यद्यपि प्रेमशङ्कर उन सबसे भाईचारेका

बर्ताव करते थे, पर वह सब उनका बड़ा अदब करते थे। उनके सामने चिलमतक न पीते। उनके चले जानेके बाद प्रेमशङ्करने बिसेसर साहको खाटपर बैठाया और अत्यन्त लज्जित होकर बोले, साहजी, मुझे बड़ा दुःख है कि मेरे आदमियोंने आपके साथ अनुचित व्यवहार किया। सबके सब उजड्ड और मूर्ख हैं।

बिसेसरने एक ठण्ढी साँस लेकर कहा, नहीं भैया, इन्होंने कोई बुरा सलूक नहीं किया। मैं इसी लायक हूँ। आप मुझे खम्भेसे बाँधकर कोड़े लगवायें तब भी बुरा न मानूँगा। मैं विश्वासघाती हूँ, मुझे जो सजा मिले वह थोड़ी है। मैंने अपनी जानके डरसे सारे गाँवको मटियामेट कर दिया। न जाने मेरी बुद्धि कहाँ चली गयी थी। पुलिसवालोंकी भभकीमें आ गया। वह सब ऐसी-ऐसी बातें करते हैं, इतना डराते और धमकाते हैं कि सीधा-सादा आदमी बिलकुल उनकी मुट्ठीमें आ जाता है। उन्हें जरूर-से-जरूर किसी देवताका इष्ट है, कि जो कुछ वह कहलाते हैं, वही मुँहसे निकलता है। भगवान जानते हैं जो गौसखाँके बारेमें मुझे किसीसे कुछ बात हुई हो। मुझे तो उनके कतलका हाल दिन चढ़े मालूम हुआ, जब मैं पूजा पाठ करके दूकानपर आया। पर जब दारोगाजी थानेमें ले जाकर मेरी सासत करने लगे तब मुझपर जैसे कोई जादू हो गया। उनकी एक एक बात दोहराने लगा। जब मैं अदालतमें बयान दे रहा था तब सरमके मारे मेरी आँखें ऊपर न उठती थीं; मेरे जैसा कुकर्मी संसारमें न होगा। जिन आदमियोंके साथ रात-दिनका रहना सहना, उठना बैठना था, जो मेरे दुःख-दर्दमें शरीक होते थे उन्हींकी गर्दनपर मैंने छुरी चलायी। जब कादिरने मेरा बयान सुनकर कहा—बिसेसर भगवानसे डरो—उस घड़ी मेरा ऐसा जी चाहता था कि धरती फट जाये और मैं उसमें समा जाऊँ। मन होता था कि साफ-साफ कह दूँ यह सब सिखायी-पढ़ायी बातें हैं, पर दारोगाजीकी ओर ज्योंही आँख उठती थी मेरा

हियाव छूट जाता था। जिस दिन मनोहरने अपने गलेमें फाँसी लगायी है उस दिनसे मेरी नींद हराम हो गयी। रातको सोते सोते चौंक पड़ता हूँ जैसे मनोहर सिरहाने खड़ा हो। साँझ होते ही घरके केवाड़ बन्द कर लेता हूँ। बाहर निकलता हूँ तो जान पड़ता है मनोहर सामने आ रहा है। घरवाली उसी दिनसे बीमार पड़ी हुई है। घरकी तो यह दुर्दशा है, उधर गाँवमें अन्धेर मचा हुआ है। सबके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं। फैजू और कर्तार नित नये तूफान रचते रहते हैं। भगवान सुक्खू चौधरीका भला करे, उनके हृदयमें दया आयी, दो सालकी मालगुजारी अदा कर दी, नहीं तो अबतक सारा गाँव बेदखल हो गया होता। इसपर फैजू जला जाता है। जब सुक्खू आ जाते हैं तो भीगी बिल्ली बन जाता है, लेकिन ज्योंही वह चले जाते हैं फिर वही उपद्रव करने लगता है। इन गरीबोंका कष्ट अब मुझसे नहीं देखा जाता। जिसे चाहता है, मारता है, डाँड़ लेता है। एक दिन कादिरमियाँके घरमें आग लगवा दी, और तो और अब गाँवकी बहू-बेटियोंकी इज्जत-हुरमत भी बचती नहीं दिखाई देती। मनोहरके घर सास-बहूमें राड़ मची हुई है, दोनों अलग-अलग रहती हैं। परसों रातकी बात है, फैजू और कर्तार दोनों बहूके घरमें घुस गये। उस बेचारीने चिल्लाना शुरू किया। सास पहुँच गयी, और लोग भी पहुँच गये। दोनों निकलकर भागे, सबेरा होते ही इसकी कसर निकली। कर्तारने मनोहरकी दुलहिनको इतना मारा कि बेचारी पड़ी हल्दी पी रही है। यह सब पाप मेरे सिवा और किसके सिर पड़ता होगा? मैं ही इस सारी विपद्लीलाकी जड़ हूँ। भगवान मेरी न जाने क्या दुर्गति करेंगे! काहे भैया, क्या अब कुछ नहीं हो सकता? सुनते हैं तुम अपील करनेवाले हो, तो जल्दी कर क्यों नहीं देते? ऐसा न हो मियाद गुजर जाये। तुम मुझे तलब करा देना। मुझपर दरोगहलफीका इलजाम आयगा तो क्या? पर मैं अबकी सब

कुछ सच सच कह दूँगा। यही न होगा, मेरी सजा हो जायगी, गाँवका तो भला हो जायगा? मैं हजार पाँच सौसे मदद भी कर सकता हूँ।

प्रेमशंकर—हाईकोर्टमें तो मिसल देखकर फैसला होता है, किसीके बयान नहीं लिये जाते।

बिसेसर—भैया कुछ देने लेनेसे काम चले तो दे दो, हजार पाँच सौका मुँह मत देखो। मुझसे जो कुछ फरमाओ उसके लिये हाजिर हूँ। यह बात मेरे मनमें महीनोंसे समायी हुई है, पर आपको मुँह दिखानेकी हिम्मत न पड़ती थी। आज कुछ सौदा लेने चला तो चौपालके सामने फैजू मिल गये। कहने लगे—जाते हो तो यह रुपये लेते जाओ, मालिकोंके घर भेजवा देना। मैंने रुपये ले लिये और डेवढ़ीपर जाकर छोटी बहूके पास रुपये भेज दिये। जब चलने लगा तब बड़ी बहूने दीवानखानेमें मुझे बुलाया। उनको देखकर ऐसा जान पड़ा मानों साक्षात् देवीके दरसन हो गये। उन्होंने मुझे ऐसा ऐसा उपदेश दिया कि आपसे क्या कहूँ। मेरी आँखें खुल गयीं। मनमें ठानकर चला कि आपसे अपील दायर करनेको कहूँ, जिसमें मेरा भी उद्धार हो जाये। लेकिन दो-तीन बार आ-आकर लौट गया। आपको मुँह दिखाते लाज आती थी। सूरज डूबते वक्त फिर आया; पर वहीं फाटकके पास दुविधामें खड़ा सोच रहा था, कि क्या करूँ। इतनेमें आपके आदमियोंने देख लिया और आपकी सरनमें ले आये। मुझ जैसे झूठे दगाबाज आदमीका इतबार ही क्या? पर अब मैं सौगन्द खाके कहता हूँ, कि फिर जो मेरा बयान लिया जायगा, तो मैं एक एक बात खोलकर कह दूँगा, चाहे उल्टी पड़े या सीधी। आप जरूर अपील कीजिये।

प्रेमशङ्कर बिसेसर साहको महा नीच, कपटी, अधम मनुष्य समझते थे। उनके विचारमें वह मनुष्य कहलानेके योग्य भी न था। लेकिन उसकी इन ग्लानिसूचक बातोंने उसे पिशाचश्रेणीसे

उठाकर देवासनपर बैठा दिया। भगवन्! जिसे मैं इतना दुरात्मा समझता था, उसके हृदयमें आत्मग्लानिका यह पवित्र भाव! यह आत्मोत्कर्ष, यह ईश्वरभीरुता, यह सदोद्गार! मैं कितने भ्रममें पड़ा हुआ था। दुनियाको लोग अनायास ही बदनाम करते हैं, मैंने तो हर एक बुरेको अच्छा ही पाया। इसे अपने सौभाग्यके सिवा और क्या कहूँ? ईश्वर! मुझे इस अविश्वासके लिये क्षमा करना। यह सोचकर उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। बोले—साहजी, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे वही आनन्द हुआ, जो किसी सच्चे साधुके उपदेशसे होता। मैं बहुत जल्द अपील करनेवाला हूँ। अड़चन यही है, कि गवाहोंके बयान कैसे बदले जायँ। संभव है, हाईकोर्ट मुकदमेपर नजरसानी करनेकी आज्ञा दे दे और फिर इसी अदालतमें मामला पेश हो; लेकिन बयान बदलनेसे तुम और डाक्टर प्रियनाथ दोनोंही फँस जाओगे। प्रियनाथने तो अपने बचावकी युक्ति सोच ली, लेकिन तुम्हारा बचाव कठिन है। इसे अच्छी तरह सोच लो।

बिसेसर—खूब सोच लिया है।

प्रेमशंकर—ईश्वरने चाहा तो तुम बच भी जाओगे। मैं कल वकीलोंसे इस विषयमें सलाह लूँगा।

यह कहकर वह बिसेसरके खाने-पीनेका प्रबन्ध करने चले गये।

४७

ज्ञानशङ्कर लखनऊसे सीधे बनारस पहुँचे, किन्तु उदास और खिन्न रहते, न हवा खाने जाते न किसीसे मिलते-जुलते। उनकी दशा इस समय उस पक्षीकी-सी थी जिसके दोनों पङ्ख कट गये हों, या उस स्त्रीकी-सी जो किसी दैवी प्रकोपसे पति-पुत्र-विहीन हो गयी हो। उनके जीवनकी सारी आकांक्षाएँ मिट्टीमें मिलती हुई जान पड़ती थीं। अभी एक सप्ताह पहले उनकी आशालता सुखद समीरणसे लहरा रही थी। उस स्थानपर अब

केवल झुलसी हुई पत्तियोंका एक ढेर था। उन्हें पूरा विश्वास था, कि रायसाहबने सारा वृत्तान्त गायत्रीको लिख दिया होगा। पूरीके लिये लपके थे, आधा भी हाथसे गयी। उन्हें सबसे विषम वेदना यह थी कि मेरे मनोभावोंकी कलई खुल गयी। अगर धैर्य्यका कोई आधार था तो यही दार्शनिक विचार था, जब कि इन अवस्थाओंमें मेरे लिये अपने लक्षपर पहुँचनेके लिये और कोई मार्ग न था। उन्हें अपने कृत्योंपर लेशमात्र भी ग्लानि या लज्जा न थी, बस, यही खेद था, कि मेरे सारे षड्यन्त्र निष्फल हो गये।

लखनऊसे उन्होंने गायत्रीको कई पत्र लिखे थे, पर बनारससे उसे पत्र लिखनेकी हिम्मत न पड़ती थी। उसके पाससे आयी हुई चिट्ठियोंको भी वह बहुत डरते-डरते खोलते थे। समाचार-पत्रोंको खोलते हुए उनके हाथ काँपने लगते थे। विद्याके पत्र रोज आते थे। उन्हें पढ़ना ज्ञानशङ्करके लिये अपनी भाग्य-रेखा पढ़नेसे कम रोमांचकारी न था। वह एक-एक वाक्यको इस तरह डर-डरकर पढ़ते, मानों किसी अँधेरी गुफामें कदम रखते हों; भय लगा रहता था कि कहीं उस दुर्घटनाका जिक्र न आ जाय। बहुधा साधारण वाक्योंपर विचार करने लगते कि कहीं इसमें कोई गूढ़ाशय, कोई रहस्य, कोई उक्ति तो नहीं है। दसवें दिन गायत्रीके यहाँसे एक बहुत लम्बा पत्र आया। ज्ञानशङ्करने उसे हाथमें लिया तो उनकी छाती बल्लियों उछलने लगीं, बड़ी मुश्किलसे पत्र खोला और जैसे हम कड़वी दवाको एक ही घूँटमें पी जाते हैं, उन्होंने एक ही सरसरी निगाहमें सारा पत्र पढ़ लिया, चित्त शान्त हुआ। रायसाहबकी कोई चर्चा न थी। तब उन्होंने निश्चिन्त होकर पत्रको दोबारा पढ़ा। गायत्रीने उनके पत्र न भेजनेपर मर्मस्पर्शी शब्दोंमें अपनी विकलता प्रकट की थी और उन्हें शीघ्र ही गोरखपूर आनेके लिये बड़े विनीत भावसे आग्रह किया था। ज्ञानशङ्करने सावधान होकर साँस ली।

गायत्रीने अपने चित्तकी दशाको छिपानेका बहुत प्रयत्न किया था, पर उसका एक-एक शब्द ज्ञानशङ्करकी मरणासन्न आशाओं-के लिये सुधाके तुल्य था। आशा बँधी, सन्तोष हुआ कि अभी बात नहीं बिगड़ी, मैं अब भी जरूरत पड़नेपर शायद उसकी दृष्टिमें निर्दोष बन सकूँ, शायद रायसाहबके लांछनोंको मिथ्या सिद्ध कर सकूँ, शायद सत्यको असत्य कर सकूँ। सम्भव है, मेरे सजल नेत्र अब भी मेरी निर्दोषिताका विश्वास दिला सकें। इसी आवेशमें उन्होंने गायत्रीको पत्र लिखा, जिसका अधिकांश विरहव्यथामें भेंट करनेके बाद उन्होंने रायसाहबके मिथ्याक्षेपकी ओर भी संकेत किया। उनके अन्तिम शब्द थे—आप मेरे स्वभाव और मनोविचारोंसे भलीभाँति परिचित हैं। मुझे अगर जीवनमें कोई अभिलाषा है तो यही, कि मुरलीकी धुनि सुनते हुए इस असार संसारसे प्रस्थान कर जाऊँ। मरने लगूँ तो उसी मुरलीवालेकी सूरत आँखोंके सामने हो, और यह सिर राधाकी गोदमें हो। इसके अतिरिक्त मुझे कोई इच्छा, और कोई लालसा नहीं है। राधिकाकी एक तिर्छी चितवन, एक मृदुल मुस्कान, एक मीठी चुटकी, एक अनोखी छटापर मैं समस्त संसारकी सम्पदाको न्यौछावर कर सकता हूँ। पर जबतक संसारमें हूँ, संसारकी कालिमासे क्योंकर बच सकता? मैंने रायसाहबसे सङ्गीत-परिषद्के विषयमें कुछ स्पष्ट भाषण किया था, उसका फल यह हुआ कि अब वे मेरी जानके दुश्मन हो गये हैं। आपसे अपनी विपत्ति-कथा क्या कहूँ, आपको सुनकर दुःख होगा। उन्होंने मुझे मारनेके लिये पिस्तौल हाथमें ले लिया था। अगर भाग न जाता तो यह पत्र लिखनेके लिये जीवित न रहता। मुझे हुक्म हुआ है कि अब फिर उन्हें मुँह न दिखलाऊँ। इतना ही नहीं, मुझे आपसे भी पृथक् रहनेकी आज्ञा मिली है, इस आज्ञा-को भङ्ग करनेका ऐसा कठोर दण्ड निर्वाचित किया गया है, कि उसका उल्लेख करके मैं आपके कोमल हृदयको दुखाना

नहीं चाहता। मेरे मौन व्रतका यही कारण है। सम्भव है, आपके पास भी इस आशयका कोई पत्र पहुँचा हो और आपको भी मुझे दूधकी मक्खी समझनेका उपदेश किया गया हो। ऐसी दशामें आप जो उचित समझें, करें। पिताकी आज्ञाके सामने सिर झुकाना आपका कर्त्तव्य है। उसका आप पालन करें। मैं आपसे दूर रहकर भी आपके निकट हूँ, संसारकी कोई शक्ति मुझे आपसे अलग नहीं कर सकती। आध्यात्मिक बन्धनको कौन तोड़ सकता है? यह कृष्णका प्रेमी निरन्तर राधाकी याद में लग्न रहेगा। आपसे केवल यही भिक्षा माँगता हूँ कि मेरी ओरसे मनमुटाव न करें और अपने उदार हृदयके एक कोनेमे मेरी स्मृति बनाये रक्खें।

ज्ञानशङ्करके जानेके बाद गायत्रीको एक-एक क्षण काटना दुस्तर हो गया था। उसे अब ज्ञात हुआ कि मैं कितने गहरे पानीमें आ गयी हूँ। जबतक ज्ञानशङ्करके हाथोंके सहारा था उस गहराईका अन्दाज न होता था। उस सहारेके छूटते ही उसके पैर फिसलने लगे, वह सम्भलना चाहती थी, पर तरङ्गोंका वेग सम्भलने न देता था। अबकी ज्ञानशङ्कर पूरे सालभरके बाद गोरखपूरसे निकले थे। वह नित्य उन्हें देखता थी, नित्य उनसे बातें करती था और यद्यपि यह अवसर दिनमें एक, या दो बारसे अधिक न मिलता था, पर उन्हें अपने समीप देखकर उसका हृदय संतुष्ट रहता था। अब पिंजरेको खाली देखकर उसे पक्षीकी बार-बार याद आती थी। वह सरल और गौरवशील थी, लेकिन उसके हृदयस्थलमें प्रेमका एक उबलता हुआ सोता छिपा हुआ था। वह अबतक अभिमानके मोटे कत्तलसे दबा हुआ प्रवाहका कोई मार्ग न पाकर एक सुषुप्तावस्थामें पड़ा हुआ था। यही सुषुप्ति उसका सतीत्व थी। पर भक्ति और अनुरागने उस अभिमानके कत्तलको हटा दिया था और उबलता हुआ सोता प्रबल वेगसे द्रवित हो रहा था। वह आत्मविस्मृतिकी दशामें मग्न हो गयी

थी। वह अचेत-सी हो गयी थी। उसे लेशमात्र भी अनुमान न होता था, कि यह भक्ति मुझे वासनाकी ओर खींचे लिये जाती है। वह इस प्रेमके नशेमें कितनीही ऐसी बातें करती थी और कितनीही ऐसी बातें सुनती थी, जिन्हें सुनकर वह पहले कानोंपर हाथ रख लेती, जो पहले मनमें आतीं तो वह आत्मघात कर लेती; परन्तु अब वह गोपिका थी, वह सदानुरागकी साक्षात् प्रतिमा थी। इस आध्यात्मिक उद्गारमें वासनाका लगाव कहाँ? ऐन्द्रिक तृष्णाओं-का मिश्रण कहाँ? कृष्णका नाम, कृष्णकी भक्ति, कृष्णकी रटने उसके हृदय और आत्माको पवित्र प्रेमसे परिपूरित कर दिया था। गायत्री जब ज्ञानशंकरकी ओर चञ्चल चितवनोंसे ताकती, या उनके सतृष्ण लोचनोंको अपनी मृदुल मुसक्यानसुधासे प्लावित करता, तो वह अपनेको गोपिका समझती, जो कृष्णसे ठिठोली या रहस्य कर रही हो। उसकी इस चितवन और इस मुसक्यानमें सच्चा प्रेमानुराग झलकता था। ज्ञानशंकर जब उसे प्रेमोन्मत्त नेत्रोंसे देखते या उसकी निष्ठुरता और अकृपाकी गिला करते, तो उसे इसमें भी उन्हीं पवित्र भावोंकी झलक दिखाई देती थी। इस प्रेमरहस्य और आमोद-विनोदका चस्का दिनोंदिन बढ़ता जाता था। उन प्रेमकल्पनाओंके बिना चित्त उचटा रहता था। गायत्री इसी विकलताकी दशामें कभी ज्ञानशंकरके दीवानखानेकी ओर जाती, कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी बागमें; पर कहीं जी न लगता। यह गोपिकाओंकी विरहव्यथाकी अपने वियोग-दुःखसे तुलना करती, सूरदासके उन पदोंको गाती, जिनमें गोपिकाओंका विरह-वर्णन किया गया है। उसके बागमें एक कदमका पेड़ था। उसकी छाँहमें हरी घासपर लेटी हुई वह कभी गाती, कभी रोती, कभी-कभी उद्विग्न होकर टहलने लगती। कभी सोचती लखनऊ चलूँ, कभी ज्ञानशंकरको तार देकर बुलानेका इरादा करती, कभी निश्चय करती, अब उन्हें कभी बाहर न जाने दूँगी, उनकी सूरत उसकी आँखोंमें फिरा करती, उनकी बातें कानोंमें गूँजा करतीं,

कितना मनोहर स्वरूप है, कितनी रसीली बातें, साक्षात् कृष्ण-रूप हैं! उसे आश्चर्य होता कि मैंने उन्हें अकेले क्यों जाने दिया, क्या मैं उनके साथ न जा सकती थी? वह ज्ञानशंकरको पत्र लिखती, तो उनकी निर्दयता और हृदयशून्यताका खूब रोना रोती। उनके पत्र आते तो बार-बार पढ़ती। उसके प्रेमकथनमें अब संकोच या लज्जा बाधक न होती थी। गोपियोंकी विरहकथामें उसे अब एक करुण, वेदनामय आनन्द मिलता था। प्रेमसागरकी दो-चार चौपाइयाँ भी न पढ़ने पाती कि आँखोंसे आँसूकी झड़ी लग जाती।

लेकिन जब ज्ञानशंकर बनारस चले गये और उनकी चिट्ठियोंका आना बिलकुल बन्द हो गया, तब गायत्रीको ऐसा अनुभव होने लगा, मानों मैं इस संसारमें हूँ ही नहीं, यह कोई दूसरा निर्जन, नीरव, अचेतन संसार है। उसे ज्ञानशंकरके बनारस आनेका समाचार ज्ञात न था। वह लखनऊके पतेसे नित्यप्रति पत्र भेजती रही, लेकिन जब लगातार कई पत्रोंका जवाब न आया तब उसे अपने ऊपर झुँझलाहट होने लगी। वह गोपियोंकी भाँति अपना ही तिरस्कार करती कि मैं क्यों ऐसे निर्दय, निष्ठुर, कठोर, मनुष्यके पीछे अपनी जान खपा रही हूँ! क्या उनकी तरह मैं भी निष्ठुर नहीं बन सकती? वह मुझे भूल सकते हैं, तो मैं उन्हें नहीं भूल सकती? किन्तु एक ही क्षणमें उसका यह मान लुप्त हो जाता और वह फिर खोयी हुई-सी इधर-उधर फिरने लगती।

किन्तु जब दसवें दिन ज्ञानशंकरका विवशतासूचक पत्र पहुँचा तो उसे पढ़ते ही गायत्रीका चञ्चल हृदय अधीर हो उठा। वह उग्र विवशकारी आवेशके साथ उनकी ओर लपकी। यह उसकी प्रीतिकी पहली परीक्षा थी। अबतक उसका प्रेममार्ग काँटोंसे साफ था। यह पहला काँटा था जो उसके पैरमें चुभा। क्या यह पहली ही बाधा मुझे प्रेममार्गसे विचलित कर देगी? मेरे ही कारण तो ज्ञानशंकरपर मुसीबतें आयी हैं। मैं ही तो उनकी इन

विडम्बनाओंकी जड़ हूँ। पिताजी उनसे नाराज हैं तो हुआ करें, मुझे इसकी चिन्ता नहीं, मैं क्यों प्रेमनीतिसे मुँह मोड़ूँ? प्रेमका संबंध केवल दो हृदयोंसे है, किसी तीसरे प्राणीको उसमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं? आखिर पिताजीने उन्हें क्यों मुझसे पृथक् रहनेका आदेश किया? वे मुझे क्या समझते हैं? उनका सारा जीवन भोगविलासमें गुजरा है। वह प्रेमके गूढ़ाशय क्या जानें? उन्हें इस पवित्र मनोवृत्तिका क्या ज्ञान? परमात्माने उन्हें ज्ञानज्योति प्रदान की होती, तो वह ज्ञानशङ्करके आत्मोत्कर्षको जानते, उनको आत्माका महत्व पहचानते। तब उन्हें विदित होता, कि मैंने ऐसी पवित्रात्मापर दोषारोपण करके कितना घोर अन्याय किया है। पिताकी आज्ञा मानना मेरा धर्म अवश्य है; किन्तु प्रेमके सामने पिताकी आज्ञाकी क्या हस्ती है! यह ताप अनादि ज्योतिकी एक आभा है, यह दाह अनन्त शान्तिका एक मंत्र है। इस तापको कौन मिटा सकता है?

दूसरे दिन गायत्रीने ज्ञानशङ्करको तार दिया, मैं आ रही हूँ और शामकी गाड़ीसे मायाशङ्करको साथ लेकर बनारस चली।

४२

ज्ञानशङ्करको बनारस आये दो सप्ताहसे अधिक बीत चुके थे। संगीत-परिषद् समाप्त हो चुकी थी और अभी सामयिक पत्रोंमें उसपर वादविवाद हो रहा था। यद्यपि अस्वस्थ होनेके कारण रायसाहब उसमें उत्साहके साथ भाग न ले सके थे, पर उनके प्रबन्ध-कौशलने परिषद्की सफलतामें कोई बाधा न होने दी। सन्ध्या हो गयी थी। विद्यावती अन्दर बैठी हुई एक पुराना शाल रफू कर रही थी। राय साहबने उसके सैर करनेके लिये एक बहुत अच्छी सेजगाड़ी दे दी थी और कोचवानको ताकीद की थी, कि जब विद्याका हुक्म मिले, तुरन्त सवारी तैयार करके उसके पास ले जाये; लेकिन इतने दिनोंमें विद्या एक दिन भी कहीं सैर करने न गयी। उसका मन घरके धन्धोंमें

अधिक लगता था। उसे न थियेटरका शौक था, न सैर करनेका, न गाने बजानेका। इनकी अपेक्षा उसे भोजन बनाने या सीने-पिरोनेमें ज्यादा आनन्द मिलता था। इस एकान्त सेवनके कारण उसका मुखकमल मुर्झाया-सा रहता था। बहुधा शिरः पीड़ासे ग्रसित रहती थी। वह परम सुन्दरी, कोमलांगी रमणी थी; पर उसमें अभिमानका लेश भी न था। उसे माँग, चोटी, आईने कंघीसे अरुचि थी। उसे आश्चर्य्य होता था कि गायत्री क्योंकर अपना अधिकांश समय बनाव-सँवारमें व्यतीत किया करती है। कमरेमें अन्धेरा हो रहा था, पर वह अपने काममें इतनी रत थी कि उसे बिजलीके बटन दबानेका भी ध्यान न था। इतनेमें रायसाहब उसके द्वारपर आकर खड़े हो गये और बोले—ईश्वर-से बड़ी भूल हो गयी कि उसने तुम्हें दर्जिन न बना दिया। अन्धेरा हो गया, आँखोंसे सूझता नहीं, लेकिन तुम्हें अपने सूई-तागेसे छुट्टी नहीं।

विद्याने शाल समेट दिया और लज्जित होकर बोली—थोड़ा-सा बाकी रह गया था, मैंने सोचा, इसे पूरा कर लूँ तो उठूँ।

रायसाहब पलँगपर बैठ गये और कुछ कहना चाहते थे कि जोरसे खाँसी आयी और थोड़ा-सा खून मुँहसे निकल पड़ा, आखें निस्तेज हो गयीं और हृदयमें विषम पीड़ा होने लगी। मुखाकार विकृत हो गया। विद्याने घबराकर पूछा—पानी लाऊँ? यह मरज तो आपको न था। किसी डाक्टरको बुला भेजूँ?

रायसाहब—नहीं, कोई जरूरत नहीं। अभी अच्छा हो जाऊँगा। यह सब मेरे सुयोग्य विद्वान् और सर्वगुण सम्पन्न पुत्र बाबू ज्ञानशङ्करकी कृपाका फल है।

विद्याने प्रश्नसूचक विस्मयसे रायसाहबकी ओर देखा और कातरभावसे जमीनकी ओर ताकने लगी। रायसाहब संभलकर बैठ गये और एक बार पीड़ासे कराहकर बोले—जी तो नहीं

चाहता कि मुझपर जो कुछ बीती है वह मेरे और ज्ञानशङ्करके सिवा किसी दूसरे व्यक्तिके कानोंतक पहुँचे; किन्तु तुमसे परदा रखना अनुचित ही नहीं, अक्षम्य है। तुम्हें सुनकर दुःख होगा, लेकिन सम्भव है इस समयका शोक और खेद तुम्हें आने वाली मुसीबतोंसे बचाये, जिनका सामान प्रारब्धके हाथों हो रहा है। शायद तुम अपनी चतुराईसे उन विपत्तियोंका निवारण कर सको।

विद्याके चित्तमें भाँति-भाँतिकी शङ्काएँ आन्दोलित होने लगीं। वह एक पक्षीकी भाँति डालियों-डालियोंमें उड़ने लगी। मायाशङ्करका ध्यान आया, कहीं वह बीमार तो नहीं हो गया! ज्ञानशङ्कर तो किसी बलामें नहीं फँस गये! उसने सशङ्क और सजल लोचनोंसे रायसाहबकी तरफ देखा।

रायसाहब बोले—मैं आजतक ज्ञानशङ्करको एक धर्मपरायण, सच्चरित्र और सत्यनिष्ठ युवक समझता था। मैं उनकी योग्यता-पर गर्व करता था और अपने मित्रोंसे उनकी प्रशंसा करते कभी न थकता था। पर अबकी मुझे ज्ञात हुआ कि देवताके स्वरूपमें भी पिशाचका बास हो सकता है।

विद्याकी तेवरियोंपर बल पड़ गये। उसने कठोर दृष्टिसे रायसाहबको देखा; पर मुँहसे कुछ न बोली। ऐसा जान पड़ता था कि वह इन बातोंको नहीं सुनना चाहती।

रायसाहबने उठकर बिजलीका बटन दबाया, और प्रकाशमें विद्याकी अनिच्छा स्पष्ट दिखाई दी; पर उन्होंने इसकी कुछ परवा न करके कहा—यह मेरा बहत्तरहवाँ साल है। हजारों आदमियोंसे मेरा व्यवहार रहा; किन्तु मेरे चरित्रज्ञानने मुझे कभी धोखा नहीं दिया। इतना बड़ा धोखा खानेका मुझे जीवन में यह पहला ही अवसर है। मैंने ऐसा स्वार्थी आदमी कभी नहीं देखा।

विद्या अधीर हो गयी, पर मुँहसे कुछ न बोली। उसकी

समझमेंही न आता था कि रायसाहब यह क्या भूमिका बाँध रहे हैं, क्यों ऐसे अपशब्दोंका प्रयोग कर रहे हैं।

रायसाहब—मेरा इस मनुष्यके चरित्रपर अटल विश्वास था, मेरी ही प्रेरणासे गायत्रीने इसे अपनी रियासतका मैनेजर बनाया। मैं जरा भी सचेत होता तो गायत्रीपर इसकी छाया भी न पड़ने देता। ज्ञान और व्यवहारमें इतना घोर विरोध हो सकता है, इसका मुझे अनुमान भी न था। जिसकी कलममें इतनी प्रतिभा हो, जिसके मुखसे स्वच्छ, निर्मल भावोंकी धार बहती हो, उसका अन्तःकरण ऐसा कलुषित, इतना मलिन होगा, यह मैं बिलकुल न जानता था। विद्यासे न रहा गया। यद्यपि वह ज्ञानशङ्करकी स्वार्थभक्तिसे भली-भाँति परिचित थी, जिसका प्रमाण उसे कई बार मिल चुका था, पर उसका आत्मसम्मान उनका अपमान सह न सकता था। उनकी निन्दा का एक शब्द भी अपने कानोंसे न सुनना चाहती थी। उसकी धर्मनीतिमें यह घोर घातक था। तीव्र स्वरसे बोली—आप मेरे सामने उनकी बुराई न कीजिये। यह कहते-कहते उसका गला बँध गया और वह भाव जो व्यक्त न हो सके थे, आँखोंसे वह निकले।

रायसाहबने संकोचपूर्ण शब्दोंमें कहा—बुराई नहीं करता, यथार्थ कहता हूँ। मुझे अब मालूम हुआ कि उसने महात्माओं-का स्वरूप क्यों बनाया है, और धार्मिक कार्योंमें क्यों इतना प्रवृत्त हो गया है। मैंने उसके मुँहसे सब कुछ निकलवा लिया। यह रङ्गीन जाल उसने भोली-भाली गायत्रीके लिये बिछाया है और वह कदाचित् इसमें फँस भी चुकी है।

विद्याकी भौंह तन गयीं, मुखराशि रक्तवर्ण हो गयी गौरव-युक्त भावसे बोली—पिताजी, मैंने सदैव आपका अदब किया है और आपकी अवज्ञा करते हुए मुझे जितना दुःख हो रहा है, वह वर्णन नहीं कर सकती, पर यह असम्भव है कि उनके विषयमें

यह लांछन अपने कानोंसे सुनूँ। मुझे उनकी सेवामें आज १७ वर्ष बीत गये, पर मैंने उन्हें कभी कुवासनाओंकी ओर झुकते नहीं देखा। जो पुरुष अपने यौवन-कालमें भी संयमसे रहा हो, उसके प्रति ऐसे अनुचित सन्देह करके आप उसीके साथ नहीं, गायत्री बहिनके साथ भी घोर अत्याचार कर रहे हैं। इससे आपकी आत्माको पाप लगता है।

रायसाहब—तुम मेरी आत्माकी चिन्ता मत करो, उस दुष्टको समझाओ, नहीं तो उसको कुशल नहीं है। मैं गायत्रीको उसकी कामचेष्टाका शिकार न बनने दूँगा। मैं तुमको वैधव्य रूपमें देख सकता हूँ, पर अपने कुल-गौरवको यों मिट्टीमें मिलते देख नहीं सकता। मैंने चलते-चलते उससे ताकीद कर दी थी कि गायत्रीसे कोई सरोकार न रक्खे, लेकिन गायत्रीके पत्र नित्य प्रति चले आ रहे हैं, जिससे विदित होता है कि वह उसके फन्दोंमें कैसी जकड़ी हुई है। यदि तुम उसे बचा सकती हो तो बचाओ, अन्यथा यही हाथ जिन्होंने एक दिन उसके पैरोंपर फूल और हार चढ़ाये थे, उसे कुल-गौरवकी वेदीपर बलिदान कर देंगे।

विद्या रोती हुई बोली—आप मुझे अपने घर बुलाकर इतना अपमान कर रहे हैं, यह आपको शोभा नहीं देता। आपका हृदय इतना कठोर हो गया है। जब आपके मनमें ऐसे-ऐसे भाव उठ रहे हैं, तब मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं रहना चाहती। मैं जिस पुरुषकी स्त्री हूँ, उसपर संदेह करके अपना परलोक नहीं बिगाड़ सकती। वह आपके कथनानुसार कुचरित्र सही, दुरात्मा सही, कुमार्गी सही; परन्तु मेरे लिये पूज्य और देवतुल्य हैं। यदि मैं जानती कि आप मेरा इतना अपमान करेंगे, तो भूलकर भी न आती। अगर आपका विचार है कि मैं रियासतके लोभसे यहाँ आती हूँ और आपको फन्देमें फँसाना चाहती हूँ तो आप बड़ी भूल करते हैं। मुझे रियासतकी जरा भी परवा नहीं। मैं ईश्वर-

को साक्षी देकर कहती हूँ, कि मैं अपनी स्थितिसे सन्तुष्ट हूँ और मुझे पूरा विश्वास है कि मायाशङ्कर भी सन्तोषी बालक है। उसे आपके चित्तकी यह वृत्ति मालूम हो गयी तो वह इस रियासतकी ओर आँख उठाकर भी न देखेगा। आपको इस विषयमें आदिसे अन्ततक धोखा हुआ है। इस तिरस्कारसे राय साहब कुछ धीमे पड़ गये। लज्जित होकर बोले—हाँ, सम्भव है, इसलिये कि अब मैं बूढ़ा हुआ, कुछका कुछ देखता हूँ, कुछका कुछ सुनता हूँ, अधिक लोभी, अधिक शक्की हो गया हूँ। मैं नहीं चाहता था कि तुम्हारी आँखोंमें तुम्हारे पतिको उससे ज्यादा गिराऊँ, जितना कि उसकी प्राणरक्षाके लिये आवश्यक है, पर तुम्हारी मिथ्यापतिभक्ति मुझे मजबूर कर कर रही है, उसके कुकृत्योंको सविस्तर बयान करूँ। तुमने मुझे पहले भी देखा था, क्या मेरा यह दशा थी? मैं ऐसा ही दुर्बल, रुग्न और जर्जर था? क्या इसी तरह मुझे एक पग चलना भी कठिन था? मैं इसी तरह रुधिर थूकता था? यह सब उसीका किया हुआ है। उसने मुझे भोजनके साथ इतना विष खिला दिया कि यदि उसे २० आदमी खाते तो एककी भी जान न बचती। यह केवल भ्रम नहीं है। मैं उसका सदेह प्रमाण बना बैठा हूँ। उसने स्वयं इस पापाचारको स्वीकार किया। पहला ग्रास खाते ही मुझपर सारा रहस्य खुल गया। पर मैंने केवल यह दिखानेके लिये कि मुझे मारना इतना सुलभ नहीं है, जितना उसने समझा था, पूरी थाली साफ कर दी। मुझे विश्वास था, कि मैं योग-क्रियाओं द्वारा विषको शरीरसे निकाल डालूँगा; पर क्षणमात्रमें विष रोम-रोममें घुस गया, मैं उसे निकाल न सका। मैंने अपनी स्वास्थ्य-रक्षा और दीर्घजीवनके लिये वह सब कुछ किया जो मनुष्य कर सकता है और जिसका यह फल था, कि मैं बहत्तर सालका बुड्ढा होकर एक पचीस वर्षके युवकसे अधिक बलवान और साहसी था। मैं अपने जीवनको चरम सीमातक

ले जाना चाहता था। इसके लिये मैंने कितना संयम किया, कितनी योगक्रियाएँ कीं, साधु-सन्तोंकी कितनी सेवा की, जड़ी-बूटियोंकी खोजमें कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरा, तिब्बत और काश्मीरकी ख़ाक छानता फिरा, पर इस नराधमने मेरी सारी आयोजनाओंपर पानी फेर दिया। मैंने अपनी सारी सम्पत्ति कार्यसिद्धिपर अर्पण कर दी थी। योग और तन्त्रका अभ्यास इसी हेतुसे किया था, कि अक्षय यौवनतेजका आनन्द उठाता रहूँ। विलासभोग ही मेरे जीवनका एकमात्र उद्देश्य था। चिन्ताको मैं सदैव काला नाग समझता रहा, मेरे नौकर-चाकर प्रजापर नाना प्रकारके अत्याचार करते, पर मैंने उनकी फरियादको कभी अपने सुख-भोगमें बाधक नहीं होने दिया। अगर कभी अपने इलाकेमें जाता भी था तो प्रजाका कष्ट निवारण करनेके लिये नहीं, बल्कि केवल सैर और शिकारके लिये; किन्तु इस निर्दयी पिशाचकी बदौलत सारे गुनाह बेलज्जत हो गये। अब मैं केवल एक अस्थिपंजर हूँ—प्राणशून्य, शक्तिहीन।

यह कहते-कहते रायसाहब विषम पीड़ासे कराहउठे। जोर-से खाँसी आयी और खूनके लोथड़े मुँहसे निकल आये। कई मिनटतक वह मूर्च्छावस्थामें पड़े रहे, सहसा लपककर उठे और बोले—तुम प्रातःकाल बनारस चली जाओ और हो सके तो अपने पतिको अग्निकुण्डमें गिरनेसे बचाओ। तुम्हारी पतिभक्ति ने मुझे शान्त कर दिया। मैं उसे प्राणदान देता हूँ। लेकिन सरलहृदया गायत्रीकी रक्षाका भार तुम्हारे ही ऊपर है। अगर उसके सतीत्वपर जरा भी धब्बा लगा तो तुम्हारे कुलका सर्व-नाश हो जायगा। यही मेरी अन्तिम चेतावनी है। इस शापका निवारण गायत्रीकी सतीत्व-रक्षासे ही होगा। तुम्हारे कल्याण-की और कोई युक्ति नहीं है।

यह कहकर रायसाहब धीरेसे उठे और चले गये। तब विद्या ग्लानि, लज्जा और नैराश्यसे मर्माहत होकर पलंगपर लेट गयी

और बिलख-बिलख रोने लगी। रायसाहबके पहले आक्षेपका उसने प्रतिवाद किया था, पर इस दूसरे अपराधके विषयमें वह अविश्वासका सहारा न ले सकी। अपनी पतिकी स्वार्थनीतिसे वह खूब परिचित थी, पर उनकी वक्रता इतनी घोर और घातक हो सकती है, इसका उसे अनुमान भी न था। अबतक उनकी कुवृत्तियोंका परदा ढका हुआ था। जो कुछ दुःख और सन्ताप होता था वह उसीतक रहता था, पर यहाँ आकर परदा खुल गया, वह अपने पिताकी निगाहमें गिर गयी, उसके मुँहमें कालिख लग गयी। रायसाहबका यह समझना स्वाभाविक था कि इस दुष्कर्ममें विद्याका भी कुछ न कुछ भाग अवश्य होगा। कदाचित् यही समझकर वह उससे यह वृत्तान्त कहने आये थे। वह सारा दोष पतिके सिर मढ़कर अपनेको क्योंकर मुक्त कर सकती? इस उधेड़बुनमें विद्याका ध्यान जब पाप-परिणामकी ओर गया तो वह काँप उठी। भगवन्! मैं दुखिया हूँ, अभागिनी हूँ, मुझ पर दया करो, तुम्हारी शरण हूँ। भाँति-भाँतिकी शंकाएँ उसके चित्तको विचलित करने लगीं। मायाशङ्करकी सूरत आँखोंमें फिरने लगी। ऐसा जी चाहता था कि पैरोंमें पर लग जायें और उड़कर उसके पास जा पहुँचूँ! रह-रहके हृदयमें एक हूक-सी उठती थी और अनिष्ट कल्पनासे चित्त विकल हो जाता था।

एक क्षणमें इस ग्लानि और शङ्काओंने उग्र रूप धारण किया। आगकी बिखरी हुई चिनगारियाँ एक प्रचण्ड ज्वालाके रूपमें ज्ञान शङ्करकी ओर लपकीं। तुम इतने नीच, इतने क्रूर, इतने दुर्बल हो! तुमने मुझे कहींका न रक्खा! तुम्हारे कारण मेरी यह दुर्दशा हो रही है और अभी न जाने और क्या क्या होगी! तुम धूर्त हो, न जाने पूर्व जन्ममें ऐसा क्या पाप किया था कि तुम्हारे पल्ले पड़ी। उसने ज्ञानशङ्करको उसी दम एक पत्र लिखनेका निश्चय किया और सोचने लगी उसकी शैली क्या हो। इसी सोचमें पड़े पड़े उसे नींद आ गयी। वह बहुत देरतक पड़ी रही। जब सर्दी

लगी तो चौंकी, कमरेमें सन्नाटा था, सारे घरमें निस्तब्धता छायी हुई थी। महरियाँ भी सो गयी थीं। उसके व्यालूका थाल सामने छोटी मेजपर रखा हुआ था और एक पालतू बिल्ली उसके निकट उन चूहोंकी ताकमें बैठी हुई थी जो भोज्य पदार्थोंका रसास्वादन करनेके लिये, आलमारीके कोनेसे निकलकर आते थे और अज्ञात भयके कारण आधे रास्तेसे लौट जाते थे। विद्या कई मिनटतक इस दृश्यमें मग्न रही। निद्राने उसके चित्तको शांत कर दिया था। उस चूहेपर दया आयी जो एक क्षणमें बिल्लीके मुँहका ग्रास बन जायगा। इसके साथही उसकी कल्पना, चूहेसे ज्ञानशङ्करकी अवस्थाकी तुलना करने लगी। क्या उनकी दशा भी इसी चूहेकी-सी नहीं है? उनपर क्रोध क्यों करूँ? वह दयाके योग्य हैं। वह इसी चूहेकी भाँति स्वादकेवश होकर कालके मुँहमें दौड़े जा रहे हैं, जो माया-लोभके हाथोंमें काठकी पुतली बने हुए नाच रहे हैं। मैं जाकर उन्हें समझाऊँगी, उनसे विनय करूँगी कि मुझे ऐसी सम्पत्तिकी लालसा नहीं है, जिसपर आत्मा और विवेकका बलिदान किया गया हो। ऐसी जायदादको मेरी तिलांजलि है। मेरा लड़का गरीब रहेगा, अपने पसीनेकी कमाई खायेगा लेकिन जबतक मेरा बस चलेगा, मैं उससे इस जयदादकी हवा भी न लगने दूँगी!

४६

गायत्री बनारस पहुँचकर ऐसी प्रसन्न हुई जैसे कोई बालूपर तड़पती हुई मछली पानीमें जा पहुँचे। ज्ञानशङ्करपर रायसाहबकी धमकियोंका ऐसा भय छाया हुआ था कि गायत्रीके आनेपर वह और भी अशङ्क हो गये। लेकिन गायत्रीकी सान्त्वनाओंने शनैः शनैः उन्हें सावधान कर दिया। उसने स्पष्ट कह दिया कि मेरा प्रेम पिताकी आज्ञाके अधीन नहीं हो सकता। वह ज्ञानशङ्करको अन्याय-पीड़ित समझती थी और अपनी स्नेहमयी बातोंसे उनका क्लेश दूर करना चाहती थी। ज्ञानशङ्कर जब गायत्रीकी ओरसे

निश्चिन्त हो गये तो उसे बनारसके घाटों और मन्दिरोंकी सैर कराने लगे। प्रातःकाल उसे लेकर गंगा-स्नान करने जाते, संध्या समय बजरे या नौकापर बैठकर घाटोंकी बहार दिखाते। उनके द्वारपर पंडोंकी भीड़ लगी रहती। गायत्रीकी दानशीलताकी सारे नगरमें धूम मच गयी। एक दिन वह हिन्दूविद्यालय देखने गयी और २० हजार दे आयी। दूसरे दिन "इत्तहादी यतीमखाने"का मुआइना किया और २ हजार रुपये बिल्डिंगफंडको प्रदान किये। सनातनधर्मके नेतागण गुरुकुलाश्रमके लिये चन्दा माँगने आये। ४ हजार उनके नजर किये। एक दिन गोपालमन्दिरमें पूजा करने गयी और महन्तजीको २ हजार रुपये भेंट कर आयी। आधी राततक कीर्तनका आनन्द उठाती रही। उसका मन कीर्तनमें सम्मिलित होनेके लिये लालायित हो रहा था, पर ज्ञानशङ्करको यह अनुचित जान पड़ता था। ऐसा कीर्तन उसने कभी न सुना था।

इसी भाँति एक सप्ताह बीत गया। सन्ध्या हो गयी थी। गायत्री बैठी हुई बनारसी साड़ियोंका निरीक्षण कर रही थी। वह उनमेंसे एक साड़ी लेना चाहती थी, पर रङ्गका निश्चय न कर सकती थी। एक-एक साड़ीको सिरपर ओढ़कर आइनेमें देखती और उसे तह करके रख देती। कौन रङ्ग सबसे अधिक खिलता है, इसका फैसला न होता था। इतनेमें श्रद्धा आकर खड़ी हो गयी, गायत्रीने कहा, बहिन भली आयीं, बताओ, इनमेंसे कौन साड़ी लूँ? मुझे तो सब एक सी लगती हैं।

श्रद्धाने मुस्कराकर कहा—मैं गँवारिन इन बातोंको क्या समझूँ।

गायत्री—चलो, बातें न बनाओ। मैं इसका फैसला तुम्हारे ही ऊपर छोड़ती हूँ। एक अपने लिये चुनो और एक मेरे लिये।

श्रद्धा—आप ले लीजिये, मुझे जरूरत नहीं है। यह फिरोजी साड़ी आपपर खूब खिलेगी।

गायत्री—मेरी खातिरसे एक साड़ी ले लो।

श्रद्धा—लेकर क्या करूँगी ? घरे-घरे कीड़े खा जायँगे।

श्रद्धाने यह बात कुछ ऐसे करुण भावसे कही कि गायत्रीके हृदयपर चोट-सी लग गयी। बोली—कबतक यह जोग साधोगी, बाबू प्रेमशङ्करको मना क्यों नहीं लेती ?

श्रद्धाने सजल नेत्रोंसे मुस्कराकर कहा—क्या करूँ, मुझे मनाने नहीं आता।

श्रद्धा—इससे बड़ा और कौन उपकार होगा,पर मुझे आपके सफल होनेकी आशा नहीं है। उन्हें अपनी टेक है और मैं धर्म-शास्त्रसे टल नहीं सकती ! फिर भला मेल क्योंकर होगा ?

गायत्री—प्रेमसे।

श्रद्धा—मुझे उनसे जितना प्रेम है वह प्रकट नहीं कर सकती, अगर उनका जरा भी इशारा पाऊँ तो आगमें कूद पड़ूँ। और मुझे विश्वास है कि उन्हें भी मुझसे इतना ही प्रेम है; लेकिन प्रेम केवल हृदयोंको मिलाता है, देहपर उसका बस नहीं है।

इतनेमें ज्ञानशंकर आ गये और गायत्रीसे बोले, मैं जरा गोपालमन्दिरकी तरफ चला गया था। वहाँ कुछ भक्तोंका विचार है कि आपके शुभागमनके उत्सवमें कृष्णलीला करें। मैंने उनसे कह दिया है कि इसी बंगलेके सामनेवाले सहनमें नाट्यशाला बनायी जाय। गायत्रीका मुखकमल खिल उठा। बोली, यह जगह काफी होगी ?

ज्ञान—हाँ, बहुत जगह है। उन लोगोंकी यह भी इच्छा है कि आप भी कोई पार्ट लें।

गायत्री—(मुस्कुराकर) आप लेंगे तो मैं भी ले लूँगी !

ज्ञानशंकर दूसरे ही दिनसे रंगभूमिके बनवानेसे दत्तचित्त हो गये। एक विशाल मण्डप बनाया गया। कई दिनोंतक उसकी सजावट होती रही। फर्श, कुर्सियाँ, शीशेके सामान, फूलोंके गमले, अच्छी-अच्छी तस्वीरें, सभी यथास्थान शोभा देने लगीं। बाहर विज्ञापन बाँटे गये। रईसोंके पास छपे हुए निमन्त्रणपत्र

भेजे गये। चार दिनतक ज्ञानशंकरको बैठनेका भी अवकाश न मिला। एक पैर दीवानखानेमें रहता था, जहाँ अभिनेतागण अपने-अपने पाठका अभ्यास किया करते थे, दूसरा पैर शामियानेमें रहता था, जहाँ सैकड़ों मजूर, बढ़ई, चित्रकार अपने-अपने काम कर रहे थे। स्टेजकी छटा अनुपम थी। जिधर देखिये, हरियालीकी बहार थी। परदा उठते ही बनारस और वृन्दावनका दृश्य आँखोंके सामने आ जाता था। यमुनातटके कुंज, उनकी छायामें विश्राम करती हुई गायें, हिरनोंके झुंड कदमकी डालियोंपर बैठे हुए मोर और पपीहे—सम्पूर्ण दृश्य काव्यरसमें डूबा हुआ था।

रातके आठ बजे थे, बिजलीकी बत्तियोंसे सारा मण्डप ज्योतिर्मय हो रहा था। सदर फाटकपर बिजलीका एक सूर्य्य बना हुआ था, जिसके प्रकाशमें जर्मानपर रेंगनेवाली चींटियाँ भी दिखाई देती थीं। सात ही बजेसे दर्शकोंका समारोह होने लगा। लाला प्रभाशंकर अपना काला चोगा पहने एक केसरिया पाग बाँधे, मेहमानोंका स्वागत कर रहे थे। महिलाओंके लिये दूसरी ओर परदे डाल दिये गये थे। यद्यपि श्रद्धाको इन लीलाओंसे विशेष प्रेम न था, तथापि गायत्रीके अनुरोधसे उसने महिलाओंके आदर-सत्कारका भार अपने सिर ले लिया था। ८ बजते-बजते पंडाल दर्शकोंसे भर गया, जैसे मेलोंमें रेलगाड़ियाँ ठस जाती हैं। मायाशङ्करने सबके आग्रह करने पर भी कोई पार्ट न लिया था। मण्डपके द्वारपर खड़ा लोगोंके जूतोंकी रखवाली कर रहा था। इस वक्ततक शामियानेमें बाजार-सा लगा हुआ था, कोई हँसता था, कोई अपने सामनेवालोंको धक्के देता था, कुछ लोग राजनीतिक प्रश्नोंपर वाद-विवाद कर रहे थे, कहीं जगहके लिये लोगोंमें हाथापाई हो रही थी। बाहर सरदीसे हाथ-पाँव अकड़े जाते थे, पर मण्डपमें खासी गर्मी थी।

ठीक नौ बजे परदा उठा। राधिका हाथमें वीणा लिये कदमके नीचे खड़ी सूरदासका एक पद गा रही थी। यद्यपि राधिकाका पार्ट उसपर फबता न था, उसकी गौरवर्शालता,उसकी प्रौढ़ता, उसकी प्रतिभा एक चंचल ग्वालकन्याके स्वाभावानुकूल न थी, किन्तु जगमगाहटने सबकी समालोचक शक्तियोंको वशीभूत कर लिया था। सारी सभा विस्मय और अनुरागमें डूबी हुई थी, यह तो कोई स्वर्गकी अप्सरा है! उसकी मृदुल वाणी, उसका कोमल गान, उसके अलङ्कार और भूषण, उसके हाव-भाव,उसके स्वरलालित्य,किस-किसकी प्रशंसा की जाय। वह एक थी, अद्वितीय थी, कोई उसका सानी, उसका जवाब न था।

राधाके पीछे तीन सखियाँ और आयीं,—ललिता,चन्द्रावली और श्यामा। सब अपनी-अपनी विरह-कथा सुनाने लगीं। कृष्णकी निष्ठुरता और कपटकी चर्चा होने लगी। उसपर घरवालोंकी रोक-थाम, डाँट-डपट भी मारे डालती थी। एक बोली, मुझे तो पनघटपर जानेकी रोक हो गयी है, दूसरी बोली,—मैं तो द्वारपर खड़ी होकर झाँकने भी नहीं पाती,तीसरी बोली, जब दही बेचने जाती हूँ तब बुढ़िया साथ हो लेती है। राधिकाने सजल नेत्र होकर कहा, मैं तो बदनाम हो गयी, अब किसीसे उनकी बात नहीं हो सकती। ललिता बोली,—वह आप ही निर्दयी हैं, नहीं तो क्या मिलनेका कोई उपाय ही न था।

चन्द्रावली—उन्हें हमको जलाने और तड़पानेमें आनन्द मिलता है।

श्यामा—यह बात नहीं, वह हमारे घरवालोंसे डरते हैं।

राधा—चल, तू उनका योंही पक्ष लिया करती है; बड़े चतुर तो बनते हैं, क्या इन बुद्धुओंको भी घता नहीं बता सकते? बात यह है कि उन्हें हमारी सुध ही नहीं है।

ललिता—चलो, आज हम सब उनको परखें।

इसपर सब सहमत हो गयीं। इधर-उधर चौकन्नी आखों-से ताक-ताककर, हाथोंसे बता-बताकर, भौंहें नचा-नचाकर, आपसमें सलाह होने लगी। परीक्षाका क्या रूप होगा, इसका निश्चय हो गया। चारों प्रसन्न होकर एक गीत गाती हुई स्टेजसे चली गयीं। परदा गिर गया।

फिर परदा उठा। वृक्षोंके समूहमें एक छोटा-सा गाँव दिखाई दिया, फूसके कई झोपड़े थे, बहुत ही साफ-सुथरे फूल पत्तियों-से सजे हुए, उनमें कहीं-कहीं गायें बँधा हुई थीं, कहीं बछड़े किलोलें करते थे, कहीं दूध बिलोया जाता था। बड़ा सुरम्य दृश्य था! एक मकानमें चन्द्रावली पलँगपर पड़ी कराह रही थी। उसके सिराहने कई आदमी बैठे पंखा झल रहे थे, कई स्त्रियाँ पैरकी ओर खड़ी थीं। 'बैद! बैद!!' की पुकार हो रही थी। दूसरी झोपड़ीमें ललिता पड़ी थी। उसके पास भी कई स्त्रियाँ बैठी टोना टोटका कर रही थीं, कोई कहती थी, आसेब है, कोई चुड़ैलका फेर बतलाती थी। ओझाजीको बुलानेकी बातचीत हो रही थी। एक युवक खड़ा कह रहा था—यह सब तुम्हारा ढकोसला है, इसे कोई हृदरोग है, किसी चतुर वैद्यको बुलाना चाहिये। तीसरे झोपड़ेमें श्यामाकी खटोली थी, वहाँ भी यही बैद-बैदकी पुकार थी। चौथा मकान बहुत बड़ा था, द्वारपर बड़ी-बड़ी गायें थीं, एक ओर अनाजके ढेर लगे हुए थे, दूसरी ओर मटकोंमें दूध भरा रक्खा था, चारों तरफ सफाई थी, इस-में राधिका मृत्यावस्थामें बेचैन पड़ी थी। उसके समीप एक पण्डितजी आसनपर बैठे हुए पाठ कर रहे थे, द्वारपर भिक्षुकों-को अन्न दान दिया जा रहा था, घरके लोग राधिकाको चिन्तित नेत्रोंसे देखते थे और बैद! बैद!! पुकारते थे।

सहसा दूरसे आवाज आयी। बैद! बैद! सब रोगोंका बैद, कामका बैद, क्रोधका बैद, मोहका बैद, लोभका बैद, धर्मका बैद, कर्मका बैद, मोक्षका बैद, मनका मैल निकाले, अज्ञानका मैल

निकाले, ज्ञानकी सींगी लगाये, हृदयकी पीर मिटाये, वैद! वैद! लोगोंने बाहर निकलकर वैद्यजीका बुलाया। उनके काँधेपर झोली थी, सिरपर एक लाल गोल पगड़ी, देहपर एक हरी बनातकी गोटेदार चपकन थी, आँखोंमें सुरमा, अधरोंपर पानकी लाली, चेहरेपर मुस्कुराहट थी, चाल-ढालसे बाँकपन बरसता था। स्टेजपर आते ही उन्होंने झोली उतारकर रख दी और बाँसुरी बजा-बजाकर गाने लगे।

मैं तो हरत विरहकी पीर
प्रेम-दाहको शीतल करता जैसे अग्निको नीर—
मैं तो हरत·····
निर्मल ज्ञानकी बूटी देकर, देत हृदयको धीर—
मैं तो हरत ·· ···

राधाके घरवाले उन्हें हाथोंहाथ अन्दर ले गये। राधिकाने उन्हें देखते ही मुस्कराकर मुँह छिपा लिया। वैद्यजीने उसकी नाड़ी देखनेके बहानेसे उसकी गोरी-गोरी कलई पकड़कर धीरेसे दबा दी। राधाने झिझककर हाथ छुड़ा लिया; तब प्रेमनीतिकी भाषामें बातें होने लगीं।

राधा—नदीमें अथाह जल है।

वैद्य—जिसके पास नौका है उसे जलका क्या भय?

राधा—आँधी है, भयानक लहरें हैं, और बड़े-बड़े भयङ्कर जलजन्तु हैं।

वैद्य—मल्लाह चतुर है।

राधा—सूर्य्य भगवान निकल आये; पर तारे क्यों जगमगा रहे हैं?

वैद्य—प्रकाश फैलेगा तो वह स्वयं लुप्त हो जायँगे।

वैद्यजीने घरवालोंको आँखोंके इशारेसे हटा दिया। जब एकान्त हो गया तब राधाने मुस्कराकर कहा—प्रेमका धागा कितना दृढ़ है?

ज्ञानशङ्करने इसका कुछ उत्तर न दिया।

गायत्री फिर बोली—आग लकड़ीको जलाती है, पर लकड़ी जल जाती है तो आग भी बुझ जाती है।

ज्ञानशङ्करने इसका भी कुछ जवाब न दिया।

गायत्रीने उनके मुखकी ओर विस्मयसे देखा, यह मौन क्यों? अपना पार्ट भूल तो नहीं गये? तब तो बड़ी हँसी होगी।

ज्ञानशङ्करके होंठ बन्द थे, साँस बड़े वेगसे चल रही थी! पाँव काँप रहे थे, नेत्रोंमें विषम प्रेरणा झलक रही थी और मुखसे एक भयङ्कर संकल्प प्रकट होता था, मानों कोई हिंसक पशु अपने शिकारपर टूटनेके लिये अपनी शक्तियोंको एकाग्र कर रहा हो। वास्तवमें ज्ञानशङ्करने छलाँग मारनेका निश्चय कर लिया था। इसी एक छलाँगमें वह सौभाग्य-शिखरपर पहुँचना चाहते थे, इसके लिये महीनोंसे तैयार हो रहे थे, इसीलिये उन्होंने यह ड्रामा खेला था, इसीलिये उन्होंने यह स्वाँग भरा था, छलाँग मारनेका यही अवसर था, इस वक्त चूकना पाप था। उन्होंने तोतेको दाना दिखाकर परचा लिया था, वह निःशङ्क होकर उनके आँगनमें दाना चुगता फिरता था। उन्हें विश्वास था कि दानेकी चाट उसे पिञ्जरेमें खींच ले जायगी। उन्होंने पिञ्जरेका द्वार खोल दिया था। तोतेने पिञ्जरेको देखते ही चौंककर पर तौले और उड़कर मुँडेरपर जा बैठा। दानेकी चाट उसकी स्वेच्छावृत्तिका सर्वनाश न कर सकी थी। गायत्रीकी भी यही दशा थी। ज्ञानशङ्करकी यह अव्यक्त प्रेरणा देखकर झिझकी। यह उसका इच्छित कर्म न था, वह प्रेमका रस पान कर चुकी थी, उसकी शीतल दाह और सुखद पीड़ाका स्वाद चख चुकी थी, वशीभूत हो चुकी थी, पर सतीत्वरक्षाकी आन्तरिक प्रेरणा अभी शिथिल न हुई थी। वह झिझकी और उसी भाँति उठ खड़ी हुई जैसे किसी आकस्मिक आघातको रोकनेके लिये हमारे हाथ स्वयं अनिच्छित रूपसे उठ जाते हैं। वह घबराकर उठी और वेगसे स्टेजके पीछेकी

ओर निकल गयी। वहाँ एक चारपाई पड़ी हुई थी, वह उसपर जाकर गिर पड़ी। वह सज्ञाशून्य-सी हो रही थी, जैसे रातके सन्नाटेमें कोई गीदड़ बादलकी आवाज सुने और चिल्लाकर गिर पड़े। उसे कुछ ज्ञान था तो केवल भयका!

लेकिन उसमें तोतेकी-सी स्वाभाविक शङ्का थी, तो उसी तोतेका-सा अल्प आत्मसम्मान भी था। जैसे ताता एक ही क्षण-में फिर दानेपर गिरता है और अन्तमें पिंजर-बद्ध हो जाता है, उसी भाँति गायत्री भी एक ही क्षणमें अपनी झिझकपर लज्जित हुई। उसकी मानसिक पवित्रता कबकी विनष्ट हो चुकी थी, अब यह अनिच्छित प्रतिकारकी शक्ति भी विलुप्त हो गयी। उसके मनोभावका क्षेत्र अब बहुत विस्तृत हो गया था। पति-प्रेम उसके एक कोनेमें पैर फैलाकर बैठ सकता था। अब हृदेश-पर उसका आधिपत्य था। एक क्षणमें वह फिर स्टेजपर आयी, शरमा रही थी कि ज्ञानशङ्कर मनमें क्या कहते होंगे? हा! मैं भक्तिके वेगमें भी अपनेको न भूल सकी। यहाँ भी अहङ्कारको न मिटा सकी। दर्शकवृन्द मनमें न जाने क्या विचार कर रहे होंगे। वह स्टेजपर पहुँची तो ज्ञानशङ्कर एक पद गाकर लोगोंका मनो-रंजन कर रहे थे। उसके स्टेजपर आते ही परदा गिर गया।

आध घण्टेके बाद तीसरी बार परदा उठा। फिर वही कदमका वृक्ष था, वही सघन कुंज, चारों सखियाँ बैठी हुई कृष्णके वैद्यरूप धारणकी चर्चा कर रही थीं। वह कितने प्रेमी, कितने भक्तवत्सल हैं! वह स्वयं भक्तोंके भक्त हैं।

इस वार्तालापके उपरान्त एक पद्यबद्ध सम्भाषण होने लगा; जिसमें ज्ञान और भक्तिकी तुलना की गयी और अन्तमें भक्तिपक्ष-को ही सिद्ध किया गया। चारों सखियोंने आरती गायी और अभिनय समाप्त हुआ। परदा गिर गया। गायत्रीके भाव-चित्रण स्वरलालित्य और अभिनय-कौशलकी सभी प्रशंसा कर रहे थे। कितने ही सरल हृदय भक्तजनोंको तो विश्वास हो गया कि

गायत्रीको राधिकाका इष्ट है। सभ्य समाज इतना प्रगल्भ तो न था, फिर भी गायत्रीकी प्रतिभा, उसके तेजमय सौन्दर्य, उसके विशाल गाम्भीर्य, उसकी अलौकिक मृदुलताका जादू सभीपर छाया हुआ था। ज्ञानशङ्करके अभिनयकौशल-लकी भी सराहना हो रही थी। यद्यपि उनका गाना किसीको पसन्द न आया, उनकी आवाजमें लोचका नाम भी न था, फिर भी उनकी वैद्य-लीला निर्दोष बतायी जाती थी।

गायत्री अपने कमरेमें आकर कोचपर बैठी तो एक बज गया था। वह आनन्दसे फूली न समाती थी, चारों तरफ उस-की वाह-वाह हो रही थी, शहरके कई रसिक सज्जनोंने चलते समय आकर उसके मानव-चरित्र-ज्ञानकी प्रशंसा की थी, यहाँ तक कि श्रद्धा भी उसके अभिनयनैपुण्यपर विस्मित हो रही थी। उसका गौरवशील हृदय इस विचारसे उन्मत्त हो रहा था कि आज सारे नगरमें मेरी ही चर्चा, मेरी ही धूम है। और यह सब किसके सत्सङ्गका, किसकी सत्प्रेरणा फल था? गायत्रीके रोम-रोमसे ज्ञानशङ्करके प्रति श्रद्धा-ध्वनि निकलने लगी। उसने ज्ञानशङ्करपर अनुचित सन्देह करनेके लिये अपनेको तिरस्कृत किया। मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिये, उनके पैरोंपर गिरकर उनके हृदयसे इस दुःखको मिटाना चाहिये। मैं उनकी पदरज हूँ, उन्होंने मुझे धरतीसे उठाकर आकाशपर पहुँचाया है। मैंने उनपर सन्देह किया? मुझसे बड़ा कृतघ्न और कौन होगा? वह इन्हीं विचारोंमें मग्न था कि ज्ञानशङ्कर आकर खड़े हो गये और बोले—"आज आपने मजलिसपर जादू कर दिया।"

गायत्री बोली—यह जादू आपका ही सिखाया हुआ है।

ज्ञानशङ्कर—सुना करता था, कि मनुष्यका जैसा नाम होता है वैसे ही गुण भी उसमें आ जाते हैं, पर विश्वास न आता था। अब विदित हो रहा है, कि यह कथन सर्वथा निस्सार नहीं है। मुझे दो बारसे अनुभव हो रहा है कि जब अपना पार्ट खेलने

लगता हूँ तब किसी दूसरे ही जगत्में पहुँच जाता हूँ। चित्तपर एक विचित्र आनन्द छा जाता है, ऐसा भ्रम होने लगता है कि मैं वास्तवमें कृष्ण हूँ।

गायत्री—मैं भी यही कहनेवाली थी। मैं तो अपनेको बिलकुल भूल ही जाती हूँ।

ज्ञान—संभव है, उस आत्मविस्मृतिकी दशामें मुझसे कोई अपराध हो गया हो, तो उसे क्षमा कीजियेगा।

गायत्री सकुचाती हुई बोली प्रेमोद्गारमें अन्तःकरण निर्मल हो जाता है, वासनाओंका लेश भी नहीं रहता।

ज्ञानशङ्कर एक मिनटतक खड़े इन शब्दोंके आशयपर विचार करते रहे और तब बाहर चले गये।

दूसरे दिन विद्यावती बनारस पहुँची। उसने अपने आनेकी सूचना न दी थी, केवल एक भरोसेके नौकरको साथ लेकर चली आयी थी। ज्योंही द्वारपर पहुँची, उसे वृहत् पण्डाल दिखाई दिया। अन्दर गयी तो श्रद्धा दौड़कर उससे गले मिली। महरियाँ दौड़ा आयीं। वह सबकी सब विद्याको करुणा-सूचक नेत्रोंसे देख रही थीं? गायत्री गङ्गास्नान करने गयी थी। विद्याके कमरेमें गायत्रीका राज्य था। उसके सन्दूक और अन्य सामान चारों ओर भरे हुए थे। विद्याको ऐसा क्रोध आया कि गायत्रीका सब सामान उठाकर बाहर फेंक दे, पर कुछ सोच कर रह गयी। गायत्रीके साथ कई महरियाँ भी आयी थीं। वे यहाँकी महरियोंपर रोब जमाती थीं। विद्याको देखकर सब इधर-उधर हट गयीं, कोई कुशल-समाचार पूछने भी न आयी। विद्या इन परिस्थितियोंको उसी दृष्टिसे देख रही थी, जैसे कोई पुलिसका अफसर किसी घटनाके प्रमाणोंको देखता है। उसके मनमें जो शङ्का आरोपित हुई थी, उसकी पग-पगपर पुष्टि होती जाती थी। ज्योंही एकान्त हुआ, विद्याने श्रद्धासे पूछा—यह शामियाना कैसा तना हुआ है?

श्रद्धा—रातको वहाँ कृष्णलीला हुई थी।

विद्या—बहिनने भी कोई पार्ट लिया ?

श्रद्धा—वह राधिका बनी थीं, और बाबूजीने कृष्णका पार्ट लिया था।

विद्या—बहिनसे खेलते तो न बना होगा ?

श्रद्धा—वाह ! वह इस कलामें निपुण हैं। सारी सभा लट्टू हो गयी। आती होंगी, आप ही कहेंगी।

विद्या—क्या नित्य गङ्गास्नान करने जाती हैं ?

श्रद्धा—हाँ, प्रातःकाल गङ्गास्नान होता है, संध्याको कीर्तन सुनने जाती हैं।

इतनेमें मायाशङ्करने आकर माताके चरण स्पर्श किये। विद्याने उसे छातीसे लगा लिया और बोली—बेटा, आरामसे तो रहे ?

माया—जी हाँ, खूब आरामसे था।

विद्या—बहिन, देखो इतने ही दिनोंमें इनकी आवाज कितनी बदल गयी है, बिलकुल नहीं पहचानी जाती। मौसीजीके क्या रङ्ग-ढङ्ग हैं ? खूब प्यार करती हैं न ?

माया—हाँ, मुझे बहुत चाहती हैं, बहुत अच्छा मिजाज है ?

विद्या—वहाँ भी कृष्णलीला होती थी कि नहीं ?

माया—हाँ, वहाँ तो रोज ही होती रहती थी। कीर्तन नित्य होता था। मथुरा-वृन्दावनसे रहस्यवाले बुलाये जाते थे। बाबूजी भी कृष्णका पार्ट खेलते हैं। उनके केश खूब बढ़ गये हैं। सूरतसे महन्त मालूम होते हैं। तुमने तो देखा होगा ?

विद्या—हाँ, देखा क्यों नहीं। बहिन अब भी उदास रहती है ?

माया—मैंने तो उन्हें कभी उदास नहीं देखा। हमारे घरमें तो ऐसा प्रसन्नचित्त कोई है ही नहीं।

विद्या यह प्रश्न यों पूछ रही थी जैसे कोई वकील गवाहसे जिरह कर रहा हो। प्रत्येक उत्तर उसके सन्देहको दृढ़ करता था। दस बजे द्वारपर मोटरकी आवाज सुनाई दी। सारे घरमें हलचल

मच गयी। कोई महरी गायत्रीका पलङ्ग बिछाने लगी, कोई उसके स्लीपरोंको पोंछने लगी, किसीने फर्श झाड़ना शुरू किया, कोई उसके जलपानकी सामग्रियाँ निकालकर तश्तरीमें रखने लगी और एकने लोटा गिलास माँजकर रख दिया। इतनेमें गायत्री ऊपर आ पहुँची। पीछे-पीछे ज्ञानशङ्कर भी थे। विद्या अपने कमरेसे न निकली, लेकिन गायत्री लपककर उसके गलेसे चिपट गयी और बोली —तुम कब आयी? पहलेसे खत भी न लिखा?

विद्या गला छुड़ाकर अलग खड़ी हो गयी और रूखाईसे बोली, खत लिखकर क्या करती? यहाँ किसे फुरसत थी कि मुझे लेने जाता, दामोदर महराजके साथ चली आयी।

ज्ञानशङ्करने विद्याके चेहरेकी ओर प्रश्नात्मक दृष्टिसे देखा। उत्तर मोटे अक्षरोंमें स्पष्ट लिखा हुआ था। विद्या भावोंको छिपानेमें कच्ची थी। सारी कथा उसके चेहरेपर अङ्कित थी। उसने ज्ञानशङ्करको आँख उठाकर भी न देखा, कुशल-समाचार पूछनेकी बात ही क्या, नंगी तलवार बनी हुई थी। उसके तेवर साफ कह रहे थे कि वह भरी बैठी है और अवसर पातेही उबल पड़ेगी। ज्ञानशङ्करका चित्त उद्विग्न हो गया। वे शंकाएँ, वह परिणामचिन्ता, जो गायत्रीके आनेसे दब गयी थी, फिर जाग उठी और उनके हृदयमें काँटोंके समान चुभने लगी। उन्हें निश्चय हो गया कि विद्या सब कुछ जान गयी, अब वह मौका पाते ही ईर्षावेगमें गायत्रीसे सब कुछ कह सुनायेगी। मैं उसे किसी भाँति नहीं रोक सकता। समझाना, डराना, धमकाना, विनती और चिरौरी करना सब निष्फल होगा। बस, अगर अब प्राण-रक्षाका कोई उपाय है तो यही कि उसे गायत्रीसे बातचीत करनेका अवसर हो न मिले। या तो आज ही शामकी गाड़ीसे गायत्रीको लेकर गोरखपूर चला जाऊँ या दोनों बहिनोंमें ऐसा मनमोटाव करा दूँ कि एक दूसरीसे खुलकर मिल ही न सके। स्त्रियोंको लड़ा देना कौन-सा कठिन काम है! एक इशारेमें तो

उनके तेवर बदलते हैं। ज्ञानशङ्करको अभीतक यह ध्यान भी न था कि विद्या मेरी भक्ति और प्रेमके मर्मतक पहुँची हुई है। वह अभीतक केवल रायसाहबवाली दुर्घटनाकोही इस मनोमालिन्य का कारण समझ रहे थे।

विद्याने गायत्रीसे अलग हटकर उसके नख-शिखको चुभती हुई दृष्टिसे देखा। उसने उसे ६ साल पहले देखा था। तब उसका मुखकमल मुर्झाया हुआ था, वह संध्याकालके सदृश उदास, मलिन, निश्चेष्ट थी। पर इस समय उसके मुखपर खिले हुए कमलकी शोभा थी; वह उषाकी भाँति विकसित, तेजोमय, सचेष्ट, स्फूर्तिसे भरी हुई दीख पड़ती थी। विद्या इस विद्युत्प्रकाशके सम्मुख दीपकके समान ज्योतिहीन मालूम होती थी।

गायत्रीने पूछा—संगीत-सभाका तो खूब आनन्द उठाया होगा?

ज्ञानशङ्करका हृदय धकधक करने लगा। उन्होंने विद्याकी ओर बड़ी दीन दृष्टिसे देखा, पर उसकी आँखें जमीनकी तरफ थीं। बोली—मैं तो कभी संगीतके जलसेमें गयी ही नहीं, हाँ, इतना जानती हूँ कि जलसा कुछ फीका रहा। लालाजी बहुत बीमार हो गये और एक दिन भी जलसेमें शरीक न हो सके।

गायत्री—मेरे न जानेसे नाराज तो अवश्य ही हुए होंगे?

विद्या—तुम्हें उनके नाराज होनेकी क्या चिन्ता है? वह नाराज होकर तुम्हारा क्या बिगाड़ सकते हैं?

यद्यपि यह उत्तर काफी तौरपर द्वेषमूलक था, पर गायत्री अपनी कृष्णलीलाकी चर्चा करनेके लिये इतनी उतावली हो रही थी, कि उसने इसपर कुछ ध्यान न दिया। बोली, क्या कहूँ तुम कल न आ गयीं, नहीं तो यहाँ कृष्णलीलाका आनन्द उठाती। भगवानकी कुछ ऐसी दया हो गयी, कि सारे शहरमें इस लीलाकी वाह-वाह मच गयी। किसी प्रकारकी त्रुटि न रही। रंगभूमि तो तुमको अभी दिखाऊँगी; पर उसकी सजावट ऐसी मनोहर थी, कि

तुमसे क्या कहूँ। केवल परदोंके बनवानेमें हजारों रुपये खर्च हो गये। बिजलीके प्रकाशसे सारा मंडप ऐसा जगमगा रहा था, कि उसकी शोभा देखते ही बनता था। मैं इतनी बड़ी सभाके सामने आते डरती थी, पर कृष्ण भगवानने ऐसी कृपा की कि मेरा पार्ट सबसे बढ़कर रहा। पूछो बाबूजीसे, शहरमें उसकी कैसी चर्चा हो रही है। लोगोंने मुझसे एक-एक पद कई-कई बार गवाया।

विद्याने व्यङ्ग भावसे कहा – मेरा अभाग्य था कि कल न आ गयी।

गायत्री—एक बार फिर वही लीला करनेका विचार है। अबकी तुम्हें भी कोई-न-कोई पार्ट दूँगी।

विद्या – नहीं, मुझे क्षमा करना। नाटक खेलकर स्वर्गमें जानेकी मुझे आशा नहीं है।

गायत्री विस्मित होकर विद्याका मुँह ताकने लगी। लेकिन ज्ञानशङ्कर मनमें मुग्ध हुए जाते थे। दोनों बहिनोंमें वह जो भेद-भाव डालना चाहते थे, वह आप-ही-आप आरोपित हो रहा था। ये शुभ लक्षण थे। गायत्रीसे बोले—मेरे विचारमें यहाँ अब आपको कष्ट होगा। क्यों न बँगलेमें एक कमरा आपके लिये खाली करा दूँ। वहाँ आप ज्यादा आरामसे रह सकेंगी।

गायत्रीने विद्याकी तरफ देखते हुए कहा—क्यों विद्या, बँगलेमें चली जाऊँ? बुरा तो न मानोगी? मेरे यहाँ रहनेसे तुम्हारे आराममें विघ्न पड़ेगा। मैं बहुधा भजन गाया करती हूँ।

विद्या—तुम आरामकी चिन्ता मत करो, मैं इतनी नाजुक दिमाग नहीं हूँ। हाँ, अगर तुम्हें यहाँ कोई असमंजस हो तो शौकसे बँगलेमें चली जाओ।

ज्ञानशङ्करने गायत्रीका असबाब उठाकर बँगलेमें रखवा दिया। गायत्रीने भी विद्यासे और कुछ न कहा। उसे मालूम हो गया कि यह इस समय ईर्षाके मारे मरी जाती है। और ऐसा कौन प्राणी होगा, जो ईर्षाकी क्रीड़ाका आनन्द न उठाना चाहे?

उसने एक बार विद्याको सगर्व नेत्रोंसे देखा और जीनेकी तरफ चली गयी।

रातके ६ बजे थे। गायत्री वीणापर गा रही थी कि ज्ञानशङ्करने कमरेमें प्रवेश किया। उन्होंने आज देवीसे वरदान माँगनेका निश्चय कर लिया था। लोहा लाल हो रहा था, अब आगा-पीछा करनेका अवसर न था, ताबड़तोड़ चोटोंकी जरूरत थी, एक दिनकी देर भी बरसोंके अविरल उद्योगपर पानी फेर सकती थी, जीवनकी समस्त आशाओंको मिट्टीमें मिला सकती थी। विद्याकी एक अनुचित बात सारी बाजीको पलट सकती थी, उसका एक द्वेषमूलक संकेत उनके सारे हवाई किलोंको विध्वंस कर सकता था। कदाचित् किसी सेनापतिको रणक्षेत्रमें भी इतना महत्वपूर्ण और निश्चयकारी अवसर न प्रतीत होगा, जितना इस समय ज्ञानशङ्करको मालूम हो रहा था। उनकी अवस्था उस सिपाहीकी-सी थी, जो कुछ दूरपर खड़ा शस्त्रशाला में आगकी चिनगारी पड़ते देखे और उसको बुझानेके लिये बेतहासा दौड़े। उसका द्रुतवेग कितना महत्वपूर्ण, कितना मूल्यवान है! एक क्षणका विलम्ब सेनाके सर्वनाश, दुर्गके दमन, राज्यके विक्षेप और जातिके पददलित होनेका कारण हो सकता है! ज्ञानशङ्कर आज दोपहरसे इसी समस्याके हल करनेमें व्यस्त थे। क्योंकर विषयको छेड़ूँ? ऐसा अन्दाज होना चाहिये कि मेरी निष्काम-वृत्तिका परदा न खुलने पाये। उन्होंने अपने मनमें विषय-प्रवेशका ऐसा क्रम बाँधा था, कि मायाशङ्करको गोद लेनेका प्रस्ताव गायत्रीकी ओरसे हो और मैं उसके गुण-दोषोंकी निःस्वार्थ भावसे व्याख्या करूँ। मेरी हैसियत एक तीसरे आदमीकी रहे। एक शब्दसे भी पक्षपात न प्रकट हो। उन्होंने अपनी बुद्धि, विचार, दूरदर्शिता और पूर्वचिन्तासे कभी इतना काम न लिया था। सफलतामें जो बाधाएँ उपस्थित होनेकी कल्पना हो सकती थी, उन सबोंकी उन्होंने योजना कर

ली थी। अपने मनमें एक-एक शब्द, एक-एक इशारे, एक-एक भावका निश्चय कर लिया था। वह एक केसरिया रंगकी रेशमी चादर ओढ़े हुए थे, लम्बे केश चादरपर बिखरे पड़े थे, आँखोंसे भक्तिका आनन्द टपक रहा था और मुखारविन्द प्रेमकी दिव्य ज्योतिसे आलोकित था।

उन्होंने गायत्रीको अनुरागमय दृष्टिसे देखकर कहा—आपके पदोंमें गजबका जादू है। हृदयमें प्रेमकी तरंगें उठने लगती हैं, चित्त भक्तिसे उन्मत्त हो जाता है। गायत्रीने मुस्कराकर कहा, यह जादू मेरे पदोंमें वहीं हैं, आपके कोमल हृदयमें है। बाहरकी फीकी नीरस ध्वनि भी अन्दर जाकर सुरीली और रसमयी हो जाती है। साधारण दीपक भी मोटे शीशेके अन्दर बिजलीका लम्प बन जाता है।

ज्ञानशङ्कर—मेरे चित्तकी आजकल एक विचित्र दशा हो गयी है। मुझे अब विश्वास होता जाता है कि मनुष्यमें एक ही साथ दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियोंका समावेश नहीं हो सकता, एक आत्मा दो रूप नहीं धारण कर सकती।

गायत्रीने उनकी ओर जिज्ञासा-भावसे देखा और वीणाको मेजपर रखकर उनका मुँह देखने लगी।

ज्ञानशङ्करने कहा, हम जो रूप धारण करते हैं, उसका हमारी बातचीत और आचार-व्यवहारपर इतना असर पड़ता है, कि हमारी वास्तविक स्थिति लुप्त-सी हो जाती है। अब मुझे अनुभव हो रहा है कि लोग क्यों लड़कोंको नाटकोंमें स्त्रियोंका रूप धरने, नाचने और भाव बतानेपर आपत्ति करते हैं? एक दयालु प्रकृतिका मनुष्य सेनामें रहकर कितना उद्दण्ड और कठोर हो जाता है। परिस्थितियाँ उसकी दयालुताका नाश कर देती हैं। मेरे कानोंमें अब नित्य वंशीकी मधुर-ध्वनि गूँजा करती है और आँखोंके सामने गोकुल और बरसानेकी छटा फिरा करती है। मेरी सत्ता कृष्णमें विलीन होती जाती है, राधा अब एक

क्षणके लिये भी मेरे ध्यानसे नहीं उतरती। कुछ समझमें नहीं आता कि मेरा मन मुझे किधर लिये जाता है।

यह कहते-कहते ज्ञानशङ्करकी आँखोंसे ज्योति-सी निकलने लगी, मुखमण्डलपर अनुराग छा गया और वाणी माधुर्य रसमें डूब गयी। बोले - गायत्रीदेवी, चाहे यह छोटा मुँह और बड़ी बात हो, पर सच्ची बात यह है कि इस आत्मोत्सर्गकी दशामें तुम्हारा उच्च पद, तुम्हारा धन वैभव, तुम्हारा नाता, सब मेरी आँखोंसे लुप्त हो जाता है और तुम मुझे वही राधा, वही वृन्दावनकी अलबेली, तिरछी चितवनवाली, मीठी मुस्कानवाली, मृदुल भावोंवाली, चञ्चल-चपल राधा मालूम होती हो। मैं इन भावनाओंको हृदयसे मिटा देना चाहता हूँ, लाखों यत्न करता हूँ, पर वह मेरी नहीं मानता। मैं चाहता हूँ कि तुम्हें रानी गायत्री समझूँ, जिसका मैं एक तुच्छ सेवक हूँ, पर बार-बार भूल जाता हूँ। तुम्हारी एक आवाज, तुम्हारी एक झलक, तुम्हारे पैरोंकी आहट, यहाँतक कि केवल तुम्हारी याद मुझे इस बाह्य जगत्से उठाकर किसी दूसरे जगत्में पहुँचा देती है। मैं अपने को बिलकुल भूल जाता हूँ। अबतक इस चित्तवृत्तिको तुमसे गुप्त रक्खा था, लेकिन जैसे मिजराबकी चोटसे सितार ध्वनित हो जाता है, उसी भाँति प्रेमकी चोटसे हृदय स्वरयुक्त हो जाता है। मैंने आपसे अपने चित्तकी दशा कह सुनायी, संतोष हो गया। इस प्रीतिका अन्त क्या होगा? इसे उसके सिवा और कौन जानता है, जिसने हृदयमें यह ज्वाला प्रदीप्त की है।

जिस प्रकार प्याससे तड़पता हुआ मनुष्य ठण्डा पानी पीकर तृप्त हो जाता है, एक-एक घूँट उसकी आँखोंमें प्रकाश और चेहरेपर विकास उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार यह प्रेमवृत्तान्त सुनकर गायत्रीका मुखचन्द्र उज्ज्वल हो गया। उसकी आँखें उन्मत्त हो गयीं, उसे अपने जीवनमें एक नयी स्फूर्तिका अनुभव होने लगा। उसके विचारमें यह आध्यात्मिक प्रेम था, इसमें वासना

का लेश भी न था। इसके प्रेरक कृष्ण थे, वही ज्ञानशङ्करके दिलमें बैठे हुए उनके कण्ठसे यह प्रेमस्वर अलाप रहे थे। उसके मनमें भी ऐसे भाव पैदा होते थे, लेकिन लज्जावश उन्हें प्रकट न कर सकती थी। राधाका पार्ट खेल चुकनेके बाद वह फिर गायत्री हो जाती थी, किन्तु इस समय ये बातें सुनकर उसपर एक नशा-सा छा गया। उसे ज्ञान हुआ कि राधा मेरे हृदयस्थलमें विराज रही है, उसकी वाणी लज्जाके बन्धनसे मुक्त हो गयी। इस आध्यात्मिक रत्नके सामने समग्र संसार यहाँतक कि अपना जीवन भी तुच्छ प्रतीत होने लगा। आत्म-गौरवसे आँखें चमकने लगीं। बोली—प्रियतम, मेरी भी यही दशा है, मैं भी इसी तापसे फुँक रही हूँ, यह तन और मन अब तुम्हारी भेंट हैं, तुम्हारे प्रेम जैसा रत्न पाकर अब मुझे कोई आकांक्षा, कोई लालसा नहीं रही। इस आत्म-ज्योतिने माया और मोहके अन्धकारको मिटा दिया, सांसारिक पदार्थोंसे जी भर गया। अब यही अभिलाषा है कि यह मस्तक तुम्हारे चरणोंपर हो और तुम्हारे कीर्ति-गानमें जीवन समाप्त हो जाय। मैं रानी नहीं हूँ, गायत्री नहीं हूँ, मैं तुम्हारे प्रेमकी भिखारिनी, तुम्हारे प्रेमकी मतवाली तुम्हारी चेरी राधा हूँ, तुम मेरे स्वामी, मेरे प्राणाधार मेरे इष्टदेव हो। मैं तुम्हारे साथ बरसानेकी गलियोंमें विचरूँगी, यमुनाके तटपर तुम्हारे प्रेम-राग गाऊँगी। मैं जानती हूँ, कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ, अभी मेरा चित्त भोग-विलासका दास है, अभी मैं धर्म और समाजके बन्धनोंको तोड़ नहीं सकी हूँ, पर जैसी कुछ हूँ, अब तुम मेरी सेवाओंका स्वीकार करो। तुम्हारे ही सत्संगने मुझे इस स्वर्गीय सुखका रस चखाया है, क्या वह मनके विकारोंको शान्त न कर देगा?

यह कहते-कहते गायत्रीके लोचन सजल हो गये। वह भक्तिके आवेगमें ज्ञानशङ्करके पैरोंपर गिर पड़ी। ज्ञानशङ्करने उसे तुरन्त उठाकर छातीसे लगा लिया। अकस्मात् कमरेका द्वार

धीरेसे खुला और विद्याने अन्दर कदम रखा। ज्ञानशङ्कर और गायत्री दोनोंने चौंककर द्वारकी ओर देखा और झिझककर अलग खड़े हो गये। दोनोंकी आँखें जमीनकी तरफ झुक गयीं चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। ज्ञानशङ्कर तो सामनेकी आलमारीमेंसे एक पुस्तक निकालकर पढ़ने लगे, किन्तु गायत्री ज्यों-की-त्यों अवाक् और अचल, पाषाण मूर्त्तिके सदृश खड़ी थी, माथेपर पसीना आ गया। जी चाहता था, धर्ती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ। वह कोई बहाना, कोई हीला न कर सकी। आत्मग्लानिने दुस्साहसका स्थान ही न छोड़ा था। उसे फर्शपर मोटे अक्षरोंमें यह शब्द लिखे हुए दीखते थे, "अब तू कहींकी न रही, तेरे मुँहमें कालिख पुत गयी!" यही विचार उसके हृदयको आन्दोलित कर रहा था, यही ध्वनि उसके कानोंमें आ रही थी। वह बिलख-बिलखकर रोने लगी। अभी एक क्षण पहले उसकी आँखोंसे आत्माभिमान बरस रहा था, पर इस वक्त उससे दीन, उससे दलित प्राणी संसारमें न था। क्षणमात्रमें उसकी भक्ति और अनुराग उसके प्रेम और ज्ञानका परदा खुल गया। उसे ज्ञात हुआ कि मेरी भक्तिके स्वच्छ जलके नीचे कीचड़ था, मेरे प्रेमके सुरम्य पर्वतशिखरके नीचे निर्मल अन्धकारमय गुफा थी। मैं स्वच्छ जलमें पैर रखते ही कीचड़में आ फँसी, शिखरपर चढ़ते ही अँधेरी गुफामें आ गिरी। हा! इस उज्ज्वल, कञ्चनमय, लहराते हुए जलने मुझे धोखा दिया, इन मनोरम शुभ्र शिखरोंने मुझे ललचाया और अब मैं कहींकी न रही। अपनी दुर्बलता और क्षुद्रतापर उसे इतना खेद हुआ, लज्जा और तिरस्कारके भावोंने उसे इतना मर्माहत किया कि वह चीख मारकर रोने लगी। हा! विद्या मुझे अपने मनमें कितनी कुटिला समझ रही होगी। वह मेरा कितना आदर करती थी, कितना लिहाज करती थी, अब मैं उसकी दृष्टिमें छिछोरी हूँ, कुलकलंकिनी हूँ। मैं उसके सामने सत्य और व्रतकी कैसी डींगें मारती थी, सेवा और सत्कर्मकी कितनी सराहना

करती थी। मैं उसके सामने साध्वी, सती बनती थी, अपने पातिव्रत्यपर घमंड करती थी, पर अब उसे मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ। हाय! वह मुझे अपनी सौत समझ रही होगी, मुझे आँखोंकी किरकिरी, अपने हृदयका काँटा ख्याल करती होगी। मैं उसकी गृह-विनाशिनी अग्नि, उसकी हाँड़ीमें मुँह डालनेवाली कुतिया हूँ। भगवान्! मैं कैसी अन्धी हो गयी थी। यह मेरी छोटी बहिन है, मेरी कन्याके समान है। इस विचारने गायत्रीके हृदयको इतने जोरसे मसोसा कि वह कलेजा थामकर बैठ गयी, सहसा वह रोती हुई उठी और विद्याके पैरोंपर गिर पड़ी।

विद्यावती इस वक्त केवल संयोगसे यहाँ आ गयी थी। वह ऊपर अपने कमरेमें बैठी सोच रही थी कि गायत्री बहिनको क्या हो गया है? उसे क्योंकर समझाऊँ कि वह महापुरुष (ज्ञानशङ्कर) तुझे प्रेम और भक्तिके सब्ज बाग दिखा रहे हैं। यह सारा स्वांग तेरी जायदादके लिये भरा जा रहा है। न जाने क्यों धन-सम्पत्तिके पीछे इतने अन्धे हो रहे हैं कि धर्म और विवेकको पैरों तले कुचले डालते है। हृदयका कितना काला, कितना धूर्त, कितना लोभी, कितना स्वार्थान्ध मनुष्य है कि अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये किसीकी जान किसीकी आबरूकी भी परवा नहीं करता। बातें तो ऐसी करता है, मानों ज्ञानचक्षु खुल गये हों, मानों ऐसा साधु-चरित्र, ऐसा विद्वान्, ऐसा परमार्थी पुरुष संसारमें न होगा, पर अन्तःकरणमें कूट-कूटकर पशुता, कपट और कुकर्म भरा हुआ है। बस, इसे यही धुन है कि गायत्री किसी तरह मायाको गोद ले ले, उसकी लिखा-पढ़ी हो जाय और इलाकेपर मेरा प्रभुत्व जम जाय, उसका सम्पूर्ण अधिकार मेरे हाथोंमें आ जाय। इसीलिये इसने ज्ञान और भक्तिका यह जाल फैला रक्खा है, भगत बन गया है, बाल बढ़ा लिये हैं, नाचता है, गाता है, कन्हैया बनता है। कितनी भयङ्कर धूर्तता है, कितना घृणित व्यवहार, कितनी आसुरी प्रवृत्ति!

यह इन्हीं विचारोंमें मग्न थी कि उसके कानोंमें गायत्रीके गानेकी आवाज आयी। वह वीणापर सूरदासका एक पद गा रही थी, राग इतना सुमधुर और भावमय था, ध्वनिमें इतनी करुणा और अकांक्षा भरी हुई थी, स्वरमें इतना लालित्य और लोच था कि विद्याका मन सुननेके लिये लोलुप हो गया. वह विवश हो गयी, स्वर लालित्यने उसे मुग्ध कर दिया। उसने सोचा, सच्चे अनुराग और हार्दिक वेदनाके बिना गानेमें यह असर, यह विरक्ति असम्भव है। इसको लगन सच्ची है, इसकी भक्ति सच्ची है। इसपर मंत्र डाल दिया गया है, मैं इस मंत्रको उतार दूँ, हो सके तो उसे गारमें गिरनेसे बचा लूँ, उसे जता दूँ, जगा दूँ। निःसन्देह यह महोदय मुझसे नाराज होंगे, मुझे बैरी समझेंगे; मेरे खूनके प्यासे हो जायँगे। कोई चिन्ता नहीं, इस काममें अगर मेरा जान भी जाय, तो मुझे बिलम्ब न करना चाहिये। जो पुरुष ऐसा खूनी, ऐसा विघातक, ऐसा रंगा हुआ सियार हो, उससे मेरा कोई नाता नहीं, उसका मुँह देखना, उसके घरमें रहना, उसकी पत्नी कहलाना पाप है।

वह ऊपरसे उतरी और धीरे-धीरे गायत्रीके कमरेमें आयी; किन्तु पहला ही पग अन्दर रक्खा था कि ठिठक गयी। सामने गायत्री और ज्ञानशङ्कर आलिंगन कर रहे थे। वह इस समय बड़ी शुभ इच्छाओंके साथ आयी थी, लेकिन निर्लज्जताका यह दृश्य देखकर उसका खून खौल उठा, आँखोंमें चिनगारियाँ-सी उड़ने लगीं, अपमान और तिरस्कारके शब्द मुँहसे निकलनेके लिये जोर मारने लगे। उसने आग्नेय नेत्रोंसे पतिको देखा। उसके शापमें यदि इतनी शक्ति होती कि वह उन्हें जलाकर भस्म कर देता तो वह अवश्य शाप दे देती। उसके हाथोंमें यदि इतनी शक्ति होती कि वह एक ही वारमें उनका काम तमाम कर दे तो वह अवश्य वार करती। पर उसके वशमें इसके सिवाय और कुछ न था कि वह वहाँसे टल जाय, इस उद्विग्न दशामें वह वहाँ

ठहर न सकती थी। वह उल्टे पाँव लौटना चाहती थी। खलियानमें आग लग चुकी थी, चिड़ियाके गलेपर छुरी चल चुकी थी, अब उसे बचानेका उद्योग करना व्यर्थ था। गायत्रीसे उसे एक क्षण पहले जो हमदर्दी हो गयी थी, वह लुप्त हो गयी, अब वह सहानुभूतिकी पात्र थी। हम सफेद कपड़ेका छींटोंसे बचाते हैं, लेकिन जब छींटे पड़ गये तो उसे दूर फेंक देते हैं, उसे छूनेसे घृणा होती है। उसके विचारमें गायत्री अब इसी योग्य थी, कि अपने कियेका फल भोगे। मैं इस भ्रममें थी कि इस दुरात्माने तुझे बहका दिया, तेरा अन्तःकरण शुद्ध है,पर अब यह विश्वास जाता रहा। कृष्णकी भक्ति और प्रेमका नशा इतना गाढ़ा नहीं हो सकता, कि सुकर्म और कुकर्मका विवेक न रहे। आत्मपतनकी दशामें ही इतनी बेहयाई हो सकती है। हा, अभागिनी! आधी अवस्था बीत जानेपर तुझे यह सूझी। जिस पतिको तू देवता समझती थी,जिसकी पवित्र स्मृतिकी तू उपासना करती थी, जिसका नाम लेते ही आत्मगौरवसे तेरे मुखपर लाली छा जाती थी, उसकी आत्माको तूने यों भ्रष्ट किया, उसकी मिट्टी यों खराब की!

किन्तु जब उसने गायत्रीको सिर झुकाकर चीख-चीख रोते देखा, तो उसका हृदय नम्र हो गया और जब गायत्री आकर पैरों पर गिर पड़ी.तब स्नेह और भक्तिके आवेशसे आतुर होकर वह बैठ गयी और गायत्रीका सिर उठाकर अपने कंधेपर रख लिया। दोनों बहिनें रोने लगीं, एक ग्लानिसे, दूसरी प्रेमाद्रेकसे।

अबतक ज्ञानशङ्कर दुविधामें खड़े थे, विद्यापर कुपित हो रहे थे,पर जबानसे कुछ कहनेका साहस न होता था। उन्हें शङ्का हो रही थी, कि कहीं यह शिकार फन्दा तोड़कर भाग न जाय। गायत्रीके रोने-धोनेपर उन्हें बड़ा क्रोध आ रहा था। जबतक गायत्री अपनी जगहपर खड़ी रोती रही, तबतक उन्हें आशा थी, कि इस चोटकी दवा हो सकती है, लेकिन जब गायत्री जाकर

विद्याके पैरोंपर गिर पड़ी और दोनों बहिनें गले मिलकर रोने लगीं, तब वह अधीर हो गये। अब चुप रहना जीती-जिताई बाजीको हाथसे खोना, जालमें फँसे हुए शिकारको भगाना था। उन्होंने कर्कश-स्वरसे विद्यासे कहा —तुमको बिना आज्ञा किसी-के कमरेमें आनेका क्या अधिकार है ?

विद्या कुछ न बोली। गायत्रीने उसकी गर्दन और जोरसे पकड़ ली, मानों डूबनेसे बचनेका यही एकमात्र सहारा है।

ज्ञानशङ्करने और सरोष होकर कहा —तुम्हारे यहाँ आनेकी कोई जरूरत नहीं और तुम्हारा कल्याण इसीमें है, कि तुम इसी दम यहाँसे चली जाओ,नहीं तो मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर बाहर निकाल देनेपर मजबूर हो जाऊँगा। तुम कई बार मेरे मार्गका काँटा बन चुकी हो, लेकिन अबकी बार मैं तुम्हें हमेशाके लिये रास्तेसे हटा देना चाहता हूँ।

विद्याने तेवरियाँ बदलकर कहा —मैं अपनी बहिनके पास आयी हूँ, जबतक वह मुझे जानेको न कहेगी, मैं न जाऊँगी।

ज्ञानशङ्करने गरजकर कहा—चली जा, नहीं तो अच्छा न होगा ?

विद्याने निर्भीकतासे उत्तर दिया—कभी नहीं,तुम्हारे कहने-से नहीं।

ज्ञानशङ्कर क्रोधसे काँपते हुए तड़िद्वेगसे विद्याके पास आये और चाहा कि झपटकर उसका हाथ पकड़ लूँ, कि गायत्री खड़ी हो गयी और गर्वसे बोली - मेरी समझमें नहीं आता कि आप इतने क्रुद्ध क्यों हो रहे हैं ? यह मुझसे मिलने आयी है और मैं अभी न जाने दूँगी।

गायत्रीकी आँखोंमें अब भी आँसू थे, गला अभीतक थरथरा रहा था,सिसकियाँ ले रही थी,पर यह विगत जलोद्वेगके लक्षण थे,सूर्य निकल आया था। वह फिर अपने आपेमें आ चुकी थी, उसका स्वाभाविक अभिमान फिर जाग्रत हो गया था।

ज्ञानशङ्करने कहा—गायत्रीदेवी, तुम अपनेको बिलकुल भूली जाती हो। मुझे अत्यन्त खेद है कि बरसों भक्ति और प्रेमकी वेदीपर आत्म-समर्पण करके भी तुम ममत्वके बन्धनोंमें जकड़ी हुई हो। याद करो, तुम कौन हो? साचो मैं कौन हूँ? मेरा और तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? क्या तुम इस पवित्र सम्बन्धको इतना जीर्ण समझ रही हो, कि उसे वायु और प्रकाशसे भी बचाया जाये? वह एक आध्यात्मिक सम्बन्ध है, अटल और अचल है, कोई पार्थिव शक्ति उसे तोड़ नहीं सकती। कितने शोककी बात है कि हमारे आत्मिक ऐक्यसे भलाभाँति परिचित होकर भी तुम मेरी इतनी अवहेलना कर रही हो! क्या मैं यह समझ लूं कि तुम इतने दिनोंतक केवल गुड़ियोंका खेल खेल रही थी? अगर वास्तवमें यही बात है तो तुमने मुझे कहींका न रक्खा। मैं अपना तन और मन, धर्म और कर्म, सब प्रेमकी भेंट कर चुका हूँ। मेरा विचार था, कि तुमने भी सोच-समझ कर प्रेमपथपर पग रक्खा है और उसकी कठिनाइयोंको जानती हो। प्रेमका मार्ग कठिन है, दुर्गम और अपार। यहाँ बदनामी है, कलङ्क है। यहाँ लोकनिन्दा और अपमान है; लांछन है, व्यङ्ग है। यहाँ वही धीरपर पहुँचता है, जो दुनियासे मुँह मोड़े, संसारसे नाता तोड़े। इस मार्गमें सांसारिक सम्बन्ध पैरोंकी बेड़ी है, उसे तोड़े बिना एक पग रखना भी असम्भव है। यदि तुमने परिणामका विचार नहीं किया और केवल मनोविनोदके लिये चल खड़ी हुईं तो तुमने मेरे साथ घोर अन्याय किया। इसका अपराध तुम्हारी गर्दनपर होगा।

यद्यपि ज्ञानशङ्कर मनोभावोंको गुप्त रखनेमें सिद्धहस्त थे, पर इस समय उनका खिसियाया हुआ चेहरा उनके इस सार-गर्भित प्रेमव्याख्याका परदा खोले देता था। मुलम्मेकी अंगूठी ताव खा चुकी थी।

इससे पहले ज्ञानशङ्करके मुँहसे ये बातें सुनकर कदाचित्

गायत्री रोने लगती और ज्ञानशङ्करके पैरोंपर गिर क्षमा माँगता, नहीं, बल्कि ज्ञानशङ्करकी अभक्तिपर ये शब्द स्वयं उसके मुँहसे निकलते। लेकिन वह नशा हिरन हो चुका था, उसने ज्ञानशङ्करके मुँहकी तरफ उड़ती हुई निगाहोंसे देखा। भक्तिका रोगन न था। नटके लम्बे केश और भड़कीले वस्त्र उतर चुके थे। वह मुखश्री, जिसपर दर्शकगण लट्टू हो जाते थे और जिसका रंगमञ्चपर करतल-ध्वनिसे स्वागत किया जाता था, क्षीण हो गयी थी। जिस प्रकार कोई सीधा-सादा देहाती एक बार ताशवालोंके दलमें आकर फिर उनके पास खड़ा भी नहीं होता, कि कहीं उनके बहकावेमें न आ जायें, उसी प्रकार गायत्री भी यहाँसे दूर भागना चाहती थी, उसने ज्ञानशङ्करको कुछ उत्तर न दिया और विद्याका हाथ पकड़े हुए द्वारकी ओर चली। ज्ञानशङ्करको ज्ञात हो गया कि मेरा मन्त्र न चला। उन्हें क्रोध आया, मगर गायत्रीपर नहीं, अपनी विफलता और दुर्भाग्यपर। शोक! मेरी ७ वर्षोंकी अविश्रान्त तपस्याएँ निष्फल हुई जाती हैं। जीवनकी आशाएँ सामने आकर रूठी जाती हैं—क्या करूँ? उन्हें क्यों कर मनाऊँ? मैंने अपना आत्मापर कितना अत्याचार किया, कैसे-कैसे षड्यन्त्र रचे, इसी एक अभिलाषापर अपना दीन ईमान न्योछावर कर दिया, वह सब कुछ किया जो न करना चाहिये था, नाचना सीखा, नकलें कीं, स्वाँग भरे; पर सारे प्रयत्न निष्फल हो गये। रायसाहबने सच कहा था कि सम्पत्ति तेरे भाग्यमें नहीं है। मेरा मनोरथ कभी पूरा न होगा। यह अभिलाषा चितापर मेरे साथ जलेगी। गायत्रीकी निठुरता भी कुछ कम हृदयविदारक न थी। ज्ञानशङ्करको गायत्रीसे सच्चा प्रेम न सही, पर वह उसके रूप-लावण्यपर मुग्ध थे। उसकी प्रतिभा, उदारता, स्नेहशीलता, बुद्धिमत्ता सरलता उन्हें अपनी ओर खींचती थी। अगर एक ओर गायत्री होती और दूसरी ओर उसकी जायदाद और ज्ञानशङ्करसे कहा जाता तुम इन दोनोंमेंसे जो चाहे ले लो, तो अवश्य-

म्भावी था, कि वह उसकी जायदादपर ही लपकते, लेकिन उसकी जातसे अलग होकर उसकी जायदाद लवणहीन भोजनके समान थी। वही गायत्री उनसे मुँह फेरकर चली जाती थी!

इन क्षोभयुक्त विचारोंने ज्ञानशङ्करके हृदयको इतना मथोसा कि उनकी आँखें भर आयीं। वह कुरसीपर बैठ गये और दीवार-की तरफ मुँह फेरकर रोने लगे! अपनी विवशतापर उन्हें इतना दुःख कभी न हुआ था। वे अपनी यादमें इतने शोकातुर कभी न हुए थे। अपनी स्वार्थपरता, अपनी इच्छालिप्सा, अपनी क्षुद्रतापर इतनी ग्लानि कभी न हुई थी। जिस तरह बीमारोंमें मनुष्यको ईश्वर याद आता है, उसी तरह अकृतकार्य्य होनेपर उसे अपने दुस्साध्योंपर पश्चात्ताप होता है। पराजयका आध्यात्मिक महत्व विजयसे कहीं अधिक होता है।

गायत्रीने ज्ञानशङ्करको रोते देखा तो द्वारपर जाकर ठिठक गयी। उसके पग बाहर न पड़ सके। स्त्रियोंके आँसू पानी हैं, वे धैर्य्य और मनोबलके हासके सूचक हैं। गायत्रीको अपनी निठुरता और अश्रद्धापर खेद हुआ। आत्मरक्षाकी अग्नि, जो एक क्षण पहले प्रदीप्त हुई थी, इन आँसुओंसे बुझ गयी। वे भावनाएँ सजीव हो गयीं, जो सात बरसोंसे मनको लालायित कर रही थीं, वे सुखद वार्ताएँ, वे मनोहर क्रीडाएँ, वे आनन्दमय कीर्तन, वे प्रीतिकी घातें, वे वियोगकल्पनाएँ, नेत्रोंके सामने फिरने लगीं। लज्जा और ग्लानिके बादल फट गये, प्रेमका चाँद चम-कने लगा। वह ज्ञानशंकरके पास आकर खड़ी हो गयी और रुमालसे उनके आँसू पोंछने लगी। प्रेमानुरागसे विह्वल होकर उसने उनका मस्तक अपनी गोदमें रख लिया। उन अश्रुप्लावित नेत्रोंमें उसे प्रेमका अथाह सागर लहरें मारता हुआ नजर आया, यह मुखकमल प्रेमसूर्य्यकी किरणोंसे विकसित हो रहा था। उसने उनकी तरफ सतृष्ण नेत्रोंसे देखा, उनमें क्षमाप्रार्थना भरी हुई थी, मानों वह कह रही थी, हा! मैं कितनी दुर्बल हूँ, कितनी

श्रद्धाहीन हूँ, कितनी जड़भक्त हूँ, रूप और गुणका निरूपण न कर सकी। मेरी अभक्तिने इनके विशुद्ध और कोमल हृदयको व्यथित किया होगा। तुमने मुझे धरतीसे उठाकर आकाशपर पहुँचाया, तुमने मेरे हृदयमें भक्तिका अंकुर जमाया, तुम्हारे ही सदुपदेशोंसे मुझे सत्प्रेमका स्वर्गीय आनन्द प्राप्त हुआ। एकाएक मेरी आँखोंपर परदा कैसे पड़ गया, मैं इतनी अन्धी कैसे हो गयी? निस्सन्देह कृष्ण भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे थे, और मैं उसमें अनुत्तीर्ण हो गयी। उन्होंने मुझे प्रेम-कसौटीपर कसा और मैं खोटी निकली। शोक! मेरी सात बरसोंकी तपस्या एक क्षणमें भङ्ग हो गयी। मैंने उस पुरुषपर सन्देह किया, जिसके हृदयमें कृष्णका निवास है, जिसके कण्ठमें मुरलीकी ध्वनि है। राधा! तुमने क्यों मेरे दिलपरसे अपना जादू खींच लिया? मेरे हृदयमें आकर बैठो और मुझे धर्मका अमृत पिलाओ।

यह सोचते-सोचते गायत्रीकी आँखें अनुरक्त हो गयीं। वह कम्पित स्वरसे बोली—भगवन्! तुम्हारी चेरी तुम्हारे सामने हाथ बाँधे खड़ी अपने अपराधोंकी क्षमा माँगती है।

ज्ञानशङ्करने उसे चुभती हुई दृष्टिसे देखा और समझ गये, कि मेरे आँसू काम कर गये। इस तरह चौंक पड़े, मानों नींदसे जगे हों और बोले—राधा?

गायत्री—मुझे क्षमा दान दीजिये।

ज्ञान—तुम मुझसे क्षमा दान माँगती हो? यह तुम्हारा अन्याय है। तुम प्रेमकी देवी हो, वात्सल्यकी मूर्त्ति, निर्दोष निष्कलंक। यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुम इतनी अस्थिरचित्त हो। प्रेमियोंके जीवनमें सुख कहाँ? तुम्हारी अस्थिरताने मुझे संज्ञाहीन कर दिया है। मुझे अब भी भ्रम हो रहा है, कि मैं गायत्रीदेवीसे बातें कर रहा हूँ या राधा रानीसे। मैं अपने आपको भूल गया हूँ। मेरे हृदयको ऐसा आघात पहुँचा है, कि कह नहीं सकता, वह घाव कभी भरेगा या नहीं। जिस प्रेम और भक्तिको

मैंने अटल समझा था, वह बालूकी भीतसे भी ज्यादा पोली निकली। उसपर मैंने जो आशा-लता आरोपित की थी; जो बाग लगाया था, वह सब जलमग्न हो गया। अहा! मैं कैसे-कैसे मनोहर स्वप्न देख रहा था। सोचा था, यह प्रेम-वाटिका कभी फूलोंसे लहरायेगी, हम और तुम सांसारिक मायाजालको हटाकर, वृन्दावनके किसी शान्तिकुंजमें बैठे हुए, भक्तिका आनन्द उठायेंगे, अपनी प्रेमध्वनिसे वृक्ष-कुंजोंको गुंजित कर देंगे, हमारे प्रेमगानसे कालिन्दीकी लहरें प्रतिध्वनित हो जायेंगी, मैं कृष्णका चाकर बनूँगा, तुम उनके लिये पकवान बनाओगी, संसारसे अलग, जीवनके अपवादोंसे दूर हम अपनी प्रेमकुटी बनायेंगे और राधाकृष्णकी अटल भक्तिमें जीवनके बचे हुए दिन काट देंगे अथवा अपने ही कृष्णमन्दिरमें राधाकृष्णके चरणोंसे लगे हुए इस असार संसारसे प्रस्थान कर जायेंगे। इसी सदुद्देश्यसे मैंने आपकी रियासतकी और यहाँकी पूरी व्यवस्था की। पर अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह सब शुभ कामनाएँ दिलमें ही रहेंगी और शीघ्र ही संसारसे हताश और भग्न-हृदय बिदा हूँगा।

गायत्री प्रेमोन्मत्त होकर बोली—भगवन्! ऐसी बातें मुँहसे न निकालो। मैं दीन अबला हूँ, अज्ञानके अन्धकारमें डूबी हुई मिथ्या भ्रममें पड़ जाती हूँ, पर मैंने तुम्हारा दामन पकड़ा है, तुम्हारी शरणागत हूँ, तुम्हें मेरी क्षुद्रताएँ, मेरी दुर्बलताएँ सभी क्षमा करनी पड़ेंगी। मेरी भी यही अभिलाषा है कि तुम्हारे चरणोंसे लगी रहूँ। मैं भी संसारसे मुँह मोड़ लूँगी, सबसे नाता तोड़ लूँगी और तुम्हारे साथ बरसाने और वृन्दाबनकी गलियोंमें विचरूँगी। मुझे अगर कोई सांसारिक चिन्ता है, तो वह यह है कि मेरे पीछे मेरे इलाकेका प्रबन्ध सुयोग्य हाथोंमें रहे, मेरी प्रजापर अत्याचार न हो और रियासतकी आमदनी परमार्थमें लगे। मेरा और तुम्हारा निर्वाह दस बारह हजार रुपयों-

मैं हो जायगा। मुझे और कुछ न चाहिये, हाँ, यह लालसा अवश्य है कि मेरी स्मृति बनी रहे, मेरा नाम अमर हो जाये, लोग मेरे यश और कीर्तिकी चर्चा करते रहें। यही चिन्ता है, जो अबतक मेरे पैरोंकी बेड़ी बनी हुई है, आप इस बेड़ीको काटिये। यह भार मैं आपके ही ऊपर रखती हूँ। ज्यों ही आप इन दोनों बातोंकी व्यवस्था कर देंगे, मैं निश्चिन्त हो जाऊँगी और फिर यावज्जीवन हममें वियोग न होगा। मेरी तो यह राय है कि एक "ट्रस्ट" कायम कर दीजिये, मेरे पतिदेवकी भी यह इच्छा थी।

ज्ञानशङ्कर—ट्रस्ट कायम करना तो आसान है; पर मुझे आशा नहीं है कि उससे आपक उद्देश्य पूरा हो। मैं पहले भी दो-एक बार ट्रस्टके विषयमें अपने विचार प्रकट कर चुका हूँ। आप अपने विचारमें कितने ही निःस्पृह, सत्यवादी ट्रस्टियोंको नियुक्त करें, लेकिन अवसर पाते ही वे अपने घर भरनेपर उद्यत हो जायेंगे। मानव स्वभाव बड़ा ही विचित्र है। आप किसीके विषयमें विश्वस्त रीतिसे नहीं कह सकतीं कि उसकी नीयत कभी डाँवाडोल न होगी, वह सन्मार्गसे कभी विचलित न होगा। हम तो वृन्दावनमें बैठे रहेंगे, यहाँ प्रजापर नाना प्रकारके अत्याचार होंगे। कौन उनकी फरियाद सुनेगा? सदाव्रतकी रकम नाच-मुजरेमें उड़ेगी, रासलीलाकी रकम गार्डेन-पार्टियोंमें खर्च होगी, मन्दिरकी सजावटके सामान ट्रस्टियोंके दीवानखानोंमें नजर आयेंगे, साधु-महात्माओंके सत्कारके बदले यारोंकी दावतें होंगी, आपको यशकी जगह अयश मिलेगा। यों तो कहिये, मैं आपकी आज्ञाका पालन कर दूँ, लेकिन ट्रस्टियोंपर मेरा जरा भी विश्वास नहीं है। आपका उद्देश्य उसी दशामें पूरा होगा, जब रियासत किसी ऐसे व्यक्तिके हाथोंमें हो, जो आपको अपना पूज्य समझता हो, जिसे आपसे श्रद्धा हो, जो आपका उपकार माने, जो दिलसे आपकी शुभेच्छाओंका आदर करता

हो, जो स्वयं आपकेही रङ्गमें रँगा हुआ हो, जिसके हृदयमें दया और प्रेम हो और यह सब गुण उसी मनुष्यमें हो सकते हैं, जिसे आपसे पुत्रवत् प्रेम हो, जो आपको अपनी माता समझता हो। अगर आपको ऐसा कोई लड़का नजर आये तो मैं सलाह दूँगा कि आप उसे गोद ले लीजिये। इससे उत्तम मुझे और कोई व्यवस्था नहीं सूझती। संभव है, कुछ दिनोंतक हमको उसकी देख-रेख करनी पड़े। किन्तु इसके बाद हम स्वच्छन्द हो जायेंगे। तब हमारे आनन्द और विहारके दिन होंगे, मैं अपनी प्यारी राधाके गलेमें प्रेमका हार डालूँगा, उसे प्रेमके राग सुनाऊँगा। दुनियाकी कोई चिन्ता, कोई उलझन, कोई झोंका हमारी शांतिमें विघ्न न डाल सकेगा।

गायत्री पुलकित हो गयी। उस आनन्दमय जीवनका दृश्य उसकी कल्पनामें सचित्र हो गया। उसकी तबीयत लहराने लगी, इस समय उसे अपने पतिकी वह वसीयत याद न रही, जो उन्होंने जायदादके प्रबन्धके विषयमें की थी और जिसका विरोध करनेके लिये वह ज्ञानशङ्करसे कई बार गर्म हो पड़ी थी, वह ट्रस्टके गुण दोषपर स्वयं कुछ विचार न कर सकी। ज्ञानशङ्करका कथन निश्चयवाचक था। ट्रस्टपरसे उसका विश्वास उठ गया। बोली—आपका कहना यथार्थ है। ट्रस्टियोंका क्या विश्वास है? आदमी किसीके मनमें तो पैठ नहीं सकता, अन्दरका हाल कौन जाने?

वह दो-तीन मिनटतक विचारमें मग्न रही। सोच रही थी कि ऐसा कौन लड़का है, जिसे मैं गोद ले सकूँ। मन-ही-मन अपने सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंका दिग्दर्शन किया, लेकिन यह समस्या हल न हुई। लड़के थे, एक नहीं अनेक, लेकिन किसी-न-किसी कारणसे वह गायत्रीको न जँचते थे। सोचते-सोचते सहसा वह चौंक पड़ी और मायाशङ्करका नाम उसकी जबानपर आते-आते रह गया। ज्ञानशङ्करने अबतक अपनी मनोवाञ्छाको ऐसा गुप्त रखा था और अपने आत्मसम्मानकी ऐसी धाक जमा रखी थी

कि पहले तो मायाशङ्करकी ओर गायत्रीका ध्यान ही न गया और जब गया तो उसे अपना विचार प्रकट करते हुए भय होता था, कि कहीं ज्ञानशङ्करके मर्य्यादाशील हृदयको चोट न लगे। हालाँकि ज्ञानशङ्करका इशारा साफ था, पर गायत्रीपर इस समय वह नशा था, जो शराब और पानीमें भेद नहीं कर सकता। उसने कई बार हिम्मत की कि यह जिक्र छेड़ूँ, किन्तु ज्ञानशङ्करके चेहरेसे ऐसा निष्काम भाव झलक रहा था, कि उसकी जबान न खुल सकी। मायाशङ्करकी विचारशीलता सच्चरित्रता, बुद्धिमत्ता आदि अनेक गुण उसे याद आने लगे। उससे अच्छे उत्तराधिकारीकी वह कल्पना भी न कर सकती थी। ज्ञानशङ्कर उसको असमंजसमें देखकर बोले—आया कोई लड़का ध्यानमें? गायत्री सकुचाती हुई बोली—जी हाँ, आया तो, पर मालूम नहीं आप भी उसे पसंद करेंगे या नहीं? मैं इससे अच्छा चुनाव नहीं कर सकती।

ज्ञानशङ्कर—सुनूँ, कौन है?

गायत्री—वचन दीजिये, कि आप उसे स्वीकार करेंगे।

ज्ञानशङ्करके हृदयमें गुदगुदी होने लगी। बोले—बिना जाने-बूझे मैं यह वचन कैसे दे सकता हूँ?

गायत्री—मैं जानती हूँ कि आपको उसमें आपत्ति होगी और विद्या तो किसी प्रकार राजी ही न होगी, लेकिन इस बालकके सिवा मेरी नजर और किसीपर पड़ती ही नहीं।

ज्ञानशंकर अपने मनोल्लासको छिपाये हुए बोले—सुनूँ तो किसका भाग्यसूर्य उदय हुआ है?

गायत्री—बता दूँ? बुरा तो न मानियेगा न?

ज्ञान—जरा भी नहीं, कहिये।

गायत्री—मायाशंकर।

ज्ञानशंकर इस तरह चौंक पड़े, मानों कानोंके पास कोई बन्दूक छूट गयी हो। विस्मित नेत्रोंसे देखा और इस भावसे बोले, मानों उसने दिल्लगी की है। मायाशङ्कर?

गायत्री—हाँ, आप वचन दे चुके हैं, मानना पड़ेगा।

ज्ञानशङ्कर—मैंने कहा था कि नाम सुनकर राय दूँगा। अब नाम सुन लिया और विवशतासे कहता हूँ, कि मैं आपसे सहमत नहीं हो सकता।

गायत्री—मैं यह बात पहलेसे ही जानती थी; पर मुझमें और आपमें जो सम्बन्ध है, उसे देखते हुए आपको आपत्ति न होनी चाहिये।

ज्ञानशङ्कर—मुझे स्वयं कोई आपत्ति नहीं है। मैं अपना सर्वस्व आपपर समर्पण कर चुका हूँ, लड़का भी आपकी भेंट है, लेकिन आपको मेरी कुल-मर्यादाका हाल मालूम है। काशीमें इतना सम्मानित और कोई घराना नहीं है। सब तरहसे पतन होनेपर उसका गौरव अभीतक बचा हुआ है। मेरे चाचा और अन्य सम्बन्धी इसे कभी मंजूर न करेंगे और विद्या तो सुनकर विष खानेको उतारू हो जायेगी। इसके अतिरिक्त मेरी बदनामी भी है। सम्भव है, लोग यह समझें कि मैंने आपकी सरलता और उदारतासे अनुचित लाभ उठाया है और आपके कुटुम्बके लोग तो मेरी जानके गाहक ही हो जायेंगे।

गायत्री—मेरे कुटुम्बियोंकी ओरसे तो आप निश्चिन्त रहिये, मैं उन्हें आपसमें लड़ाकर मारूँगी, बदनामी और लोकनिन्दा आपको मेरी खातिरसे सहनी पड़ेगी। रही विद्या, उसे मैं मना लूँगी।

ज्ञान—नहीं, यह आशा न रखिये। आप उसे मनाना जितना सुगम समझ रही हैं, उससे कहीं कठिन है। आपने उसके तेवर नहीं देखे। वह इस समय सौतियाडाहसे जल रही है। उसे अमृत भी दीजिये, तो विष समझेगी। जबतक लिखा-पढ़ी न हो जाय और प्रथानुसार सब संस्कार पूरे न हो जायें, उसके कानोंमें इसकी भनक भी न पड़नी चाहिये। यह तो सब होगा, मगर उन लोगोंकी हाय किसपर पड़ेगी, जो बरसोंसे रियासतपर

दाँत लगाये बैठे हैं ? उनके घरोंमें तो कुहराम मच जायगा। सब-के-सब मेरे खूनके प्यासे हो जायँगे। यद्यपि मुझे उनसे कोई भय नहीं है, लेकिन शत्रुको कभी तुच्छ न समझना चाहिये। हम जिससे धन और धरती छीन लें, उससे कभी निःशङ्क नहीं रह सकते।

गायत्री—आप इन दुष्टोंका ध्यान ही न कीजिये। ये कुत्ते हैं, एक छीछड़ेपर लड़ मरेंगे।

ज्ञानशङ्कर कुछ देरतक मौनरूपसे जमीनकी ओर ताकते रहे; जैसे कोई महान् त्याग कर रहे हों। फिर सजल नेत्रोंसे बोले, जैसी आपकी मरजी, आपकी आज्ञा सिरपर है। परमात्मासे प्रार्थना है, कि यह लड़का आपको सुखारक हो, और उससे आपकी जो आशाएँ हैं, वे पूरी हों। ईश्वर उसे सद्बुद्धि प्रदान करे कि वह आपके आदर्शको चरितार्थ करे। वह आजसे मेरा लड़का नहीं, आपका है। यद्यपि अपने एकमात्र पुत्रको छातीसे अलग करते हुए दिलपर जो कुछ बीत रही है, वह मैं ही जानता हूँ, लेकिन वृन्दावन बिहारीने आपके अन्तःकरणमें यह बात डाल-कर मानों हमारे लिये भक्तिपथका द्वार खोल दिया है। वह हमें अपने चरणोंकी ओर बुला रहे हैं। यह हमारा परम सौभाग्य है।

गायत्रीने ज्ञानशङ्करका हाथ पकड़कर कहा—कल ही किसी पण्डितसे शुभ-मुहूर्त्त पूछ लीजिये।

५१

रातके आठ बजे थे। ज्ञानशङ्करके दीवानखानेमें शहरके कई प्रतिष्ठित सज्जन जमा थे। बीचमें एक लोहेका हवनकुण्ड रखा हुआ था, उसमें हवन हो रहा था। हवनकुण्डकी एक तरफ गायत्री बैठी थी, दूसरी तरफ ज्ञानशङ्कर और माया। एक पंडित जी वेदमंत्रोंका पाठ कर रहे थे। गायत्रीका चम्पई वर्ण अग्नि-ज्वालासे प्रतिबिम्बित होकर कुन्दन हो रहा था। फिरोजी रंगकी साड़ी उसपर खूब खिल रही थी। सबकी आँखें उसीके मुखदीपक

की ओर लगी हुई थीं। यह मायाको गोद लेनेका संस्कार था, वह गायत्रीका धर्मपुत्र बन रहा था। कुछ सज्जन आपसमें काना-फूसी कर रहे थे, कैसा भाग्यवान् लड़का है? लाखोंकी सम्पत्तिका स्वामी बनाया जाता है, यहाँ आजतक कभी एक पैसा भी पड़ा हुआ न मिला। कुछ लोग कह रहे थे—ज्ञानशङ्कर एक ही बना हुआ आदमी है, ऐसा हत्थेपर चढ़ाया कि जायदाद लेकर ही छोड़ा, अब मालूम हुआ कि महाशयने यह स्वांग किसलिये रचा था, यह जटाएँ इसी दिनके लिये बढ़ायी थीं। कुछ सज्जनोंका मत था कि ज्ञानशङ्कर इससे भी कहीं मलिन-हृदय हैं।

लाला प्रभाशङ्करने पहले यह प्रस्ताव सुना तो बहुत बिगड़े, लेकिन जब गायत्रीने बड़ी नम्रतासे सारी परिस्थिति प्रकट की, तो वह भी नीमराजी-से हो गये। हवनके पश्चात् दावत शुरू हुई। इसका सारा प्रबन्ध उन्हींके हाथोंमें था। उनकी अर्धस्वीकृतिको पूर्ण बनानेका इससे उत्तम कोई अन्य उपाय न था। उन्हें पूरा अधिकार दे दिया गया था, कि वह जितना चाहें खर्च करें, जो पदार्थ चाहें पकवायें। अतएव इस अवसरपर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण पाककला प्रदर्शित कर दी थी। इस समय खुशीसे उनकी बाछें खिली जाती थीं, लोगोंके मुँहसे भोजनकी सराहना सुन-सुनकर फूले न समाते थे। इनमें कितने ही ऐसे सज्जन थे, जिन्हें भोजनसे नितान्त अरुचि रहती थी, कुछ ऐसे थे, जो दावतोंमें शरीक होना अपने ऊपर अन्याय समझते थे, ऐसे लोग भी थे, जो प्रत्येक वस्तुको गिनकर और तौलकर खाते थे। पर इन स्वादयुक्त पदार्थोंने तीव्र और मन्द अग्निमें कोई भेद न रखा था। रुचिने दुर्बल पाचनशक्तिको भी सबल बना दिया था।

दावत समाप्त हो गयी तो गाना शुरू हुआ। अलहदीन एक सात वर्षका बालक था, लेकिन गानशास्त्रका पूरा पण्डित

और संगीत-कलामें अत्यन्त निपुण। यह उसकी ईश्वरदत्त शक्ति थी। जलतरङ्ग, ताऊस, सितार, सरोद, वीणा, पखावज, सारङ्गी—सभी यन्त्रोंपर उसे विलक्षण आधिपत्य था। इतनी अल्पावस्थामें उसकी यह अलौकिक सिद्धि देखकर लोग विस्मित हो जाते थे। जिन गायनाचार्य्योंने एक एक यन्त्रकी सिद्धिमें अपना जीवन बिता दिया, वह भी उसके हाथोंकी सफाई और कोमलतापर सिर धुनते थे। उसकी बहुज्ञता उनकी विशेषज्ञताको लज्जित किये देती थी। इस समय समस्त भारतमें उसकी ख्याति थी, मानों उसने दिग्विजय कर लिया हो। ज्ञानशङ्करने इस उत्सवपर उसे कलकत्तेसे बुलाया था। वह बहुत दुर्बल, कुत्सित, कुरूप बालक था, पर उसका गुण उसके रूपको भी चमत्कृत कर देता था। उसके स्वरमें कोयलकी कूकका-सा माधुर्य्य था। सारी सभा मुग्ध हो गयी।

इधर तो यह राग-रंग था, उधर विद्या अपने कमरेमें बैठीहुई भाग्यको रो रही थी। तबलेकी एक-एक थाप उसके हृदयपर हथौड़ेकी चोटके समान लगती थी। वह एक गर्वशीला, धर्मनिष्ठा, सन्तोष और त्यागके आदर्शका पालन करनेवाली महिला थी। यद्यपि पतिकी स्वार्थभक्तिसे उसे घृणा थी, पर इस भावको वह अपनी पतिसेवामें बाधक न होने देती थी। पर जबसे उसने रायसाहबके मुँहसे ज्ञानशङ्करके नैतिक अधःपतनका वृत्तान्त सुना था, तबसे उसकी पतिश्रद्धा क्षीण हो गयी थी। रातका लज्जास्पद दृश्य देखकर बची खुची श्रद्धा भी जाती रही। जब ज्ञानशङ्करको रातें देखकर गायत्री दीवानखानेके द्वारतक आकर फिर उनके पास चली गयी, तो विद्या वहाँ न ठहर सकी। वह उन्मादकी दशामें तेजीसे ऊपर आयी और अपने कमरेमें फर्शपर गिर पड़ी। यह ईर्षाका भाव न था, जिसमें अहित चिन्ता होती है, यह प्रीतिका भाव न था, जिसमें रक्तकी तृष्णा होती है, यह अपने आपको जलानेवाली आग थी, यह वह विद्या-

तक क्रोध था, जो अपना ही ओठ चबाता है, अपना ही चमड़ा नोचता है, अपने ही अंगोंको दाँतोंसे काटता है। वह भूमिपर पड़ी सारी रात रोती रही। अब मैं किसकी होकर रहूँ? मेरा पति नहीं, मेरा घर अब मेरा घर नहीं। मैं अब अनाथ हूँ, कोई मेरा पूछनेवाला नहीं। ईश्वर! तुमने किस पापका मुझे दण्ड दिया? मैंने तो अपने जानते किसीका बुरा नहीं चेता, तुमने मेरा सर्वनाश क्यों किया? मेरा सुहाग क्यों लूट लिया? यही मेरे पास एक धन था, इसीका मुझे अभिमान था, इसीका मुझे बल था। तुमने मेरा अभिमान तोड़ दिया, मेरा बल हर लिया। जब आग ही नहीं तो राख किस कामकी? यह सुहागकी पेटारी है, यह सुहागकी डिबिया है, इन्हें लेकर क्या करूँ? विद्याने सोहागकी पेटारी ताकपरसे उतार ली और उसी आत्मवेदना और नैराश्यकी दशामें उसकी एक-एक चीज खिड़कीसे नीचे बागमें फेंक दी। कितना करुणाजनक दृश्य था? आँखोंसे अश्रु-धारा बह रही थी और वह अपनी चूड़ियाँ तोड़-तोड़कर जमीन पर फेंक रही थी। वह उसके निर्बल क्रोधकी चरम सीमा थी। वह एक ऐश्वर्य्यशाली पिताकी पुत्री थी, यहाँ उसे इतना आराम भी न था, जो उसके मैकेकी महरियोंको था, लेकिन उसके स्वभावमें सन्तोष और धैर्य्य था। अपनी दशासे संतुष्ट थी। ज्ञानशङ्कर स्वार्थसेवी थे, लोभी थे, निष्ठुर थे, कर्त्तव्यहीन थे, इसका उसे शोक था, मगर अपने थे। उनको समझानेका, उनका तिरस्कार करनेका उसे अधिकार था। उनकी दुष्टता, नीचता और भोगलिप्साका हाल सुनकर उसके शरीरमें आग-सी लग गयी थी। वह लखनऊसे दामिनी बनी हुई आयी। वह ज्ञान-शङ्करपर तड़पना और उनकी कुप्रवृत्तियोंको भस्मीभूत कर देना चाहती थी, वह उन्हें व्यंग-शरोंसे छेदना और कटु शब्दोंसे उन-के हृदयको वेधना चाहती थी। इस वक्ततक उसे अपने सोहाग-का अभिमान था। रातके आठ बजेतक वह ज्ञानशङ्करको अपना

समझती थी, अपनेको उन्हें कोसनेकी, उन्हें जलानेकी अधिकारिणी समझती थी, उसे उनको लज्जित, अपमानित करनेका हक था, क्योंकि वह अपने थे। हमसे अपने घरमें आग लगाते नहीं देखा जाता। घर चाहे मिट्टीका ढेर ही क्यों न हो, खंडहर ही क्यों न हो, हम उसे आगमें जलते नहीं देख सकते। लेकिन जब किसी कारणसे वह घर अपना न रहे, तो फिर चाहे अग्नि-शिखा आकाशतक जाये, हमको शोक नहीं होता। रातके निन्द्य घृणित दृश्यने विद्याके दिलसे इस अपनेपनको, इस ममत्वको मिटा दिया था। अब उसे दुःख था, तो अपने अभाग्यका, शोक था, तो अपनी अवलम्बहीनताका। उसकी दशा उस पतंग-सी थी, जिसकी डोर टूट गयी हो; अथवा उस वृक्ष-सी, जिसकी जड़ कट गयी हो।

विद्या सारी रात इसी उद्विग्न दशामें पड़ी रही। कभी सोचती, लखनऊ चली जाऊँ और वहाँ जीवनक्षेप करूँ, कभी सोचती, जीकर करना ही क्या है, ऐसे जीनेसे मरना क्या बुरा है? सारी रात आँखोंमें कट गयी। दिन निकल आया, लेकिन उसका उठनेका जी न चाहता था। इतनेमें श्रद्धा आकर खड़ी हो गयी और उसके श्रीहीन मुखकी ओर देखकर बोली—क्या आज सारी रात जागती रही? आँखें लाल हो रही हैं।

विद्याने आँखें नीची करके कहा,—हाँ, आज नींद नहीं आयी।

श्रद्धा—गायत्रीदेवीसे कुछ बातचीत नहीं हुई? मुझे तो ढङ्ग ही निराले दीखते हैं। तुम तो इनकी बड़ी प्रशंसा किया करती थी।

विद्या—क्यों, कोई नयी बात देखी क्या?

श्रद्धा—नित्य ही देखती हूँ। लेकिन रात जो दृश्य देखा और जो बातें सुनीं, वह कहते लज्जा आती है। कोई ग्यारह बजे होंगे। मुझे अपने कमरेमें पड़े-पड़े नीचे किसीके बोल चालकी आहट मिली। डरी, कि कहीं चोर न आये हों। धीरेसे उठकर नीचे गयी। दीवानखानेमें लैम्प जल रहा था। मैंने शीशेके अंदर

झाँका, तो मनमें कटकर रह गयी। अब तुमसे क्या कहूँ, मैं गायत्रीको इतनी चञ्चल न समझती थी, कहाँ तो कृष्णकी उपासना करती है, भगतिन बनती है, कहाँ यह छिछोरापन! मैं तो उन्हें देखते ही मनमें खटक गयी थी, पर यह न जानती थी, कि इतने गहरे पानीमें हैं।

विद्या—मैंने भी कुछ ऐसा तमाशा देखा था। तुम मेरे आनेके बहुत देर पीछे गयी थी। मुझे लखनऊमेंही सारी कथा मालूम हो गयी थी। इसी भयङ्कर परिणामको रोकनेके लिये मैं वहाँसे दौड़ी आयी; किन्तु यहाँका रंग देखकर हताश हो गयी। ये लोग अब मँझदारमें पहुँच चुके हैं, इन्हें बचाना दुस्तर है। लेकिन मैं फिर कहूँगी, कि इसमें गायत्री बहिनका दोष नहीं, सारी करतूत इन्हीं महाशयकी है, जो जटा बढ़ाये, पीताम्बर पहने भगत जी बने फिरते हैं। गायत्री बेचारी सीधी सादी, सरल स्वभावकी स्त्री है। धर्मकी ओर उसकी विशेष रुचि है; इसीलिये यह महाशय भी भगत बन बैठे और यह भेष धारण करके उसपर अपना मन्त्र चलाया। ऐसा पापात्मा संसारमें न होगा! बहिन, तुमसे दिलकी बात कहती हूँ, मुझे इनकी सूरतसे घृणा हो गया। मुझपर ऐसा आघात हुआ है कि मेरा बचना मुश्किल है। इस घोर पापका दण्ड अवश्य मिलेगा। ईश्वर न करे, मुझे इन आँखोंसे कुलका सर्वनाश देखना पड़े। वह सोनेकी घड़ी होगी, जब संसारसे मेरा नाता टूटेगा।

श्रद्धा—किसीकी बुराई करना अच्छा तो नहीं है और इसीलिये मैं अबतक सब कुछ देखती हुई भी अन्धी बनी रही, लेकिन अब बिना बोले नहीं रहा जाता, मेरा वश चले तो ऐसी कुटिलाओंका सिर कटवा लूँ। यह भोलापन नहीं है, बेहयाई है। दिखानेके लिये भोली बनी बैठी हुई है। पुरुष हजार रसिया हो, हजार चतुर हो, हजार घातिया हो, हजार डोरे डाले, किन्तु सती स्त्रियोंपर उसका एक मन्त्र भी नहीं चल सकता। वह आँख ही

क्या जो एक निगाहमें पुरुषकी चाल-ढालको ताड़ न ले। जलाना आगका गुण है, पर हरी लकड़ीको भी किसीने जलते देखा है? हया स्त्रियोंकी जान है, इसके बिना वह सूखी लकड़ी हैं, जिन्हें आगकी एक चिनगारी जलाकर राख कर देती है। इसे अपने पतिदेवकी आत्मापर भी दया न आयी। उसे कितना क्लेश हो रहा होगा! इसके आनेसे मेरा घर अपवित्र हो गया। रातको दोनों प्रेमियोंकी बातोंकी भनक जो मेरे कानमें पड़ी, उससे कुछ ऐसा मालूम होता है कि गायत्री मायाको गोद लेना चाहती है। विद्याने भयभीत होकर कहा—मायाको?

श्रद्धा—हाँ, शायद आज ही उसकी तैयारी है। शहरमें नेवते भेजे जा रहे हैं।

विद्याकी आँखोंमें आँसूकी बड़ी-बड़ी बूँदें दिखाई दीं; जैसा मटरकी फलीमें दाने होते हैं। बोली, बहिन तब तो मेरी नाव डूब गयी। जो कुछ होना था, हो चुका। अब सारी स्थिति समझमें आ गयी। इस धूर्तने इसीलिये यह जाल फैलाया था, इसीलिये इसने यह भेष रचा है, इसी नीयतसे इसने गायत्रीकी गुलामी की थी। मैं पहले ही डरती थी, कितना समझाया, कितना मना किया; पर इसने मेरी एक न सुनी। अब मालूम हुआ कि इसके मनमें क्या ठनी थी। आज सात सालसे यह इसी धुनमें पड़ा हुआ है। अभीतक मैं यही समझती थी कि इसे गायत्रीके रंग-रूप, बनाव-चुनाव, बातचीतने मोहित कर लिया है। वह निन्द्य कर्म होनेपर भी घृणाके योग्य नहीं है। जो प्राणी प्रेम कर सकता है, वह धर्म, दया, विनय आदि सद्गुणोंसे शून्य नहीं हो सकता, प्रेमकी ज्योति उसके हृदयका प्रकाशित करती रहती है लेकिन जो प्राणी प्रेमका स्वाँग भरकर उससे अपना कुटिल अर्थ सिद्ध करता है, जो टट्टीकी आड़से शिकार खेलता है, उससे ज्यादा नीच नराधम कोई हो ही नहीं सकता। वह उस डाकूसे भी गया बीता है, जो धनके लिये लोगोंके प्राण हर लेता है। वह

प्रेम जैसे पवित्र वस्तुका अपमान करता है। उसका पाप अक्षम्य है। मैं बेचारी गायत्रीको अब भी निर्दोष समझती हूँ। बहिन, अब इस कुलका सर्वनाश होनेमें विलम्ब नहीं है। जहाँ इतना अधर्म, इतना पाप, इतना छल-कपट हो, वहाँ कल्याण कैसे हो सकता है? अब मुझे पिताजीकी चेतावनी याद आ रही है। उन्होंने चलते समय मुझसे कहा था—अगर तूने यह आग न बुझायी, तो तेरे वंशका नाम मिट जायगा। हाय! मेरे रोंएँ खड़े हो रहे हैं। बेचारे मायापर क्या बीतेगी! यह हरामका माल, यह हरामकी जायदाद उसकी जानकी गाहक हो जायेगी, सर्प बनकर उसे डँस लेगी। बहिन, मेरा कलेजा फटा जाता है। मैं अपने मायाको इस आगसे क्योंकर बचाऊँ? वह मेरी आँखों-की पुतली है, वही मेरे प्राणोंका आधार है। यह निर्दयी पिशाच, यह वधिक मेरे लालकी गर्दनपर छुरी चला रहा है। कैसे उसे गोदमें छिपा लूँ? कैसे उसे हृदयमें बिठा लूँ! बाप होकर उसको विष दे रहा है! पापका अग्निकुण्ड जलाकर मेरे लालको उसमें झोंक देता है। मैं अपनी आँखों यह सर्वनाश नहीं देख सकती। बहिन, तुमसे आज कहती हूँ, मुन्नाके जन्मके बाद इस पापीने मुझे न जाने क्या खिला कर मेरा कोख हर ली, न जाने कौनसा अनुष्ठान करा दिया। वही विष इसने पहले ही खिला दिया होता, वही अनुष्ठान पहले ही करा दिया होता तो आज यह दिन क्यों आता? बाँझ रहना इससे कहीं अच्छा है, कि संतान गोदसे छिन जाय। हाय, मेरे लालको कौन बचायेगा? मैं अब उसे नहीं बचा सकती। आगकी लहरें उसकी ओर दौड़ी चली आती हैं। बहिन, तुम जाकर इस निर्दयीको समझाओ। अगर अब भी हो सके, तो मेरे मायाको बचा लो। नहीं, अब तुम्हारे बसकी बात नहीं है, यह पिशाच अब किसीके समझानेसे न मानेगा। उसने मनमें ठान लिया है तो आज ही सब कुछ कर डालेगा।

यह कहते-कहते वह उठी और खिड़कीसे नीचे देखा।

दीवानखानेके सामनेवाले सहनकी सफाई हो रही थी, दरियाँ झाड़ी जा रही थीं। उसकी आँखें मायाको खोज रही थीं, वह मायाको अपने हृदयसे चिपटाना चाहती थी। माया न दिखाई दिया। एक क्षणमें मोटर सहनमें आयी, गायत्री और ज्ञानशङ्कर उसपर बैठे, माया भी एक मिनटमें दीवानखानेसे निकला और मोटरपर आ बैठा। विद्याने आतुरतासे पुकारा –माया, माया, यहाँ आओ, लेकिन या तो मायाने सुना ही नहीं, या सुनकर ध्यान ही नहीं दिया। वह खड़ी पुकारती ही रही और मोटर हवा हो गयी। विद्याको ऐसा जान पड़ा, मानों पानीमें पैर फिसल गये। वह तुरन्त पछाड़ खाकर गिर पड़ी। लेकिन श्रद्धाने सम्भाल लिया, चोट नहीं आयी।

थोड़ी देरतक विद्या मूर्च्छित दशामें पड़ी रही। श्रद्धा उसका सिर गोदमें लिये बैठी रोती रही। मैं अपनेको ही अभागिनी समझती थी। इस दुखियाकी विपत्ति और भी दुस्सह है। किसी रीतिसे उन्हें (प्रेमशङ्करको) यह खबरें होतीं, तो वह अवश्य गायत्रीको समझाते। गायत्री उनका आदर करती है। शायद मान जाती; लेकिन इन महापुरुषके सामने उनकी भेंट भी तो गायत्रीसे नहीं हो सकती। इसी भयसे तो घरके बाहर निकल गये हैं, कि काममें कोई विघ्न-बाधा न पड़े। कुछ नहीं, यह सब इसीकी भूल है। ज्योंही मैंने इससे गोद लेनेकी बात कही, इसे उसी क्षण बाहर जाकर दोनोंको फटकारना और मायाका हाथ पकड़कर खींच लाना चाहिये था। मजाल थी कि मेरे पुत्रको कोई मुझसे छीन ले जाता! सहसा विद्याने आँखें खोल दीं और क्षीण-स्वरसे बोली – बहिन, अब क्या होगा?

श्रद्धा—होनेको अब भी कुछ हो सकता है। करनेवाला चाहिये।

विद्या—अब कुछ नहीं हो सकता। सब तैयारियाँ हो रही हैं। चाचाजी न जाने कैसे राजी हो गये।

श्रद्धा—मैं जरा जाकर कहारोंसे पूछती हूँ, कि कबतक आनेको कह गये हैं।

विद्या—शाम होनेके पहले ये लोग कभी न लौटेंगे। माया-को हटा देनेके लिये ही यह चाल चली गयी है। इन लोगोंने जो बात मनमें ठान ली है, वह होकर रहेगी। पिताजीका शाप मेरी आँखोंके सामने है। यह अनर्थ होना है और होगा।

श्रद्धा—जब तुम्हारी यही दशा है, तो जो कुछ न हो जाय, वह थोड़ा है।

विद्याने कुतूहलसे देखकर कहा—भला मेरे बसकी कौन-सी बात है?

श्रद्धा—बसकी बात क्यों नहीं है? अभी शामको जब यह लोग लौटें, तब नीचे चली जाओ और मायाका हाथ पकड़ कर खींच लाओ। वह न आवे तो सारी बातें खोलकर उससे कह दो। समझदार लड़का है, तुरन्त उधरसे उसका मन फिर जायगा।

विद्या—(सोचकर) और यदि समझानेसे भी न आवे? इन लोगोंने उसे खूब सिखा-पढ़ा रखा होगा।

श्रद्धा तो रातको जब शहरके लोग जमा हों, जाकर भरी सभामें कह दो, यह सब मेरा इच्छाके विरुद्ध है। मैं अपने पुत्रको गोद नहीं देना चाहती। लोगोंकी सब चालें पट पड़ जायें। तुम्हारी जगह मैं होती, तो वह महनामथ मचते कि इनके दाँत खट्टे हो जाते। क्या करूँ, मेरा कुछ अधिकार नहीं है, नहीं तो मैं इन्हें तमाशा दिखा देती!

विद्याने निराश भावसे कहा—बहिन, मुझसे यह न होगा। मुझमें न इतना सामर्थ्य है न साहस। अगर और कुछ न हो, माया ही मेरी बातोंको दुलख दे, तो उसी क्षण मेरा कलेजा फट जायगा। भरी सभामें जाना तो मेरे लिये असंभव है। उधर पैर ही न उठेंगे या उठे भी तो वहाँ जाकर ज़बान बन्द हो जायेगी।

श्रद्धा—पता नहीं यह लोग किधर गये हैं। गायत्री एक क्षणके लिये एकान्तमें मिल जाती, तो एक बार मैं भी समझा देखती।

* * * * *

दीवानखानेमें आनन्दोत्सव हो रहा था। मास्टर अलहदीन-का अलौकिक चमत्कार लोगोंको मुग्ध कर रहा था। द्वारोंपर दर्शकोंकी भीड़ लगी हुई थी। सहनमें ठट-के-ठट कङ्गले जमा थे। मायाशङ्करको दिनभरके बाद माँकी याद आयी। वह आज आनन्दसे फूला न समाता था। जमीनपर पाँव न पड़ते थे। दौड़-दौड़कर काम कर रहा था। ज्ञानशङ्कर बार-बार कहते, तुम आरामसे बैठो, इतने आदमी तो हैं ही. तुम्हारे हाथ लगानेकी क्या जरूरत है? पर उससे बेकार नहीं बैठा जाता था। कभी लैम्प साफ करने लगता, कभी खासदान उठा लेता। आज सारे दिन मोटरपर सैर करता रहा, लौटते ही पद्मशङ्कर और तेजशङ्करसे सैरका वृत्तान्त सुनाने लगा, यहाँ गये, वहाँ गये, यह देखा, वह देखा। उसे अतिशयोक्तिमें बड़ा मजा आ रहा था। यहाँसे छुट्टी मिली, तो हवनपर जा बैठा, इसके बाद भोजमें सम्मिलित हो गया। जब गाना आरम्भ हुआ, तो उसका चञ्चल चित्त स्थिर हुआ। सब लोग गाना सुननेमें तल्लीन हो रहे थे, उसकी बातें सुननेवाला कोई न था। अब उसे याद आया, अम्माको प्रणाम करने तो गया ही नहीं। ओहो! अम्मा मुझे देखते ही दौड़कर छातीसे लगा लेंगी, आशीर्वाद देंगी। मेरे इन रेशमी कपड़ोंकी खूब तारीफ करेंगी। वह ख्याली पोलाव पकाता, मुस्कुराता हुआ विद्याके कमरेमें गया। वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। एकघुँधली-सी दीवालगीर जल रही थी। विद्या पलङ्गपर पड़ी हुई थी। महरियाँ नीचे गाना सुनने चली गयी थीं। लाला प्रभाशङ्करके घरकी स्त्रियोंको न बुलावा दिया गया था और न वे आयी थीं। श्रद्धा अपने कमरेमें बैठी हुई कुछ पढ़ रही थी। मायाने माँके समीप जाकर देखा—उसके बाल बिखरे हुए थे, आँखोंसे आँसू बह रहा

था, ओठ नीले पड़ गये थे, मुख निस्तेज हो रहा था। उसने घबराकर कहा—अम्माँ, अम्माँ! विद्याने आँखें खोलीं और एक मिनटतक उसकी ओर टकटकी बाँधकर देखती रही, मानों अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं है। तब वह उठ बैठी, मायाको छातीसे लगाकर उसका सिर अंचलसे ढक लिया, मानों उसे किसी आघातसे बचा रही हो, और उखड़े हुए स्वरमें बोली, आओ मेरे प्यारे लाल, तुम्हें आँख भर देख लूँ। तुम्हारे ऊपर बहुत देरसे जी लगा हुआ था। तुम्हें लोग अग्निकुण्डकी ओर ढकेले लिये जाते थे। मेरी छाती धड़-धड़ करती थी। बार-बार पुकारती थी, लेकिन तुम सुनते ही न थे। भगवानने तुम्हें बचा लिया। वही दीनोंके रक्षक हैं। अब मैं तुम्हें न जाने दूँगी। यहीं मेरी आँखोंके सामने बैठो, मैं तुम्हें देखती रहूँगी—देखो, देखो, वह तुम्हें पकड़नेके लिये दौड़ा आता है, मैं किवाड़ बन्द किये देती हूँ। तुम्हारा बाप है, लेकिन उसे तुम्हारे ऊपर जरा भी दया नहीं आती। मैं किवाड़ बन्द कर देता हूँ। तुम बैठे रहो।

यह कहते हुए वह द्वारकी ओर चली, मगर पैर लड़खड़ाये और अचेत होकर फर्शपर गिर पड़ी। माया उसकी दशा देखकर और उसकी बहकी-बहकी बातें सुनकर थर्रा गया। मारे भयके वहाँ एक क्षण भी न ठहर सका। तीरके समान कमरेसे निकला और दीवानखानेमें आकर दम लिया। ज्ञानशंकर मेहमानोंके आदर-सत्कारमें व्यस्त थे, उनसे कुछ कहनेका अवसर न था। गायत्री चिककी आड़में बैठी हुई सोच रही थी, इस अलहदीनको कीर्त्तनके लिये नौकर रख लूँ तो अच्छा हो। मेरे मंदिरकी सारे देशमें धूम मच जाय। मायाने आकर कहा—मौसीजी, आप चलकर जरा अम्माँको देखिये, न जाने कैसी हुई जाती हैं। उन्हें डेलिरियम-सा हो गया है।

गायत्रीका कलेजा सन्न-सा हो गया। वह विद्याके स्वभावसे परिचित थी। यह खबर सुनकर उससे कहीं ज्यादा शङ्का हुई,

जितनी सामान्य दशामें होनी चाहिये थी। वह कलसे विद्याके बदले हुए तेवर देख रही थी। रातकी घटना भी उसे याद आयी। वह जीनेकी ओर चली। माया भी पीछे-पीछे चला। इस कमरेमें इस समय कितनी ही चीजें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। गायत्रीने कहा—तुम यहीं बैठो, नहीं तो इनमेंसे एक चीज-का भी पता न चलेगा। मैं अभी आती हूँ। घबरानेकी कोई बात नहीं है, शायद उसे बुखार आ गया है।

गायत्री विद्याके कमरेमें पहुँची। उसका हृदय बाँसों उछल रहा था। उसे वास्तविक अवस्थाका कुछ गुप्त ज्ञान-सा हो रहा था। उसने बहुत धीरेसे कमरेमें पैर रक्खा। धुँधली दीवाल-गीर अब भी जल रही थी और विद्या द्वारके पास फर्शपर बेखबर पड़ी हुई थी, चेहरेपर मुर्दनी छायी हुई थी, आँखें बन्द थीं और जोर-जोरसे साँस चल रही थी। यद्यपि खूब सर्दी पड़ रही थी, पर उसकी देह पसीनेसे तर थी। माथेपर स्वेद-विन्दु झलक रहे थे, जैसे मुर्झाये हुए फूलपर ओसकी बूँद झलकती है। गायत्रीने लैम्प तेज करके विद्याको गौरसे देखा। ओठ नीले पड़ गये थे और हाथ-पैर धीरे-धीरे काँप रहे थे। उसने उसका सिर अपनी गोदमें रख लिया, अपना सुगन्धमें डूबा हुआ रूमाल निकाल लिया और उसके मुँहपर झलने लगी। प्रेममय शोक-वेदनासे उसका हृदय विकल हो उठा। गला भर आया। बोली—विद्या, कैसा जी है?

विद्याने आँखें खोल दीं और गायत्रीको देखकर बोली—बहिन! इसके सिवा वह और कुछ न कह सकी। बोलनेकी बार-बार चेष्टा करती थी, पर मुँहसे आवाज न निकलती थी। उसके मुखपर एक अतीव करुणाजनक दीनता छा गयी। उसने विवश दृष्टिसे फिर गायत्रीको देखा। आँखें लाल थीं, लेकिन उनमें उन्मत्तता या उग्रता न थी। उनमें आत्मज्योति झलक रही थी। वह विनय, क्षमा और शान्तिसे परिपूर्ण थीं। हमारी अन्तिम चितवनें

हमारे जीवनका सार होती हैं, निर्मल और स्वच्छ,ईर्षा और द्वेष जैसी मलिनताओंसे रहित। विद्याकी जबान बन्द थी, लेकिन आँखें कह रही थीं—मेरा अपराध क्षमा करना, मैं थोड़ी देरकी मेहमान हूँ,मेरी ओरसे तुम्हारे मनमें जो मलाल हो, वह निकाल डालना। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है, मेरे भाग्यमें जो कुछ बदा था वह हुआ, तुम्हारे भाग्यमें जो कुछ बदा है, वह होगा। मैं तुम्हें अपना सर्वस्व सौंप जाती हूँ, उसकी रक्षा करना।

गायत्रीने रोते हुए कहा—विद्या तुम कुछ बोलती क्यों नहीं? कैसा जी है, डाक्टर बुलाऊँ?

विद्याने निराश दृष्टिसे देखा और दोनों हाथ जोड़ लिये। आँखें बन्द हो गयीं। गायत्री व्याकुल होकर नीचे दीवान-खानेमें गयी और मायासे बोली—बाबूजीको ऊपर ले आओ। मैं जाती हूँ, विद्याकी दशा अच्छी नहीं है।

एक क्षणमें ज्ञानशङ्कर और माया दोनों ऊपर आये। श्रद्धा भी हलचल सुनकर दौड़ी हुई आयी। ज्ञानशङ्करने विद्याको दो तीन बार पुकारा, पर उसने आँखें न खोलीं। तब उन्होंने अल-मारीसे गुलाबका बोतल निकाला और उसके मुँहपर कई छींटे दिये विद्याकी आँखें खुल गयीं; किन्तु पतिको देखते ही उसने जोरसे चीख मारी। यद्यपि हाथ-पाँव अकड़े हुए थे, पर ऐसा जान पड़ा कि उनमें कोई विद्युत्शक्ति दौड़ गयी। वह तुरन्त उठकर खड़ी हो गयी और दोनों हाथोंसे आँखें बन्द किये, द्वारकी ओर चली। गायत्रीने उसे सम्भाला और पूछा—विद्या पहचानती नहीं, बाबू ज्ञानशङ्कर हैं।

विद्याने सशङ्क और भयभीत नेत्रोंसे ज्ञानशङ्करको देखा और पीछे हटती हुई बोली—अरे! यह फिर आ गया! ईश्वरकेलिये मुझे इससे बचाओ।

गायत्री—विद्या, तबीयतको जरा सम्भालो, तुमने कुछ खा तो नहीं लिया है? डाक्टरको बुलाऊँ?

विद्या—मुझे इससे बचाओ, ईश्वरके लिये मुझे इससे बचाओ!

गायत्री—पहचानती नहीं हो, बाबूजी हैं।

विद्या—नहीं, नहीं, यह पिशाच है, इसके लम्बे-लम्बे बाल हैं। वह देखो, दाँत निकाले मेरी ओर दौड़ा आता है। हाय, हाय, इसे भगाओ, मुझे खा जायेगा। देखो, देखो, मुझे पकड़े लेता है, इसके सींग हैं, बड़े-बड़े दाँत हैं, बड़े-बड़े नख हैं। नहीं, मैं न जाऊँगी। छोड़ दे दुष्ट, मेरा हाथ छोड़ दे। हाय! मुझे अग्निकुंडमें झोंके देता है। अरे देखो, इसने मायाको पकड़ लिया। कहता है, बलिदान दूँगा। दुष्ट, तेरे हृदयमें जरा भी दया नहीं है। उसे छोड़ दे, मैं चलती हूँ, मुझे कुण्डमें झोंक दे, पर ईश्वरके लिये उसे छोड़ दे; यह कहते-कहते विद्या फिर मूर्च्छितहोकर गिरपड़ी। ज्ञानशङ्करनेलज्जायुक्त चिन्तासे कहा, जहर खा लिया! मैं अभी डाक्टर प्रियनाथके यहाँ जाता हूँ, शायद उनके यत्नसे अब भी इसके प्राण बच जायें। मुझे क्या मालूम था कि मायाको तुम्हारी गोदमें देनेका इसे इतना दुःख होगा। मैंने इसे आजतक न समझा। यह पवित्र आत्मा थी, देवी थी, मेरे जैसे लोभी, स्वार्थी मनुष्यके योग्य न थी।

यह कहकर वह आँखोंमें आँसू भरे चले गये। श्रद्धाने विद्याको उठाकर गोदमें ले लिया। गायत्री पंखा झलने लगी। माया खड़ा रो रहा था। कमरेमें सन्नाटा छायाहुआ था, वह सन्नाटा, जो मृत्युस्थानके सिवा और कहीं नहीं होता। सबकी सब विद्याको होशमें लानेका प्रयास कर रही थीं, पर मुँहसे कोई कुछ न कहता था। सबके दिलोंपर मृत्यु-भय छायाहुआ था।

आध घण्टेके बाद विद्याकी आँखें खुलीं। उसने चारों ओर सहमे हुए नेत्रोंसे देखकर इशारेसे पानी माँगा।

श्रद्धाने गुलाबजल और पानी मिलाकर कटोरा उसके मुँहसे लगाया। उसने पानी पीनेको मुँह खोला, लेकिन ओठ खुले रह

गये, अंगोंपर इच्छाका अधिकार नहीं रहा। एक क्षणमें आँखों-की पुतलियाँ फिर गयीं।

श्रद्धा समझ गयी कि यह अन्तिम क्षण है। बोली—बहिन, किसीसे कुछ कहना चाहती हो, माया तुम्हारे सामने खड़ा है।

विद्याकी बुझी हुई आँखें श्रद्धाकी ओर फिरीं, आँसूकी चन्द बूँदें गिरीं, शरीरमें कम्पन हुआ और दीपक बुझ गया।

एक सप्ताह पीछे मुन्नी भी हुड़क-हुड़ककर बीमार पड़ गयी। रात-दिन अम्माँ-अम्माँकी रट लगाया करती। न कुछ खाती न पीती, यहाँतक कि दवाएँ पिलानेके समय मुँह ऐसा बन्द कर लेती कि किसी तरह न खोलती। श्रद्धा गोदमें लिये पुचकारती-फुसलाती, पर सफल न होती। बेचारा माया गोदमें लिये उसके मुरझाये हुए मुँहकी ओर देखता और रोता। ज्ञानशङ्करको तो अवकाश न मिलता था, पर लाला प्रभाशङ्कर दिनमें कई बार डाक्टरके पास जाते, दवाएँ लाते, लड़काका मन बहलानेके लिये तरह-तरहके खिलौने लाते, पर मुन्नी उनकी ओर आँख उठाकर भी न देखती। गायत्रीसे उसे न जाने क्या चिढ़ थी! उसकी सूरत देखते ही रोने लगती। एक बार गायत्रीने गोदमें उठा लिया, तो उसे दाँतोंसे काट लिया। चौथे दिन उसे ज्वर हो आया और तीन दिन बीमार रहकर मातृ-प्रेमकी भूखी बालिका चल बसी।

विद्याके मरनेके पीछे विदित हुआ कि वह कितनी बहुप्रिय और सुशीला थी। मुहल्लेकी स्त्रियाँ श्रद्धाके पास आकर चार आँसू बहा जातीं। दिनभर उनका ताँता लगा रहता। बड़ी बहू और उनकी बहू भी सच्चे दिलसे उसका मातम कर रही थीं। उस देवीने अपने जीवनमें किसीको 'रे" या "तू" नहीं कहा, महरियोंसे भी हँस-हँस बातें करती, नसीबा चाहे खोटा था,पर हृदयमें दया थी, किसीका दुःख न देख सकती थी, दानशीला ऐसी थी कि किसी भूखे, भिखारी, दुखियारेको द्वारसे फिरने

न देती, धेलेकी जगह पैसा और आधपावकी जगह पाव देनेकी नीयत रखती थी। गायत्री इन स्त्रियोंसे आँखें चुराया करती। अगर वह कभी आ पड़ती तो सबकी सब चुप हो जातीं और उसकी अवहेलना करतीं। गायत्री उनकी श्रद्धापात्र बननेके लिये उनके बालकोंको मिठाइयाँ और खिलौने देती, विद्याकी रो-रोकर चर्चा करती, पर उसका मनोरथ पूरा न होता था। यद्यपि कोई स्त्री मुँहसे कुछ न कहती थी, लेकिन उनके कटाक्ष व्यंगसे भी अधिक मर्मभेदी होते थे। एक दिन बड़ी बहूने गायत्रीके मुँहपर कहा—न जाने ऐसा कौनसा काँटा था, जिसने उसके हृदयमें चुभकर जान ली, दूध-पूत सब भगवानने दिया था, पर इस काँटेकी पीड़ा न सही गयी। यह काँटा कौन था? इस विषयमें महिलाओंकी आँखें उनकी वाणीसे कहीं सशब्द थीं। गायत्री मनमें कटकर रह गयी।

वास्तवमें कुटुम्ब या मुहल्लेकी स्त्रियोंको विद्याके मरनेका जितना शोक था, उससे कहीं ज्यादा गायत्रीको था। डाक्टर प्रियनाथने स्पष्ट कह दिया था कि इसने विष खाया है। लक्षणोंसे भी यही बात सिद्ध होती थी। गायत्री इस खूनसे अपना हाथ रँगा हुआ पाती थी। उसकी सगर्व आत्मा इस कल्पनासेही काँप उठती थी। वह अपनी निजकी महरियोंसे भी विद्याकी चर्चा करते झिझकती थी। मौतकी रातका दृश्य उसे कभी न भूलता था। विद्याकी वह क्षमाप्रार्थी चितवनें सदैव उसकी आँखोंमें फिरा करतीं। हाँ, यदि मुझे पहले मालूम होता कि उसके मनमें मेरी ओरसे इतना मिथ्या भ्रम हो गया है, तो यह नौबत न आती। लेकिन फिर जब वह उसके पहलेवाली रातकी घटनाओं पर विचार करती तो उसका मन स्वयं कहता था कि विद्याका सन्देह करना स्वाभाविक था। नहीं, अब उसे कितनी ही छोटी-छोटी बातें ऐसी भी याद आती थीं, जो उसने विद्याका मनोमालिन्य देखकर केवल उसे जलाने और सुलगानेके लिये की

थीं। यद्यपि उस समय उसने वे बातें अपने पवित्र-प्रेमकी तरंगमें की थीं और विद्याके ही सामने नहीं, सारी दुनियाके सामने करनेपर तैयार थी, पर इन खूनके छींटोंसे वह नशा उतर गया था। उसका मन स्वयं स्वीकार करता था कि वह विशुद्ध-प्रेम न था, अज्ञात रीतिसे उसमें वासनाका लेश आ गया था। विद्या मुझे देखकर सदय हो गयी थी, लेकिन ज्ञानशङ्करकी सूरत देखते ही उसका झिझकना, चौंकना, चिल्लाना साफ कह रहा था कि उसने हमारे ही ऊपर जान दी। यह उसकी परम उदारता थी, कि उसने मुझे निर्दोष समझा। इतने भयंकर उत्तरदायित्वका भार उसकी आत्माको कुचले देता था। शनैः शनैः इस भावका उसपर इतना प्राबल्य हुआ कि भक्ति और प्रेमसे उसे अरुचि होने लगी। उसके विचारमें यह दुर्घटना इस बातका प्रमाण थी कि हम भक्तिके ऊँचे आदर्शसे गिर गये, प्रेमके निर्मल जलमें तैरते हुए हम भोगके सेवारोंमें उलझ गये, मानों यह हमारी आत्माको सजग करनेके लिये देवप्रेरित चेतावनी थी। अब ज्ञानशङ्कर उसके पास आते, तो उनसे खुलकर न मिलती। ज्ञानशङ्करने विद्याकी दाहक्रिया आप न की थी, यहाँतक कि चितामें आग भी न दी थी। एक ब्राह्मणसे सब संस्कार कराये थे। गायत्रीको यह असज्जनता और हृदयशून्यता नागवार मालूम होती थी। उसकी इच्छा थी कि विद्याकी अन्त्येष्टि प्रथानुसार और यथोचित सम्मानके साथ की जाय, उसकी आत्माकी शान्तिका अब यही एक उपाय था। उसने ज्ञानशङ्करसे इसका इशारा भी किया, पर यह टाल गये। अतएव वह उन्हें देखते ही मुँह फेर लेती थी, उन्हें अपनी वाणीका मन्त्र मारनेका अवसर न देती थी। उसे भय होता था कि उनकी यह उच्छृङ्खलता मुझे और भी बदनाम कर देगी। वह कमसे कम संसारकी दृष्टिमें इस हत्या-के अपराधसे मुक्त रहना चाहती थी।

गायत्रीपर अब ज्ञानशङ्करके चरित्रके जौहर भी खुलने लगे।

उन्होंने उससे अपने कुटुम्बियोंकी इतनी बुराइयाँ की थीं कि वह उन्हें धैर्य्य और सहनशीलताकी मूर्ति समझती थी। पर यहाँ कुछ और ही बात दिखाई देती थी। उन्होंने प्रेमशङ्करको शोक-सूचनातक न दी। लेकिन उन्होंने ज्योंही खबर पायी,तुरन्त दौड़े हुए आये और सोलह दिनोंतक नित्य-प्रति आकर यथा-योग्य संस्कारमें भाग लेते रहे। लाला प्रभाशङ्कर संस्कारोंकी व्यवस्थामें, ब्रह्मभोजमें, बिरादरीका दावतमें ऐसे व्यस्त थे, मानों आपसमें कोई द्वेष ही नहीं। बड़ी बहूके व्यवहारसे भी सच्ची समवेदना प्रकट होती थी। लेकिन ज्ञानशङ्करके रंग-ढंगसे साफ जाहिर होता था कि इन लोगोंका शरीक होना उन्हें नाग-वार है। वह उनसे दूर-दूर रहते थे,उनसे बात करते तो रुखाई-से, मानों सभी उनके शत्रु हैं और इसी बहाने उनका अहित करना चाहते हैं। उस भोजके दिन उनकी लाला प्रभाशङ्करसे खासी झपट हो गयी। प्रभाशङ्कर आग्रह कर रहे थे, कि मिठाइयाँ घरमें ही बनवायी जायँ। ज्ञानशङ्कर कहते थे कि यह अनुप-युक्त है। संभव है, घरकी मिठाइयाँ अच्छी बनें, पर खर्च बहुत पड़ेगा। बाजारसे मामूली मिठाइयाँ मँगवायी जायँ। प्रभाशङ्कर-ने कहा, खिलाते हो तो ऐसे पदार्थ खिलाओ कि खानेवाले भी समझें कि कहीं दावत खायी थी। ज्ञानशङ्करने बिगड़कर कहा—मैं ऐसा अहमक नहीं हूँ कि इस वाह-वाहके लिये अपना घर लुटा दूँ। नतीजा यह हुआ कि बाजारसे सस्ते मेलकी मिठाइयाँ आयीं। ब्राह्मणोंने डरकर खाया तो, लेकिन सारे शहरमें निन्दा की।

गायत्रीको जो बात सबसे अप्रिय लगती थी,वह अपनी नजर-बन्दी थी। ज्ञानशङ्कर उसकी चिट्ठियाँ खोलकर पढ़ लेते, इस भयसे कि कहीं रायसाहबका कोई पत्र न हो। अगर वह प्रेमशङ्कर या लाला प्रभाशङ्करसे कुछ बातें करने लगती,तो वह तुरन्त आकर बैठ जाते और ऐसी असंगत बातें करने लगते कि साधारण बात-चीत भी विवादका रूप धारण कर लेती थी। उनके व्यवहारसे

स्पष्ट विदित होता था कि गायत्रीके पास किसी अन्य मनुष्य-का उठना-बैठना उन्हें असह्य है। इतना ही नहीं, वह यथासाध्य गायत्रीको स्त्रियोंसे मिलने-जुलनेका भी अवसर न देते। आत्माभिमान धार्मिक विषयोंमें लोकमतको जितना तुच्छ समझता है, लौकिक विषयोंमें लोकमतका उतना ही आदर करता है। गायत्रीको विद्याके हत्यापराधसे मुक्त होनेके लिये घर और मुहल्लेकी स्त्रियोंकी सहानुभूति आवश्यक जान पड़ती थी। वह अपने बर्तावसे, विद्याकी सुकीर्तिके बखानसे, यहाँतक कि ज्ञानशंकरकी निन्दासे भी यह उद्देश्य पूरा करना चाहती थी। षोडशे और ब्रह्मभोजके बाद एक दिन उसने नगरकी कई कन्यापाठशालाओं-का निरीक्षण किया और प्रत्येकको विद्याके नामपर पारितोषिक देनेके लिये रुपये दे आयी और यह केवल दिखावा हो नहीं था, विद्यासे उसे बहुत मुहब्बत थी, उसकी मृत्युका उसे सच्चा शोक था। विद्याको याद करके वह बहुधा एकान्तमें रो पड़ती, उसकी सूरत उसकी आँखोंसे कभी न उतरती थी। जब श्रद्धा और बड़ी बहू आदि विद्याकी चर्चा करने लगतीं, तो वह अदबदाकर उनकी बातें सुननेके लिये जा बैठती। उनके कटाक्ष और संकेतोंकी ओर उसका ध्यान नहीं जाता। ऐसे अवसरोंपर जब ज्ञानशंकर उसे रियासतके किसी कामके बहानेसे बुलाते, तो उसे बहुत नागवार मालूम होता। वह कभी-कभी झुँझलाकर कहती, जाकर कह दो मुझे फुरसत नहीं है। जरा-जरा-सी बातोंमें मुझसे सलाह लेनेकी क्या जरूरत है? क्या इतनी बुद्धि भी ईश्वरने नहीं दी? रियासत! रियासत! उन्हें किसीके मरने-जीनेकी परवा न हो; लेकिन सबके हृदय तो एकसे नहीं हो सकते। कभी-कभी वह केवल ज्ञानशङ्कर-को चिढ़ानेके लिये श्रद्धाके पास घण्टों बैठी रहती। वह अब उनकी कठपुतली बनकर न रहना चाहती थी। उसका गौरवशील प्रकृति स्वच्छन्द होनेके लिये तड़पती थी। वह इस बन्धनसे निकल भागना चाहती थी। एक दिन वह ज्ञानशङ्करसे कुछ कहे

बिना ही प्रेमशङ्करकी कृषिशालामें आ पहुँची और सारे दिन वहीं रही। एक दिन उसने लाला प्रभाशङ्कर और प्रेमशङ्करकी दावत की और सारा जेवनार अपने हाथोंसे पकाया। लालाजीको भी उसके पाकनैपुण्यको स्वीकार करना पड़ा।

दो महीने गुजर गये। धीरे-धीरे महिलाओंको गायत्रीपर विश्वास होने लगा। द्वेष और मालिन्यके परदे हटने लगे; उसके सम्मुख ऐसी-ऐसी बातें होने लगीं, जिनकी भनक भी पहले उसके कानोंमें न पड़ने पाती थी। यहाँतक कि वह इस समाजका एक प्रधान अंग बन गयी। यहाँ प्रायः नित्य ही ज्ञानशंकरकी चरित्र-चर्चा होती और फलतः उनका आदर गायत्रीके हृदयसे उठता जाता था। बड़ी बहू और उनकी बहू दोनों ज्ञानशंकरकी द्वेष-कथा कहने लगतीं, तो उसका अन्त ही न होता था। श्रद्धा यद्यपि इतनी प्रगल्भा न थी, पर यह अनुमान करनेके लिये बहुत सूक्ष्मदर्शिताकी जरूरत न थी, कि उसे भी ज्ञानशंकरसे विशेष स्नेह न था। ज्ञानशंकरकी संकीर्णता और स्वार्थपरता दिनों-दिन गायत्रीको विदित होने लगी। अब उसे ज्ञात होने लगा कि पिताजीने मुझे ज्ञानशंकरसे बचते रहनेकी जो ताकीद की थी उसमें भी कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य था। ज्ञानशङ्करके प्रेम और भक्तिपरसे भी उसका विश्वास उठने लगा, उसे सन्देह होने लगा कि उन्होंने केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये तो यह स्वाँग नहीं रचा! अब उसे कितनी ही ऐसी बातें याद आने लगीं, जो इस सन्देहको पुष्ट करती थीं। ज्यों-ज्यों यह सन्देह बढ़ता था, ज्ञानशंकरकी ओरसे उसका चित्त फिरता जाता था। ज्ञानशंकर गायत्रीके चित्तकी यह वृत्ति देखकर बड़े असमंजसमें रहते थे। उनके विचारमें यह मनोमालिन्य शान्त करनेका सर्वोत्तम उपाय यही था कि गायत्रीको किसी प्रकार गोरखपूर खींच ले चलूँ। लेकिन उससे यह प्रस्ताव करते हुए वह डरते थे, अपनी गोटी लाल करनेके लिये वह गायत्रीका एकान्त सेवन परमावश्यक

समझते थे। मायाशंकरको गोद लेने सेही कोई विशेष लाभ न था, गायत्रीकी आयु ३५ वर्षसे अधिक न थी और कोई कारण न था कि वह अभी ४५ वर्ष और जीवित न रहे। यह लम्बा इन्तजार ज्ञानशंकर जैसे अधीर पुरुषके लिये असह्य था। इसलिये वे श्रद्धा और भक्तिका वही वशीकरण मन्त्र मारकर गायत्रीको अपनी मुट्ठीमें करना चाहते थे।

एक दिन वे एक पत्र लिये हुए गायत्रीके पास आकर बोले, गोरखपूरसे यह बहुत जरूरी खत आया है। मुख्तार साहबने लिखा है, कि ये फ़सलके दिन हैं। आप लोगोंका आना जरूरी है, नहीं तो सीरकी उपज हाथ न लगेगी, नौकर चाकर सब खा जायंगे।

गायत्रीने रुष्ट होकर कहा—इसका उत्तर तो मैं पीछे दूँगी, पहले यह बताइये, कि आप मेरी चिट्ठियाँ क्यों खोल लिया करते हैं?

ज्ञानशंकर सन्नाटेमें आ गये, समझ गये कि मैं इसकी आँखोंमें उससे कहीं ज्यादा गिर गया हूँ, जितना मैं समझता हूँ। बगलें झाँकते हुए बोले—मेरा अनुमान था, कि इतनी आत्मिक घनिष्ठताके बाद इस शिष्टाचारकी जरूरत नहीं रही। लेकिन आपको नागवार लगता है, तो आगे ऐसी भूल न होगी।

गायत्रीने लज्जित होकर कहा—मेरा आशय यह नहीं था। मैं केवल यह चाहती हूँ कि मेरी निजकी चिट्ठियाँ न खोली जाया करें।

ज्ञानशंकर—इस धृष्टताका कारण यह था, कि मैं अपनी आत्माको आपकी आत्मामें संयुक्त समझता था; लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि इस घरके द्वेषपोषक जलवायुने हमारे बीचमें भी अन्तर डाल दिया। भविष्यमें ऐसा दुस्साहस न होगा। मालूम होता है कि मेरे कुदिन आये हैं, देखें क्या-क्या झेलना पड़ता है।

गायत्रीने बातका पहलू बदलकर कहा—मुखतार साहबको लिख दीजिये कि अभी हम लोग न आ सकेंगे, तहसील वसूल शुरू कर दें।

ज्ञान—मेरे विचारमें हम लोगोंका वहाँ रहना जरूरी है।

गायत्री—तो आप चले जायँ। मेरे जानेकी क्या जरूरत है? मैं अभी यहाँ कुछ दिन और रहना चाहती हूँ।

ज्ञानशंकरने हताश होकर कहा—जैसी आपकी इच्छा। लेकिन आपके बिना वहाँ एक-एक क्षण मुझे एक-एक साल मालूम होगा। कृष्णमन्दिर तैयार ही है, वहाँ भजन-कीर्तनमें जो आनन्द आयेगा, वह यहाँ दुर्लभ है। मेरी इच्छा थी कि अबकी बरसात वृन्दावनमें कटती। इस आशापर पानी फिर गया। आप मेरे जीवन-पथके दीपक हैं, आप ही मेरे प्रेम और भक्तिके केन्द्रस्थल हैं। आपके बिना मुझे अपने चारों ओर अन्धेरा दिखाई देगा। सम्भव है, कि पागल हो जाऊँ।

दो महीने पहले ऐसी प्रेमरस पूर्ण बातें सुनकर गायत्रीका हृदय गद्गद हो जाता, लेकिन इतने दिनों यहाँ रहकर उसे उनके चरित्रका पूरा परिचय मिल चुका था। वह साज जो बेसुरे अलापको भी रसमय बना देता था, अब बन्द था। वह मन्त्रका प्रतिहार करना सीख गयी थी। बोली—यहाँ मेरी दशा उससे भी दुस्सह होगी, खोई-खोई-सी फिरूँगी, लेकिन करूँ क्या? यहाँ लोगोंके हृदयको अपनी ओरसे साफ करना आवश्यक है। यह वियोग-दुःख इसलिये उठा रही हूँ, नहीं तो आप जानते हैं, यहाँ मनबहलावकी क्या सामग्री है। देहपर अपना वश है, उसे यहाँ रखूँगी, रहा मन, वह एक क्षणके लिये भी अपने कृष्णका दामन न छोड़ेगा। प्रेमस्थलमें हजारों कोसकी दूरी भी कोई चीज नहीं है, वियोगमें भी मिलापका आनन्द मिलता रहता है। हाँ, पत्र नित्यप्रति लिखते रहियेगा, नहीं तो मेरी जानपर बन आयेगी।

ज्ञानशङ्करने गायत्रीको भेदकी दृष्टिसे देखा। यह वह भोली-भाली सरला गायत्री न थी। वह अब त्रियाचरित्रमें निपुण हो गयी थी, दग़ाका जवाब दग़ासे देना सीख गयी थी। समझ गये कि अब यहाँ मेरी दाल न गलेगी। इस बाजारमें अब खोटे सिक्के न चलेंगे। यह बाजी जीतनेके लिये कोई नयी चाल चलनी पड़ेगी, नये किले बाँधने पड़ेंगे। गायत्रीको यहाँ छोड़कर जाना शिकारको हाथसे खोना था। किसी दूसरे अवसरपर यह जिक्र छेड़नेका निश्चय करके वह उठे। सहसा गायत्रीने पूछा, तो कबतक जानेका विचार है? मेरे विचारमें आपका प्रातःकालकी गाड़ीसे चला जाना अच्छा होगा।

ज्ञानशङ्करने दीनभावसे भूमिकी ओर ताकते हुए कहा—अच्छी बात है।

गायत्री—हाँ, जब जाना ही है, तब देर न कीजिये। जबतक इस मायाजालमें फंसे हुए हैं, तबतक तो यहाँके राग अलापने ही पड़ेंगे।

ज्ञानशङ्कर—जैसी आज्ञा।

यह कहकर वह मर्माहत भावसे उठकर चले गये। उनके जानेके बाद गायत्रीको वही खेद हुआ, जो किसी मित्रको व्यर्थ कष्ट देनेपर हमको होता है, पर उसने उन्हें रोका नहीं।

५३

श्रद्धा और गायत्रीमें दिन-दिन मेलजोल बढ़ने लगा। गायत्रीको अब ज्ञात हुआ कि श्रद्धामें कितना त्याग, विनय, दया और सतीत्व है। मेलजोलसे उनमें आत्मीयताका विकास हुआ, एक दूसरीसे अपने हृदयकी बातें कहने लगीं, आपसमें कोई परदा न रहा। दोनों आधी-आधी रातक बैठी अपनी बीती सुनाया करतीं। श्रद्धाकी बीती प्रेम और वियोगकी करुण कथा थी, जिसमें आदिसे अन्ततक कुछ छिपानेकी जरूरत न थी। वह रो-रोकर अपनी विरहव्यथाका वर्णन करती,

प्रेमशङ्करकी निर्दयता और सिद्धान्तप्रेमका रोना रोती, अपनी टेकपर भी पछताती, कभी प्रेमशंकरके सद्गुणोंकी अभिमानके साथ चर्चा करती, अपनी कथा कहनेमें, अपने हृदयके भावोंको प्रकट करनेमें, उसे शान्तिमय आनन्द मिलता था। इसके विपरीत गायत्रीकी कथा प्रेमसे शुरू होकर आत्मग्लानिपर समाप्त होती थी। विश्वासके उद्गारमें भी उसे सावधान रहना पड़ता था, वह कुछ-न-कुछ छिपाने और दबानेपर मजबूर हो जाती थी। उसके हृदयमें कुछ ऐसे काले धब्बे थे, जिन्हें दिखानेका उसे साहस न होता था; विशेषतः श्रद्धाको, जिसका मन और वचन एक था। वह उसके सामने प्रेम और भक्तिका जिक्र करते हुए शरमाती थी। वह जब ज्ञानशङ्करके उस दुस्साहसको याद करती, जो उन्होंने रातको थियेटरसे लौटते समय किया था, तब उसे मालूम होता था कि उस समय तक मेरा मन शुद्ध और उज्ज्वल था, यद्यपि वासनाएँ अंकुरित हो चली थीं। उसके बाद जो कुछ हुआ वह सब ज्ञानशङ्करकी कामतृष्णा और मेरी आत्मदुर्बलताका नतीजा था; जिसे मैं भक्ति कहती थी। ज्ञानशङ्करने केवल अपनी दुष्कामना पूरी करनेके लिये मेरे सामने भक्तिका यह रङ्गीन जाल फैलाया। मेरे विषयमें उनका वह लेख लिखना, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रमें मुझे आगे बढ़ाना, उनकी वह अविरल स्वामिभक्ति, वह तत्परता, वह आत्मसमर्पण, सब उनकी अभीष्ट-सिद्धिके यन्त्र थे। मुझे मेरे अहङ्कारने डुबाया, मैं अपने ख्यातिप्रेमके हाथों मारी गयी। मेरा वह धर्मानुराग, मेरी वह विवेकहीन मिथ्या भक्ति, मेरे वह आमोद-प्रमोद, मेरी वह आवेशमयी कृतज्ञता, जिसपर मुझे अपने संयम और व्रतको बलिदान करनेमें लेशमात्र भी सङ्कोच न होता था, केवल मेरे अहंकारकी क्रीड़ाएँ थीं। इस व्याधने मेरी प्रकृतिके सबसे भेद्य स्थानपर निशाना मारा। उसने मेरे व्रत और नियमको धूलमें मिला दिया, केवल अपने ऐश्वर्य्यप्रेमके हेतु मेरी

सर्वनाश कर दिया। स्त्री अपनी कुवृत्तिका दोष सदैव पुरुषके सिरपर रखती है, अपनेको वह दलित और आहत समझती है। गायत्रीके हृदयमें इस समय ज्ञानशङ्करका प्रेमालाप, वह मृदुल व्यवहार, वह सतृष्ण चितवनें तीरकी तरह लग रही थीं। वह कभी-कभी शोक और क्रोधसे इतनी उत्तेजित हो जाती, कि उसका जी चाहता कि उसने जैसे मेरे जीवनको भ्रष्ट किया है, वैसे ही मैं भी उसका सर्वनाश कर दूँ।

एक दिन वह इन्हीं उद्दण्ड विचारोंमें डूबी बैठी हुई थी, कि श्रद्धा आकर बैठ गयी और उसके मुखकी ओर देखकर बोली—मुख क्यों लाल हो रहा है? आँखोंमें आँसू क्यों भरे हैं?

गायत्री—कुछ नहीं, मन ही तो है।

श्रद्धा—मुझसे कहने योग्य नहीं है?

गायत्री—तुमसे छिपा ही क्या है, जो तुम पूछती हो। मैंने अपनी तरफसे छिपाया है, लेकिन तुम सब कुछ जानती हो। यहाँ कौन नहीं जानता है? उन बातोंको जब याद करती हूँ, तो ऐसी इच्छा होती है कि एक ही कटारसे अपनी और उसकी गर्दन काट डालूँ। खून खौलने लगता है। मुझे जरा भी भ्रम न था, कि इतना बड़ा धूर्त और पाजी है। बहिन, अब चाहे जो कुछ हो, मैं उससे अपना आत्महत्याका बदला अवश्य लूँगी। मर्यादा तो यही कहती है कि विद्याकी भाँति विष खाकर मर जाऊँ, लेकिन यह तो उसके मनकी बात होगी, वह अपने भाग्यको सराहेगा और दिल खोलकर विभवका भोग करेगा। नहीं मैं यह मूर्खता न करूँगी! नहीं, मैं उसे घुला-घुलाकर और रटा-रटाकर मारूँगी। मैं उसका सिर इस तरह कुचलूँगी; जैसे साँपका सिर कुचला जाता है। हा! मुझ जैसी अभागिनी संसारमें न होगी।

यह कहते-कहते गायत्री फूट-फूटकर रोने लगी। जरा दम लेकर फिर उसी प्रवाहमें बोली, श्रद्धा तुम्हें विश्वास न आयेगा,

यह मनुष्य पक्का जादूगर है। इसने मुझपर ऐसा मन्त्र मारा, कि मैं अपनेको बिलकुल भूल गयी। मैं तुमसे अपनी सफाई नहीं कर रही हूँ। वायुमण्डलमें नाना प्रकारके रोगाणु उड़ा करते हैं। उनका विष उन्हीं प्राणियोंपर असर करता है, जिनमें उसके ग्रहण करनेका विकार पहलेसे ही मौजूद रहता है। मच्छरके डङ्कसे सबको ताप और जूड़ी नहीं आती। यह वाह्य उत्तेजना केवल भीतरके विकारको उभाड़ देती है। ऐसा न होता तो आज समस्त संसारमें एक भी स्वस्थ प्राणी न दिखाई देता। मुझमें यह विकृत पदार्थ था। मुझे अपने आत्मबलपर घमंड था। मैं ऐंद्रिक भोगको तुच्छ समझती थी। इस दुरात्माने उसी दीपकसे, जिससे मेरे अंधेरे घरमें उजाला था, घरमें आग लगा दी, जो तलवार मेरी रक्षा करती थी, वही तलवार मेरी गर्दनपर चला दी। अब मैं वही तलवार उसकी गर्दनपर चलाऊँगी। वह समझता होगा, कि मैं अबला हूँ, निर्बल हूँ, उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। लेकिन मैं दिखा दूँगी, कि अबला पानीकी भाँति द्रव होकर भी पहाड़ोंको छिन्न-भिन्न कर सकती है। मेरे पूज्य पिता आत्मदर्शी हैं। उन्हें उसकी बुरी नीयत मालूम हो गयी थी, इसी कारण उन्होंने मुझे उससे दूर रहनेकी ताकीद की थी। उन्होंने अवश्य विद्यासे यह बात कही होगी। इसीलिये विद्या यहाँ मुझे सचेत करने आयी थी। लेकिन शोक! मैं नशेमें ऐसी चूर थी, पिताजी की चेतावनीकी भी कुछ परवा न की। इस धूर्तने मुझे उनकी नजरोंमें भी गिरा दिया। अब वह मेरा मुँह देखना भी न चाहेंगे।

गायत्री यह कहकर फिर शोकमग्न हो गयी। श्रद्धाकी समझमें न आता था, कि इसे कैसे सांत्वना दूँ। अकस्मात् गायत्री उठ खड़ी हुई, सन्दूकचेसे कलम, दावात, कागज निकाल लायी और बोली, बहिन, अब जो कुछ होना था, हो चुका; इसके लिये जीवनपर्यन्त रोना है। विद्या देवी थी, उसने अपमानसे मर जाना अच्छा समझा। मैं पिशाचिनी हूँ, मौतसे डरती हूँ। लेकिन

अबसे यह जीवन त्याग और पश्चात्तापपर समर्पण होगा। मैं अपनी रियासतसे इस्तीफा दे देती हूँ, मेरा उसपर कोई अधिकार नहीं है। तीन सालसे उसपर मेरा कोई हक नहीं है। मैं इतने दिनोंतक बिना अधिकार ही उसका उपभोग करती रही। यह रियासत मेरे पातिव्रत्य-पालनका उपहार थी। यह ऐश्वर्य और सम्पत्ति मुझे इसलिये मिली थी, कि कुल-मर्यादाकी रक्षा करती रहूँ, मेरी पतिभक्ति अचल रहे। वह मर्य्यादा कितने महत्वकी वस्तु होगी, जिसकी रक्षाके लिये मुझे करोड़ोंकी सम्पत्ति प्रदान की गयी। लेकिन मैंने उस मर्यादा का भङ्ग कर दिया, उस अमूल्य रत्नको अपनी विलासिताकी भेंट कर दिया। अब मेरा उस रियासतपर कोई हक नहीं है, उस घरमें पाँव रखनेका भी मुझे स्वत्त्व नहीं, वहाँका एक-एक दाना मेरे लिये त्याज्य है, मैं इतने दिनों हरामके मालपर ऐश करती रही।

यह कहकर गायत्री कुछ लिखने लगी, लेकिन श्रद्धाने कागज उठा लिया और बोली—खूब सोच-समझ ला, इतना उतावलापन अच्छा नहीं।

गायत्री—खूब सोच लिया है। मैं इसी क्षण ये मँगनीके वस्त्र उतार फेंकूँगी और किसी ऐसे स्थानपर जा बैठूँगी, जहाँ कोई मेरी सूरत न देखे।

श्रद्धा—भला सोचो तो दुनिया क्या कहेगी? लोग भाँति-भाँतिकी मनमानी कल्पनाएँ करेंगे। मान लिया, तुमने इस्तीफा ही दे दिया, तो यह क्या मालूम है कि जिनके हाथोंमें रियासत जायेगी, वे उसका सदुपयोग करेंगे। अब तो तुम्हारे लोक और परलोककी भलाई इसीमें है, कि शेष जीवन भगवतभजनमें काटो, तीर्थयात्रा करो, साधु-सन्तोंकी सेवा करो। सम्भव है कोई ऐसे महात्मा मिल जायें, जिनके उपदेशसे तुम्हारे चित्तको शान्ति हो। भगवानने तुम्हें धन दिया है। उससे अच्छे काम करो, अनाथों और विधवाओंको पालो, धर्मशालाएँ बनवाओ,

तालाब और कुएँ खुदवाओ, भक्तिको छोड़कर ज्ञानपर चलो। भक्तिका मार्ग सीधा है, लेकिन काँटोंसे भरा हुआ है। ज्ञानका मार्ग टेढ़ा है, लेकिन साफ है।

श्रद्धाका ज्ञानोपदेश अभी समाप्त न होने पाया था कि एक महरीने आकर कहा—बहूजी, वह डिपटियाइन आयी हैं, जो पहले आया करती थीं। यहीं लिवा लाऊँ ?

श्रद्धा—शीलमणि तो नहीं है ?

महरी—हाँ हाँ, वही हैं, साँवली। पहले तो गहनोंसे लदी रहती थीं, आज तो एक मुँदरी भी नहीं है। बड़े आदमियोंका मन गहनेसे भी फिर जाता है।

श्रद्धा—हाँ, यहीं लिवा लाओ।

एक क्षणमें शीलमणि आकर खड़ी हो गयीं। केवल एक उजली साड़ी पहने हुए थीं। गहनोंका तो कहना ही क्या, अधरोंपर पानकी लाली भी न थी। श्रद्धा उठकर उनसे गले मिली और पूछा—सीतापुरसे कब आयीं ?

शीलमणि—आज ही आयी हूँ, और इसीलिये आयी हूँ कि लाला ज्ञानशङ्करसे दो-दो बातें करूँ। जबसे बेचारी विद्याके विष खाकर जान देनेका हाल सुना है, कलेजेमें एक आग-सी सुलग रही है। यह सब उसकी उसी बहिनकी करामात है, जो रानी बनी फिरती है। उसीने विष दिया होगा।

शीलमणिने गायत्रीकी ओर देखा न था और देखा भी हो, तो पहचानती न थी। श्रद्धाने दाँतों तले जीभ दबायी और छातीपर हाथ रखकर आँखोंसे गायत्रीको इशारा किया। शीलमणिने चौंककर बायीं तरफ देखा, तो एक स्त्री सिर झुकाये बैठी हुई थी। उनकी प्रतिभा, सौन्दर्य और वस्त्राभूषण देखकर समझ गयी, कि गायत्री यही है। उसकी छाती धकसे हो गयी; लेकिन उसके मुखसे ऐसी बातें निकल गयी थीं, जिनको फेरना या सम्भालना मुश्किल था वह जलता हुआ ग्रास मुँहमें रख चुकी

थी और उसे निगलनेके सिवा दूसरा उपाय न था। यद्यपि उसका क्रोध न्यायसंगत था; पर शायद गायत्रीके मुँहपर वह ऐसे कटुशब्द मुँहसे न निकाल सकती। लेकिन अब तीर कमानसे निकल चुका था, उसके क्रोधने हेकड़ीका रूप धारण किया, लज्जित होनेके बदले और उद्दण्ड हो गयी। गायत्रीकी ओर मुँह करके बोली—अच्छा, रानी साहेबा तो यहीं विराजमान हैं। मैंने आपके विषयमें जो कुछ कहा है, वह आपको अवश्य अप्रिय लगा होगा;लेकिन उसके लिये मैं आपसे क्षमा नहीं माँग सकती। यही बातें मैं आपके मुँहपर कह सकती थी और एक मैं क्या, संसार यही कह रहा है। मुँहसे चाहे कोई न कहे; किन्तु सबके मनमें यही बात है। लाला ज्ञानशङ्करसे जिसे एक बार भी पाला पड़ चुका है, वह इसे अग्राह्य नहीं समझ सकता। मेरे बाबूजी इनके साथके पढ़े हुए हैं और इन्हें खूब समझते हैं।

जब वह मैजिस्ट्रेट थे, तो इन्होंने अपने असामियोंपर इजाफा लगानका दावा किया था। महीनों मेरी खुशामद करते रहे, कि मैं बाबूजीसे इनकी डिगरी करवा दूँ। मैं क्या जानूँ, इनके चकमेमें आ गयी। बाबूजी पहले तो बहुत आनाकानी करते रहे, लेकिन जब मैंने जिद की तो राजी हो गये। कुशल यह हुई कि इसी बीचमें मुझे इनके अत्याचारका हाल मालूम हो गया और डिगरी न होने पायी, नहीं तो कितने दीन असामियोंकी जानपर बन आती। दावा डिसमिस हो गया। इसपर यह इतने रुष्ट हुए कि समाचारपत्रोंमें लिख-लिखकर बाबूजीको बदनाम किया। वह जब पत्रोंमें इनके धर्मोत्साहकी खबरें पढ़ते थे, तो कहते थे, महाशय जरूर कोई-न-कोई स्वाँग रच रहे हैं। गोरखपूरमें सनातनधर्मके उत्सवपर जो धूमधाम हुई और बनारसमें कृष्णलीलाका जो नाटक खेला गया, उनका वृत्तान्त पढ़कर बाबूजीने खेदके साथ कहा था, यह महाशय रानी साहेबाको सब्ज बाग दिखा रहे हैं; इसमें अवश्य कोई-न-

कोई रहस्य है। लालाजी मुझे मिल जाये, तो ऐसा आड़े हाथों लेती, कि वह भी याद करते।

गायत्री खिड़कीकी ओर ताक रही थी, यहाँतक कि उसकी दृष्टिसे खिड़की भी लुप्त हो गयी। उसके अन्तःकरणसे पश्चात्ताप और ग्लानिकी लहरें उठ-उठकर कंठतक आती थीं और उसके नेत्ररूपी नौकाको झकोरे देकर लौट जाती थीं। वह संज्ञाहीन हो गयी थी। सारी चैतन्य शक्तियाँ शिथिल हो गयी थीं। श्रद्धाने उसके मुखकी ओर देखा, तो आँसू न रोक सकी। इस अभागिनी दुखियापर उसे कभी इतनी दया न आयी। वहाँ बैठनातक अन्याय था। वह और कुछ न कर सकी, शीलमणिको अपने साथ लेकर दूसरे कमरेमें चली गयी। वहाँ दोनोंमें देरतक बातचीत होती रही। श्रद्धा हत्याका सारा भार ज्ञानशङ्करके सिर रखती थी। शीलमणि गायत्रीको भी दोषका भागी समझती थी। दोनोंने अपने-अपने पक्षको स्थिर किया। अन्तमें श्रद्धाका पल्ला भारी रहा। इसके बाद शीलमणिने अपना वृत्तान्त सुनाया। सन्तानोत्पत्तिके निमित्त कौन-कौनसे यत्न किये, किन-किन दाइयोंको दिखाया, किन-किन डाक्टरोंसे दवा करायी। यहाँतक कि वह श्रद्धाको अपने गर्भवती हो जानेका विश्वास दिलानेमें सफल हो गयी; किन्तु महाशोक! सातवें महीने गर्भपात हो गया सारी आशाएँ धूलमें मिल गयीं। श्रद्धाने सच्चे हृदयसे समवेदना प्रकट की। फिर कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें होती रहीं। श्रद्धाने पूछा—अब डिप्टी साहबका क्या इरादा है?

शीलमणि—अब तो इस्तीफा देकर आये हैं और बाबू प्रेमशङ्करके साथ रहना चाहते हैं। उन्हें इनपर असीम-भक्ति है। पहले जब इस्तीफा देनेकी चर्चा करते, तो समझती थी कामसे जी चुराते हैं। राजी न होती थी; लेकिन इन तीन वर्षोंमें मुझे अनुभव हो गया कि इस नौकरीके साथ आत्मरक्षा नहीं हो सकती। जातिके नेतागण प्रजाके उपकारके लिये जो उपाय करते

,है सरकार उसीमें विघ्न डालती है। उसे दबाना चाहती है, उसे भय होता है, कि कहीं यहाँके लोग इतने उन्नत न हो जायें, कि उसका रोब न मानें। इसीलिये वह प्रजाके भावोंको दबानेके लिये, उनका मुँह बन्द करनेको नये-नये कानून बनाती रहती है। नेताओंने देशको दरिद्रताके चंगुलसे छुड़ानेके लिये चरखों और करघोंकी व्यवस्था की। सरकार उसमें बाधा डाल रही है। स्वदेशी कपड़ेका प्रचार करनेके लिये दूकानदारों और ग्राहकोंको समझाना अपराध ठहरा दिया गया है। नशेकी चीजोंका प्रचार कम करनेके लिये नशेबाजों और ठेकेदारोंसे कुछ कहना-सुनना भी अपराध है। अभी पिछले सालों जब यूरपमें लड़ाई हुई थी, तो सरकारने प्रजासे कर्ज लिया। कहनेको तो कर्ज था, पर असलमें जबरी टैक्स था। अधिकारियोंने दीन-दरिद्र प्रजापर नाना प्रकारके अत्याचार किये, तरह-तरहके दबाव डाले, यहाँतक कि उन्हें अपने हल बैल बेचकर सरकारको कर्ज देनेपर मजबूर किया। जिसने इन्कार किया, उसे या तो पिटवाया या कोई झूठा इलजाम लगाकर फँसा दिया। बाबूजीने अपने इलाकेमें किसीके साथ सख्ती नहीं की। कह दिया, जिसका जी चाहे कर्ज दे, जिसका न जी चाहे न दे। नतीजा यह हुआ कि और इलाकोंसे तो लाखों रुपये वसूल हुए, इनके इलाकेसे बहुत कम मिला। इसपर जिलेके हाकिमने नाराज होकर इनकी शिकायत कर दी। इनसे यह ओहदा छीन लिया गया। दर्जा घटा दिया गया। जब मैंने यह हाल देखा, तो आप ही जिद करके इस्तीफा दिलवा दिया। जब प्रजाकी कमाई खाते हैं, तो प्रजाके फायदेका ही काम भी करना चाहिये। यह क्या कि जिसकी कमाई खायें, उसीका गला दबायें! यह तो नमकहरामी है, घोर नीचता। यह तो वह करे, जिसकी आत्मा मर गयी हो, जिसे पेट पालनेके सिवा लोक-परलोककी कुछ भी चिन्ता न हो। जिसके हृदयमें जातिप्रेमका लेश-

मात्र है, वह ऐसे अन्याय नहीं कर सकता। भला तो होता है सरकारका, रोब और बल तो उसका बढ़ता है, जेब तो अंग्रेज व्यापारियोंके भरते हैं और पापके भागी होते हैं, यह पेटके बन्दे नौकर, यह स्वार्थके दास अधिकारी और फिर हमें नौकरीकी परवा ही क्या है? घरमें खानेको बहुत है। दो-चारको खिलाकर खा सकते हैं। अब तो पक्का इरादा करके आये हैं, कि यहीं बाबू प्रेमशङ्करके साथ रहें और अपनेसे जहाँतक हो सके, प्रजाकी भलाई करें। अब यह बताओ, तुम कबतक रूठी रहोगी? क्या इसी तरह रो-रोकर उम्र काटनेकी ठान ली है?

श्रद्धा—प्रारब्धमें जो कुछ है, उसे कौन मिटा सकता है?

शील—कुछ नहीं, यह तुम्हारी व्यर्थको टेक है, मैं अबकी तुम्हें घसीटे ले चलूँगी, उस उजाड़में मुझसे अकेले क्योंकर रहा जायेगा। हम और तुम दोनों रहेंगी, तो सुखसे दिन कटेंगे। अवसर पाते ही मैं उन महाशयकी भी खबर लूँगी। संसारके लिये तो जान देते फिरते हैं और घरवालोंकी खबर ही नहीं। जरासा प्रायश्चित्त करनेमें क्या शान घटी जाती है।

श्रद्धा—तुम अभी उन्हें जानती नहीं हो। वह सब कुछ करेंगे; पर प्रायश्चित्त न करेंगे। वह अपने सिद्धान्तको न तोड़ेंगे। तिसपर भी वह मेरी ओरसे निश्चिन्त नहीं हैं। ज्ञानशङ्कर जबसे गोरखपुर रहने लगे, तबसे वह प्रायः रोज यहाँ एक बार आ जाते हैं। अगर काम पड़े तो उन्हें यहाँ रहनेमें भी आपत्ति न होगी; लेकिन अपने नियम उन्हें प्राणोंसे भी प्रिय हैं।

शीलमणिने आकाशकी तरफ देखा तो बादल घिर आये थे। घबराकर बोली—कहीं पानी न बरसने लगे। अब चलूँगी। श्रद्धाने उसे रोकनेकी बहुत चेष्टा की, लेकिन शीलमणिने न माना। आखिर उसने कहा—ज़रा गायत्रीके पास चलकर उनके आँसू तो पोंछ दो। बेचारी तभीसे बैठी रो रही होगी।

शीलमणि—रोना तो उनके नसीबमें लिखा है। अभी क्या

रोयी है। ऐसे आदमीकी यही सजा है। नाराज होकर मेरा क्या बना लेगी, रानी होंगी, तो अपने घरकी होंगी।

शीलमणिको विदा करके श्रद्धा झेंपती हुई गायत्रीके पास आयी। वह डर रही थी, कि कहीं गायत्री मुझपर सन्देह न करने लगी हो, कि सारी करतूत इसी की है। उसने डरते-डरते अपराधीकी भाँति कमरेमें कदम रखा। गायत्रीने प्रार्थी दृष्टिसे उसे देखा; पर कुछ बोली नहीं। बैठी हुई कुछ लिख रही थी। मुखपर शोकके साथ दृढ़ संकल्पकी झलक थी। कई मिनटतक वह लिखनेमें ऐसी मग्न थी; मानो श्रद्धाके आनेका उसे ज्ञान ही न था। सहसा बोली—बहिन, अगर तुम्हें कष्ट न हो, तो ज़रा मायाको बुला दो, मेरी महरियोंको भी पुकार लेना।

श्रद्धा समझ गयी कि इसके मनमें कुछ और ठन गयी। कुछ पूछनेका साहस न हुआ। जाकर माया और महरियोंको बुलाया। एक क्षणमें माया आकर गायत्रीके सामने खड़ा हो गया। महरियाँ बागमें झूला झूल रही थीं। भादोंका महीना था, घटा छायी थी। कजली बहुत सुहावनी लगती थी।

गायत्रीने मायाको सिरसे पाँवतक देखकर कहा—तुम जानते हो, कि किसके लड़के हो?

मायाने कुतूहलसे देखकर कहा—क्या इतना भी नहीं जानता?

गायत्री—मैं तुम्हारे मुँहसे सुनना चाहती हूँ, जिसमें मुझे मालूम हो जाय, कि तुम मुझे क्या समझते हो?

माया पहले इस प्रश्नका आशय न समझता था। इतना इशारा पाकर सचेत हो गया। बोला—पहले लाला ज्ञानशङ्करका लड़का था, अब आपका लड़का हूँ।

गायत्री—इसलिये तुम्हें प्रत्येक विषयमें ईश्वरके पीछे मेरी ही इच्छाको मान्य समझना चाहिये।

माया—निस्सन्देह।

गायत्री—बाबू ज्ञानशङ्करको तुम्हारे पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षासे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह मेरा अधिकार है।

माया—आपके ताकीदकी जरूरत नहीं, मैं स्वयं उनसे दूर रहना चाहता हूँ। जबसे मैंने अम्मांको अन्तिम समय उनको सूरत देखते ही चीखकर भागते देखा, तभीसे उनका सम्मान मेरे हृदयसे उठ गया।

गायत्री—तो तुम उससे कहीं ज्यादा चतुर हो, जितना मैं समझती थी। मैं आज बद्रीनाथकी यात्रा करने जा रही हूँ। कुछ पता नहीं, कबतक लौटूँ। मैं चाहती हूँ कि तुम्हें बाबू प्रेमशङ्करकी निगरानीमें रखूँ। यह मेरी आज्ञा है कि तुम उन्हें अपना पिता समझो और उनके अनुगामी बनो। मैंने उनके नाम यह पत्र लिख दिया है। इसे लेकर तुम उनके पास जाओ। वह तुम्हारी शिक्षाकी उचित व्यवस्था कर देंगे। तुम्हारी स्थितिके अनुसार तुम्हारे आराम और जरूरतकी आयोजना भी करेंगे। तुमको थोड़े ही दिनोंमें ज्ञात हो जायेगा, कि तुम अपने पितासे कहीं ज्यादा सुयोग्य हाथोंमें हो। संभव है कि लाला प्रेमशङ्कर-को तुमसे उतना प्रेम न हो, जितना तुम्हारे पिताको है; लेकिन इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि तुम्हें अपने आनेवाले कर्त्तव्यों का पालन करनेके लिये जितनी क्षमता उनके द्वारा प्राप्त हो सकती है; तुम्हारे आचार, विचार और चरित्रका जैसे उत्तम संगठन वह कर सकते हैं, कोई और नहीं कर सकता। मुझे आशा है कि वह इस भारको स्वीकार करेंगे। इसके लिये तुम और मैं दोनों ही उनके बाध्य होंगे। यह दूसरा पत्र मैंने बाबू ज्ञानशङ्करको लिखा है। मेरे लौटनेतक वह रियासतके मैनेजर रहेंगे। मैंने उन्हें ताकीद कर दी है, कि बाबू प्रेमशङ्करके पास प्रति मास दो हजार रुपये भेज दिया करें। यह पत्र डाकखाने भिजवा दो।

इतनेमें चारों महरियाँ आयीं। गायत्रीने उनसे कहा—मैं

आज बद्रीनाथकी यात्रा करने जा रही हूँ। तुममेंसे कौन मेरे साथ चलती है?

महरियोंने एक स्वरसे कहा—हम सबकी सब चलेंगी।

नहीं, मुझे केवल एककी जरूरत है। गुलाबी, तुम मेरे साथ चलोगी?

सरकार जैसा हुकुम दें। बाल-बच्चोंको महीनोंसे नहीं देखा है।

तो तुम घर जाओ, तुम चलोगी केसर?

कबतक लौटना होगा?

यह नहीं कह सकती।

मुझे चलनेमें कोई उजुर नहीं है; पर सुनती हूँ वहाँका पहाड़ी पानी बहुत लगता है।

तो तुम भी घर जाओ। तू चलेगी अनसूया?

सरकार, मेरे घर कोई मर्द-मानुस नहीं है। घर चौपट हो रहा है। वहाँ चलूँगी, तो छटाँकभर दाना भी न मिलेगा।

तो तुम भी घर जाओ। अब तो तुम्हीं रह गयी राधा, तुमसे भी पूछ लूँ, चलोगी मेरे साथ?

हाँ, सरकार चलूँगी।

आज ही चलना होगा।

जब सरकारका जी चाहे, चलें।

तुम्हें २० बीघे मुआफी मिलेगी।

तीनों महरियोंने लज्जित होकर कहा—सरकार, चलनेको हम सभी तैयार हैं। आपका दिया खाती हैं, तो साथ किसके रहेंगी।

नहीं, मुझे तुम लोगोंकी जरूरत नहीं। मेरे साथ अकेली राधा रहेगी। तुम सब कृतघ्न हो, तुमसे अब मेरा कोई नाता नहीं।

यह कहकर गायत्री यात्राकी तैयारी करने लगी। राधा

खड़ी देख रही थी, पर कुछ बोलनेका साहस न होता था। ऐसी दशामें आदमी अव्यवस्थित-सा हो जाता है। जरा-सी बातपर झुँझला पड़ता है और जरा-सी बातपर प्रसन्न हो जाता है।

५४

बाबू ज्ञानशङ्कर गोरखपूर आये, लेकिन इस तरह, जैसे लड़की ससुराल आती है। वह प्रायः शोक और चिन्तामें पड़े रहते। उन्हें गायत्रीसे सच्चा प्रेम न सही, लेकिन वह प्रेम अवश्य था, जो शराबियोंको शराबसे होता है। उसके बिना उनका यहाँ जरा भी जी न लगता। सारे दिन अपने कमरेमें पड़े कुछ-न-कुछ सोचते या पढ़ते रहते थे। न कहीं सैर करने जाते, न किसी से मिलते-जुलते। कृष्णमन्दिरकी ओर भूलकर भी न जाते। उन्हें बार-बार यही पछतावा होता, कि मैंने गायत्रीको बनारस जानेसे क्यों रोका? यह सब उसी भूलका फल है। श्रद्धा, प्रेम-शङ्कर और बड़ी बहूने यह सारा विष बोया है, उन्हींने गायत्रीके कान भरे, मेरी ओरसे मन मैला किया। कभी-कभी उन्हें उद्भ्रान्त वासनाओंपर भी क्रोध आता और वह इस नैराश्यमें प्रारब्धके कायल हो जाते थे। हरीच्छा भी अवश्य कोई प्रबल वस्तु है; नहीं तो क्या मेरे सारे खेल यों बिगड़ जाते? कोई चाल सीधी ही न पड़ती? धन-लालसाने मुझसे क्या-क्या नहीं कराया! मैंने अपनी आत्माकी, कर्मकी, नियमोंकी हत्या की, और एक सती-साध्वी स्त्रीके खूनसे अपने हाथोंको रँगा, पर प्रारब्धपर विजय न पा सका। अभीष्टका मार्ग अवश्य दिखाई दे रहा है, पर मालूम नहीं, वहाँतक पहुँचना नसीब होगा या नहीं। इस क्षोभ नैराश्यकी दशामें उन्हें बार-बार गायत्रीकी याद आती, उसकी प्रतिमा-मूर्ति आँखोंमें फिरा करती, अनुरागमें डूबी हुई उसकी बातें कानोंमें गूँजने लगतीं, हृदयसे एक ठण्डी आह निकल जाती।

ज्ञानशङ्करको अब नित्य यह धड़का लगा रहता था, कि कहीं

गायत्री मुझे अलग न कर दे। वह चिट्ठियाँ खोलते डरते थे कि कहीं गायत्रीका कोई पत्र न निकल आये। उन्होंने उसको कई पत्र लिखे थे,पर एकका भी उत्तर न आया था। इससे उन्हें और भी उलझन होती थी। मायाशङ्करके पत्र अवश्य आते थे,पर इससे उन्हें शान्ति न मिलती थी। बनारसमें क्या हो रहा है, यह जाननेके लिये वह व्यग्र रहते थे, पर ऐसा कोई न था जो वहाँके समाचार विस्तारपूर्वक उनको लिखता। कभी-कभी वह स्वयं बनारस जानेका विचार करते, लेकिन डरते कि न जाने इसका क्या नतीजा हो। यहाँ तो उसकी आँखोंसे दूर पड़ा हूँ। संभव है, कुछ दिनोंमें उसका क्रोध शान्त हो जाय। मुझे देखकर वह कहीं और भी अप्रसन्न हो जाय तो रही सही आशा भी जाती रहे।

इस भाँति तीन-चार महीने बीत गये। भादोंका महीना था। जन्माष्टमी आ रही थी। शहरमें उत्सव मनानेकी तैयारियाँ हो रही थीं। कई वर्षोंसे गायत्रीके यहाँ यह उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता था, दूर-दूरसे गवैये आते थे, रासलीलाकी मण्डलियाँ बुलायी जाती थीं,रईसों और हाकिमोंको दावत दी जाती थी। ज्ञानशङ्करने समझा,गायत्रीको यहाँ बुलानेका यह बहुत ही अच्छा बहाना है। एक लम्बा पत्र लिखा और बड़े आग्रहके साथ उसे बुलाया। कृष्णमन्दिरकी सजावट होने लगी। लेकिन तीसरे ही दिन जवाब आया, मेरे यहाँ जन्माष्टमी न होगी,कोई तैयारी न की जाय यह शोकका साल है, मैं किसी प्रकारका आनन्दोत्सव नहीं कर सकती, चाहे वह धार्मिक ही क्यों न हो ? ज्ञानशङ्करके हृदयपर बिजली-सी गिर गयी ! समझ गये कि यहाँसे बिदा होनेके दिन निकट आ गये। नैराश्यका रङ्ग और भी गहरा हो गया। शङ्काने ऐसा उग्ररूप धारण किया कि डाकियेकी सूरत देखते ही उनकी छाती धड़-धड़ करने लगती थी,किसी बग्घी या मोटरकी आवाज सुनकर सिरमें चक्कर आ जाता था,कहीं गायत्री

न हो। रात और दिनमें बनारससे चार गाड़ियाँ आती थीं। यह ज्ञानशङ्करके लिये कठिन परीक्षाकी घड़ियाँ थीं। गाड़ियोंके आनेके समय उनकी नींद आप-ही-आप खुल जाती थी। चार दिनतक उनकी यही हालत रही। पाँचवें दिनकी डाकसे गायत्रीकी रजिस्टरी चिट्ठी आयी। सिरनामा देखते ही ज्ञानशङ्करके पाँव तलेसे जमीन सरक गयी। निश्चय हो गया कि यह मुझे हटानेका परवाना है, नहीं तो रजिस्टरी चिट्ठी भेजनेकी क्या जरूरत थी? काँपते हुए हाथोंसे पत्र खोला। लिखा था—मैं आज बद्रीनाथ जा रही हूँ, आप सावधानीसे रियासतका प्रबन्ध करते रहियेगा। मुझे आपके ऊपर पूरा भरोसा है, इसी भरोसेने मुझे यह यात्रा करनेपर उत्साहित किया है। इसके बाद वह आदेश था जिसका ऊपर जिक्र किया जा चुका है। ज्ञानशङ्करका चित्त कुछ शान्त हुआ। लिफाफा रख दिया और सोचने लगे। बात वही हुई जो वह चाहते थे। गायत्री सब कुछ उनके सिर छोड़कर चली गयी। यात्रा कठिन है, रास्ता दुर्गम है, पानी खराब है, इन विचारोंने उन्हें जरा देरके लिये चिन्तामें डाल दिया। कौन जानता है, क्या हो। वह इतने व्याकुल हुए कि एक बार जीमें आया, क्यों न मैं भी बद्रीनाथ चलूँ? रास्तेमें भेंट हो ही जायगी। वहाँ तो कोई उसका कान भरनेवाला न होगा। सम्भव है मैं अपना खोया हुआ विश्वास फिर जमा लूँ, प्रेमके बुझे हुए दीपकको फिर जला दूँ, इस सान्दिग्ध दशाका अन्त हो जाय। गायत्रीके बिना अब उन्हें सब कुछ सूना मालूम होता था। यह विपुल सम्पत्ति अगर सुख-सरिता थी तो गायत्री उसकी नौका थी। नौकाके बिना जलविहारका आनन्द कहाँ? पर थोड़ी ही देरमें उनका यह आवेग शांत हो गया। सोचा, अभी वह मुझसे भरी बैठी है, मुझे देखते ही जल जायगी। मेरी ओरसे उसका चित्त कितना कठोर हो गया है! मायाको मुझसे छीने लेती है। अपने विचारमें उसने मुझे कड़ेसे कड़ा दण्ड दिया है। ऐसी दशामें मेरे लिये सबसे सुलभ

यही है कि अपनी स्वामिभक्तिसे, सुप्रबन्धसे, प्रजाहितसे उसे प्रसन्न करूँ। प्रेमशङ्करने अच्छा निशाना मारा। बगुलाभगत है; बैठे-बैठे दो हजार रुपये मासिककी जागिर बना ली। बेचारा माया कहींका न रहा। प्रेमशङ्कर उसे कुशल कृषक बना देंगे; लेकिन चतुर इलावेदार नहीं बना सकते! उन्हें खबर ही नहीं कि रईसोंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये। खैर, जो कुछ हो, मेरी स्थिति उतनी शोचनीय नहीं है, जितनी मैं समझता था।

ज्ञानशङ्करने अभीतक दूसरी चिट्ठियाँ न खोली थीं। अपने चित्तको यों समझाकर उन्होंने दूसरा लिफाफा उठाया, तो राय-साहबका पत्र था। उनके विषयमें ज्ञानशङ्करको केवल इतना ही मालूम था, कि विद्याके देहान्तके बाद वह अपनी दवा करानेके लिये मंसूरी चले गये हैं। पत्र खोलकर पढ़ने लगे—

बाबू ज्ञानशङ्कर, आशीर्वाद। दो-एक महीने पहले मेरे मुँहसे तुम्हारे प्रति आशीर्वादका शब्द न निकलता, किन्तु अब मेरे मनकी वह दशा नहीं है। ऋषियोंका वचन है कि बुराईसे भलाई पैदा होती है। मेरे हकमें यह वचन अक्षरशः चरितार्थ हुआ, तुम मेरे शत्रु होकर मेरे परम मित्र निकले। तुम्हारी बदौलत मुझे आज यह शुभ अवसर मिला। मैं अपनी दवा करानेके लिये मंसूरी आया; लेकिन यहाँ मुझे वह वस्तु मिल गयी, जिसपर मैं ऐसे सैकड़ों जीवन न्योछावर कर सकता हूँ। मैं भोग-विलासका भक्त था, मेरी समस्त प्रवृत्तियाँ जीवनका सुख भोगनेमें लिप्त थीं। लोकपरलोककी चिन्ताओंको मैं अपने पास न आने देता था। यहाँ मुझे एक दिव्य आत्माके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त हो गया और अब मुझे ज्ञात हो रहा है, कि मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया। मैंने योगका अभ्यास किया, शिव और शक्तिकी आराधना की, अपनी आकर्षणशक्तिको बढ़ाया, यहाँतक कि मेरी आत्मा विद्युतका भाण्डार हो गयी; पर इन सारी क्रियाओंका उद्देश्य केवल वासनाओंकी तृप्ति थी। कभी-कभी भोगके आनन्द

में मग्न होकर मैं समझता था,यही आत्मिक शान्ति है; पर अब ज्ञात हो रहा है,कि मैं भ्रमजालमें फँसा हुआ था। उसी अज्ञान-की दशामें अपनेको आत्मज्ञानी समझता हुआ मैं संसारसे प्रस्थान कर जाता;लेकिन तुमने वैद्यकी तलाशमें घरसे बाहर निकाला और दैवयोगसे शारीरिक रोगोंके वैद्यकी जगह मुझे आत्मिक रोगोंका वैद्य मिल गया। मेरे हृदयसे तुम्हारे कल्याणकी प्रार्थना निकलती है; लेकिन याद रखो, मेरी शुभकामनाओंसे तुम्हारा जितना हित होगा, उससे कहीं ज्यादा अहित गायत्रीकी ठण्ढी सांसोंसे होगा। विद्याके आत्मघातने उसे सचेत कर दिया है। ऐसी दशामें अन्य स्त्रियाँ प्रसन्न होतीं;लेकिन गायत्रीकी आत्मा सम्पूर्णतः निर्जीव नहीं हुई थी। उसने तुम्हारे मन्त्रको विफल कर दिया। तुम्हारा अन्तःकरण अब गायत्रीके लिये खुला हुआ पृष्ठ है। तुम उसकी शापाग्निसे किसी तरह नहीं बच सकते। तुम्हें जल्द अपनी तृष्णाओंको साथ लिये ही संसारसे जाना पड़ेगा। अतएव मुनासिब है कि तुम अपने जीवनके गिने-गिनाये दिन आत्मशुद्धिमें व्यतीत करो। तुम्हारे कल्याणका यही मार्ग है। मैं अपनी कुल जायदाद मायाशङ्करको देता हूँ। वह होनहार बालक है और कुलको उज्ज्वल करेगा। उसके वयस्कत्वतक तुम रिया-सतका प्रबन्ध करते रहो। मुझे अब उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

यह पत्र पढ़कर ज्ञानशङ्करके मनमें हर्षकी जगह एक अव्यक्त शङ्का उत्पन्न हुई। वह भविष्यवाणीके कायल न थे;लेकिन ऐसे पुरुषके मुँहसे अनिष्टकी बात सुनकर, जिसके त्यागने उसके आत्मज्ञानी होनेमें कोई सन्देह न रखा हो, उनका हृदय कातर हो गया। इस समय उनके जीवनकी चिर-सिंचित अभिलाषा पूरी हुई थी। उन्हें स्वप्नमें भी यह आशा न थी, कि मैं इतनी जल्द रायसाहबकी विपुल सम्पत्तिका स्वामी हो जाऊँगा। नहीं, वह उसकी ओरसे निराश हो चुके थे। उन्हें विश्वास हो गया था, कि रायसाहब उसे किसी ट्रस्टके हवाले कर जायेंगे। यह सब

शङ्कायें मिथ्या निकलीं। लेकिन तिसपर भी इस पत्रसे उन्हें वही दुश्शंका हुई, जो किसी स्त्रीको अपनी दाईं आँख फड़कनेसे होती है। उनकी दशा इस समय उस मनुष्यकी-सी थी, जिसे डाकुओंकी कैदमें मिठाइयाँ खानेको मिलें, सुखे ठूँठका कुसुमित होना किसे आशंकित न कर देगा। वह एक घंटेतक चिन्तामें डूबे बैठे रहे। इसके बाद वह कृष्णमन्दिरमें गये और बड़े उत्साहसे जन्माष्टमीके उत्सवकी तैयारियाँ करने लगे।

ज्ञानशङ्करके जीवनाभिनयमें अबसे एक नये दृश्यका सूत्रपात हुआ, पहलेसे कहीं ज्यादा शुभ्र, मँजु और सुखद। अभी दस मिनट पहले उनकी आशानौका मंझधारमें पड़ी चक्कर खा रही थी, पर देखते-देखते लहरें शान्त हो गयीं। वायु अनुकूल हो गयी और नौका तटपर आ पहुँची, जहाँ दृष्टिकी परम सीमा-तक निधियोंका भव्य विस्तृत उपवन लहरा रहा था।

५५

बाबू ज्वालासिंहको बनारस आये आज दूसरा दिन था। कल तो वह थकानके मारे दिनभर पड़े रहे, पर प्रातःकाल ही उन्होंने लखनपूरवालोंकी अपीलका प्रश्न छेड़ दिया। प्रेमशङ्करने कहा- मैं तो आपहीकी बाट जोह रहा था। पहले मुझे प्रत्येक काममें अपने ऊपर विश्वास होता था, पर आपसा सहायक पाकर मुझे पग-पगपर आपके सहारेकी इच्छा होती है। अपने ऊपरसे विश्वास ही उठ गया। आपके विचारमें अपील करनेके लिये कितने रुपये चाहिये?

ज्वालासिंह—ज्यादा नहीं तो चार पाँच हजार तो अवश्य ही लग जायेंगे।

प्रेम—और मेरे पास चार-पाँच सौ भी नहीं।

ज्वाला—इसकी कोई चिन्ता नहीं। आपके नामपर दस-बीस हजार मिल सकते हैं।

प्रेम—मैं ऐसा कौनसा जातिका नेता हूँ, जिसपर लोगोंको इतनी श्रद्धा होगी ?

ज्वाला—जनता आपको आपसे अधिक समझती है। मैं आज ही चन्दा वसूल करना शुरू कर दुगा।

प्रेम—मुझे आशा नहीं कि आपको इसमें सफलता होगी। संभव है, दो-चार सौ रुपये मिल जाय लेकिन लोग यही समझेंगे कि इन्होंने भी कमानेका यह ढंग निकाला। चन्देके साथ ही लोगोंको सन्देह होने लगता है। आप तो देखते ही हैं, चन्दोंने हमारे कितनेही श्रद्धेयनेताओंको बदनाम कर दिया। ऐसा बिरला ही कोई मनुष्य होगा, जो चन्दोंके भँवरमें पड़कर बेदाग निकल गया हो मेरे पास श्रद्धाके कुछ गहने अभी बचे हुए हैं। अगर वह सब बेच दिये जायँ तो शायद हजार रुपये मिल जायँ।

इतनेमें शीलमणि इन लोगोंके लिये नाश्ता लायी। यह बात उसके कानोंमें पड़ी। बोली—कभी उनकी सुधि भी लेते हैं या गहनोंपर हाथ साफ करना ही जानते हैं ? अगर ऐसी ही जरूरत हो तो मेरे गहने ले जाइये।

ज्वाला—क्यों न हो, आप ऐसी ही दानी तो हैं। एक-एक गहनेके लिये तो आप महीनों रूठती हैं, उन्हें लेकर कौन अपनी जान गाढ़ेमें डाले ?

शील—जिस आगसे आदमी हाथ सेंकता है, क्या काम पड़नेपर उससे अपने चने नहीं भून लेता। स्त्रियाँ गहनोंपर प्राण देती हैं, लेकिन अवसर पड़नेपर उतार भी फेंकती हैं।

मायाशङ्कर एक तरफ अपनी किताब खोले बैठा हुआ था, पर उसका ध्यान इन्हीं बातोंकी ओर था। एक कल्पना बार-बार उसके मनमें उठ रही थी, पर संकोचवश उसे प्रकट न कर सकता था। कई बार इरादा किया कि कहूँ, पर प्रेमशङ्करकी ओर देखते ही जैसे कोई मुँह बन्द कर देता था। आँखें नींची हो जाती थीं। शीलमणिकी बातें सुनकर वह अधीर हो गया। ज्वाला-

सिंहकी तरफ कातर नेत्रोंसे देखता हुआ बोला—आज्ञा हो तो मैं भी कुछ कहूँ।

ज्वाला—हाँ हाँ, शौकसे कहो!

माया—इस महीनेकी मेरी पूरी वृत्ति अपीलमें खर्च कर दीजिये। मुझे रुपयोंकी कोई विशेष जरूरत नहीं है।

शीलमणि और ज्वालासिंह दोनोंने इस प्रस्तावको बालोचित आवेश समझकर प्रेमशङ्करकी तरफ मुस्कुराते हुए देखा। मायाने उनका यह भाव देखकर समझा, मुझसे धृष्टता हो गयी! ऐसे महत्वके विषयमें मुझे बोलनेका कोई अधिकार न था। चचाजी मेरे दुस्साहसपर अवश्य नाराज होंगे। लज्जासे आँखें भर आयीं और मुँहसे एक सिसकी निकल गयी। प्रेमशङ्करने चौंककर उसकी तरफ देखा, हृद्गत भावोंको समझ गये। उसे प्रेम-पूर्वक छातीसे लगाकर आश्वासन देते हुए बोले—तुम रोते क्यों हो बेटा? तुम्हारी यह उदारता देखकर मेरा चित्त जितना प्रसन्न हुआ है, वह प्रकट नहीं कर सकता। तुम मेरे पुत्रतुल्य हो, लेकिन मेरा जी चाहता है, कि तुम्हारे पैरोंपर सिर रख दूँ। तुम्हारे हृदयमें दया और विवेक है और मुझे विश्वास है कि तुम्हारा जीवन परोपकारी होगा; लेकिन मैंने तुम्हारी शिक्षाके लिये जो व्यवस्थाएँ की हैं उनका व्यय तुम्हारी वृत्तिसे कुछ अधिक ही है।

मायाको अब कुछ साहस हुआ। बोला, मेरी शिक्षापर इतने रुपये खर्च करनेकी क्या जरूरत है?

प्रेम—क्यों, आखिर तुम्हें घरपर पढ़ानेके लिये अध्यापक रहेंगे या नहीं? एक अंग्रेजी और हिसाब पढ़ायेगा, एक हिन्दी और संस्कृत, एक उर्दू और फारसी, एक फ्रेञ्च और जर्मन, पाँचवाँ तुम्हें व्यायाम, घोड़ेकी सवारी, नाव चलाना, शिकार खेलना सिखायेगा। इतिहास और भूगोल मैं पढ़ाया करूँगा।

माया—मेरी कक्षामें जो लड़के सबसे अच्छे हैं, वे घरपर

किसी मास्टरसे नहीं पढ़ते। मैं उनको अपनेसे कम नहीं समझता।

प्रेम—तुम्हें हवा खानेके लिये एक फिटनकी जरूरत है। सवारीके अभ्यासके लिये दो घोड़े चाहिये।

माया—अपराध क्षमा कीजियेगा। मेरे लिये इतने मास्टरोंकी जरूरत नहीं है, फिटन, मोटर, शिकार, पोलोको भी मैं व्यर्थ समझता हूँ। हाँ, एक घोड़ा गोरखपूरसे मँगवा दीजिये, तो सवारी किया करूँ। नाव चलानेके लिये मैं मल्लाहोंकी नावपर जा बैठूँगा। उनके साथ पतवार घुमाने और डाँड़ चलानेमें जो आनन्द मिलेगा, वह अकेले अध्यापकके साथ बैठनेमें नहीं आ सकता। अभीसे लोग कहने लगे हैं, कि इसका मिजाज नहीं मिलता। पद्मू कई बार ताने दे चुके हैं। मुझे नक्कू रईसोंकी भाँति अपनी हँसी करानेकी इच्छा नहीं है। लोग यही कहेंगे कि अभी कलतक तो एक मास्टर भी न था, आज दूसरोंकी संपत्ति पाकर इतना घमण्ड हो गया है।

प्रेम—प्रतिष्ठाका ध्यान रखना आवश्यक है।

माया—मैं तो देखता हूँ, आप इन चीजोंके बिना ही सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। सभी आपकी इज्जत करते हैं। मेरे स्कूलके लड़के भी आपका नाम आदरसे लेते हैं, हालाँकि शहर के और बड़े रईसोंकी हँसी उड़ाते हैं। मेरे लिये किसी विशेष चीजकी जरूरत क्यों हो?

मायाके प्रत्येक उत्तरपर प्रेमशङ्करका हृदय अभिमानसे फूला पड़ता था। उन्हें आश्चर्य्य होता था कि इस लड़केमें संतोष और त्यागका भाव क्योंकर उदित हुआ? इस उम्रमें तो प्रायः लड़के टीमटामपर जान देते हैं, सुन्दर वस्त्रोंसे उनका जी नहीं भरता, चमक-दमककी वस्तुओंपर लट्टू हो जाते हैं। यह पूर्व संस्कार है और कुछ नहीं। निरुत्तर होकर बोले—रानी गायत्रीकी यही इच्छा थी, नहीं तो इतने रुपये क्यों खर्च करती।

माया—यदि उनकी यह इच्छा होती तो क्या वह मुझेताल्लुकदारोंके स्कूलमें नहीं भेज देतीं ? मुझे आपकी सेवामें रखनेसे उनका उद्देश्य यही होगा कि मैं आपकेही पदचिह्नपर चलूँ ।

प्रेम—तो यह रुपये खर्च क्योंकर होंगे ।

माया—इसका फैसला रानी अम्माँने आपपरही छोड़ दिया है । मुझे आप उसी तरह रखिये, जैसे आप अपने लड़कोंको रखते हैं । मुझे ऐसी शिक्षा न दीजिये और ऐसे व्यसनोंमें न डालिये कि मैं अपनी दीन प्रजाके दुःख-दर्दमें शरीक न हो सकूँ । आपके विचारमें मेरी शिक्षाकी यही सबसे उत्तम विधि है ?

प्रेम—नहीं, मेरा विचार तो ऐसा नहीं, लेकिन दुनियाको दिखानेके लिये ऐसा ही करना पड़ेगा, नहीं तो लोग यही कहेंगे कि मैं तुम्हारी वृत्तिका दुरुपयोग कर रहा हूँ ।

माया—तो आप मुझे उस ढङ्गपर शिक्षा देना चाहते है जिसे आप स्वयं उपयोगी नहीं समझते । लोगोंके दुराक्षेपोंसे बचनेकेही लिये आपने यह व्यवस्थाएँ की हैं ?

प्रेमशङ्कर शरमाते हुए बोले—हाँ बात तो कुछ ऐसी ही है ।

माया—मैंने अपने वजीफेके खर्च करनेकी और ही विधि सोची है । आप बुरा न माने तो कहूँ ।

प्रेम—हाँ हाँ, शौकसे कहो । तुम्हारी बातोंसे मेरी आत्मा प्रसन्न होती है । तुम्हें इतना विचारशील न समझता था ।

ज्वालासिंह - इस उम्रमें मैंने किसीको इतना चैतन्य नहीं देखा ।

शीलमणि प्रेमशङ्करकी ओर मुँह करके मुस्कुरायी और बोली,—इसपर आपकीही परछायीं पड़ी है ।

माया—मैं चाहता हूँ कि मेरा वजीफा गरीब लड़कोंकी सहायतामें खर्च किया जाय । दस-दस रुपयेकी १९९ वृत्तियाँ दी जायें तो मेरे लिये दस रुपये बच रहेंगे । इतनेमें मेरा काम अच्छी तरह चल सकता है ।

प्रेमशङ्कर पुलकित होकर बोले,—बेटा, तुम्हारी उदारता धन्य हैं, तुम देवात्मा हो। कितना देवदुर्लभ त्याग है, कितना संतोष! ईश्वर तुम्हारे इन पवित्र भावोंको सुदृढ़ करें। पर मैं तुम्हारे साथ इतना अन्याय नहीं कर सकता।

माया—तो दो चार वृत्तियाँ कम कर दीजिये, लेकिन यह सहायता उन्हीं लड़कोंको दी जाय; जो यहाँ आकर खेती या बुनाईका काम सीखें।

ज्वाला—मैं इस प्रस्तावका अनुमोदन करता हूँ। मेरी रायमें तुम्हें अपने लिये कमसे कम ५००) रखने चाहिये। बाकी रुपये तुम्हारी इच्छाके अनुसार खर्च किये जायँ। ७५ वृत्तियाँ बुनाई और ७५ खेतीके काम सीखानेके लिये दी जायँ। भाई साहब कृषिशास्त्र और विधानमें निपुण हैं। बुनाईका काम मैं सिखाया करूँगा। मैंने इसका अच्छी तरह अभ्यास कर लिया है।

प्रेमशङ्करने ज्वालासिंहका खण्डन करते हुए कहा, मैं इस विषयमें रानी गायत्रीकी आज्ञा और इच्छाके बिना कुछ नहीं करना चाहता।

मायाशङ्करने निराश भावसे ज्वालासिंहको देखा और फिर अपनी किताब देखने लगा।

इसी समय डाक्टर इर्फानअलीके दीवानखानेमें भी इसी विषयपर वार्तालाप हो रहा था। डाक्टर साहब सदैव अपने पेशेकी दिल खोलकर निन्दा किया करते थे। कभी-कभी न्याय या दर्शनके अध्यापक बन जानेका इरादा करते। लेकिन उनके विचारोंमें स्थिरता न थी, न विचारोंको व्यवहारमें लानेके लिये आत्मबल ही था। नहीं,अनर्थ यह था कि वह जिन दोषोंकी निन्दा करते थे उन्हें व्यवहारमें लाते हुए जरा भी संकोच न करते थे, जैसे कोई जीर्ण रोगी पथ्योंसे ऊबकर सभी प्रकारके कुपथ्य करने लगे। उन्हें इस पेशेकी धनलोलुपतासे घृणा थी, पर आप मुवक्किलोंको बड़ी निर्दयतासे निचोड़ते थे। वकीलोंकी अनीतिका

नित्य रोना रोते थे, पर आप दुर्नीतिके परम भक्त थे। अपने हल्वे माँडेसे काम था, मुअक्किल चाहे मरे या जिये। उनकी स्वार्थपरायणता और दुर्नीतिकेही कारण लखनपूरका सर्वनाश हुआ था।

लेकिन जबसे प्रेमशङ्करने उपद्रवकारियोंके हाथोंसे उनकी रक्षा की थी, तभीसे उनकी रीति-नीति और आचार-विचारमें एक विशेष जागृति-सी दिखाई देती थी। उनकी धनलिप्सा अब उतनी निर्दय न थी, मुअक्किलोंसे बड़ी नम्रताका व्यवहार करते, उनके वृत्तान्तको विचार पूर्वक सुनते, मुकदमोंको दिल लगाकर तैयार करते, इतना ही नहीं, बहुधा गरीब मुअक्किलोंसे केवल शुकराना लेकर ही सन्तुष्ट हो जाते थे। इस सद्व्यवहारका कारण केवल यही नहीं था कि वह अपने खोये हुए सम्मानको फिर प्राप्त करना चाहते थे, बल्कि प्रेमशङ्करका संतोषमय, निष्काम और निःस्पृह जीवन उनके चित्तकी शान्ति और सहृदयताका मुख्य प्रेरक था। उन्हें जब अवसर मिलता, प्रेमशङ्करसे अवश्य मिलने जाते और हर बार उनके सरल और पवित्र जीवनसे मुग्ध होकर लौटते थे। अबतक शहरमें कोई ऐसा साधु, सात्विक पुरुष न था जो उनपर अपनी छाप डाल सके। अपने सहवर्गियोंमें वह किसीको अपनेसे अधिक विवेकशील, नीतिपरायण और सहृदय न पाते थे। इस दशामें वह अपनेकोही सर्वश्रेष्ठ समझते थे और वकालतकी निन्दा करके अपनेको धन्य मानते थे। उनकी स्वार्थवृत्तिको उन्मत्त करनेके लिये इतना ही काफी था, पर अब उनकी आँखोंके सामने एक ऐसा पुरुष उपस्थित था जो उन्हींका-सा विद्वान, लेख और वाणीमें उन्हींका-सा कुशल था, पर कितना विनयी, कितना उदार, कितना दयालु, कितना शान्तचित्त, जो उनकी असाधुतासे दुःखी होकर भी उनकी उपेक्षा न करता था। अतएव अब डाक्टर साहबको अपने पिछले अपकारोंपर पश्चात्ताप होता था। वह प्रायश्चित्त करके अपयश और कलङ्कके दागको मिटाना चाहते थे। उन्हें लज्जावश प्रेमशङ्करसे

अपीलके लिये अनुरोध करनेका साहस न होता था, पर उन्होंने सङ्कल्प कर लिया था कि अपीलमें अभियुक्तोंको छुड़ानेके लिये दिल तोड़कर प्रयत्न करूँगा। वह अपीलके खर्चका बोझ भी अपने ही सिर लेना चाहते थे। महीनोंसे अपीलकी तैयारी कर रहे थे, मुकदमेकी मिस्ले विचार पूर्वक देख डाली थीं, जिरहके प्रश्न निश्चित कर लिये थे और अपना कथन भी लिख डाला था। उन्हें इतना मालूम हो गया था कि ज्वालासिंहके आनेपर अपील होगी। उनके आनेकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे।

प्रातःकालका समय था। डाक्टर साहबको ज्वालासिंहके आनेकी खबर मिल गयी थी। उनसे मिलनेके लिये जाही रहे थे कि सैयद ईजादहुसेनका आगमन हुआ। उनकी सौम्यमूर्तिपर काला चुगा बहुत खुलता था। सलाम बन्दगीके बाद सैयद साहबने इर्फान अलीकी ओर सन्देहकी दृष्टिसे देखकर कहा—आपने देखा, इन दोनों भाइयोंने रानी गायत्रीको कैसा शीशेमें उतार लिया। एक साहबने रियासत हाथमें कर ली, और दूसरे साहब दो हजार रुपयेकी मौरूसी वसीकेदार बन गये। लौंडेकी तालीममें ज्यादासे ज्यादा चार-पाँच सौ खर्च हो जायेंगे; और क्या? दुनियाँमें कैसे-कैसे बगुलाभगत छिपे हुए हैं।

ईजादहुसेनको बदगुमानीका मर्ज था। जबसे उन्हें यह बात मालूम हुई थी उनकी छातीपर साँप लोट रहा था, मानो उन्हींकी जेबसे रुपये निकाले जाते हैं। यह कितना अनर्थ था कि प्रेमशङ्करको तो दो हजार रुपये महीने बिना हाथ पैर हिलाये घर बैठे मिल जायँ और उस गरीबको इतना छल-प्रपञ्च करनेपर भी रोटियोंकी चिन्ता लगी रहे!

डाक्टर महाशयने व्यङ्ग भावसे कहा,—इस मौकेपर आप चूक गये। अगर आप रानी साहिबाकी खिदमतमें डेपुटेशन लेकर जाते तो इत्तहादी यतीमखानेके लिये एक हजारका वसीका जरूर बँध जाता।

ईजादहुसेन—आप तो जनाब मजाक करते हैं। मैं ऐसा खुशनसीब नहीं हूँ। मगर दुनियामें कैसे-कैसे लोग पड़े हुए हैं जो तर्क १ का नूरानी जाल फैलाकर सोनेकी चिड़िया फँसा लेते हैं।

डाक्टर साहबने तिरस्कारकी दृष्टिसे देखकर कहा,—लाला ज्ञानशङ्करकी निस्बत आप जो चाहें खयाल करें, लेकिन बाबू प्रेमशङ्कर जैसे नेकनीयत आदमीपर आपका शुबहा करना बिल्कुल बेजा है। और जब वह आपके मददगारोंमें हैं तो आपका उनसे बदगुमान होना सरासर बेइन्साफी है। मैं उन्हें अर्सेसे जानता हूँ और दावेके साथ कह सकता हूँ कि ऐसा बेलौस आदमी इस शहरमें क्या मुल्कमें मुश्किलसे मिलेगा। वह अपनेको मशहूर नहीं करते; लेकिन कौमकी जो वह खिदमत कर रहे हैं काश और लोग भी करते तो यह मुल्क रश्के फिर्दौस २ हो जाता। जो आदमी दस रुपये माहवारपर जिन्दगी बसर करे, अपने मजदूरोंसे मसावात ३ का बर्ताव करे, मजलूमों ४ की हिमायत करनेमें दिलोजानसे तैयार रहे, अपने उसूलों ५ पर अपनी जायदाद तक कुर्बान कर दे, उसकी निस्बत ऐसा शक करना शराफतके खिलाफ है। आप उनके मुलाजिमोंको सौ रुपये माहवार भी रखना चाहें तो न आयेंगे। वह उनके नौकर नहीं हैं; बल्कि पैदावारमें बराबरके हिस्सेदार हैं,। गायत्री गजबकी मर्दुमशनास ६ औरत मालूम होती है।

ईजाद हुसेनने चकित होकर कहा,—क्या वाकई वह दस रुपये माहवारपर बसर करते हैं? यह क्योंकर?

ईर्फान—अपनी जरूरतोंको घटाकर। हम और आप तक-ल्लुफ ७ की चीजोंको जरूरियातमें दाखिल किये हुए हैं और रात दिन उसी फिक्रमें परेशान रहते हैं। यह नफ्स ८ की गुलामी

१—तर्क=त्याग। २—स्वर्गतुल्य। ३—बराबरी। ४—अन्याय पीड़ित। ५—सिद्धान्तों। ६—आदमियोंको पहचाननेवाली। ७—विलास। ८—इन्द्रिय।

है। उन्होंने इसे अपने काबूमें कर लिया है हम लोग अपनी फुरसतका वक्त जमाने और तकदीरकी शिकायत करनेमें सर्फ करते हैं। रात दिन इसी उधेड़ बुनमें रहते हैं कि क्योंकर और मिले। औरकी हवसमें हलाल और हरामका भी लिहाज नहीं करते। उन्हें मैंने कभी अपनी तकदीरके दुखड़े रोते हुए नहीं पाया। वह हमेशा खुश नजर आते हैं, गोया कोई गम ही नहीं.....

इतनेमें बाबू ज्वालासिंह आ पहुँचे। डाक्टर साहबने उठकर हाथ मिलाया। शिष्टाचारके बाद पूछा,—अब तो आपका इरादा यहाँ मुस्तकिल तौरपर रहनेका है न?

ज्वाला—जी हां, आया तो इसी इरादेसे हूँ।

ईर्फान—फरमाइये, अपील कब होगी?

ज्वाला—इसका जिक्र पीछे करूँगा। इस वक्त तो मुझे सैयदसे कुछ अर्ज करना है। हुजूरके दौलतखानेपर हाजिर हुआ था। मालूम हुआ आप यहाँ तशरीफ रखते हैं। मुझे बाबू प्रेम-शङ्करने आपसे यह पूछनेके लिये भेजा है कि आप मायाशङ्करको उर्दू-फारसी पढ़ाना मँजूर करेंगे।

इर्फान—मँजूर क्यों न करेंगे, घर बैठे-बैठे क्या करते हैं? जलसे तो सालमें दस पाँच ही होते हैं और रोटियोंकी फिक्र चौबीसों घण्टे सिरपर सवार रहती है। तनख्वाह क्या तजवीज की है।

ज्वाला—अभी १००) माहवार मिलेंगे।

ईर्फान—बहुत माकूल है। क्यों मिर्जासाहब, मँजूर है न! ऐसा मौका आपको फिर न मिलेगा।

ईजादहुसेनने कृतज्ञभावसे कहा—दिलोजानसे हाजिर हूँ। मेरी जबानमें ताकत नहीं है कि इस एहसानका शुक्रिया अदा कर सकूँ। हैरत तो यह है कि मुझे उनसे एक ही बार नियाज हासिल हुआ और उन्हें मेरी परवरिशका इतना खयाल है।

ज्वाला—वह आदमी नहीं, फरिश्ते हैं। आपके यतीमखानेका कई बार जिक्र कर चुके हैं। शायद यतीमोंके लिये कुछ वजीफे मुकर्रर करना चाहते हैं। इस वक्त सब कितने यतीम हैं?

उपकारने ईजाद हुसेनके हृदयको पवित्र भावोंसे परिपूरित कर दिया था। अतिशयोक्तिसे काम न ले सके। एक क्षणतक वह असमञ्जसमें पड़े रहे, पर अन्तमें सद्भावोंने विजय पायी। बोले, – जनाब, अगर आपने किसी दूसरे मौकेपर यह सवाल किया होता तो मैं उसका कुछ और ही जवाब देता, पर आप लोगोंकी शराफत और हमदर्दीका मुझ जैसे दगाबाज आदमीपर भी असर पड़ ही गया। मेरे यहाँ दो किस्मोंके यतीम हैं। एक मुस्तकिल और दूसरे फसली। जरूरतके वक्त इन दोनोंकी तायदाद पचाससे भी बढ़ जाती है, लेकिन फसली यतीमोंको निकाल दीजिये तो सिर्फ दस यतीम रह जाते हैं। मुमकिन है, आप इनको यतीम न खयाल करें, लेकिन मैं समझता हूँ, गरीब आदमीके अजीर्जोंके लड़के सच्चे यतीम हैं।

इर्फानअलीने मुस्कराकर कहा, – तो हजरत आपने क्या यतीमखानेका स्वाँग ही खड़ा कर रखा है? कमसे कम मुझसे तो परदा न रखना चाहिये था। तभी आपने अपनी सारी जायदाद यतीमखानेके नाम लिख दी थी।

ईजाद हुसेनने शर्मसे सिर झुकाकर कहा—केवल:, जरूरत इन्सानसे सब कुछ करा लेती है, मैं वकील नहीं, बैरिस्टर नहीं, ताजिर नहीं, जागीरदार नहीं, एक मामूली लियाकतका आदमी हूँ। मुझ बदनसीबके वालिद टोंककी रियासतमें ऊँचे मंसबदार थे। हजारोंकी आमदनी थी, हजारोंका खर्च। जबतक वह जिन्दा रहे, मैं आजाद घूमता रहा। कनकौये और बटेरोंसे दिल बहलाता रहा। उनकी आँखें बन्द होते ही खान्दानकी परवरिशका भार मुझपर पड़ा और खान्दान भी वह जो ऐशका आदी था। मेरी गैरतने गवारा न किया कि जिन लोगोंपर वालिद मरहूमने

अपना साया कर रखा था उनसे मुँह मोड़ लूँ। मुझमें लियाकत न हो, पर खान्दानी गैरत मौजूद थी। बुरी सोहबतोंने दगा और मक्रके फनमें पुख्ताकर दिया। टोंकमें गुजरानकी कोई सूरत न देखी तो सरकारी मुलाजमत कर ली और कई जिलोंकी खाक छानता हुआ यहाँ आया। आमदनी कम थी, खर्च ज्यादा। थोड़े दिनोंमें घरकी लेई पूञ्जी गायब हो गयी। अब सिवाय इसके और कोई सूरत न थी कि या तो फाके करूँ या गुजरानकी कोई नयी राह निकालूँ। सोचते-सोचते यही सूझी जो अब कर रहा हूँ।

इर्फान अली—अन्दाजन आपको सालाना कितने रुपये मिल जाते होंगे?

ईजाद—अब क्या कुछ भी परदा न रहने दीजियेगा?

इर्फान—अधूरी कहानी नहीं छोड़ी जाती।

ईजाद—तो जनाब कोई बंधी हुई रकम है नहीं, और न मैं हिसाब लिखनेका आदी हूं। जो कुछ मुकद्दरमें है मिल जाता है। कभी-कभी एक-एक महीनेमें हजारोंका याफत हो जाती है कभी महीनों रुपयेकी सूरत देखनी नसीब नहीं होती। मगर कम हो या ज्यादा, इस कमाईमें बरकत नहीं है। हमेशा शैतानकी फटकार रहती है। कितनी ही अच्छी गिजा खाइये, कितने ही कीमती कपड़े पहनिये, कितने ही शानसे रहिये, पर वह दिली इतमीनान नहीं हासिल होता जो हलालकी रूखी रोटियाँ और गजी गाढ़ोंमें है। कभी-कभी तो इतना अफसोस होता है कि जी चाहता है जिन्दगीका खातमा हो जाय तो बेहतर। मेरे लिये सौ रुपये लाखोंके बराबर हैं। इन्शा अल्लाह, इर्शाद भी जल्द ही किसी-न-किसी काममें लग जायगा तो रोजीकी फ़िक्रसे निजात हो जायगी। बाकी जिन्दगी तोबा और इबादतमें गुजरेगी। 'इत्तहाद' की खिदमत अब भी करता रहूँगा, लेकिन अबसे यह सच्ची खिदमत होगी, खुदगर्जीसे पाक। इसका सवाब खुदा बाबू प्रेमशङ्करको अता करेगा।

थोड़ी देर अपीलके विषयमें परामर्श करनेके बाद ज्वाला-सिंह मिर्जासाहबको साथ लेकर हाजीपूर चले। डाक्टर साहब भी साथ हो लिये।

५६

ज्योंही दशहरेकी छुट्टियोंके बाद हाईकोर्ट खुला, अपील दायर हो गयी और समाचारपत्रोंके कालम उसकी कार्य्यवाहीसे भरे जाने लगे। समस्या बड़ी जटिल थी। दण्डप्राप्तोंने उन साक्षियों-को फिर पेश किये जानेकी प्रार्थना की थी, जिनके आधारपर उन्हें दंड दिये गये थे। सरकारी वकीलने इस प्रार्थनाका घोर विरोध किया; किन्तु इर्फानअलीने अपने दावेको ऐसी सबल युक्तियोंसे पुष्ट किया और दंड-भोगियोंपर हुई निर्दयताको ऐसे करुण-भावसे व्यक्त किया, कि जजोंने मुकदमेकी दोबारा जाँच किये जानेकी अनुमति दे दी।

मातहत अदालतने विवश होकर फिर शहादतोंको तलब किया। बिसेसर साह, डाक्टर प्रियनाथ, दारोगा खुर्शेदआलम, कर्तारसिंह, फैजू और तहसीलदार साहब कचहरीमें हाजिर हुए। बिसेसर साहका बयान तीन दिन तक होता रहा। बयान क्या था, पुलिसके हथकंडों और कूटनीतिका विशद और शिक्षाप्रद निरूपण था। अब वह दुर्बल इनकमटैक्ससे डरनेवाला, पुलिसके इशारोंपर नाचनेवाला बिसेसर साह न था। इन दो वर्षोंकी ग्लानि, पश्चात्ताप और दैविक व्याधियोंने सम्पूर्णतः उसकी काया पलट दी थी। एक तो उसका बयान योंही भण्डाफोड़ था, दूसरे इर्फानअलीकी जिरहोंने रहा-सहा पर्दा भी खोल दिया। सरकारी वकीलने पहले तो बिसेसरको अपने पिछले बयानसे फिर जानेपर धमकाया, जजने भी डाँट बतलायी, पर बिसेसर जरा भी न डग-मगाया। इर्फानअलीने बड़ी नम्रतासे कहा, गवाहका यों फिर जाना बेशक सजाके काबिल है; पर इस मुकदमेकी हालत निराली है। यह सारा तूफान पुलिसका खड़ा किया हुआ है। इतने

बेगुनाहोंकी जिन्दगीका खयाल करके अदालतको शहादतके कानूनकी इतनी सख्तीसे पाबन्दी न करनी चाहिये। इन विनीत शब्दोंने जजसाहबको शान्त कर दिया। पुराना जज तबदील हो गया था, उसकी जगह यह नये साहब आये थे।

सरकारी वकीलने भी अपने पक्षके अनुकूल खूब जिरह की, सिद्ध करना चाहा कि गाँववालोंकी धमकी, प्रेमशङ्करके आग्रह या इसी प्रकारके अन्य सम्भावित कारणोंने गवाहको विचलित कर दिया; पर बिसेसर किसी तरह फन्देमें न आया। अंग्रेजी और जातीय पत्रोंने इस घटनाकी आलोचना करनी शुरू की। अंग्रेजी पत्रोंका अनुमान था कि गवाहका यह रूपान्तर, राष्ट्र-वादियोंके दुराग्रहका फल है। उन्होंने पुलिसको नीचा दिखानेके लिये यह चाल खेली है। अदालतने इस बयानको स्वीकार करनेमें बड़ी भूल की है। मुखबिरको यथोचित दण्ड मिलना चाहिये। हिन्दुस्तानी पत्रोंको पुलिसपर छींटे उड़ानेका अवसर मिला। अदालतमें मुकदमा पेश ही था, मगर पत्रोंने आग्रह करना शुरू किया, कि पुलिसके कर्मचारियोंसे जवाब तलब करना चाहिये। एक मनचले पत्रने लिखा, यह घटना इस बातका उज्ज्वल प्रमाण है, कि हिन्दुस्तानकी पुलिस प्रजा-रक्षणके लिये नहीं, वरन् भक्षणके लिये स्थापित की गयी है। अगर खोज की जाय तो पूर्णतः सिद्ध हो जायगा कि यहाँकी ८७ सैकड़े दुर्घटनाओंका उत्तरदायित्व पुलिसके सिर है। बाजे पत्रोंको पुलिसकी आड़में जमींदारोंके अत्याचारका भयंकर रूप दिखाई देता था। उन्हें जमींदारोंके न्यायपर जहर उगलनेका अवसर मिला। कतिपय पत्रोंने जमींदारोंकी दुरवस्थापर आँसू बहाने शुरू किये। यह आन्दोलन होने लगा कि सरकारकी ओरसे जमींदारोंको ऐसे अधिकार मिलने चाहिये कि वह अपने असामियोंको काबूमें रख सकें, नहीं तो बहुत संभव है कि उच्छृङ्खलताका यह प्रचण्ड झोंका सामाजिक संगठनको जड़से हिला दे।

बिसेसर साहके बाद डाक्टर प्रियनाथकी शहादत हुई। पुलिस अधिकारियोंको उनपर पूरा विश्वास था; पर जब उनका बयान सुना, तो हाथोंके तोते उड़ गये। उनके कूतूहलका पारावार न था, मानों किसी नये जगत्की सृष्टि हो गयी। वह पुरुष जो पुलिसका दाहिना हाथ बना हुआ था, जो पुलिसके हाथोंकी कठपुतली था, जिसने पुलिसकी बदौलत हजारों कमाये, वह आज यों दगा दे जाये,नीतिको इतनी निर्दयतासे पैरोंतले कुचले!

डाक्टर साहबने स्पष्ट कह दिया कि पिछला बयान शास्त्रोक्त न था, लाशके हृदय और यकृतकी दशा देखकर मैंने जो धारणा की थी, वह शास्त्रानुकूल नहीं थी। बयान देनेके पहले मुझे पुस्तकोंको देखनेका अवसर न मिला था। इन स्थलोंमें खूनका रहना सिद्ध करता है कि उनकी क्रिया आकस्मिक रीतिपर बन्द हो गयी। यन्त्राघातके पहले गला घोंटनेसे यह क्रिया क्रमसे बंद होती और इतनी मात्रामें रक्तका जमना सम्भव न था। अपनी युक्तिके समर्थनमें उन्होंने कई प्रसिद्ध डाक्टरोंकी सम्मतिका भी उल्लेख किया। डाक्टर इर्फान अलीने भी इस विषयपर कई प्रामाणिक ग्रन्थोंका अवलोकन किया था। उनकी जिरहोंने प्रियनाथकी धारणाको और भी पुष्ट कर दिया। तीसरे दिन सरकारी वकीलकी जिरह शुरू हुई। उन्होंने जब वैद्यक प्रश्नोंसे प्रियनाथको काबूमें आते न देखा, तब उनकी नीयतपर आक्षेप करने लगे।

वकील—क्या यह सत्य है कि पहले जिस दिन इस अभियोगका फैसला सुनाया गया था, उस दिन उपद्रवकारियोंने आपके बँगलेपर जाकर आपको घेर लिया था?

प्रिय—जी हाँ।

वकील—उस समय बाबू प्रेमशङ्करने आपको मारपीटसे बचाया था?

प्रिय—जी हाँ, वह न आते तो शायद मेरी जान न बचती।

वकील—यह भी सत्य है कि आपको बचानेमें वह स्वयं जख्मी हो गये थे ?

प्रिय - जी हाँ, उन्हें बहुत चोट आयी थी। कन्धेकी हड्डी टूट गयी थी।

वकील—आप यह भी स्वीकार करेंगे कि वह दयालु प्रकृति-के मनुष्य हैं और अभियुक्तोंसे उन्हें सहानुभूति है।

प्रिय—जी हाँ, ऐसा ही है।

वकील—ऐसी दशामें यह स्वाभाविक है कि उन्होंने आप-को अभियुक्तोंकी रक्षा करनेपर प्रेरित किया हो ?

प्रिय—मेरे और उनके बीचमें इस विषयपर कभी बातचीत भी नहीं हुई।

वकील—क्या यह सम्भव नहीं है,कि उनके एहसानने आप-को अज्ञात रूपसे बाधित किया हो ?

प्रिय—मैं अपने व्यक्तिगत भावोंको अपने कर्तव्यसे अलग रखता हूँ। यदि ऐसा होता तो सबसे पहले बाबू प्रेमशङ्कर ही मेरी अवहेलना करते।

वकील साहब एक पहलूसे दूसरे पहलूपर आते थे, पर प्रियनाथ चालाक मछलीकी तरह चारा कुतरकर निकल जाते थे। दो दिनतक जिरह करनेके बाद अन्तमें हारकर बैठ रहे।

दारोगा खुर्शेद आलमका बयान शुरू हुआ। यह उनके पहले बयानकी पुनरावृत्ति थी; पर दूसरे दिन इर्फान अलीकी जिरहोंने उन्हें बिलकुल उखाड़ दिया। बेचारे बहुत तड़फड़ाये;पर जिरह-जालसे न निकल सके।

इर्फान अलीको अब अपनी सफलताका विश्वास हो गया। वह आज अदालतसे निकले, तो बाछें खिली जाती थीं। इसके पहले भी बड़े-बड़े मुकदमोंकी पैरवी कर चुके थे और दोनों जेब नोटोंसे भरे हुए घर चले थे;पर चित्त कभी इतना प्रफुल्लित न हुआ था। प्रेमशङ्कर तो ऐसे खुश थे मानों लड़केका विवाह हो रहा हो।

इसके बाद तहसीलदार साहबका बयान हुआ। वह घंटोंतक लखनपूरवालोंकी उद्दण्डता और दुर्जनताका आल्हा गाते रहे, लेकिन इर्फान अलीने दस ही मिनटमें उनका सारा ताना-बाना उधेड़कर रख दिया।

इर्फान—आप यह तसलीम करते हैं कि यह सब मुलजिम लखनपूरके खास आदमियोंमें हैं?

तहसीलदार—हो सकते हैं, लेकिन जातके अहीर, जुलाहे और कुर्मी हैं।

इर्फान—अगर कोई चमार लखपती हो जाय, तो आप उससे अपनी जूती गँठवानेका काम लेते हुए हिचकेंगे या नहीं?

तहसीलदार—उन आदमियोंमें कोई लखपती नहीं है?

इर्फान—मगर सब काश्तकार हैं, मजदूर नहीं। उनसे आपको घास छिलवानेका क्या मजाज था?

तहसीलदार—सरकारी जरूरत।

इर्फान—क्या यह सरकारी जरूरत मजदूरोंको मजदूरी देकर काम करानेसे पूरी न हो सकती थी?

तहसीलदार—मजदूरोंकी तायदाद उस गाँवमें ज्यादा नहीं है।

इर्फान—आपके चपरासियोंमें अहीर, कुर्मी या जुलाहे न थे? आपने उनसे यह काम क्यों न लिया?

तहसीलदार—उनका यह काम नहीं है।

इर्फान—और काश्तकारोंका यह काम है?

तहसीलदार—जब जरूरत पड़ती है, तो उनसे भी ये काम लिये जाते हैं।

इर्फान—आप जानते हैं, जमीन लीपना किसका काम है?

तहसीलदार—यह किसी खास जातका काम नहीं है।

इर्फान—मगर आपको इससे तो इन्कार नहीं हो सकता कि आम तौरपर अहीर और ठाकुर यह काम नहीं करते?

तहसीलदार—जरूरत पड़नेपर कर सकते हैं।

इर्फान—जरूरत पड़नेपर क्या आप अपने घोड़ेके आगे घास नहीं डाल देते? क्या इस लिहाजसे आप अपनेको साईस कहलाना पसन्द करेंगे?

तहसीलदार—मेरी हालतका उन काश्तकारोंसे मुकाबला नहीं हो सकता।

इर्फान—बहरहाल यह आपको मानना पड़ेगा कि जो लोग जिस कामके आदी नहीं हैं वे उसे करना अपनी जिल्लत समझते हैं,उनसे वह काम लेना बेइन्साफी है। कोई बरहमन खुशीसे आपके बर्तन न धोयेगा। अगर आप उससे जबरन यह काम लें, तो वह चाहे खौफसे करे; पर उसका दिल जख्मी हो जायेगा। वह मौका पायेगा तो आपकी शिकायत करेगा।

तहसीलदार—हाँ, आपका यह फरमाना बजा है, लेकिन कभी-कभी अफसरोंको मजबूर होकर सभी कुछ करना पड़ता है।

इर्फान—तो आपको ऐसी हालतोंमें नामुलायम बातें सुननेके लिये भी तैयार रहना चाहिये। फिर लखनपूरवालोंपर क्यों इलजाम रखते हैं, यह इन्साफी फितरत*का कसूर है। अब तो आप तसलीम करेंगे कि इन काश्तकारोंसे जो बेअदबी हुई वह आपकी ज्यादतीका नतीजा था।

तहसीलदार—अफसरोंकी आसाइशके लिये……

तहसीलदार साहबका आशय समझकर जजने उन्हें रोक दिया।

इर्फान अली जब सन्ध्या समय घर पहुँचे तब उन्हें बाबू ज्ञानशङ्करका अर्जेण्ट तार मिला। उन्होंने एक जरूरी मुकदमेकी पैरवी करनेके लिये बुलाया था। एक हजार रुपये रोजाना मेहनतानाका वादा था। डाक्टर साहबने तार फाड़कर फेंक दिया और

---

* फितरत—स्वभाव

तत्क्षण तारसे जवाब दिया—खेद है मुझे फुर्सत नहीं है। मैं लखनपूरके मामलेकी पैरवी कर रहा हूँ।

५७

गायत्रीकी दशा इस समय उस पथिककी-सी थी, जो साधु-भेषधारी डाकुओंके कौशल-जालमें पड़कर लुट गया हो। वह उस पथिककी भाँति पछताती थी, कि मैं कुसमय चली क्यों? मैंने चलती हुई सड़क क्यों छोड़ दी? मैंने भेष बदले हुए साधुओंपर विश्वास क्यों किया और उनको अपने रुपयोंकी थैली क्यों दिखायी? उसी पथिककी भाँति अब वह प्रत्येक बटोहीको आशङ्कित नेत्रोंसे देखती थी। यह विडम्बना उसके लिये सहस्रों उपदेशोंसे अधिक शिक्षाप्रद और सजगकारी थी। अब उसे याद आता था कि एक साधुने मुझे प्रसाद खिलाया था। जरा दूर चलकर मुझे प्यास लगी तो उसने मुझे शर्बत पिलाया, जो तृषित होनेके कारण मैंने पेट भरकर पीया। अब उसे यह भी ज्ञात हो रहा था कि वह प्यास उसी प्रसादका फल थी। ज्यों-ज्यों वह उस घटनापर विचार करती थी, उसके सभी रहस्य, कारण और कार्य्यके सूत्रमें बँधे हुए मालूम होते थे। गायत्रीने अपने आभूषण तो बनारसमें ही उतारकर श्रद्धाको सौंप दिये थे, अब उसने रङ्गीन कपड़े भी त्याग दिये। पान खानेका उसे शौक था। उसे भी छोड़ा। आईने और कंघीको त्रिवेणीमें डाल दिया। रुचिकर भोजनको तिलांजलि दी। उसे अनुभव हो रहा था कि इन्हीं व्यसनोंने मेरे मनको चञ्चल बना दिया। मैं अपने सतीत्वके गर्वमें विलासप्रेमको निर्विकार समझती थी। मुझे यह न सूझता था कि वासना केवल इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके संतुष्ट नहीं होती, वह शनैः शनैः मनको भी अपना आज्ञाकारी बना लेती है। अब वह केवल एक उजली साड़ी पहनती थी, नंगे पाँव चलती थी और रूखा-सूखा भोजन करती थी। इच्छाओंको दमन कर रही थी, उन्हें कुचल डालना चाहती थी। शीशा ज्यों-ज्यों साफ होता

है, उसके बाल स्पष्ट होते जाते हैं। गायत्रीको अब अपने मनकी कुप्रवृत्तियाँ साफ दिखाई दे रही थीं। कभी-कभी क्षोभ और ग्लानिके उद्वेगमें उसका जी चाहता कि प्राणघात कर लूँ। उसे अब स्वप्नमें अक्सर अपने पतिके दर्शन होते। उनकी मर्मभेदी बातें कलेजेके पार हो जातीं, उनकी तीव्र दृष्टि हृदयको छेद डालती।

बनारससे वह प्रयाग आयी और कई दिनोंतक झूसीकी एक धर्मशालामें ठहरी रही। यहाँ उसे कई महात्माओंके दर्शन हुए, लेकिन उसे उनके उपदेशोंसे शांति न मिली। वे सब दुनियाँके बन्दे थे, पहले तो उससे बाततक न की; पर ज्योंही मालूम हुआ कि यह रानी-गायत्री है, त्योंही सब ज्ञान और वैराग्यके पुतले बन गये। गायत्रीको विदित हो गया कि उनका त्याग केवल उद्योग-हीनता है और उनका भेष केवल सरल-हृदय भक्तोंके लिये माया-जाल। वह निराश होकर चौथे दिन हरिद्वार जा पहुँची; पर यहाँ धर्मका आडम्बर तो बहुत देखा, भाव कम। यात्रिगण दूर-दूरसे आये हुए थे; पर तीर्थ करनेके लिये नहीं, केवल विहार करनेके लिये। आठों पहर गङ्गातटपर विलास और आभूषणकी बहार रहती थी। गायत्री खिन्न होकर तीसरे ही दिन यहाँसे हृषीकेश चली गयी। वहाँ उसने किसीको अपना परिचय न दिया। नित्य पहर रात रहे उठती और गङ्गास्नान करके दो-तीन घंटे गीताका पाठ किया करती। शेष समय धर्मग्रन्थोंके पढ़नेमें काटती। संध्याको साधु-महात्माओंके ज्ञानोपदेश सुना करती। यद्यपि वहाँ दो-एक त्यागी आत्माओंके दर्शन हुए; पर कोई ऐसा तत्त्व-ज्ञानी न मिला, जो उसके चित्तको संसारसे विरक्त कर दे, इतना संयम और इन्द्रिय-निग्रह करनेपर भी सांसारिक चिन्ताएँ उसे सताया करती थीं। मालूम नहीं, घरपर क्या हो रहा है। न जाने सदाव्रत चलता है या ज्ञानशङ्करने बन्द कर दिया। फर्श आदिकी न जाने क्या दशा होगी। नौकर-चाकर चारों ओर लूट मचा रहे होंगे। मेरे दीवानखानेमें मनों गर्द जम गयी होगी। अबकी अच्छी

तरह मरम्मत न हुई होगी, तो छतें कई जगह फट गयी होंगी। मोटरें और बग्घियाँ रोज माँगी जाती होंगी, जो ही आकर दो-चार लल्लो-चप्पोकी बातें करता होगा, लालाजी उसीको दे देते होंगे। समझते होंगे अब तो मैं मालिक हूँ। बगीचा बिलकुल जंगल हो गया होगा। ईश्वर जाने कोई चिड़ियों और जानवरों-की सुधि लेता है या नहीं। बेचारे भूखों मर गये होंगे। दोनों पहाड़ी मैंने कितनी दौड़-धूप करनेपर मिले थे। अब या तो मर गये होंगे या कोई माँग ले गया होगा। सन्दूकोंकी कुञ्जियाँ तो श्रद्धाको दे आयी हूँ; पर ज्ञानशङ्कर जैसे दुष्टचरित्र आदमीसे कोई बात बा.र नहीं। बहुधा धर्मग्रन्थोंके पढ़ते या मन्त्र जाप करते समय ये दुश्चिन्ताएँ उसे आ घेरती थीं। जैसे टूटे हुए बर्तनमें एक ओरसे पानी भरो और दूसरी ओरसे टपक जाता है, उसी तरह गायत्री एक ओर तो आत्मशुद्धिकी क्रियाओंमें तत्पर हो रही थी, पर दूसरी ओर चिन्ता-व्याधि उसे घेरे रहती थी। वह शान्ति, वह एकाग्रता न प्राप्त होती थी, जो आत्मो-त्कर्षका मूल मन्त्र है। आश्चर्य्य तो यह है, कि वह इन विघ्न-बाधाओंका स्वागत करती थी और उन्हें प्यारसे हृदयागारमें बैठाती थी। वह बनारससे यह ठानकर चली थी, कि अब संसार-से कोई नाता न रखूँगी, लेकिन अब उसे ज्ञात होता था कि आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये वैराग्यकी जरूरत नहीं है। मैं अपने घर रहकर, रियासतकी देखरेख करते हुए क्या निर्लिप्त नहीं रह सकती; पर इस विचारसे उसका जी झुँझला पड़ता था। वह अपनेको समझती, अब मुझे रियासतसे क्या प्रयोजन है, बहुत भोग कर चुकी, अब मुझे मोक्षमार्गपर ही चलना चाहिये, यह जन्म तो बिगड़ ही गया, दूसरा जन्म क्यों बिगाड़ूँ?

इसी तर्क-वितर्कमें गायत्री बद्रीनाथकी यात्रापर आरूढ़ न हो सकी, हृषिकेशमें पड़े-पड़े तीन महीने गुजर गये और हेमन्त सिरपर आ पहुँचा, यात्रा दुस्साध्य हो गया।

पौष मास था, पहाड़ोंपर बर्फ गिरने लगी थी। प्रातःकाल-की सुनहरी किरणोंमें तुषारमंडित पर्वतश्रेणियोंकी शोभा अकथनीय थी। एक दिन गायत्रीने सुना कि चित्रकूटमें कहींसे ऐसे महात्मा आये हैं, जिनके दर्शनमात्रसे ही आत्मा तृप्त हो जाती है। वह उपदेश बहुत कम करते हैं, लेकिन उनका दृष्टिपात उपदेशों-से भी ज्यादा सुधावर्षी होता है। उनके मुखमण्डलपर ऐसी कान्ति है, मानों तपाया हुआ कुन्दन हो, दूधही उनका आहार है और वह भी एक छटाँकसे अधिक नहीं, पर डीलडौल और तेजबल ऐसा है, कि ऊँची-से-ऊँची पहाड़ियोंपर खटाखट चढ़ते चले जाते हैं, न दम फूलता है, न पैर काँपते हैं, न पसीना आता है। उनका पराक्रम देखकर अच्छे-अच्छे योगी भी दंग रह जाते है, पसूनीके गलते हुए पानीमें पहर रातसे ही खड़े होकर दो-तीन घण्टे तप किया करते हैं। उनकी आँखोंमें कुछ ऐसा आकर्षण है, कि बनके जीवधारी भी उनके इशारोंपर चलने लगते हैं। गायत्रीने उनकी सिद्धिका यह वृत्तान्त सुना, तो उसे उनके दर्शनोंकी प्रबल उत्कण्ठा हुई। उसने दूसरे ही दिन चित्रकूटकी राह ली और चौथे दिन पसूनीके तटपर एक धर्मशालामें बैठी हुई थी।

यहाँ जिसे देखिये, वही स्वामीजीका कीर्त्तिगान कर रहा था। भक्तजन दूर-दूरसे आये हुए थे। कोई कहता था यह त्रिकालदर्शी हैं, कोई उन्हें आत्मज्ञानी बतलाता था। गायत्री उनकी सिद्धि-की कथाएँ सुनकर इतनी विह्वल हुई, कि इसी दम जाकर उनके चरणोंपर सिर रख दे; लेकिन रातसे मजबूर थी। वह सारी रात करवटें बदलती और सोचती रही, कि मैं मुँह अँधेरे जाकर महात्माजीके पैरोंपर गिर पड़ूँगी और कहूँगी कि महाराज, मैं अभागिनी हूँ, आप आत्मज्ञानी हैं, आप सर्वज्ञ हैं, मेरा हाल आपसे छिपा हुआ नहीं है, मैं अथाह जलमें डूबी जाती हूँ, अब आप ही मुझे उबार सकते हैं, मुझे ऐसा उपदेश दीजिये और मेरी निर्बल

आत्माको इतनी शक्ति प्रदान कीजिये, कि वह माया-मोहके बंधनों-से मुक्त हो जाय। मेरे हृदयस्थलमें अन्धकार छाया हुआ है, उसे आप अपनी व्यापक ज्योतिसे आलोकित कर दीजिये। इस दीनकल्पनासे गद्गद् होकर घण्टों रोती रही। उसकी कल्पना इतनी सजग हो गयी, कि स्वामीजीके आश्वासन-शब्द भी उसके कानोंमें गूँजने लगे। ज्यों ही मैं उनके चरणोंपर गिरूँगी, वह प्रेमसे मेरे सिरपर हाथ रखकर कहेंगे, बेटी, तुझपर बड़ी विपत्ति पड़ी है, ईश्वर तेरा कल्याण करेंगे। जाड़ेकी लम्बी रात किसी भाँति कटती ही न थी। वह बार-बार उठकर देखती, तड़का तो नहीं हो गया है, लेकिन आकाशमें जगमगाते हुए तारोंको देखकर निराश हो जाती थी। पाँचवीं बार जब वह उठी, तो पौ फट रही थी। तारागण किसी मधुर गानके अन्तिम स्वरोंकी भाँति लुप्त होते जाते थे। आकाश एक पीतवस्त्रधारी योगीकी भाँति था, जिसका मुखकमल आत्मोल्लाससे खिला हुआ हो और पृथ्वी एक माया-रहस्य थी, ओसके नीले परदेमें छिपी हुई। गायत्रीने तुरन्त पसूनीमें स्नान किया और स्वामीजीके दर्शन करने चली।

स्वामीजीकी कुटी एक ऊँची पहाड़ीपर थी। वहाँ वह एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। वहीं चट्टानोंके फर्शपर भक्तजन आ-आकर बैठते जाते थे। चढ़ाई कठिन थी; पर श्रद्धा लोगोंको ऊपर खींचे लिये जाती थी, अशक्तता और निर्बलताने भी सदानुरागके सामने सिर झुका दिया था। नीचेसे ऊपरतक आदमियोंका ताँता लगा हुआ था। गायत्रीने पहाड़ीपर चढ़ना शुरू किया। थोड़ी दूर चढ़कर उसका दम फूल गया। पैर मन-मन भरके हो गये, उठाये न उठते थे, लेकिन वह दम ले-लेकर हाथों और घुटनोंके बल चट्टानोंपर चढ़ती हुई ऊपर जा पहुँची। उसकी सारी देह पसीनेसे तर थी और आँखके सामने अँधेरा छा रहा था, लेकिन ऊपर पहुँचते ही उसका चित्त ऐसा प्रफुल्लित हुआ, जैसे किसी प्यासे-को पानी मिल जाय। गायत्रीकी छातीमें धड़कन-सी होने लगी।

ग्लानिकी ऐसी विषम, ऐसी भीषण पीड़ा उसे कभी न हुई थी। इस ज्ञानज्योतिको कौनसा मुँह दिखाऊँ! उसे स्वामीजीकी ओर ताकनेका साहस न हुआ, जैसे कोई आदमी सर्राफके हाथ में खोटा सिक्का देता हुआ डरे। वह इसी हैस-बैसमें थी कि सहसा उसके कानोंमें आवाज आयी—गायत्री, मैं बहुत देरसे तेरी बाट जोह रहा हूँ। यह राय कमलानन्दकी आवाज थी, करुणा और स्नेहमें डूबी हुई। गायत्रीने चौंककर सामने देखा, स्वामीजी उसकी ओर चले आ रहे थे। उनके तेजोमय मुखारविन्दपर करुणा झलक रही थी और आँखें प्रेमाश्रुसे भरी हुई थीं। गायत्रीकी आँखें झुक गयीं। ऐसा जान पड़ा, मानों मैं तेजतरङ्गोंमें बही जाती हूँ। हा! मैं इस विशाल आत्माकी पुत्री। ग्लानिने कहा, हा पतिता! लज्जाने कहा, हा कुलकलङ्किनी। निराशा बोली, हा, अभागिनी! शोकने कहा, तुझपर धिक्कार! तू इस योग्य नहीं कि संसारको अपना मुँह दिखाये। अधःपतनमें अब क्या शेष है, जिसके लिये जीवनकी अभिलाषा! विधाताने तेरे भाग्यमें ज्ञान और वैराग्य नहीं लिखा। इन दुष्कल्पनाओंने गायत्रीको इतना मर्माहत किया कि पश्चात्ताप, आत्मोद्धार और परमार्थकी सारी सदिच्छाएँ लुप्त हो गयीं। उसने उन्मत्त नेत्रोंसे नीचेकी ओर देखा और तब जैसे कोई चोट खाया हुआ पक्षी दोनों डैने फैला, वृक्षसे गिरता है और वह दोनों हाथ फैलाये शिखरपरसे गिर पड़ी। नीचे एक गहरा कुण्ड था। उसने उसकी अस्थियोंको संसारके निर्दय कटाक्षोंसे बचानेके लिये अपने अंतस्तलके अपार अंधकारमें छिपा लिया।

५८

लाला प्रभाशङ्करने भविष्यचिन्ताका पाठ न पढ़ा था। 'कल' की चिन्ता उन्हें कभी न सताती थी। उनका समस्त जीवन विलास और कुल-मर्यादाकी रक्षामें व्यतीत हुआ था। खिलाना, खाना और नामके लिये मर जाना—यही उनके जीवनके ध्येय थे;

उन्होंने सदैव इसी त्रिमूर्त्तिकी आराधना की थी और अपनी वंशगत सम्पत्तिका अधिकांश बर्बाद कर चुकनेपर भी,वह अपने व्यावहारिक नियमोंमें संशोधन करनेकी जरूरत नहीं समझते थे, या समझते थे तो अब किसी नये मार्गपर चलना उनके लिये असाध्य था। वह एक उदार, गौरवशील पुरुष थे। सम्पत्ति उनकी दृष्टिमें मर्य्यादा-पालनका एक साधनमात्र थी। इससे श्रीवृद्धि भी हो सकती है। धनसे धनकी उन्नति भी हो सकती है, यह उनके ध्यानमें भी न आया था। चिन्ताओंको वह तुच्छ समझते थे, शायद इसलिये कि उनका निवारण करनेके लिये ज्यादासे ज्यादा अपने महाजनके द्वारतक जाना पड़ता था। उनका जो समय और धन मेहमानोंके आदर-सत्कारमें लगता था, उसीको वह श्रेयस्कर समझते थे। दान-दक्षिणाके शुभ-अवसर आते, तो उनकी हिम्मत आसमानपर जा पहुँचती थी। उस नशेमें उन्हें इसकी सुध न रहती थी, कि फिर क्या होगा, और काम कैसे चलेंगे ? यह बड़ी बहूका ही काम था, कि इस चढ़ी हुई नदीको थामे। वह रुपयेको उनकी आँखोंसे इस तरह बचाती थीं, जैसे दीपकको हवासे बचाते हैं। वह बेधड़क कह देती थीं, अब यहाँ कुछ नहीं है। लालाजी उन्हें धिक्कारने लगते, दुष्टा, अभागिनी, तुच्छहृदया जो कुछ मुँहमें आता कहते; पर वह टससे मस न होती थी। अगर वह सदैव इसी नीतिपर चल सकती, तो अबतक जायदाद बची रहती; पर लालासाहब ऐसे अवसरोंपर कौशलसे काम लेते, वह विनयके महत्वसे अनभिज्ञ थे। बड़ी बहू उनके कोपका सामना कर सकती थीं; पर उनके मृदुवचनोंसे हार जातीं।

प्रेमशङ्करकी जमानतके अवसरपर लाला प्रभाशङ्करने जो रुपये कर्ज लिये थे, उसका अधिकांश उनके पास बच रहा था। यह रुपये उन्होंने महाजनको लौटाकर न दिये। शायद ऋण धनको वह अपनी कमाई समझते थे। धनप्राप्तिका कोई अन्य

उपाय उन्हें ज्ञात ही न था। बहुत दिनोंके बाद इतने रुपये एक मुश्त उन्हें मिले थे—मानों भाग्यसूर्य्य उदय हो गया। आत्मीय जनों और मित्रोंके यहाँ तोहफे और सौगात आने लगे, मित्रोंकी दावतें होने लगीं। लालाजी पाककलामें सिद्धहस्त थे। उनका निजरचित एक ग्रन्थ था, जिसमें नाना प्रकारके व्यञ्जनोंके बनानेकी विधि लिखी हुई थी। यह विद्या उन्होंने बहुत कुछ खर्च करके हलवाइयों और बावर्चियोंसे प्राप्त की थी। वह निम-कौड़ियोंकी ऐसी स्वादिष्ट खीर पका सकते थे, कि बादामका धोका हो। लाल, विषाक्त मिर्चोंका ऐसा हलवा बना सकते थे, कि मोहनभोगका भ्रम हो। आमकी गुठलियोंका कबाब बनाकर उन्होंने अपने कितने ही रसज्ञ मित्रोंको धोका दे दिया था। उनका लिसोढ़ेका मुरब्बा अंगूरके मुरब्बेसे भी बाजी मार ले जाता था। यद्यपि इन पदार्थोंके तैयार करनेमें धनका अपव्यय होता था, सिरमगज भी बहुत करना पड़ता था और नक्क-नक्क ही रहती थी, लेकिन लालाजी इस विषयमें पूरे कवि थे, जिनके लिये सुहृद्जनोंकी प्रशंसा ही सबसे बड़ा पुरस्कार है। अबकी कई सालके बाद उन्होंने अपने बड़े भाईकी जयन्ती हौसलेके साथ की। भोज और दावतकी हफ्तोंतक धूम रही। शहरमें एक-से-एक गण्य-मान्य सज्जन पड़े हुए थे; पर कोई उनसे टक्कर लेनेका साहस न कर सकता था।

बड़ी बहू जानती थीं कि जबतक घरमें रुपये रहेंगे, इनका हाथ न रुकेगा, साल आध सालमें सारी रकम खा-पीकर बराबर कर देंगे, इसलिये जब घरमें आग ही लगायी है, तो क्यों न हाथ सेंक लें। अवसर पाते ही उन्होंने दोनों कन्याओंके विवाह-की बातचीत छेड़ दी। यद्यपि लड़कियाँ अभी विवाहके योग्य न थीं; पर मसलहत यही थी कि चलते हाथ इस भारसे उऋण हो जायँ। जिस दिन ज्वालासिंह अपील दायर करने चले, उसी दिन लाला प्रभाशङ्करने फलदान चढ़ाये। दूसरे ही दिनसे

वह बरातियोंके आदर-सत्कारकी तैयारियोंमें व्यस्त हो गये। ऐसे शुभ कार्य्योंमें वह किफायतको दूषित ही नहीं,अक्षम्य समझते थे। उनके इरादे तो बहुत बड़े थे,लेकिन कुशल यह थी कि आजकल प्रेमशङ्कर प्रायः नित्य उनकी मदद करनेके लिये आ जाते। प्रभाशङ्कर दिलसे उनका आदर करते थे, इसलिये उनकी सलाहें सर्वथा निरर्थक न होतीं। विवाहकी तिथि अगहनमें पड़ती थी। ये डेढ़-दो महीने तैयारियोंमें ही कटे। प्रेमशङ्कर अक्सर संध्याको यहीं भोजन भी करते और कुछ देर गपशप करके हाजीपुर चले जाते। आश्चर्य यह था कि अब महाशय ज्ञानशङ्कर भी चचासे प्रसन्न मालूम होते थे। उन्होंने गोरखपूर से कई बोरे चावल, शक्कर और कई कुप्पे घी भेजे। विवाहके एक दिन पहले वह स्वयं आये और बड़े ठाटबाटसे आये। कई सशस्त्र सिपाही साथ थे, फर्श, कालीनें, दरियाँ तो इतनी लाये थे, कि उनसे कई बरातें सज जातीं। दोनों वरोंको सोनेकी एक-एक घड़ी और एक-एक मोहनमाला दी। बरातियोंको भोजन करते समय एक-एक अशर्फी भेंट की। दोनों भतीजियोंके लिये सोनेके हार बनवा लाये थे और दोनों समधियोंको एक-एक सजी हुई पालकी भेंट की। बरातके नौकरों, कहारों और नाइयोंको पाँच-पाँच रुपये बिदाई दी। उनकी इस असाधारण उदारतापर सारा घर चकित हो रहा था, और प्रभाशङ्कर तो उनके ऐसे भक्त हो गये, मानों वह कोई देवता थे। सारे शहरमें वाह-वाह होने लगी। लोग कहते थे—मरा हाथी तोभी नौलाखका, बिगड़ गये, लेकिन फिर भी हौसला और शान वही है, यह पुराने रईसोंका ही गुर्दा है, दूसरे क्या खाकर इनकी बराबरी करेंगे ? घरमें लाखों भरे हों, कौन देखता है ? यही हौसला अमीरीकी पहचान है। लेकिन यह किसे मालूम था कि लाला साहबने किन दामों यह नामवरी खरीदी है।

विवाहके बाद कुछ दिन तो बचीखुची सामग्रियोंसे लाला-

प्रभाशङ्करकी रसना तृप्त होती रही, लेकिन शनैः शनैः यह द्वार भी बन्द हुआ और रूखे-फीके भोजनपर कटने लगी। उस वर्षाके बाद यह सूखा बहुत अखरता था। स्वादिष्ट पदार्थोंके बिना उन्हें तृप्ति न होती थी। रूखा भोजन कण्ठसे नीचे उतरता ही न था। बहुधा चौकेपरसे मुँह जूठा करके उठ आते; पर सारे दिन जी ललचाया करता, अपनी किताब खोलकर उसके पन्ने उलटते कि कौन-सी चीज आसानीसे बन सकती है; पर वहाँ ऐसी कोई चीज न मिलती। बेचारे निराश होकर किताब बन्द कर देते और मनको बहलानेके लिये बरामदेमें टहलने लगते। बार-बार घरमें जाते, आलमारियों और ताखोंकी ओर उत्कण्ठित नेत्रोंसे देखते कि शायद कोई चीज़ निकल आये। अभीतक थोड़ी-सी नवरत्न चटनी बची हुई थी। कुछ और न मिलता तो सबकी नजर बचा उसमेंसे एक चम्मच निकालकर चाट जाते। विडम्बना यह थी, कि इस दुखमें कोई उनका साथी, कोई हमदर्द न था। बड़ी बहूसे अगर कभी डरते-डरते अच्छी चीजें बनानेको कहते, तो वह या तो टाल जातीं या झुँझलाकर कह बैठतीं—तुम्हारी जीभ भी लड़कोंकी तरह चटोरी है, जब देखा खानेकी ही फिक्र, सारी जायदाद हलुवे और पुलावके भेंट कर दी और अभीतक तस्कीन न हुई। अब क्या रखा है? बेचारे लाला साहब यह झिड़कियाँ सुनकर लज्जित हो जाते। प्रेमियोंको प्रेमिकाकी चर्चासे शान्ति प्राप्त होती है; किन्तु खेद यह था कि यहाँ कोई वह चर्चा सुननेवाला भी न था।

अन्तको यहाँतक नौबत पहुँची कि वह खोंचेवालोंको बुलाते और उनसे चाटके दोने लेकर घरके किसी कोनेमें जा बैठते और चुपचाप मज़े ले-लेकर खाते। पहले चाटकी ओर वह आँख उठाकर ताकते भी न थे; पर अब वह शान न थी। डेढ़-दो महीनेतक उनका यही ढङ्ग रहा; पर टुटपुँजिए खोंचेवाले बाकीपर कबतक रहते! उनके तकाजे होने लगे। लालाजी जो उनकी विचित्र

पुकारपर कान लगाये रहते थे, अब उनकी आवाज सुनते ही छिपानेके लिये बिल ढूँढ़ने लगते। उनके वादे अब सुनिश्चित न होते थे, उनमें विनय और अविश्वासकी मात्रा अधिक होती थी। मालूम नहीं, इन तकाजोंसे उन्हें कबतक मुँह छिपाना पड़ता; लेकिन संयोगसे उनके पूरे करनेकी एक विधि उपस्थित हो गयी। श्रद्धाने एक दिन उन्हें बाजारसे दो जोड़ी साड़ियाँ लानेके लिये दाम दिया। वह साड़ियाँ उधार लाये और रुपये खोंचेवालोंको देकर गला छुड़ाया। बज़ाज़की ओरसे ऐसे दुराग्रहपूर्ण और निन्दास्पद तकाजोंकी आशंका न थी। उसे बरसों वादोंपर टाला जा सकता था; मगर उस दिनसे चाटवालोंने उनके द्वारपर आना ही छोड़ दिया।

लेकिन चाट बुरी लत है। अच्छे दिनोंमें वह गलेकी जंजीर है, किन्तु बुरे दिनोंमें तो वह पैनी छुरी हो जाती है, जो आत्मसम्मान और लज्जाका तसमा भी नहीं छोड़ती। माघका महीना, सर्दीका यह हाल था, कि नाड़ियोंमें रक्ततक जमा जाता था। लाला प्रभाशङ्कर नित्य वायुसेवनके बहाने प्रेमशङ्करके पास जा पहुँचते और देशकालके समाचार सुनते। मौका पाते ही किसी न-किसी स्वादिष्ट पदार्थकी चर्चा छेड़ देते, उस समयकी कथा कहने लगते, जब वह चीज खायी थी, मित्रोंने उसपर क्या-क्या टिप्पणियाँ की थीं। प्रेमशङ्कर उनका इशारा समझ जाते और शीलमणिसे वह पदार्थ बनवाकर लाते; लेकिन प्रभाशङ्करकी स्वादलिप्सा कितनी दारुण थी, इसका उन्हें ज्ञान न था। अतएव कभी-कभी लालाजीका मनोरथ वहाँ भी पूरा न होता। तब घर आते समय वह सीधी राहसे न आते, स्वादतृष्णा उन्हें नानबाइयोंके मुहल्लेमें ले जाती। प्याज और मसालोंकी सुगन्धसे उनकी लोलुप आत्मा तृप्त होती थी। कितना करुणाजनक दृश्य था! सत्तर सालका बूढ़ा, उच्च कुल-मर्य्यादापर जान देनेवाला पुरुष, गन्धसे रसका आनन्द उठानेके लिये घण्टों नान-

वाइयोंकी गलीमें चक्कर लगाया करता, लज्जासे मुँह छिपाये हुए, कि कोई देख न ले। ताजे कबाबकी सुगन्धसे उनके मुँहमें पानी भर आता, यहाँतक कि खाद्याखाद्यका विचार भी न रहता। उस समय केवल एक अव्यक्त शंका, एक मिथ्या संकोच उनके फिसलते हुए पैरोंको सम्भाल लिया करता था।

एक दिन लालाजी प्रेमशङ्करके पास गये, तो उन्होंने अपील-का फैसला सुनाया। प्रभाशङ्कर प्रसन्न होकर बोले—यह बहुत अच्छा हुआ। ईश्वरने तुम्हारा उद्योग सफल किया। बेचारे निर-पराध किसान जेलमें पड़े सड़ रहे थे। ईश्वर बड़ा दयालु है। इस आनन्दोत्सवमें एक दावत होनी चाहिये।

माया बोला—जी हाँ, यही तो अभी मैं भी कह रहा था। मैं तो अपने स्कूलके सब लड़कोंको नेवता दूँगा।

प्रेमशङ्कर—पहले बेचारे आ तो जायं। अभी तो उनके आने-में महीनोंकी देर है, कोई किसी जेलमें है, कोई किसीमें। जजने तो पुलिसका पक्ष करना चाहा था; पर डाक्टर इर्फान अलीने उसकी एक न चलने दी।

प्रभा—इन जजोंका यही हाल है, उनका अभीष्ट सरकारका रोब जमाना होता है, न्याय करना नहीं। इस मुकदमेमें तुमने इतनी दौड़-धूप न की होती, तो उन बेचारोंकी कौन सुनता? ऐसे कितने निरपराधी केवल पुलिसके कौशल और वकीलों-की दुर्जनताके कारण दण्ड भोगा करते हैं। मैं तो जब वकीलों-को बहस करते हुए देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है, मानो भाट कवित्त पढ़ रहे हों। न्यायपर किसी पक्षकी दृष्टि नहीं होती। दोनों मौखिक बलसे एक-दूसरेको परास्त करना चाहते हैं। जो वाक्यचतुर है, उसीकी जात होती है। आदमियोंके जीवन-मरणका निर्णय सत्य और न्यायके बलपर नहीं, न्याय-को धोखा देनेके बलपर होता है।

प्रेम-जबतक मुद्दई और मुद्दालेह अपने-अपने वकील अदा-

लतमें लायेंगे तबतक इस दशामें सुधार नहीं हो सकता; क्योंकि वकील तो अपने मुवक्किलका मुखपात्र होता है। उसे सत्यासत्य निर्णयसे कोई प्रयोजन नहीं, उसका कर्त्तव्य केवल अपने मुवक्किलके दावेको सिद्ध करना है। सच्चे न्यायकी आशा तो तभी हो सकती है, जब वकीलोंको अदालत स्वयं नियुक्त करे और अदालत भी राजनीतिक भावों और अन्य दुस्संस्कारोंसे मुक्त हो। मेरे विचारमें गवर्नमेंटको पुलिसमें सुयोग्य और सच्चरित्र आदमी छाँट-छाँटकर रखने चाहिये। अभीतक इस विभागमें सच्चरित्रतापर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया। वही लोग भरती किये जाते हैं, जो जनताको दबा सकें, उनपर रोब जमा सकें, न्यायका विचार नहीं किया जाता।

प्रभा—जरा फैसला तो सुनाओ, देखूँ क्या लिखा है।

प्रेम—हाँ सुनिये, मैं अनुवाद करता जाता हूँ। देखिये, पुलिसकी कैसी तीव्र आलोचना की है। यह अभियोग पुलिसके कार्य्यक्रमका एक उज्ज्वल उदाहरण है। किसी विषयका सत्यासत्य निर्णय करनेके लिये आवश्यक है, कि साक्षियोंपर निष्पक्ष भावसे विचार किया जाय और उनके आधारपर कोई धारणा स्थिर की जाय; लेकिन पुलिसके अधिकारिवर्ग ठीक उल्टे चलते हैं। वे पहले एक धारणा स्थिर कर लेते हैं और तब उसको सिद्ध करनेके लिये साक्षियों और प्रमाणोंकी तलाश करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी दशामें वह कार्य्यसे कारणकी ओर चलते हैं और अपनी मनोनीत धारणामें कोई संशोधन करनेके बदले, प्रमाणोंकोही तोड़-मरोड़कर अपनी कल्पनाओंके साँचेमें ढाल देते हैं। यह उल्टी चाल क्यों चली जाती है? इसका अनुमान करना कठिन है; पर प्रस्तुत अभियोगमें कठिन नहीं। एक समूह जितना भार संभाल सकता है, उतना एक व्यक्तिके लिये असाध्य है।

प्रभाशङ्करने चिन्ताभावसे कहा—यह तो खुला हुआ आक्षेप है। पुलिससे जवाब तो न तलब होगा?

प्रेम—इन आक्षेपोंको कौन पूछता है? इनपर कुछ ध्यान दिया जाता, तो पुलिस कबकी सुधर गयी होती।

इतनेमें ज्वालासिंह आते हुए दिखाई दिये। प्रेमशङ्करने कहा—चचा साहब कहते हैं कि इस विजयका उत्सव करना चाहिये।

ज्वाला—मेरी भी यही इच्छा है।

५६

बाल्यावस्थाके पश्चात् ऐसा समय आता है, जब उद्दण्डता-की धुन सिरपर सवार हो जाती है। इसमें युवाकालकी सुनि-श्चित इच्छा नहीं होती, उसकी जगह एक विशाल आशावादिता है, जो दुर्लभको सरल और असाध्यको मुँहका कौर समझती है। भाँति-भाँतिकी मृदु-कल्पनाएँ चित्तको आन्दोलित करती रहती हैं। सैलानीपनका भूत-सा चढ़ा रहता है। कभी जीमें आता है कि रेलगाड़ीपर बैठकर देखूँ, कि कहाँतक जाती है। अर्थीको देखकर उसके साथ श्मशानतक जाते हैं, कि वहाँ क्या होता है? मदारीका खेल देखकर जीमें उत्कण्ठा होती है कि हम भी गलेमें झोली लटकाये, देश-विदेश घूमते और ऐसे ही तमाशे दिखाते। अपनी क्षमतापर ऐसा विश्वास होता है, कि बाधाएँ ध्यानमें भी नहीं आतीं, ऐसी सरलता जो अलाउद्दीनके चिरागको ढूँढ़ निकालना चाहती है। इस कालमें अपनी योग्य-ताकी सीमाएँ अपरिमित होती हैं। विद्याक्षेत्रमें हम तिलकको पीछे हटा देते हैं, रणक्षेत्रमें नेपोलियनसे आगे बढ़ जाते हैं। कभी जटाधारी योगी बनते हैं, कभी तातासे भी धनवान् हो जाते हैं। हमें इस अवस्थामें फकीरों और साधुओंपर ऐसी श्रद्धा होती है, जो उनकी विभूतिको कामधेनु समझती है। तेजशङ्कर और पद्मशंकर दोनों ही सैलानी थे। घरपर कोई उनका देख-भाल करनेवाला न था, जो उन्हें उत्तेजनाओंसे दूर रखता, उनकी सजीविताको, उनकी अबाध्य कल्पनाओंको,

सुविचार की ओर कर सकता। लाला प्रभाशङ्कर उन्हें पाठशाला-में भरती करके ज्यादा देखभाल अनावश्यक समझते थे। दोनों लड़के घरसे स्कूलको चलते, लेकिन रास्तेमें नदीके तटपर घूमने, बैंड सुनने या सेनाकी कवायद देखनेकी इच्छा उन्हें रोक लिया करती। किताबोंसे दोनोंको अरुचि थी और दोनों एकही श्रेणी-में कई-कई साल फेल हो जानेके कारण हताश हो गये थे। उन्हें ऐसा मालूम होता था कि हमें विद्या आ ही नहीं सकती। एक बार लालाजीकी अलमारीमें इन्द्रजालकी एक पुस्तक मिल गयी थी। दोनोंने उसे बड़े चावसे पढ़ा और उसके मंत्रोंको जगाने-की चेष्टा करने लगे। दोनों अक्सर नदीकी ओर चले जाते और साधुसन्तोंकी बातें सुनते। सिद्धियोंकी नयी-नयी कथाएँ सुनकर उनके मनमें भी कोई सिद्धि प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा होती। इस कल्पनासे उन्हें एक गर्वयुक्त आनन्द मिलता था, कि इन सिद्धियोंके बलसे हम सब कुछ कर सकते हैं, गड़ा हुआ धन निकाल सकते हैं, शत्रुओंपर विजय पा सकते हैं, पिशाचोंको वशमें कर सकते हैं। उन्होंने दो-एक लटकोंका अभ्यास भी किया था और यद्यपि अभीतक उनकी परीक्षा करनेका अवसर न मिला था, पर अपनी कृतकार्य्यतापर उन्हें अटल विश्वास था।

लेकिन जबसे गायत्रीने मायाशङ्करको गोद लिया था, ईर्षा और स्वार्थसे दोनों जल रहे थे। यह दाह एक क्षणके लिये भी न शान्त होती। जो लड़का अभी कलतक उनके साथका खिलाड़ी था, वह सहसा इतने ऊँचे पदपर पहुँच जाय! दोनों यही सोचा करते, कि कोई ऐसी सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये, जिसके सामने धन और वैभवकी कोई हस्ती न रहे, जिसके प्रभावसे वे मायाशङ्कर को नीचा दिखा सकें। अंतमें बहुत सोच-विचारके पश्चात् उन्होंने भैरवमंत्र जगानेका निश्चय किया। एक तंत्र ग्रन्थ ढूँढ़ निकाला, जसमें इस क्रियाकी विधियाँ विस्तारसे लिखी हुई थीं। दोनोंने कई दिनतक मंत्रको कंठ किया। उसके मुखाग्र हो जानेपर यह

सलाह होने लगी, कि इसे जगानेका आरम्भ कबसे किया जाय? तेजशङ्करने कहा—चलो, आजसेही श्रीगणेश कर दें।

पद्म—जब कहो तब। बस, अस्सी घाटकी ओर चलें।

तेज—चालीसा किसी तरह पूरा हो जाय, फिर तो हम अमर हो जायेंगे। बन्दूक, तलवार, तोपका हमपर कुछ असर ही न होगा।

पद्म—यार, बड़ा मजा आयेगा। सैकड़ों बरसतक जीते रहेंगे।

तेज—सैकड़ों! अजी, हजारों क्यों नहीं कहते? हिमालयकी गुफाओंमें ऐसे-ऐसे साधु पड़े हैं. जिनकी अवस्थाएँ चार-चार सौ सालसे अधिक है। उन्होंने भी यही मंत्र जगाया होगा। मौतका उनपर कोई वश नहीं चलता।

पद्म—माया बड़ी शेखी मारा करते हैं, बच्चा एक दिन मर जायेंगे, सब कुछ रखा रह जायेगा। यहाँ कौन चिन्ता है? तोप-से भी न डरेंगे।

तेज—लेकिन मंत्र जगाना सहज नहीं है, डरे और काम तमाम हुआ, जरा चौंके और वहीं ढेर हो गये। तुमने तो किताबमें पढ़ा होगा, कैसी-कैसी भयङ्कर सूरतें दिखाई देती हैं। कैसी-कैसी डरावनी आवाजें सुनाई देती हैं। भूत, प्रेत, पिशाच नङ्गी तलवारें लिये मारने दौड़ते हैं। उस वक्त जरा भी शङ्का न करनी चाहिये।

पद्म—मैं जरा भी न डरूँगा, वह कोई सचमुचके भूत-प्रेत थोड़े ही होंगे। देवता लोग परीक्षाके लिये डराते होंगे।

तेज—हाँ और क्या? सब भ्रम है। अपना कलेजा मजबूत किये रहना।

पद्म—और जो कहीं तुम डर जाओ?

तेजशङ्करने गर्वसे हँसकर कहा—मैंने डरको भूनकर खा लिया है। वह मेरे पास नहीं फटक सकता। मैं तो सचमुचके प्रेतोंसे न डरूँ; शङ्काओंकी कौन चलाये।

पद्म—तो हम लोग अमर हो जायेंगे।

तेज—अवश्य, इसमें भी कुछ सन्देह है?

दोनोंने इस भाँति निश्चय करके मन्त्र जगाना शुरू किया। जब घरके सब लोग सो जाते, तो दोनों चुपकेसे निकल जाते और अस्सीघाटपर गंगाके किनारे बैठकर मन्त्र जाप करते। इस प्रकार उन्तालीस दिनोंतक दोनोंने अभ्यास किया। इस विकट परीक्षामें वे कैसे पूरे उतरे, इसकी व्याख्या करनेके लिये एक पोथी अलग चाहिये। उन्हें वह सब बिकराल सूरतें दिखाई दीं, वे सब रोमांचकारी शब्द सुनाई दिये, जिनका उस पुस्तकमें जिक्र था। कभी मालूम होता कि आकाश फटा पड़ता है, कभी आगकी एक लहर सामने आती हुई नजर आती, कहीं कोई भयंकर राक्षस मुँहसे अग्निकी ज्वाला निकालता हुआ उन्हें निगलने को लपकता; लेकिन भयकी पराकाष्ठाका नाम साहस है। दोनों लड़के आँखें बन्द किये, नीरव, निश्चल, निस्तब्ध, मूर्त्तिके समान बैठे रहते। जापका तो केवल नाम था, सारी मानसिक शक्तियाँ इन शङ्काओंको दूर रखनेमें ही केन्द्रीभूत हो जाती थीं। यह भय कि जरा भी चौंके, झिझके या विचलित हुए तो तत्क्षण प्राणान्त हो जायेगा, उन्हें अपनी जगहपर बाँधे रहता था। मेरा भाई समीप ही बैठा हुआ है, यह विश्वास उनकी दृढ़ताका एक मुख्य कारण था, हालाँकि इस विश्वाससे तेजशङ्करको उतना ढाढ़स न होता था, जितना पद्मशङ्करको। उसे पद्मपर वह भरोसा न था जो पद्म को उसपर था। अतएव तेजशङ्करके लिये यह प्रतीक्षा ज्यादा दुस्साध्य थी, पर यह भय कि मैं जरा भी हिला तो पद्मकी जानपर बन जायेगी, उस अविश्वासकी थोड़ी-सी कसर पूरी कर देता था। इन दिनों दोनों बहुत दुर्बल हो गये थे; मुख पीले, आँखें चञ्चल, होंठ सूखे हुए। दोनों सारे दिन संज्ञाहीनसे पड़े रहते, खेल-कूद, सैर-सपाटे, आमोद-विनोदसे उन्हें जरा भी रुचि न थी, आठों पहर मन उचटा रहता था, यहाँतक कि भोजन भी अच्छा न लगता। इस तरह उन्तालीस दिन बीत गये और चालीसवाँ दिन आ पहुँचा। आज भोरसेही उनके चित्त उद्विग्न होने लगे,

शङ्काओंने उग्र रूप धारण किया। आशाएँ भी प्रबल हुईं। दोनों आशा और भयकी दशामें बैठे हुए कभी अमरत्वकी कल्पनासे प्रफुल्लित हो जाते, कभी आजकी कठिनतम परीक्षाओंके भयसे काँपते; पर आशाएँ भयके ऊपर थीं। सारे शहरमें हलचल मच जायेगी, हमलोग जलती हुई आगमें कूद पड़ेंगे और बेदाग निकल जायेंगे, आँचतक न आयेगी। उस मुँडेरपरसे निश्शङ्क नीचे कूद पड़ेंगे, जरा भी चोट न लगेगी। लोग देखकर दङ्ग हो जायेंगे। दिनभर दोनोंने कुछ नहीं खाया, कभी नीचे जाते, कभी ऊपर आते, कभी हँसते, कभी रोते, कभी नाचते, कोई दूसरा आदमी उनकी यह दशा देखकर समझता कि पागल हो गये हैं।

जब अन्धेरा हुआ तो तेजशङ्कर घरमेंसे एक तलवार निकाल लाया, जिसे लालाजीने हालमेंही जयपुरसे मँगवाया था। दोनोंने कमरेका द्वार बन्द करके उसे मिट्टीके तेलसे खूब साफ किया तब उसे पत्थरपर रगड़ा, यहाँतक कि उसमें चिनगारियाँ निकलने लगीं। तब उसे बिछावनके नीचे छिपाकर दोनों बाजारकी सैर करने निकल गये, लौटे तो ९ बज गये थे। बड़ी बहूके बहुत अनुरोध करनेपर दोनोंने कुछ सूक्ष्म भोजन किया और तब अपने कमरेमें लोगोंके निद्रामग्न हो जानेका इन्तजार करने लगे। ज्यों-ज्यों समय निकट आता था। उनका आशादीपक भय-तिमिरमें विलुप्त होता जाता था। इस समय उनकी दशा कुछ उस अपराधीकी-सी थी, जिसकी फाँसीका समय प्रतिक्षण निकट आता जाता हो। भाँति-भाँतिकी शङ्काएँ और दुष्कल्पनाएँ उठ रही थीं; किन्तु इस आँधी और तूफानमें भी एक नौकाका स्पष्ट चिह्न दूरसे दिखाई देता था, जिससे उनकी हिम्मत बँध जाती थी। तेजशङ्कर चिन्तित और गम्भीर था, और पद्मशङ्करकी सरल, आशामय बातोंका जवाबतक न देता था।

निश्चित समय आ पहुँचा, तो दोनों घरसे निकले। माघका महीना, तुषारवेष्ठित वायु हड्डियोंमें चुभती थी। हाथ पाँव अकड़े

जाते थे। तेजशङ्करने तलवारको अपनी चादरके नीचे छिपा लिया और दोनों चले; जैसे कोई मन्दबुद्धि बालक परीक्षा-भवनकी ओर चले! पग-पगपर वे शङ्का-विह्वल होकर ठिठक जाते, फिर कलेजा मजबूत करके आगे बढ़ते। यहाँतक कि कई बार उन्होंने लौटनेका इरादा किया; लेकिन ३९ दिनकी तपस्याके बाद बरदान मिलनेके दिन हिम्मत हार जाना अक्षम्य दुर्बलता और भीरुता थी। अब तो चाहे जो हो, यह अन्तिम परीक्षा अनिवार्य्य थी। इस तरह डरते, हिचकते, दोनों घाटपर पहुँच गये। रास्तेमें किसीके मुँहसे एक शब्द भी न निकला।

अमावसकी रात थी। आँखोंका होना-न-होना बराबर था। तारागण भी बादलोंमें मुँह छिपाये हुए थे,अन्धकारने जल और बालू, पृथ्वी और आकाशको समान कर दिया था। केवल जल-की मधुर-ध्वनि गंगाका पता देती थी। ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था कि जलनाद भी उसमें निमग्न हो जाता था। ऐसा जान पड़ता था, कि पृथ्वी अभी शून्यके गर्भमें पड़ी हुई है। अनन्त जीवनके दोनों आराधक, पग-पगपर ठोकरें खाते, शङ्कारचित बाधाओंसे पग-पगपर चौंकते, नदीके किनारे पहुँचे और नग्न होकर जलमें उतरे। पानी बर्फ हो रहा था। उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये! स्नान करके दोनों रेतपर बैठ गये और मंत्रका जाप करने लगे। लेकिन आश्चर्य यह था कि आज उन्हें कोई ऐसा दृश्य न दिखाई दिया, जिसे वे देख न चुके हों, न कोई ऐसी आवाजें सुनाई दीं, जो वे सुन न चुके हों,। कोई असाधा-रण घटना न हुई। सरदीने शङ्काओंको भी शांत कर दिया था। विषम कल्पनाएँ भी निर्जीव हो गयी थीं। दोनों डर रहे थे, कि आज न जाने कैसी-कैसी विकराल मूर्तियाँ दिखाई देंगी, प्रेतगण न जाने किन मन्त्रोंसे आघात करेंगे। न जाने प्राण बचेंगे या जायेंगे। लेकिन आज और दिनोंसे भी सस्ते छूट गये।

जब रात समाप्त हो गयी और दोनों साधकोंने आँखें खोलीं

तब आकाशपर उषालालिमा दिखायी दी। पृथ्वी शनैः शनैः तिमिर पटसे निकलने लगी, उस पारके वृक्ष और रेत व्यक्त हो गये; जैसे किसी मूर्छित रोगीके मुखपर चैतन्यका विकास हो रहा हो। श्यामल जल, वेगसे बह रहा था मानों अन्धकारको अपने साथ बहाये लिये जाता हो। उस पारके वृक्ष इस तरह सिर झुकाये खड़े थे, मानों शोकसमाज किसीकी दाह-क्रिया करके शोकसे सिर झुकाये चला आता हो।

सहसा तेजशङ्कर उठ खड़ा हुआ और बोला—जय भैरवकी!

पद्मशङ्करने भी कड़ककर कहा—जय भैरवकी!

दोनोंके नेत्रोंमें एक अलौकिक प्रकाश था, दोनोंके मुखोंपर एक अद्भुत प्रतिभा झलक रही थी।

तेजशङ्कर—तलवार हाथमें लो, मैं सिर झुकाये हुए हूँ।

पद्म—नहीं, पहले तुम चलाओ मैं सिर झुकाता हूँ।

तेज—क्या अब भी डरते हो? हमने मौतको कुचल दिया, कालको जीत लिया, अब हम अमर हैं।

पद्म—नहीं, पहले तुम्हीं श्रीगणेश करो, ऐसा हाथ चलाना, कि एक ही बारमें गर्दन अलग जा गिरे। मगर यह तो बताओ दर्द तो न होगा?

तेज—कैसा दर्द? ऐसा जान पड़ेगा; जैसे किसीने फूलसे मारा हो। इसीसे तो कहता हूँ कि पहले तुम शुरू करो।

पद्म—नहीं, पहले मैं सिर झुकाता हूँ।

तेजशङ्करने तलवार हाथमें ली, उसे तौला, दो-तीनबार पैंतरे बदले और तब "जयभैरवकी" कहकर पद्मशङ्करकी गर्दनपर तलवार चलायी। हाथ भरपूर पड़ा, तलवार तेज थी, सिर धड़से अलग जा गिरा रक्तका फौवारा छूटने लगा। तेजशङ्कर खड़ा मुस्करा रहा था, मानो कोई फुलझड़ी छूट रही हो। उसके चेहरे पर तेजोमय शान्ति छायी हुई थी। कोई शिकारी भी पक्षीको भूमिपर तड़पते देखकर इतना अविचिलित न रहता होगा। कोई

अभ्यस्त बधिक भी पशुकी गर्दनपर तलवार चलाकर इतना स्थिर-चित्त न रह सकता होगा। वह ऐसे सुदृढ़ विश्वासके भावसे खड़ा था; जैसे कोई कबूतरबाज अपने कबूतरको उड़ाकर उसके लौट आनेकी राह देख रहा हो।

लाश कुछ देरतक तड़पती रही। इसके बाद शिथिल हो गयी। खूनके छींटे बन्द हो गये, केवल एक-एक बूँद टपक रही थी, जैसे पानी बरसनेके बाद ओरी टपकती है; किन्तु पुनरुज्जीवनके संचारका कोई लक्षण न दिखाई दिया। एक मिनट और गुजरा। तेजशङ्करको कुछ भ्रम हुआ; पर विश्वासने उसे शान्त कर दिया। उसने गङ्गाजल चुल्लूमें लेकर भैरवमन्त्र पढ़ा और उसपर एक फूँक मारकर उसे लाशपर छिड़क दिया; किन्तु यह क्रिया भी असफल हुई, उस कटे हुए सिरमें कोई गति न हुई, उस मृतदेहमें स्फूर्त्तिका कोई चिह्न न दिखाई दिया। मन्त्र की जीवन-संचारिणी शक्तिका कुछ असर न हुआ।

अब तेजशङ्करको शङ्का होने लगी, विश्वासकी नींव हिलने लगी। उस पुस्तकमें स्पष्ट लिखा था, कि सिर गर्दनसे अलग होते ही तुरत उसमें चिमट जाता है और यदि इस क्रियामें कुछ विलम्ब हो, तो भैरवमन्त्रसे फूँके हुए पानीका एक चुल्लू काफी है। यहाँ इतनी देर हो गयी और अभीतक कुछ भी असर न हुआ। यह बात क्या है? मगर यह असंभव है कि मंत्र निष्फल हो। कितने लोगोंने इस मन्त्रको सिद्ध किया है। नहीं, घबरानेकी कोई बात नहीं, अभी जान आयी जाती है।

उसने ३-४ मिनटतक और इन्तजार किया; पर लाश ज्यों-की-त्यों शान्त-शिथिल पड़ी हुई थी। तब उसने फिर गङ्गाजल छिड़का। फिर मंत्र पढ़ा; किन्तु लाश न उठी। उसने चिल्लाकर कहा—हा ईश्वर! अब क्या करूँ? विश्वासका दीपक बुझ गया। उसने निरासा भावसे नदीकी ओर देखा। लहरें दाढ़ें मार-मारकर रोती हुई जान पड़ीं। वृक्ष शोकसे सिर धुनते हुए मालूम

हुए। उसके कंठसे बलात् क्रन्दनध्वनि निकल आयी, वह चीख मारकर रोने लगा। अब उसे ज्ञान हुआ कि मैंने कैसा घोर अनर्थ किया, अनन्त जीवनकी सिद्धि कितनी उद्भ्रान्त, कितनी मिथ्या थी। हा! मैं कितना अन्धा, कितना मन्दबुद्धि, कितना उद्दण्ड हूँ। हा! प्राणोंसे प्यारे पद्म, मैंने मिथ्या भक्तिकी धुनमें अपने ही हाथोंसे, इन्हीं निर्दय हाथोंसे, तुम्हारी गर्दनपर तलवार चलायी। हा! मैंने तुम्हारे प्राण लिये! मुझ-सा पापी और अभागा कौन होगा? अब कौन-सा मुँह लेकर घर जाऊँ? कौन-सा मुँह दुनियाको दिखाऊँ? अब जीवन वृथा है। तुम मुझे प्राणोंसे भी प्यारे थे। अब तुम्हें कैसे देखूँगा, तुम्हें कैसे पाऊँगा!

तेजशङ्कर कई मिनट तक इन्हीं शोकमय विचारोंसे विह्वल होकर खड़ा रोता रहा। अभी एक क्षण पहले उसके दिलमें क्या-क्या इरादे थे? कैसी-कैसी अभिलाषाएँ थीं? वह सब इरादे मिट्टीमें मिल गये? आह! जिस धूर्त पापीने यह किताब लिखी है, उसे पाता तो इसी तलवारसे उसकी गर्दन काट लेता। उसके भ्रम-जालमें पड़कर मैंने अपना सर्वनाश किया।

हाय! अभीतक लाशमें जान नहीं आयी। उसे उसकी ओर ताकते हुए अब भय होता था।

नैराश्यव्यथा, शोकाघात, परिणामभय, प्रेमोद्गार, ग्लानि—इन सभी भावोंने उसके हृदयको कुचल दिया।

तिसपर भी अभीतक उसकी आशाओंका प्राणान्त न हुआ था। उसने एक बार डरते-डरते कनखियोंसे लाशको देखा; पर अब भी उसमें प्राण-प्रवेशका चिह्न न दिखाई दिया, तो आशाओंका अन्तिम सूत्र भी टूट गया; धैर्यने साथ छोड़ दिया।

उसने एक बार निराश होकर आकाशकी ओर देखा। भाईकी लाशपर अन्तिम दृष्टि डाली; तब सँभलकर बैठ गया और वही तलवार अपने गलेपर फेर दी। रक्तकी फुवारें छूटीं, शरीर तड़पने लगा, पुतलियाँ फैल गयीं। बलिदान पूरा हो गया। मिथ्या

विश्वासने दो लहलहाते हुए जीव-पुष्पोंको पैरोंसे मसल डाला।

सूर्यदेव अपने आरक्त नेत्रोंसे यह विषम मायालीला देख रहे थे। उनकी नीरव, पीत किरणें उन दोनों मंत्राहत बालकोंपर इस भाँति पड़ रही थीं, मानों कोई शोक-विह्वल प्राणी उनके गलेसे लिपटकर रो रहा हो!

६७

इस शोकाघातने लाला प्रभाशङ्करको संज्ञाविहीन कर दिया। दो सप्ताह बीत चुके थे, पर अभीतक घरसे बाहर न निकले थे। दिन-के-दिन चारपाईपर पड़े छतकी ओर देखा करते, रातें करवटें बदलनेमें कट जातीं। उन्हें अपना जीवन अब शून्य-सा जान पड़ता था। आदमियोंकी सूरतसे अरुचि थी, अगर कोई सान्त्वना देनेके लिये भी जाता तो मुँह फेर लेते। केवल प्रेमशङ्कर ही एक ऐसे प्राणी थे जिसका आना उन्हें नागवार न मालूम होता था, इसलिये कि वह समवेदनाका एक शब्द भी मुँहसे न निकालते। सच्ची समवेदना मौन हुआ करती है।

एक दिन प्रेमशङ्कर आकर बैठे तो लालाजीको कपड़े पहनते देखा, द्वारपर एक्का भी खड़ा था, जैसे कहीं जानेकी तैयारी हो, पूछा, कहीं जानेका इरादा है क्या?

प्रभाशङ्करने दीवारकी ओर मुँह फेरकर कहा,—हाँ, जाता हूँ, उसी निर्दयी दयाशङ्करके पास, उसीको चिरौरी विनती करके घर लाऊँगा। कोई यहाँ रहनेवाला भी तो चाहिये। मुझसे गृहस्थीका बोझ नहीं सँभाला जाता। कमर टूट गयी, बलहीन हो गया। प्रतिज्ञा तो की थी कि जीते जी उसका मुँह न देखूँगा लेकिन परमात्माको मेरी प्रतिज्ञा निबाहनी मंजूर न थी, उनके पैरोंपर गिरना पड़ा। वंशका अन्त हुआ जाता है, कोई नामलेवा तो रहे, मरनेके बाद चुल्लूभर पानीको तो न रोना पड़े; मेरे बाद दीपक तो न बुझ जाय। अब दयाशङ्करके

सिवाय और दूसरा कौन है, उसीसे अनुनय-विनय करूँगा, मनाऊँगा, आकर घर आबाद करे, लड़कोंके बिना घर भूतोंका डेरा हो रहा है। दोनों लड़कियाँ ससुराल ही चली गयीं, दोनों लड़के भैरवकी भेंट हुए, अब किसका मुँह देखकर जीको समझाऊँ। और मैं तो चाहे कलेजेपर पत्थरकी सिल रखकर बैठ भी रहता, पर तुम्हारी चाचीको कैसे समझाऊँ। आज दो हफ्तेसे ऊपर हुए, उन्होंने दानेकी ओर ताका तक नहीं। रात-दिन रोया करती है। बेटा, सच पूछो तो मैं ही दोनों लड़कोंका घातक हूँ। वे जैसे चाहते थे रहते थे, जहाँ चाहते थे जाते थे, मैंने कभी उन्हें अच्छे रास्तेपर लगानेकी चेष्टा न की। संतानका पालन कैसे करना चाहिये, इसकी मैंने कभी चिन्ता न की।

प्रेमशङ्करने करुणार्द्र होकर कहा, एक्केका सफर है, आपको कष्ट होगा, कहिये तो मैं चला जाऊँ, कलतक आ जाऊँगा।

प्रभा—वह यों न आयेगा, उसे खींचकर लाना होगा। वह कठोर नहीं, केवल लज्जाके मारे नहीं आता। वहाँ पड़ा रोता होगा, भाइयोंको बहुत प्यार करता था।

प्रेम—मैं उन्हें जबरदस्ती खींच लाऊँगा।

प्रभाशङ्कर राजी हो गये। प्रेमशङ्कर उसी दम चल खड़े हुए। थाना यहाँसे १२ मीलपर था। ९ बजते-बजते पहुँच गये। थानेमें सन्नाटा था। केवल एक मुंशीजी फर्शपर बैठे हुए लिख रहे थे। प्रेमशङ्करने उनसे कहा,—आपको तकलीफ तो होगी, पर जरा दारोगाजीको इत्तला कर दीजिये, कि एक आदमी आपसे मिलने आया है। मुंशीजीने प्रेमशङ्करको सिरसे पाँवतक देखा, तब लपककर उठे, उनके लिये एक कुर्सी निकालकर रख दी और पूछा, जनाबका नाम बाबू प्रेमशङ्कर तो नहीं है?

प्रेमशङ्कर—जी हाँ मेरा ही नाम है!

मुंशी—आप खूब आये। दारोगाजी अभी आपका ही जिक्र कर रहे थे। आपका अक्सर जिक्र किया करते हैं। चलिये, मैं

आपके साथ चलता हूँ। कानिस्टेबल सब उन्हींकी खिदमतमें हाजिर हैं। कई दिनसे बहुत बीमार हैं।

प्रेम—बीमार हैं? क्या शिकायत है?

मुंशी—जाहिरमें तो बुखार है, पर अन्दरका हाल कौन जाने? हालत बहुत बदतर हो रही है। जिस दिनसे दोनों छोटे भाइयोंकी नावक्त मौतकी खबर सुनी, उसी दिनसे बुखार आया। उस दिनसे फिर थानेमें नहीं आये। घरसे बाहर निकलनेकी नौबत न आयी। पहले भी थानेमें बहुत कम आते थे, नशेमें डूबे पड़े रहते थे, ज्यादा नहीं तो तीन चार बोतल रोजाना जरूर पी जाते होंगे। लेकिन इन पन्द्रह दिनोंमें एक घूँट भी नहीं पी। खानेकी तरफ ताकते ही नहीं। या तो बुखारमें बेहोश पड़े रहते हैं, या तबीयत जरा हल्की हुई तो रोया करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि फालिज गिर गयी है। करवटतक नहीं बदल सकते। डाक्तरोंका ताँता लगा हुआ है, मगर कोई फायदा नहीं होता। सुना आप भी कुछ हिकमत करते हैं, देखिये, शायद आपहीकी दवा कारगर हो जाय। बड़ा अनमोल आदमी था। हमलोगोंको तो ऐसा सदमा हो रहा है जैसा कोई अपना अजीज उठा जाता हो। पैसेकी मुहब्बत छू तक नहीं गयी थी। हजारों रुपये माहवार लाते थे और सबका सब अमलोंके हाथोंमें रख देते थे। रोजाना शराब मिलती जाय, बस, और कोई हवस न थी। किसी मातहतसे गलती हो जाय, पर कभी शिकायत न करते थे, बल्कि सारा इलजाम अपने सिर ले लेते थे। क्या मजाल कि कोई हाकिम उनके मातहतोंको तिर्छी निगाहसे भी देख सके, सीनासिपर हो जाते थे। मातहतोंकी शादी और गममें इस तरह शरीक होते थे जैसे कोई अपना अजीज हो। कई कानिस्टेबलोंकी लड़कियोंकी शादियाँ अपने खर्चसे करा दीं, उनके लड़कोंकी तालीमकी फीस अपने पाससे देते थे। अपनी सख्तीके लिये सारे इलाकेमें बदनाम थे। सारा इलाका उनका दुश्मन

था, मगर थानेवाले चैन करते थे। हम गरीबोंको ऐसा गरीब-परवर और हमदर्द अफसर न मिलेगा।

मुंशीजीने ऐसे अनुरक्त भावसे यह यश गान किया कि प्रेमशङ्कर गद्गद् हो गये। वह दयाशङ्करको लोभी, कुटिल, स्वार्थी समझते थे, जिसके अत्याचारोंसे इलाकेमें हाहाकार मचा हुआ था। जो कुलका द्रोही, कुपुत्र और व्यभिचारी था। जिसने अपनी विलासिता और विषयवासनाकी धुनमें माता-पिता, भाई-बहिन, यहाँतक कि अपनी पत्नीतकसे मुँह फेर लिया था। उनकी दृष्टिमें वह एक बेशर्म, पतित, हृदयशून्य आदमी था। यह गुणानुवाद सुनकर उन्हें अपनी संकीर्णतापर बहुत खेद हुआ। वह मनमें अपना तिरस्कार करने लगे। उन्हें फिर आत्मिक मंत्रणा मिली - हाँ! मुझमें कितना अहँकार है! मैं कितनी जल्द भूल जाता हूँ कि यह विराट् जगत अनन्त ज्योतिसे प्रकाशमय हो रहा है, इसका एक-एक परमाणु, उसी ज्योतिसे आलोकित है। यहाँ किसी मनुष्यको नीच या पतित समझना ऐसा पाप है जिसका प्रायश्चित्त नहीं। मुंशीजीसे पूछा,—डाक्टरोंने कुछ तशखीस नहीं की?

मुंशीजीने उपेक्षाभावसे कहा, - डाक्टरोंकी कुछ न पूछिये, कोई कुछ बताता है कोई कुछ, या तो उन्हें खुद ही इल्म नहीं, या गौरसे देखते ही नहीं। उन्हें तो अपनी फीससे काम है। आइये, अन्दर चलें आइये, यही मकान है।

प्रेमशङ्कर अन्दर गये तो कानिस्टेबलोंकी भीड़ लगी हुई थी। कोई रो रहा था,कोई उदास,कोई मलिनमुख खड़ा था,कोई पङ्खा झलता था। कमरेमें सन्नाटा था। प्रेमशङ्करको देखते ही सभीने उन्हें सलाम किया और कातर नेत्रोंसे उनकी ओर देखने लगे। दयाशङ्कर चारपाईपर पड़े हुए थे,चेहरा पीला हो गया था और शरीर सूखकर काँटा हो गया था,मानों किसी हरे-भरे खेत-को टिड्डियोंने चर लिया हो। आँखें बन्द थीं, माथेपर पसीनेकी

बूदें पड़ी हुई थीं और श्वासक्रियामें एक चिन्ताजनक शिथिलता थी। प्रेमशङ्कर यह शोकमय दृश्य देखकर तड़प उठे, चारपाईके निकट जाकर दयाशङ्करके माथेपर हाथ रखा और बोले—भैया?

दयाशङ्करने आँखें खोलीं और प्रेमशङ्करको गौरसे देखा, मानों किसी भूली हुई सूरतको याद करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। तब बड़े शान्तभावसे बोले—तुम हो प्रेमशङ्कर? खूब आये, तुम्हें देखनेकी बड़ी इच्छा थी। कई बार तुमसे मिलनेका इरादा किया, पर शर्मके मारे हिम्मत न पड़ी। लालाजी तो नहीं आये? उनसे भी एक बार भेंट हो जाती तो अच्छा होता, न जाने फिर दर्शन हो या न हो।

प्रेम—वह आनेको तैयार थे, पर मैंने ही उन्हें रोक दिया। मुझे तुम्हारी हालत मालूम थी।

दया—अच्छा किया, इतनी दूर एक्केपर आनेमें उन्हें कष्ट होता। वह मेरा मुँह न देखें यही अच्छा है। मुझे देखकर कौन उनकी छाती हुलसेगी?

यह कहकर वह चुप हो गये, ज्यादा बोलनेकी शक्ति न थी, दम लेकर बोले—क्यों प्रेम? संसारमें मुझ-सा अभागा और भी कोई होगा, यह सब मेरे ही कर्मोंका फल है। मैं ही वंशका द्रोही हूँ। मैं क्या जानता था कि पापीके पापोंका दण्ड इतना कड़ा होता है। मुझे अगर किसीकी कुछ मुहब्बत थी तो दोनों लड़कोंकी। मेरे पापोंने भैरव बनकर उन.....

उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। मूर्च्छा-सी आ गयी। आध घण्टेतक इसी अचेत दशामें पड़े रहे। साँस प्रति क्षण धीमी होती जाती थी। प्रेमशङ्कर पछता रहे थे, यह हाल मुझे पहले न मालूम हुआ, नहीं तो डाक्टर प्रियनाथको साथ लेता आता। यहाँ तारघर तो है, क्यों जी, उन्हें तार दे दूँ? वह इसे मेरा काम समझकर फीस न लेंगे, यही अड़चन है। यही सही पर उनको बुलाना जरूर चाहिये।

यह सोचकर उन्होंने तार लिखना शुरू किया कि सहसा डाक्टर प्रियनाथने कमरेमें कदम रखा। प्रेमशङ्करने चकित होकर एक बार उनकी ओर देखा और तब उनके गलेसे लिपट गये और कुण्ठित स्वरसे बोले—आइये भाई साहब, अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि ईश्वर दीनोंकी विनय सुनता है। आपके पास यह तार भेज रहा था। इनकी जान बचाइये।

प्रियनाथने आश्वासन देते हुए कहा—आप घबरायें नहीं, मैं अभी देखता हूँ। क्या करूँ, मुझे पहले किसीने खबर नहीं दी। इस इलाकेमें बुखारका जोर है, मैं कई गावोंका चक्कर लगाता हुआ थानेके सामनेसे गुजरा तो मुंशीजीने मुझे यह हाल बतलाया।

यह कहकर डाक्टर साहबने अपने हैंडबेगसे एक यंत्र निकालकर दयाशङ्करकी छातीमें लगाया और खूब ध्यानसे निरीक्षण करके बोले—फेफड़ोंपर बलगम आ गया है, लेकिन चिन्ताकी कोई बात नहीं, मैं दवा देता हूँ, ईश्वरने चाहा तो शामतक जरूर असर होगा।

डाक्टर साहबने दवा पिलायी और वहीं कुर्सीपर बैठ गये। प्रेमशङ्करने कहा, मैं शामतक आपको न छोड़ूँगा।

प्रियनाथने मुस्कराकर कहा—आप मुझे भगायें भी तो न जाऊँगा। यह मेरे पुराने दोस्त हैं, इनकी बदौलत मैंने हजारों रुपये उड़ाये हैं।

एक वृद्ध चौकीदारने कहा—हजूर, इनका अच्छा कर देव तो और तो नहीं, मुदा हम सब जने आपन एक एक तलब आपके नजर कर दे हैं।

प्रियनाथ हँसकर बोले—मैं तुम लोगोंको इतने सस्ते न छोड़ूँगा। तुम्हें वचन देना पड़ेगा कि अब किसी गरीबको न सतायेंगे, किसीसे जबरदस्ती बेगार न लेंगे और जिसका सौदा लेंगे उसको उचित दाम देंगे।

चौकीदार—भला सरकार, हमारा गुजर-बसर कैसे होगा। हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं, दस पन्द्रह रुपयोंमें क्या होता है?

प्रिय—तो अपने हाकिमोंसे तरक्की करनेके लिये क्यों नहीं कहते? सब लोग मिलकर जाओ और अर्ज-मारूज करो। तुम लोग प्रजाकी रक्षाके लिये नौकर हो, उन्हें सतानेके लिये नहीं। अवकाशके समय कोई दूसरा काम किया करो, जिससे आमदनी बढ़े। रोज २-३ घण्टे कोई काम कर लिया करो, तो १०, १२ रुपयेकी मजदूरी हो सकती है।

चौकीदार—भला ऐसा कौन काम है हजूर?

प्रिय—काम बहुत हैं, हाँ, शर्म छोड़नी पड़ेगी। इस भावको दिलसे निकाल देना पड़ेगा, कि हम कानिस्टेबल हैं तो अपने हाथोंसे मिहनत कैसे करें। सच्ची मिहनतकी कमाईमें अन्याय और जुल्मकी कमाईसे कहीं ज्यादा बरकत होती है।

मुंशीजी बोले—हजूर, इस बारेमें सरकारी कायदे बड़े सख्त हैं। पुलिसके मुलाजिमको कोई दूसरा काम करनेका मजाल नहीं है। अगर हमलोग कोई दूसरा काम करने लगें तो निकाल दिये जायँ।

प्रिय—यह आपकी गलती है, आपको फुर्सतके वक्त कपड़े बुनने, या सूत कातने या कपड़े सानेसे कोई नहीं रोक सकता। हाँ, सरकारी काममें हर्ज न होना चाहिये। आप लोगोंको अपनी हालत हाकिमोंसे कहनी चाहिये।

मुंशी—हजूर, कोई सुननेवाला भी तो हो, हमारा रिआया-को लूटना हुक्कामकी निगाहमें इतना बड़ा जुर्म नहीं है, जितना कुछ अर्ज-मारूज करना। फौरन साजिश और गरोहबन्दीका इलजाम लग जाय।

प्रिय—इससे तो यह कहीं अच्छा होता, कि आप लोग कोई हुनर सीखकर आजादीसे रोजी कमाते। मामूली कारीगर भी आप लोगोंसे ज्यादा कमा लेते हैं।

मुंशी—हजूर, यह तकदीरका मुआमला है। जिसके मुकद्दर-में गुलामी लिखी हो, वह आजाद कैसे हो सकता है?

दोपहर हो गयी थी, प्रियनाथने दूसरी खुराक दवा दी। इतनेमें महराजने आकर कहा—सरकार, रसोई तैयार है, भोजन कर लीजिये। प्रेमशङ्कर वहाँसे उठना न चाहते थे; लेकिन प्रियनाथने उन्हें इतमीनान दिलाकर कहा—चाहे अभी जाहिर न हो; पर पहली खुराकका कुछ-न-कुछ असर हुआ है, आप देख लीजियेगा, शामतक यह होश-हवासकी बातें करने लगेंगे।

दोनों आदमी भोजन करने गये। महराजने खूब मसालेदार भोजन बनाया था। दयाशङ्कर चटपटे भोजनके आदी थे। सब चीजें इतनी कड़वी थीं, कि प्रेमशङ्कर दो-चार कौरसे अधिक न खा सके। आँख और नाकसे पानी बहने लगा। प्रियनाथने हँसकर कहा—आपकी तो खूब दावत हो गयी। महराजने तो मदरासियोंको भी मात कर दिया। यह उत्ते-जक मसाले पाचनशक्तिको निर्बल कर देते हैं, देखो महराज, जबतक दारोगाजी अच्छे न हो जायँ, ऐसी चीजें उन्हें न खिलाना, मसाले बिलकुल न डालना।

महराज—हजूर, मैंने तो आज बहुत कम मसाले दिये हैं। दारोगाजीके सामने यह भोजन जाता तो कहते यह क्या फीकी पीच पकायी है।

प्रेमशङ्करने रूखे चावल खाये, मगर प्रियनाथने मिरचाकी परवा नहीं की, दोनों आदमी भोजन करके फिर दयाशङ्करके पास आ बैठे। तीन बजे प्रियनाथने अपने हाथोंसे उनकी छातीमें एक अर्ककी मालिश की और शामतक दो बार और दवा दी। दया-शङ्कर अभीतक चुपचाप पड़े हुए थे; पर यह मूर्च्छा नहीं, नींद-थी। उनकी श्वास-क्रिया स्वाभाविक होती जाती थी और मुख-की विवर्णता मिटती जाती थी। जब अंधेरा हुआ तो प्रियनाथने कहा, अब मुझे आज्ञा दीजिये, ईश्वरने चाहा तो रातभरमें इनकी

दशा बहुत अच्छी हो जायगी। अब भयकी कोई बात नहीं है। मैं कल ८ बजेतक फिर आऊँगा। सहसा दयाशङ्कर जागे, उनकी आँखोंमें अब वह चञ्चलता न थी। प्रियनाथने पूछा, अब कैसी तबीयत है।

दया—ऐसा जान पड़ता है, कि किसीने जलती हुई रेतसे उठाकर वृक्षकी छाँहमें लिटा दिया हो।

प्रिय कुछ भूख मालूम होती है?

दया—जी नहीं, प्यास लगी है।

प्रिय—तो आप थोड़ा-सा गर्म दूध पी लें। मैं इस वक्त जाता हूँ। कल ८ बजेतक आ जाऊँगा।

दयाशङ्करने मुंशीजीकी तरफ देखकर कहा,—मेरा सन्दूक खोलिये और उसमें जो कुछ हो लाकर डाक्टर साहबके पैरोंपर रख दीजिये। बाबूजी, यह रकम कुछ नहीं है, पर आप इसे कबूल करें।

प्रिय—अभी आप चंगे तो हो जायँ, मेरा हिसाब फिर हो जायगा।

दया—मैं चंगा हो गया, मौतके मुँहसे निकल आया, कल-तक मरनेका ही जी चाहता था, लेकिन अब जीनेकी इच्छा है। यह फीस नहीं है। मैं आपको फीस देने लायक नहीं हूँ। दैहिक रोगनिवृत्तिकी फीस हो सकती है, लेकिन मुझे ज्ञात हो रहा है कि आपने आत्मिक उद्धार कर दिया है। इसकी फीस वह एहसान है जो जीवनपर्यन्त मेरे सिरपर रहेगा और ईश्वरने चाहा तो आपको इस पापी जीवनको मौतके पंजेसे बचा लेने-का दुःख न होगा।

प्रियनाथने फीस न ली, चले गये। प्रेमशङ्कर थोड़ी देर बैठे रहे। जब दयाशङ्कर दूध पीकर फिर सो गये तब वह बाहर निकलकर टहलने लगे। अकस्मात् उन्हें लाला प्रभाशङ्कर एक्केपर आते हुए दिखायी दिये। निकट आते ही वह एक्केसे

उतरे और कम्पित स्वरसे बोले—बेटा, बताओ दयाशङ्करकी क्या हालत है? तुम्हारे चले आनेके बाद यहाँसे एक चौकीदार मेरे पास पहुँचा। उसने कुछ ऐसी बुरी खबर सुनायी कि होश उड़ गये, उसी वक्त चल खड़ा हुआ। घरमें हाहाकार मचा हुआ है। सच-सच बताओ, बेटा, क्या हाल है।

प्रेम—अब तो तबीयत बहुत कुछ संभल गयी है, कोई चिन्ताकी बात नहीं, पर जब मैं आया हूँ तो वास्तवमें हालत खराब थी। खैरियत यह हो गयी कि डाक्टर प्रियनाथ आ गये। उनकी दवाने जादूका-सा असर किया। अब सो रहे हैं।

प्रभा—बेटा, चलो, जरा देख लूँ, चित्त बहुत व्याकुल है।

प्रेम—आपको देखकर शायद वह रोने लगें।

प्रभाशङ्करने बड़ी नम्रतासे कहा—बेटा, मैं जरा भी न बोलूँगा, बस एक आँख देखकर चला आऊँगा। जी बहुत घबराया हुआ है।

प्रेम—आइये, मगर चित्तको शान्त रखियेगा। अगर उन्हें जरा भी आहट मिल गयी तो दिनभरकी मेहनत निष्फल हो जायगी।

प्रभा—भैया, कसम खाता हूँ, जरा भी न बोलूँगा। बस, दूरसे एक आँख देखकर चला आऊँगा।

प्रेमशङ्कर मजबूर हो गये। लालाजीको लिये हुए दयाशङ्करके कमरेमें गये। प्रभाशङ्करने चौखटसे ही इस तरह डरते-डरते भीतर झाँका जैसे कोई बालक घटाकी ओर देखता है कि कहीं बिजली न चमक जाय। पर दयाशङ्करकी दशा देखते ही प्रेमोद्गारसे विवश होकर वह जोरसे चिल्ला उठे और हाय बेटा! कहकर उनकी छातीसे चिमट गये।

प्रेमशङ्करने तुरन्त उपेक्षाभावसे उनका हाथ पकड़ा और खींचकर कमरेके बाहर लाये।

दयाशङ्करने चौंककर पूछा, कौन था। दादाजी आये हैं क्या?

प्रेमशङ्कर—आप आरामसे लेटें, इस वक्त बातचीत करनेसे बेचैनी बढ़ जायगी।

दया—नहीं, मुझे एक क्षणके लिये उठाकर बिठा दो। मैं उनके चरणोंपर सिर रखना चाहता हूँ।

प्रेम—इस वक्त नहीं। कल इतमीनानसे मिलियेगा।

यह कहकर प्रेमशङ्कर बाहर चले आये। प्रभाशङ्कर बरामदे-में खड़े रो रहे थे। बोले,—बेटा नाराज न हो, मैंने बहुत रोका, पर दिल काबूमें न रहा। इस समय मेरी दशा उस टूटी नावपर बैठे हुए मुसाफिरकी-सी है जिसके लिये हवाका एक झोंका भी मौतके थप्पड़के समान है। सच-सच बताओ, डाक्टर साहब क्या कहते थे।

प्रेम—उनके विचारमें अब कोई चिन्ताकी बात नहीं है। लक्षणोंसे भी यही प्रकट होता है।

प्रभा—ईश्वर इनका कल्याण करें, पर मुझे तो तब ही इत-मीनान होगा जब यह उठ बैठेंगे। यह इनके ग्रहका साल है।

दोनों आदमी बाहर आकर सायबानमें बैठे। दोनों अपने विचारमें मग्न थे। थोड़ी देरके बाद प्रभाशङ्कर बोले, हमारा यह कितना बड़ा अन्याय है कि अपनी सन्तानमें उन्हीं कुसं-स्कारोंको देखकर जो हममें स्वयं मौजूद है, उनके दुश्मन हो जाते हैं। दयाशङ्करसे मेरा केवल इसी बातपर मनमुटाव था, कि वह घरकी खबर क्यों नहीं लेता? दुर्व्यसनोंमें क्यों अपनी कमाई उड़ा देता है? मेरी मदद क्यों नहीं करता? किन्तु मुझ-से पूछो कि तुमने अपनी जिन्दगीमें क्या किया। मेरी इतनी उम्र भोगविलासमेंहीं गुजरी है। इसने अगर लुटायी तो अपनी कमाई लुटायी, बरबाद की तो अपनी कमाई बरबाद की। मैंने तो पुरु-षाओंकी जायदादका सफाया कर दिया। मुझे इससे बिगड़ने-का कोई अधिकार न था।

थानेके कई अमले और चौकीदार आकर बैठ गये और दया-

शङ्करकी सहृदयता और सज्जनताकी सराहना करने लगे। प्रभाशङ्कर उनकी बातें सुनकर गर्वसे फूले जाते थे।

८ बजे प्रेमशङ्करने जाकर फिर दवा पिलायी और वहीं रातभर एक आराम-कुर्सीपर लेटे रहे। पलकको झपकने भी न दिया।

सवेरे प्रियनाथ आये और दयाशङ्करको देखा तो प्रसन्न होकर बोले,—अब जरा भी चिन्ता नहीं है। इनकी हालत बहुत अच्छी है। एक सप्ताहमें यह अपना काम करने लगेंगे। दवासे ज्यादा बाबू प्रेमशङ्करकी शुश्रूषाका असर है। शायद आप रातको बिल्कुल नहीं सोये?

प्रेमशङ्कर—सोया क्यों नहीं? हाँ, घोड़े बेचकर नहीं सोया।

प्रभाशङ्कर—डाक्टर साहब, मैं गवाही देता हूँ कि रातभर इनकी आँखें नहीं झपकीं। मैं कई बार झाँकने आया तो या तो इन्हें बैठे या कुछ पढ़ते पाया।

दयाशङ्करने श्रद्धामय भावसे कहा—जीता बचा तो बाकी उम्र उनकी खिदमतमें काटूँगा। इनके साथ रहकर मेरा जीवन सुधर जायगा।

इस भाँति एक हफ्ता गुजर गया। डाक्टर प्रियनाथ रोज आते और घण्टेभर ठहरकर देहातोंकी ओर चले जाते। प्रभाशङ्कर तो दूसरे ही दिन घर चले गये, लेकिन प्रेमशङ्कर एक दिनके लिये भी न हिले। आठवें दिन दयाशङ्कर पालकीमें बैठकर घर जानेके योग्य हो गये। उनकी छुट्टी मंजूर हो गयी थी।

प्रातःकाल था। दयाशङ्कर थानेसे चले। यद्यपि वह केवल तीन महीनेकी छुट्टीपर जा रहे थे, पर थानेके कर्मचारियोंको ऐसा मालूम होता था कि अब इनसे सदाके लिये साथ छूट रहा है। सारा थाना मील भरतक पालकीके साथ दौड़ता हुआ उनके साथ आया। लोग किसी तरह लौटते ही न थे। अन्तमें प्रेम-

शङ्करके बहुत दिलासा देनेपर लोग बिदा हुए। सबके सब फूट-फूटकर रो रहे थे।

प्रेमशङ्कर मनमें पछता रहे थे, कि ऐसे सर्व-प्रिय श्रद्धेय मनुष्यसे मैं इतने दिनोंतक घृणा करता रहा। दुनियामें ऐसे सज्जन, ऐसे दयालु, ऐसे विनयशील पुरुष कितने हैं, जिनकी मुट्ठीमें इतने आदमियोंके हृदय हों, जिनके वियोगसे लोगोंको इतना दुःख हो।

६१

होलीका दिन था। शहरमें चारों तरफ अबीर और गुलाल उड़ रही थी, फाग और चौतालकी धूम थी; लेकिन लाला प्रभाशङ्करके घरपर मातम छाया हुआ था। श्रद्धा अपने कमरेमें बैठी हुई गायत्री देवीके गहने और कपड़े सहेज रही थी, कि अबकी ज्ञानशङ्कर आयें तो यह अमानत उन्हें सौंप दूँ। विद्याके देहान्त और गायत्रीके चले जानेके बादसे उसकी तबीयत अकेले बहुत घबराया करती थी। अक्सर दिन-के-दिन बड़ी बहूके पास बैठी रहती; पर जबसे दोनों लड़कोंकी मृत्यु हुई, उसका जी और भी उचटा रहता था। हाँ, कभी-कभी शीलमणिके आ जाने-से जरा देरके लिये जी बहल जाता था। गायत्रीके मरनेकी खबर यहाँ कल ही आयी थी। श्रद्धा उसे याद करके सारी रात रोती रही। इस वक्त भी गायत्री उसकी आँखोंमें फिर रही थी, उसकी मृदु, सरल, निष्कपट बातें याद आ रही थीं, कितनी उदार, कितनी नम्र, कितनी प्रेममयी रमणी थी, जरा भी अभिमान नहीं, पर हा शोक! कितना भीषण अन्त हुआ। इसी शोका-वस्थामें दोनों लड़कोंकी ओर ध्यान जा पहुँचा। हा! दोनों कैसे हँसमुख, कैसे होनहार, कैसे सुन्दर बालक थे। जिन्दगीका कोई भरोसा नहीं, आदमी कैसे-कैसे इरादे करता है, कैसे-कैसे मंसूबे बाँधता है; किन्तु यमराजके आगे किसीकी नहीं चलती। वह आनकी आनमें सारे मंसूबोंको धूलमें मिला देता है। तीन

महीनेके अन्दर पाँच प्राणी चल दिये, इसी तरह एक दिन मैं भी चल बसूँगी और मनकी मनमें ही रह जायेगी। आठ साल-से हम दोनों अपनी-अपनी टेकपर अड़े हैं, न वह झुकते हैं, न मैं दबती हूँ। जब इतने दिनोंतक उन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया, तब अब कदापि न करेंगे। उनकी आत्मा अपने पुण्य कार्योंसे सन्तुष्ट है, न इसकी जरूरत समझती है, न महत्व। अब मुझी-को दबना पड़ेगा, अब मैं ही किसी विद्वान पण्डितसे पूछूँ, कि मेरे किसी अनुष्ठानसे उनका प्रायश्चित्त हो सकता है या नहीं? क्या मेरी इतने दिनोंकी तपस्या, गङ्गास्नान, पूजा-पाठ, व्रत और नियम सब अकारथ हो जायेंगे? माना, उन्होंने विदेशमें कितने ही काम अपने धर्मके विरुद्ध किये; लेकिन जबसे यहाँ आये हैं, तबसे तो बराबर सत्कार्य ही कर रहे हैं, दीनोंकी सेवा और पतितोंके उद्धारमें दत्तचित्त रहते हैं, अपनी जानकी भी परवा नहीं करते। कोई बड़ा-से-बड़ा धर्मात्मा भी परोपकारमें इतना व्यस्त न रहता होगा, उन्होने अपनेको बिलकुल मिटा दिया है। धर्मके जितने लक्षण ग्रन्थोंमें लिखे हुए हैं, वे सब उनमें मौजूद हैं। जिस पुरुषने अपने मनको, अपनी इन्द्रियोंको, अपनी वासनाको ज्ञानबलसे जीत लिया हो, क्या उसके लिये भी प्रायश्चित्तकी जरूरत है? क्या कर्मयोगका मूल्य प्राय-श्चित्तके बराबर नहीं? कोई ऐसी पुस्तक नहीं मिलती, जिस-में इस समस्याको साफ-साफ व्यवस्था की गयी हो, कोई ऐसा विद्वान् नहीं दिखाई देता, जो मेरी शंकाओंका समाधान करे। भगवन्, मैं क्या करूँ? इन्हीं दुविधाओंमें पड़ी एक दिन मर जाऊँगी और उनकी सेवा करनेकी अभिलाषा मनमें ही रह जायेगी। उनके साथ रहकर मेरा जीवन भी सार्थक हो जाता, नहीं तो इस चहारदीवारीमें पड़े जीवन वृथा गँवा रही हूँ।

श्रद्धा इन्हीं विचारोंमें मग्न थी, कि अचानक उसे द्वारपर हल-

चल-सी सुनायी दी। खिड़कीसे झाँका तो नीचे सैकड़ों आदमियोंकी भीड़ दिखायी दी। इतनेमें महरीने आकर कहा बहूजी, लखनपूरके जितने आदमी कैद हुए थे वह सब छूट आये हैं और द्वारपर खड़े बाबूजीको आशीर्वाद दे रहे हैं। जरा सुनो, वह बुड्ढा दाढ़ीवाला कह रहा है, या अल्लाह! बाबू प्रेमशङ्करको कयामत-तक सलामत रख। इनके साथ एक बूढ़ा साधु भी है। सुखदास नाम है, वह बाजारसे यहाँतक रुपये पैसे लुटाता आया है। जान पड़ता है कोई बड़ा धनी आदमी है।

इतनेमें मायाशङ्कर लपका हुआ आया और बोला—बड़ी अम्माँ, लखनपूरके सब आदमी छूट आये हैं। बाजारमें उनका जलूस निकला था। डाक्टर इर्फानअली, बाबू ज्वालासिंह, डाक्टर प्रियनाथ, चचा साहब, चाचा दयाशङ्कर और शहरके और सैकड़ों छोटे-बड़े आदमी जलूसके साथ थे। लाओ, दीवान-खानेकी कुञ्जी दे दो, कमरा खोलकर सबको बैठाऊँ।

श्रद्धाने कुञ्जी निकालकर दे दी और सोचने लगी, इन लोगोंका क्या सत्कार करूँ, कि इतनेमें जय जयकारका गगन-व्यापी नाद सुनायी दिया – बाबू प्रेमशङ्करकी जय! लाला दया-शङ्करकी जय! लाला प्रभाशङ्करकी जय!

मायाशङ्कर फिर दौड़ा हुआ आया और बोला— बड़ी अम्माँ जरा ढोल मजीरा निकलवा दो, बाबा सुखदास भजन गायेंगे। वह देखो, वह दाढ़ीवाला बुड्ढा, वही कादिर खाँ है, वह जो लम्बा-तगड़ा आदमी है, वही बलराज है। इसीके बापने गौस खाँको मारा था।

श्रद्धाका चेहरा आत्मोल्लाससे चमक रहा था। हृदय ऐसा पुलकित हो रहा था, मानों द्वारपर बरात आयी हो। मनमें भाँति-भाँतिकी उमँगें उठ रही थीं। इन लोगोंको आज यहीं ठहरा लूँ, सबकी दावत करूँ, खूब धूमधामसे सत्यनारायणकी कथा हो। प्रेमशङ्करके प्रति श्रद्धाका ऐसा प्रबल आवेग हो रहा

था कि इसी दम जाकर उनके चरणोंसे लिपट जाऊँ। तुरन्त ढोल और मजीरे निकालकर मायाशङ्करको दिये।

सुखदासने ढोल गलेमें डाला, औरोंने मजीरे लिये, मण्डल बाँधकर खड़े हो गये और यह भजन गाने लगे।

'सद्गुरुने मोरी गह लई बांह, नहीं रे मैं तो जात बहा।'

माया खुशीके मारे फूले न समाता था। आकर बोला—कादिरमियाँ खूब गाते हैं।

श्रद्धा—इन लोगोंकी कुछ आव-भगत करनी चाहिये।

माया—मेरा तो जी चाहता है सबकी दावत हो। तुम अपनी तरफसे कहला दो। जो सामान चाहिये वह मुझे लिखवा दो। जाकर आदमियोंको लानेके लिये भेज दूँ। यह सब बेचारे इतने सीधे, गरीब हैं कि मुझे तो विश्वास नहीं आता कि इन्होंने गौस खाँको मारा होगा। बलराज है तो पूरा पहलवान, लेकिन वह भी बहुत ही सीधा मालूम होता है।

श्रद्धा—दावतमें बड़ी देर लगेगी। बाजारसे चीजें आयेंगी, बनाते-बनाते तीसरा पहर हो जायगा। इस वक्त एक २०) की मिठाई मँगवाकर जलपान करा दो। रुपये हैं या दूँ?

माया—रुपये बहुत हैं। क्या कहूँ, मुझे पहले यह बात न सूझी।

दोपहरतक भोजन होते रहे। शहरके हजारों आदमी इस आनन्दोत्सवमें शरीक थे। प्रेमशङ्करने सबको आदरसे बिठाया। इतनेमें बाजारसे मिठाइयाँ आ गयीं, लोगोंने नाश्ता किया और प्रेमशङ्करका यश गान करते हुए विदा हुए, लेकिन लखनपूरवालों को छुट्टी न मिली। श्रद्धाने कहला भेजा कि खा-पीकर शामको जाना। यद्यपि सबके सब घर पहुँचनेके लिये उत्सुक हो रहे थे, पर यह निमंत्रण कैसे अस्वीकार करते! लाला प्रभाशङ्कर भोजन बनवाने लगे। अबतक उन्होंने केवल बड़े आदमियोंको ही अपनी व्यञ्जनकलासे मुग्ध किया था। आज देहातियोंको भी यह

सौभाग्य प्राप्त हुआ। लालाजी ऐसा स्वादयुक्त भोजन देना चाहते थे, जो उन्हें तृप्त कर दे, जिसको वह सदैव याद करते रहें। भाँति-भाँतिके पकवान बनाने लगे। बहुत जल्दी की गयी, फिर भी खाते-पीते ८ बज गये। प्रियनाथ और इर्फानअलीने अपनी सवारियाँ भेज दी थीं। उसपर बैठकर लोग लखनपूर चले। सबने मुक्तकण्ठसे आशीर्वाद दिये। अभी घरवाले बाकी थे. उनके खानेमें १० बज गये। प्रेमशङ्कर हाजीपुर जानेको प्रस्तुत हुए तो महरीने आकर धीरेसे कहा, बहूजी कहती हैं कि आज यहीं सो रहिये। रात बहुत हो गयी है। इस असाधारण कृपादृष्टिने प्रेमशङ्करको चकित कर दिया। वह इसका मर्म न समझ सके।

ज्वालासिंहने महरीसे हँसी की—हम लोग भी रहें या चले जायं?

महरी सतर्क थी। बोली—नहीं सरकार, आप भी रहें, माया भैया भी रहें, यहाँ किस चीजकी कमी है?

ज्वाला—चल, बातें बनाती है?

महरी चली गयी तो वह प्रेमशङ्करसे बोले,—आज मालूम होता है, आपके नक्षत्र बलवान हैं। अभी और विजय प्राप्त होनेवाली है।

प्रेमशङ्करने विरक्त भावसे कहा—कोई नया उपदेश सुनना पड़ेगा, और क्या?

ज्वाला—जी नहीं, मेरा मन कहता है, कि आज देवी आपको वरदान देगी। आपकी तपस्या पूरी हो गयी।

प्रेम—मेरी देवी इतनी भक्तवत्सला नहीं हैं।

ज्वाला—अच्छा, कल आप ही ज्ञात हो जायेगा। हमें आज्ञा दीजिये।

प्रेम—क्यों, यहीं क्यों न सो रहिये?

ज्वाला—मेरी देवी और भी जल्द रूठती हैं।

यह कहकर वह मायाशङ्करके साथ चले गये।

महरीने प्रेमशङ्करके लिये पलंग बिछा दिया था। वह लेटे तो अनिवार्यतः मनमें जिज्ञासा होने लगी, कि श्रद्धा आज क्यों मुझपर इतनी सदय हुई है। कहीं यह महरीका कौशल तो नहीं है? नहीं, महरी ऐसी हँसोड़ तो नहीं जान पड़ती। कहीं वास्तवमें उसने दिल्लगी की हो, तो व्यर्थ लज्जित होना पड़े। श्रद्धा न जाने अपने मनमें क्या सोचे? अन्तमें इन शंकाओंको शान्त करनेके लिये उन्होंने ज्ञानशङ्करकी आलमारीमेंसे एक पुस्तक निकाल ली और उसे पढ़ने लगे।

ज्वालासिंहकी भविष्यवाणी सत्य निकली। आज वास्तवमें उनकी तपस्या पूरी हो गयी थी, उनकी सुकीर्तिने श्रद्धाको वशीभूत कर लिया था। आज जबसे उसने सैकड़ों आदमियोंको द्वारपर खड़े प्रेमशङ्करकी जय-जयकार करते देखा था, तभीसे उसके मनमें यह समस्या उठ रही थी, – क्या इतने अन्तःकरणोंसे निकली हुई शुभेच्छाओंका महत्व प्रायश्चित्तसे कम है? कदापि नहीं। परोपकारकी महिमा प्रायश्चित्तसे किसी तरह कम नहीं हो सकती; बल्कि सच्चा प्रायश्चित्त तो परोपकार ही है। इतनी आशीषें किसी महान् पापीका भी उद्धार कर सकती हैं। कोरे प्रायश्चित्तका इनके सामने क्या महत्व हो सकता है? और इन आशीषोंका आज ही थोड़े ही अन्त हो गया? जब यह सब घर पहुँचेंगे, तो इनके घरवाले और भी आशीष देंगे। जबतक दममें दम रहेगा, उनके हृदयसे नित्य यह सदिच्छाएँ निकलती रहेंगी। ऐसे यशस्वी, ऐसे श्रद्धेय पुरुषको प्रायश्चित्तकी कोई जरूरत नहीं। इस सुधावृष्टिने उसे पवित्र कर दिया है।

ग्यारह बजे थे। श्रद्धा ऊपरसे उतरी और सकुचाती हुई आकर दीवानखानेके द्वारपर खड़ी हो गयी। लैम्प जल रहा था, प्रेमशङ्कर किताब देख रहे थे। श्रद्धाको उनके मुखमण्डलपर आत्मगौरवकी एक दिव्य-ज्योति झलकती हुई दिखाई दी। उनका

हृदय बाँसों उछल रहा था और आँखें आनन्दके अश्रुबिन्दुओंसे भरी हुई थीं। आज चौदह वर्षके बाद उसे अपने प्राणपतिकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अब विरागिणी श्रद्धा न थी, जिसकी सारी आकांक्षाएँ मिट चुकी हों। इस समय उसका हृदय अभिलाषाओंसे आन्दोलित हो रहा था; किन्तु उसके नेत्रोंमें तृष्णा न थी, उसके अधरोंपर मृदु मुसुकान न थी। वह इस तरह नहीं आयी थी, जैसे कोई नववधू अपने पतिके पास आती है। वह इस तरह आयी थी, जैसे कोई उपासिका अपने इष्टदेवके सामने आती है, श्रद्धा और अनुरागमें डूबी हुई।

वह क्षणभर द्वारपर खड़ी रही। तब जाकर प्रेमशङ्करके चरणोंपर गिर पड़ी।

६२

मानवचरित्र न बिलकुल श्यामल होता है, न बिलकुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगोंका विचित्र सम्मिश्रण होता है; किन्तु स्थिति अनुकूल हुई, तो वह ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम। वह अपनी परिस्थितियोंका खिलौनामात्र है। बाबू ज्ञानशंकर अगर अबतक स्वार्थी, लोभी और संकीर्ण हृदय थे, तो यह परिस्थितियोंका फल था। भूखा आदमी उस समयतक कुत्तेको कौर नहीं देता, जबतक वह स्वयं संतुष्ट न हो जाये। असम्पन्नताने उनकी श्यामलताको और भी उज्ज्वल कर दिया था। उन्होंने ऐसे घरमें जन्म लिया था जिसने कुलमर्यादाकी रक्षामें अपनी श्रीका अन्त कर दिया था। ऐसी अवस्थामें उन्हें संतोषसेही शान्ति मिल सकती थी; पर उनकी उच्च शिक्षाने उन्हें जीवनको एक वृहत् संग्राम-क्षेत्र समझना सिखाया था। उनके सामने जिन महान् पुरुषोंके आदर्श रखे गये थे, उन्होंने भी संघर्षनीतिका आश्रय लेकर सफलता प्राप्त की थी। इसमें सन्देह नहीं कि इस शिक्षाने उन्हें लेख और वाणीमें प्रवीण, तर्कमें कुशल, व्यवहारोंमें चतुर बना दिया था; पर इसके साथ ही उन्हें स्वार्थ

और स्वहितका दास बना दिया था। यह वह शिक्षा न थी, जो अपने झोंपड़ेका द्वार खुला रखनेका अनुरोध करती है, जो दूसरोंको खिलाकर आप खानेकी नीति सिखाती है। ज्ञानशंकर किसीको आश्रय देनेकी कल्पना भी न कर सकते थे, जबतक अपना प्रासाद न बना लें। वह किसीको मुट्ठीभर अन्न भी न दे सकते थे, जबतक अपनी धान्यशालाको भर न लें।

सौभाग्यसे उनका प्रासाद निर्मित हो चुका था। अब वह दूसरोंको आश्रय देनेपर तैयार थे, उनकी धान्यशाला परिपूर्ण हो चुकी थी, अब उन्हें भिक्षुकोंसे घृणा न थी। सम्पत्तिशाली होकर वह उदार, दयालु, दीनवत्सल और कर्त्तव्यपरायण हो गये थे। लाला प्रभाशंकरकी पुत्रियोंके विवाहमें उन्होंने खासी मदद की थी और पुत्रोंके मातममें शरीक होनेके लिये भी गोरखपूरसे आये थे। प्रेमशंकरके प्रति भी उनका भ्रातृप्रेम जाग्रत हो गया था, यहाँतक कि लखनपूरवालोंके मुक्त हो जानेपर उन्हें बधाई दी थी। गायत्रीकी मृत्युका शोक समाचार मिला, तो उन्होंने उसका संस्कार बड़ी धूमसे किया और कई हजार रुपये खर्च किये। उसकी यादगारमें एक पक्का तालाब खुदवा दिया। जबतक वह फूसके झोपड़ोंमें रहते थे, आगकी चिनगारियोंसे डरते थे। अब उनका पक्का महल था, फुलझड़ियोंका तमाशा सावधानीसे देख सकते थे।

ज्ञानशंकर अब ख्याति और सुकीर्तिके लिये लालायित रहते थे। लखनऊके मान्यगण उन्हें अनाधकारा समझकर उनसे कुछ खिंचे रहते थे और यद्यपि गोरखपूरमें पहले ही उन्होंने सम्मान-पद प्राप्त कर लिया था; पर इस नया हैसियतमें देखकर अक्सर लोग उनसे जलते थे। ज्ञानशंकरने दोनों शहरोंके रईसोंसे मेल-जोल बढ़ाना शुरू किया। पहले वह रायसाहबके अव्यवस्थित व्ययको घटाना परमावश्यक समझते थे, कई घोड़े, एक मोटर, कई सवारी गाड़ियाँ निकाल देना चाहते थे। लेकिन अब उन्हें अपनी

सम्मानरक्षाके लिये उस ठाट-बाटको निबाहना ही नहीं, उसे और बढ़ाना जरूरी मालूम होता था, जिसमें लोग उनकी हँसी न उड़ायें। वह उन लोगोंकी बार-बार दावतें करते, छोटे-बड़े सबसे नम्रता और विनयका व्यवहार करते और सत्कार्योंके लिये दिल खोलकर चन्दे देते। पत्र-सम्पादकोंसे उनका परिचय पहलेसेही था। अब और भी घनिष्ठ हो गया। अखबारोंमें उनकी उदारता और सज्जनताकी प्रशंसा होने लगी। यहाँतक कि साल भी न बीतने पाया था, कि वह लखनऊके ताल्लुकेदार-सभाके मन्त्री चुन लिये गये। राज्याधिकारियोंमें भी उनका सम्मान होने लगा। वह वाणीमें कुशल थे ही, प्रायः जातीय-सम्मेलनोंमें ओजस्विनी वक्तृता देते। पत्रोंमें वाह-वाह होने लगती। अतएव वह इधर तो जातिके नेताओंमें गिने जाने लगे, उधर अधिकारियोंमें भी मान-प्रतिष्ठा होने लगी।

किन्तु अपनी मूक, दीन प्रजाके साथ उनका बर्ताव इतना सदय न था। उन वृक्षोंमें काँटे न थे, इसलिये उनके फल तोड़-नेमें कोई बाधा न थी। असामियोंपर अबराज बकाया और इजाफे की नालिशें धूमसे हो रही थीं, उनके पट्टे बदले जा रहे थे और नजराने बड़ी कठोरतासे वसूल किये जा रहे थे। राय-साहबने रियासतपर पाँच लाखका ऋण छोड़ा था। उसपर लगभग २५ हजार वार्षिक ब्याज होता था। ज्ञानशंकरने इन प्रयत्नोंसे सूदकी पूर्त्ति कर ली। इतने अत्याचारपर भी प्रजा उनसे असन्तुष्ट न थी। वह कड़वी दवाएँ मीठी करके पिलाते थे। गायत्रीकी बरसीमें उन्होंने असामियोंको एक हजार कम्बल बाँटे और ब्राह्मणोंको भोज दिया। इसी तरह रायसाहबके इलाकेमें भी होलाके दिन जलसे कराये और भोले-भाले असा-मियोंको भरपेट भंग पिलाकर मुग्ध कर दिया। कई जगह मंडियाँ लगवा दीं, जिनसे कृषकोंको अपनी जिन्सें बेचनेमें बड़ी सुविधा हो गयी और रियासतको भी अच्छा लाभ होने लगा।

इस तरह दो साल गुजर गये। ज्ञानशंकरका सौभाग्य-सूर्य्य अब मध्याह्नपर था। रायसाहबके ऋणसे वह बहुत कुछ मुक्त हो चुके थे, हाकिमोंमें मान था, रईसोंमें प्रतिष्ठा थी, विद्वज्जनोंमें आदर था, ममेज्ञ लेखक थे, कुशल वक्ता थे। सुख-भोगकी सब सामग्रियाँ प्राप्त थीं। जीवनकी महत्वाकांक्षाएँ पूरी हो गयी थीं। वह जब कभी अवकाशके समय अपनी गत अवस्थापर विचार करते, तब उन्हें अपनी सफलतापर आश्चर्य होता था। मैं क्या-से क्या हो गया? अभी तीन ही साल पहले मैं एक हजार सालाना नफेके लिये सारे गाँवको फाँसीपर चढ़वा देना चाहता था। तब मेरी दृष्टि कितनी संकीर्ण थी। एक तुच्छ बातके लिये चचासे अलग हो गया, यहाँतक कि अपने सगे भाईका भी अहित सोचता था, उन्हें फँसानेमें कोई बात उठा नहीं रखी; पर अब ऐसा-ऐसी कितनी रकमें दान कर देता हूँ। कहाँ एक ताँगा रखनेका सामर्थ्य न था, कहाँ अब मोटरें माँगनी दिया करता हूँ। निस्सन्देह इस सफलताके लिये मुझे स्वाँग भरने पड़े, हाथ रँगने पड़े; पाप, छल, कपट, सब कुछ करने पड़े; किन्तु अन्धेरे खोहमें उतरे बिना अनमोल रत्न कहाँ मिलते हैं? लेकिन इसे अपने ही कृत्योंका फल समझना मेरी नितान्त भूल है। ईश्वरीय व्यवस्था न होती, तो मेरी चाल कभी सीधी न पड़ती। उस समय तो ऐसा जान पड़ता था, कि पाँसा पट पड़ा, वार खाली गया; लेकिन सौभाग्यसे उन्हीं खाली वारोंने, उन्हीं उल्टी चालोंने बाजी जिता दी।

ज्ञानशंकर दूसरे-तीसरे महीने बनारस अवश्य जाते और प्रेमशंकरके साथ रहकर सरल जीवनका आनन्द उठाते। उन्होंने प्रेमशंकरसे कितनी ही बार साग्रह कहा, कि अब आपको इस उजाड़में झोंपड़ा बनाकर रहनेकी क्या जरूरत है? चलकर घरपर रहिये और ईश्वरकी दी हुई सम्पत्ति भोगिये। यह मंजूर न हो तो मेरे साथ चलिये। हजार-दो-हजार बीघे चक दे दूँ, वहाँ दिल

खोलकर कृषक-जीवनका आनन्द उठाइये; लेकिन प्रेमशङ्कर कहते, मेरे लिये इतना ही काफी है, ज्यादाकी जरूरत नहीं। हाँ, इस अनुरोधका इतना फल अवश्य हुआ कि वह अपनी जोतको बढ़ाने पर राजी हो गये। उनके डाँड़से मिली हुई ५० बीघे जमीन एक दूसरे जमींदारकी थी। उन्होंने उसका पट्टा लिखा लिया और फूसके झोपड़ोंकी जगह खपरैलके मकान बनवा लिये। ज्ञानशङ्कर उनसे यह सब प्रस्ताव करते थे; पर उनके सन्तोषमय, सरल, निर्विरोध जीवनके महत्वसे अनभिज्ञ न थे। नाना प्रकारकी चिन्ताओं और बाधाओंमें ग्रस्त रहनेके बाद वहाँके शांतिमय, निर्विघ्न विश्रामसे उनका चित्त प्रफुल्लित हो जाता था, यहाँसे जानेको जी न चाहता था। यह स्थान अब पहलेकी तरह न था, जहाँ केवल एक आदमी साधुओंकी भाँति अपनी कुटीमें पड़ा रहता हो। अब यह एक छोटी-सी गुलजार बस्ती थी, जहाँ नित्य राजनीतिक और सामाजिक विषयोंपर संवाद होते थे और जीवन मरणके गूढ़, जटिल प्रश्नोंकी मीमांसा की जाती थी। यह विद्वज्जनोंकी एक छोटा-सा संगत था; विद्वानोंके पक्षपात और अहंकारसे मुक्त। वास्तवमें यह सारल्य, सन्तोष और सुविचारकी तपोभूमि थी। यहाँ न ईर्षाका सन्ताप था, न लोभका उन्माद, न तृष्णाका प्रकोप। यहाँ धनकी पूजा न होती थी, और न दीनता पैरों तले कुचली जाती थी। यहाँ न एक गद्दा लगाकर बैठता था और न दूसरा अपराधियोंकी भाँति उसके सामने हाथ बाँधकर खड़ा होता था। यहाँ स्वामीकी घुड़कियाँ न थीं, न सेवककी दीन ठकुरसोहातियाँ। यहाँ सब एक दूसरेके सेवक, एक दूसरेके मित्र और हितैषी थे। एक तरफ डाक्टर इर्फान अलीका सुन्दर बंगला था; फूलों और लताओंसे सजा हुआ। डाक्टर साहब अब केवल वही मुकदमे लेते थे जिनके सच्चे होनेका उन्हें विश्वास होता था और केवल उतना ही पारिश्रमिक लेते थे, जितना रोजाना खर्चके लिये आवश्यक हो। संचय और संग्रहकी चिन्ताओंसे

निवृत्त हो गये थे। शाम-सवेरे वह प्रेमशङ्करके साथ बागवानी करते थे, जिसका उन्हें पहलेसेही शौक था। पहले गमलोंमें लगे हुए पौधोंको देखकर खुश होते थे, काम माली करता था। अब सारा काम अपनेही हाथों करते थे। उनके बंगलेसे मिला हुआ डाक्टर प्रियनाथका मकान था। मकानके सामने एक औषधालय था। अब वह प्रायः देहातोंमें घूम-घूमकर रोगियोंका कष्ट निवारण करते थे, नौकरी छोड़ दी थी। जीविकाके लिये एक गौशाला खोल ली थी, जिसमें कई पछाहीं गायें भैंसे थीं। दूध, मक्खन बिकनेके लिये शहर चला जाता था। रोगियोंसे कुछ फीस न लेते थे। बाबू ज्वालासिंह और प्रेमशङ्कर एक ही मकानमें रहते थे। श्रद्धा और शीलमणिमें खूब बनती थी। घरके कामोंसे फुरसत पाते ही दोनों चरखेपर बैठ जाती थीं या मोजे बुनने लगती थीं। प्रेमशङ्कर नियमानुसार खेतमें काम करते थे और ज्वालासिंह नये प्रकारके करघोंपर आप भी कपड़े बुनते थे और हाजीपुरके कई युवकोंको बुनना सिखाते थे। इस कलामें वह बहुत निपुण हो गये थे। सैयद ईजादहुसेनने भी यहीं अड्डा जमाया था। उनका परिवार अब भी शहरमें ही रहता था; पर यतीमखाना यहीं उठ आया था। उसमें अब नकली नहीं, सच्चे यतीमोंका पालन-पोषण होता था। सैयद साहब अपना "इत्तहाद" अब भी निकालते थे और 'इत्तहाद' पर व्याख्यान देते थे; लेकिन चन्दे न वसूल करते थे और न स्वांग भरते थे। वह अब हिन्दू-मुसलिम-एकताके सच्चे प्रचारक थे। यतीमखानेके समीप ही मायाशङ्करका मित्रभवन था। यह एक छोटा-सा छात्रालय था। इसमें इर्फानअलीके दो लड़के प्रियनाथके तीनों लड़के, दुर्गा मालीका एक लड़का और मस्ताका एक छोटा भाई साथ-साथ रहते थे। सब साथ-साथ पाठशालाको जाते और साथ ही भोजन करते। उनका सब खर्च मायाशङ्कर अपने वजीफेसे देता था। भोजन श्रद्धा पकाती थी। ज्ञानशंकर

ने कई बार चाहा कि मायाको ले जाकर लखनऊके ताल्लुकेदार स्कूलमें दाखिल करा दें; लेकिन वह राजी न होता था।

एक बार ज्ञानशङ्कर लखनऊसे आये तो मायाके वास्ते एक बहुत सुन्दर रेशमी सूट सिला लाये; लेकिन मायाने उसे उस वक्ततक न पहना, जबतक मित्रभवनके और छात्रोंके लिये वैसे ही सूट न तैयार हो गये। ज्ञानशङ्कर मनमें बहुत लज्जित हुए और बहुत जब्त करनेपर भी उनके मुँहसे इतना निकल ही गया, भाई साहब, मैं इस साम्य—सिद्धान्तपर आपसे सहमत नहीं हूँ। यह एक अस्वाभाविक सिद्धान्त है। सिद्धान्तरूपसे हम चाहे इसकी कितनी ही प्रशंसा करें; पर इसका व्यवहारमें लाना असंभव है। मैं यूरोपके कितने ही साम्यवादियोंको जानता हूँ, जो अमीरोंकी भाँति रहते हैं, मोटरोंपर सैर करते हैं और सालमें ६ महीने इटली या फ्रांसमें विहार किया करते हैं। जब वह अपनेको साम्यवादी कह सकते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि हम इस अस्वाभाविक नीतिपर जान दें।

प्रेमशङ्करने विनीत भावसे कहा—यहाँ साम्यवादकी तो कभी चर्चा नहीं हुई।

ज्ञान—तो फिर यहाँके जलवायुमें यह असर होगा। यद्यपि मुझे इस विषयमें आपसे कुछ कहनेका अधिकार नहीं है; पर पिताके नाते मैं इतना कहनेकी क्षमा चाहता हूँ, कि ऐसी शिक्षाका फल मायाके लिये हितकर न होगा।

प्रेम—अगर तुम चाहो और मायाकी इच्छा हो, तो उसे लखनऊ ले जाओ, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यहाँके जलवायुको बदलना मेरे बसकी बात नहीं।

ज्ञान—यह तो आप जानते ही हैं, कि माया और उसके साथियोंकी स्थितियोंमें कितना अन्तर है।

प्रेमशङ्करने गम्भीरतासे कहा—हाँ, खूब जानता हूँ; पर यह नहीं जानता कि इस अन्तरको प्रदर्शित क्यों किया जाय। माया-

शङ्कर थोड़े दिनोंमें एक बड़ा इलाकेदार होगा, यह सब लड़कों-को मालूम है। क्या यह बात उन्हें अपने दुर्भाग्यपर रुलानेके लिये काफी नहीं है, कि इस विभिन्नताका स्वाँग दिखाकर उन्हें और भी चोट पहुँचायी जाय। तुम्हें मालूम न होगा; पर मैं यह विश्वस्त रूपसे कहता हूँ, कि तेजू और पद्मू का बलिदान मायाके गोद लिये जानेकेही कारण हुआ। मायाको अचानक इस रूपमें देखकर उनको वृद्धि प्राप्त करनेकी प्रेरणा हुई। माया डींगें मार-मारकर उनकी लालसाको और भी उत्तेजित करता रहा और उसका यह भयङ्कर परिणाम हुआ.....

इतनेमें माया आ गया और प्रेमशंकरको अपनी बात अधूरी ही छोड़नी पड़ी। ज्ञानशंकर भी अन्यमनस्क होकर वहाँसे उठ गये।

६३

गायत्रीके आदेशानुसार ज्ञानशंकर २०००) महीना मायाशंकर के खर्चके लिये देते जाते थे! प्रेमशङ्करकी इच्छा थी कि कई अध्यापक रखे जायँ, कई घोड़े लिये जायँ, सैर करनेके लिये गाड़ियाँ रखी जायँ, कई नौकर सेवा-टहलके लिये लगाये जायँ; पर मायाशंकर अपने ऊपर इतना खर्च करनेको राजी न हुआ। प्रेमशंकरको मजबूर होकर उसकी बात माननी पड़ी। केवल दो अध्यापक उसे पढ़ाने आते थे। फारसी पढ़ानेके लिये ईजादहुसेन और संस्कृत पढ़ानेके लिये एक पण्डित, सवारीके लिये एक घोड़ा भी था। अंग्रेजी प्रेमशंकर स्वयं पढ़ाते थे, गणित ज्वालासिंहके जिम्मे था, डाक्टर प्रियनाथ सप्ताहमें दो दिन गानेकी शिक्षा देते थे, जिसमें वह निपुण थे और दो दिन आरोग्यशास्त्र पढ़ाते थे। डाक्टर इर्फानअली अर्थशास्त्रके ज्ञाता थे, सप्ताहमें दो दिन कानून सिखाते और दो दिन अर्थशास्त्रकी व्याख्या करते। कालेजके कई विद्यार्थी शहरसे इन व्याख्यानोंको सुननेके लिये आ जाते थे और प्रियनाथका संगीत-समाज तो सारे शहरमें प्रसिद्ध था।

इधरकी बचत मित्रभवन, इत्तहादी अनाथालय और प्रियनाथके चिकित्सालयके सञ्चालनमें खर्च होती थी। विद्यावतीके नामसे बीस-बीस रुपयेकी दस छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती थीं। इतना सब खर्च करनेपर भी महीनेमें खासी बचत हो जाती थी। इन तीन वर्षोंमें कोई २५ हजार रुपये जमा हो गये थे। प्रेमशङ्कर चाहते थे कि ज्ञानशङ्करकी सम्मति लेकर मायाको कुछ दिनोंके लिये युरोप, अमेरिका आदि देशोंमें भ्रमण करनेके लिये भेज दिया जाय। इस धनका इससे अच्छा उपयोग न हो सकता था। पर मायाशङ्करकी कुछ और ही इच्छा थी। वह यात्रा करनेके लिये तो उत्सुक था, पर एक हजार रुपये महीनेसे ज्यादा खर्च न करना चाहता था। इस धनके सदुपयोगकी दूसरी ही विधि सोची थी। पर प्रेमशङ्करसे यह प्रकट करते हुए सकुचाता था। संयोगसे इसी बीचमें उसे इसका अच्छा अवसर मिल गया।

लाला प्रभाशङ्करने प्रेमशङ्करको लखनपूरके मुकदमेसे बचानेके लिये जो रुपये उधार लिये थे, उनकी अवधि तीन साल थी। यह मियाद पूरी हो गयी थी, पर रुपयेका सूदतक न अदा हुआ था। पहले प्रेमशङ्करको इस मामलेकी जरा भी खबर न थी, पर जब महाजनने अदालतमें नालिश की तो उन्हें खबर हुई। रुपये क्यों उधार लिये गये थे, यह बात शीघ्र ही मालूम हो गयी। तबसे यह घोर चिन्तामें पड़े हुए थे कि यह रुपये कैसे दिये जायँ। यद्यपि मुकदमेमें रुपयेका एक ही भाग खर्च हुआ था, अधिकांश खाने-खिलाने शादी-ब्याहमें उड़ा था, पर यह हिसाब-किताब करनेका समय न था। प्रेमशङ्कर ऋणका पूरा भार लेना चाहते थे। लेकिन रुपये कहाँसे आयें? वे कई दिन इसी चिन्तामें विकल रहे, कभी सोचते ज्ञानशङ्करसे माँगू, कभी प्रियनाथसे माँगनेका विचार करते, पर सँकोचवश किसीसे कहते न बनता था।

एक दिन वह इसी उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे कि भोला आकर खड़ा हो गया और उन्हें चिन्तित देख बोला, बाबूजी, आज-

कल आप बहुत उदास रहते हैं, क्या बात है ? हमारे लायक कोई काम हो तो बताइये, भरसक उसे पूरा करेंगे।

प्रेमशङ्करको भोलासे बहुत स्नेह था। इनके सत्संगसे उसकी शराब और जुएकी आदत छूट गयी थी। वह इनको अपना मुक्तिदाता समझता था और इनपर असीम श्रद्धा रखता था। प्रेमशङ्कर भी उसपर विश्वास करते थे। बोले,—कुछ ऐसी ही चिन्ता है, मगर तुम सुनकर क्या करोगे ?

भोला—और तो क्या करूँगा ? हाँ, जान लड़ा दूँगा।

प्रेम—जान लड़ानेसे मेरी चिन्ता दूर न होगी, उसका कोई और ही उपाय करना पड़ेगा।

भोला—जो कहिये वह करनेको तैयार हूँ, जबतक आप न बतायेंगे पिण्ड न छोड़ूँगा।

अन्तमें विवश होकर प्रेमशङ्करने कहा,—मुझे कुछ रुपयों-की जरूरत है और समझमें नहीं आता कि कौन-सा उपाय करूँ।

भोला—हजार दो हजारसे काम चले तो मेरे पास हैं ले लीजिये। ज्यादाकी जरूरत हो तो कोई और उपाय करूँ।

प्रेम—हजार दो हजारका तुम क्या प्रबन्ध करोगे ? तुम्हारे पास तो है नहीं, किसीसे लेनेही पड़ेंगे।

भोला—नहीं बाबूजी, आपकी दुआसे अब इतने फटेहाल नहीं हैं। हजारसे कुछ ऊपर तो अपने ही हैं। एक हजार मस्ताने रखनेको दिये हैं। दुर्गा और दमड़ी भी कुछ रुपये रखनेको देते थे, पर मैंने नहीं लिये। पराये रुपये घरमें रखकर कौन जञ्जाल पाले। कहीं कुछ हो जाय तो लोग समझें इसने खा लिये होंगे।

प्रेम—तुम लोगोंके पास इतने रुपये कहाँसे आ गये ?

भोला—आपहीने दिये हैं, और कहाँसे आये। जवानीकी कसम खाकर कहता हूँ कि इधर तीन सालसे एक दिन भी कौड़ी

हाथसे छूई हो, या दारू मुँहसे लगायी हो। आप लोगों जैसे भले आदमियोंके साथ रहकर ऐसे कुकर्म करता, तो कौन मुँह दिखाता? मस्ताके बारेमें भी कह सकता हूँ, कि इधर दो-ढाई सालसे किसीके मालकी तरफ आँख उठाकर नहीं देखा। अभी थोड़े ही दिनोंकी बात है, कि भवानीसिंहकी अंटीसे ५ गिन्नियाँ गिर गयी थीं। मस्ताने खेतमें पड़ी पायीं और उसी दम जाकर उन्हें दे आया। पहले इसी बगीचेसे फल-फलारी तोड़कर बेच लिया करता था; पर अब यह सारी आदतें छूट गयीं। दुर्गा और दमड़ी गाँजा चरस तो पीते हैं; लेकिन बहुत कम। और मैंने उन्हें कोई कुचाल चलते नहीं देखा। हम सभी रोटी, दाल, तरकारी खाकर दो-तीन सौ रुपये साल बचा लेते हैं। तो कहिये, जितने रुपये मेरे पास हैं, वह लाऊँ।

प्रेम—यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुम लोग भी चार पैसेके आदमी हो गये। यह सब तुम्हारे सुविचारका फल है। लेकिन मेरा काम इतने रुपयोंमें न चलेगा। मुझे २५ हजार-की जरूरत है।

सहसा मायाशङ्कर आकर खड़ा हो गया। उसकी आँखें डबडबायी हुई थीं, और मुँहपर करुण उत्सुकता झलक रही थी। प्रेमशङ्करने भोलाको आँखोंके इशारेसे हटा दिया, तब मायासे बोले—आँखें क्यों भरी हुई हैं? बैठो।

माया—जी कुछ नहीं, अभी तेजू और पद्मूकी याद आ गयी थी। दोनों अबतक होते तो उन्हें भी यहीं बुलाकर रखता। उस समय मैं बड़ा निर्दयी था। बेचारोंको अपना ठाट-बाट दिखाकर जलाना चाहता था। मेरी शेखीकी बातें सुन-सुन वे भी कहा करते थे, हम वह मंत्र जगायेंगे, कि कोई मार ही न सकें। ऐसे-ऐसे मंत्रोंको अपने वशमें कर लेंगे, कि घर बैठे संसारकी जो वस्तु चाहें मंगा लेंगे। उस वक्त मेरी समझमें वे बातें न आती थीं, दिल्लगी समझता था; पर अब जो उन बातोंको याद करता

हूँ, तो ऐसा मालूम होता है कि मैं ही उनका घातक हूँ। चित्त व्याकुल हो जाता है और अपने ऊपर ऐसा क्रोध आता है कि क्या कहूँ! अभी बाबासे मिलने गया था। बहुत दुःखी थे। किसी महाजनने उनपर नालिश भी कर दी है, इससे और भी चिन्तित थे। अगर यह मुसीबत न आती, तो शायद वह इतने दुःखी न होते। विपत्तिमें शोक और भी दुस्सह हो जाता है। शोकका घाव भरना तो असम्भव हैं; पर इस नयी विपत्तिका निवारण हो सकता है। आपसे कहते हुए संकोच होता है; पर इस समय मुझे क्षमा कीजिये। मैं चाहता हूँ कि आपसे जो कुछ बन पड़े उनकी सहायता कीजिये। चाचा दयाशङ्कर तो बाबासे कह रहे थे, हमें जमीनकी परवा नहीं है, निकल जाने दीजिये। आपको अब क्या करना है? मेरे सिरपर जो पड़ेगी, देख लूँगा; लेकिन बाबाकी इच्छा यह थी, कि महाजनसे कुछ दिनोंकी मुहलत ली जाय। अगर आपकी आज्ञा हो, तो मैं जाकर महाजनसे बातचीत करूँ। मुझसे वह कुछ दबेगा भी।

प्रेमशङ्कर—रुपयोंकी फिक्र तो मैं कर रहा हूँ; पर मालूम नहीं उन्हें कितने रुपयोंकी जरूरत है। उन्होंने मुझसे कभी यह जिक्र नहीं किया।

माया बातचीतसे मालूम होता था कि १५-२० हजारका मुआमला है।

प्रेम—यही मेरा भी अनुमान है। दो-चार दिनमें कुछ-न-कुछ उपाय निकल ही आवेगा। या तो महाजनको समझा-बुझा दूँगा या दो-चार हजार देकर कुछ दिनोंकी मुहलत ले लूँगा।

माया—मैं चाहता हूँ कि बाबाको मालूम भी न होने पाये और महाजनके सब रुपये पहुँच जायँ, जिसमें यह झंझट न रहे। जब हमारे पास रुपये हैं, तो फिर महाजनकी खुशामद क्यों की जाय?

प्रेम—वह रुपये अमानतके हैं। उन्हें छूनेका अधिकार नहीं है। उन्हें मैंने तुम्हारी यूरोपयात्राके लिये अलग कर दिये हैं।

माया—मेरी युरोपयात्रा इतनी आवश्यक नहीं है, कि घर-वालोंको सङ्कटमें छोड़कर चला जाऊँ।

प्रेम—जिस कामके लिये यह रुपये दिये गये हैं, उसी काममें खर्च होने चाहिये।

माया मनमें खिन्न होकर चला गया; पर श्रद्धासे वह ढीठ हो गया था। उसके पास जाकर बोला, अगर चाचासाहब बाबा-को रुपये न देंगे, तो मैं यूरोप कदापि न जाऊँगा। तीस हजार लेकर मैं वहाँ क्या करूँगा? मेरे लिये चलते समय पाँच हजार काफी हैं। चाचासाहबसे पचीस हजार दिला दो।

प्रेमशङ्करने श्रद्धासे भी वही बातें कहीं। श्रद्धाने मायाका पक्ष लिया। बहस होने लगी। कुछ निश्चय न हो सका। दूसरे दिन श्रद्धाने फिर वही प्रश्न उठाया। आखिर जब उसने कहा कि यह दलीलोंसे हार जानेपर भी रुपये नहीं देना चाहते तो जरा गर्म होकर बोली—अगर तुमने दादाजीको रुपये न दिये, तो माया कभी यूरोप न जायेगा।

प्रेम—वह मेरी बातको कभी नहीं टाल सकता।

श्रद्धा—और बातोंको नहीं टाल सकता; पर इस बातको हर्गिज न मानेगा।

प्रेम—तुमने यह शिक्षा दी होगी!

श्रद्धाने कुछ जवाब न दिया। यह बात उसे लग गयी। एक क्षणतक चुपचाप बैठी रही। तब जानेके लिये उठी। प्रेमशङ्करके मुँहसे बात तो निकल गयी थी; पर अपनी कठोरतापर लज्जित थे। बोले, अगर ज्ञानशङ्कर कुछ आपत्ति करें तो?

श्रद्धाने तिनककर कहा—तो साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि ज्ञानशङ्करके डरसे रुपये नहीं देता। अधिकार, कर्त्तव्य और अमानतका आश्रय क्यों लेते हो?

प्रेमशङ्करने असमंजसमें पड़कर कहा, डरकी बात नहीं है, रुपयोंके विषयमें मुझे पूरा अधिकार है ; लेकिन ज्ञानशङ्करकी अनुमतिके बिना मैं उसे इस तरह खर्च नहीं करना चाहता।

श्रद्धा—तो एक चिट्ठी लिखकर पूछ लो। मुझे तो पूरा विश्वास है, कि उन्हें कोई आपत्ति न होगी। अब वह ज्ञानशङ्कर नहीं हैं, जो पैसे पैसेपर जान देते थे।

प्रेमशङ्कर बाहर आकर ज्ञानशङ्करको पत्र लिखने बैठे। लेकिन फिर ख्याल आया कि उन्होंने अनुमति दे दी तो! अनुमति देनेमें उनकी क्या हानि है? तब मुझे विवश होकर रुपये देने पड़ेंगे, यह रुपये न मेरे हैं, न मायाके हैं, न ज्ञानशङ्करके हैं, यह मायाकी शिक्षावृत्ति है। पत्र न लिखा। ज्वालासिंहके सामने वह समस्या पेश की। उन्होंने भी कुछ निश्चय न किया। डाक्टर इर्फान-अलीसे परामर्श लेनेकी ठहरी, डाक्टर साहबने फैसला किया कि यह रकम मायाकी शिक्षाके सिवा और किसी काममें नहीं खर्च की जा सकती।

मायाशङ्करने यह फैसला सुना तो झुँझला उठा। जीमें आया कि चलकर डाक्टर साहबसे खूब बहस करूँ; पर डरा कि कहीं वह इसे बेअदबी न समझें। क्यों न महाजनके पास जाकर वह सब रुपये माँग लूँ? अभी नाबालिग हूँ, शायद उसे कुछ आपत्ति हो; लेकिन एकके दो देनेपर तैयार हो जाऊँगा तो मान जायगा; लेकिन फिर शङ्का हुई कि चाचा साहबको मालूम हो गया तो मुँहसे तो चाहें कुछ न कहें; पर मनमें बहुत नाराज होंगे। बेचारा इन्हीं दुश्चिन्ताओंमें डूबा हुआ मलिन उदास जाकर लेट रहा। सन्ध्या हो गयी; पर कमरेसे न निकला। डाक्टर इर्फानअलीने पढ़नेके लिये बुलाया। कहला भेजा, मेरे सिरमें दर्द है। भोजनका समय आया। मित्रभवनके और सब छात्र भोजन करने गये। मायाने कहला भेजा, मेरे सिरमें दर्द है। श्रद्धा बुलाने आयी। उसे देखते ही माया रो पड़ा।

श्रद्धाने प्रेमसे आँसू पोंछते हुए कहा, बेटा, चलकर थोड़ा-सा खाना खा लो, सबेरे मैं फिर उनसे कहूँगी। डाक्टर इर्फान अलीने बात बिगाड़ दी, नहीं मैंने तो राजी कर लिया था।

माया—चाची, मेरी खानेकी बिलकुल इच्छा नहीं है। (रोकर) तेज और पद्मू के प्राण मैंने लिये और अब मैं बाबाकी कुछ भी मदद नहीं कर सकता। ऐसे जीनेपर धिक्कार है।

श्रद्धा भी करुणावेगसे विवश हो गयी। अञ्चलसे मायाके आँसू पोंछती थी और स्वयं रोती थी।

मायाने कहा,—चाची, तुम नाहक हलकान होती हो, मैं अभागा हूँ, मुझे रोने दो।

श्रद्धा—तुम चलकर कुछ खा लो। मैं आज ही रातको यह बात छेड़ूगी।

मायाका चित्त बहुत खिन्न था; पर श्रद्धाकी बात न टाल सका। दो-चार कौर खाये; पर ऐसा मालूम होता था कि कौर मुँहसे निकला पड़ता है। हाथ-मुंह धोकर फिर अपने कमरेमें लेट रहा।

सारी रात श्रद्धा यही सोचती रही, कि इन्हें कैसे समझाऊँ। शीलमणिसे भी सलाह ली; पर कोई युक्ति न सूझी।

प्रातःकाल बुधिया किसी कामसे आयी। बातों-बातोंमें कहने लगी—बहूजी, पैसा सब कोई देखता है, मेहनत कोई नहीं देखता। मर्द दिनभरमें एक-दो रुपया कमा लाता है, तो मिजाज ही नहीं मिलता, औरत बेचारी रात-दिन चूल्हे चक्कीमें जुती रहे, फिर भी वह निकम्मी ही समझी जाती है।

श्रद्धा सहसा उछल पड़ी। जैसे सुलगती हुई आग हवा पाकर भभक उठती है, उसी भाँति इन बातोंने उसे एक युक्ति सुझा दी। भटकते हुये पथिकको रास्ता मिल गया। कोई चीज जिसे घण्टोंसे तलाश करते-करते थक गयी थी, अचानक मिल गयी। ज्यों ही बुधिया गयी, वह प्रेमशङ्करके पास आकर बोली—चाचाजीको रुपये देनेके बारेमें क्या निश्चय किया?

प्रेम—फिक्रमें हूँ। दो-चार दिनमें कोई सूरत निकल ही आयेगी।

श्रद्धा—रुपये तो रखे ही हैं।

प्रेम—मुझे खर्च करनेका अधिकार नहीं है।

श्रद्धा—वह किसके रुपये हैं?

प्रेम—(विस्मित होकर) मायाके शिक्षार्थ दिये गये हैं।

श्रद्धा—तो क्या २०००) महीने खर्च नहीं होते हैं?

प्रेम—क्या तुम जानती नहीं? लगभग ८००) खर्च होते हैं, बाकी १२००) बच रहते हैं।

श्रद्धा—यह क्यों बच रहते हैं क्या यह तुम्हारी समझमें नहीं आता? डाक्टर इर्फान अलीको पढ़ानेके लिये कितना वेतन मिलना चाहिये? डाक्टर प्रियनाथ और बाबू ज्वालासिंहको भी नौकर रखते, तो कुछ-न-कुछ देना पड़ता। तुम्हारी मजूरी भी कुछ-न-कुछ होनी ही चाहिये। तुम्हारे विचारमें इर्फान अलीका वेतन कुछ होता ही नहीं। उनका एक दिनका मेहनतनामा ५००) न दोगे? प्रियनाथकी आमदनी १००) प्रति दिनसे कम नहीं थी। पहले तो वह किसीके घर पढ़ाने जायें ही नहीं, जायें तो ५००) महीनेसे कम न लें। बाबू ज्वालासिंह भी १००) पर मँहगे नहीं हैं। रहे तुम, तुम्हारा भतीजा है, उसे शौकसे, प्रेमसे पढ़ाते हो; पर दूसरोंको क्या पड़ी है कि वह सेंतमें अपनी सिरपच्ची करे? इन रुपयोंको तुम बचत समझते हो, यह सर्वथा अन्याय है। इसे चाहे अपनी सज्जनताका पुरस्कार समझो या उनके एहसानका मूल्य, इस धनके खर्च करनेका उन्हें अधिकार है।

प्रेमशङ्करने सन्दिग्ध भावसे कहा—माया और तुम बिना रुपये दिलाये न मानोगी। जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम्हारी युक्तिमें न्याय है, इसे मैं मानता हूँ; पर आत्मा सन्तुष्ट नहीं होती। मैं इस वक्त रुपये दिये देता हूँ; पर इसे ऋण समझकर सदैव अदा करनेकी चेष्टा करता रहूँगा।

६४

लाला प्रभाशङ्करको रुपये मिले तो वह रोये। गाँव तो गया, पर उसे कौन बिलसेगा? दयाशङ्करका चित्त फिर घरसे उचाट हो चला था। साधुसंतोंके सत्संगके प्रेमी हो गये थे। दिन-दिन वैराग्यमें रत होते जाते थे,।

इधर मायाशङ्करकी युरोपयात्रापर ज्ञानशङ्कर राजी न हुए। उनके विचारमें अभी यात्रासे मायाको यथेष्ठ लाभ न पहुँच सकता था। उससे यह कहीं उत्तम था कि वह अपने इलाकोंका दौरा करे। उसके बाद हिन्दुस्थानके मुख्य-मुख्य स्थानोंको देखे, अतएव चैतके महीनेमें मायाशङ्कर गोरखपूर चला गया, और दो महीनेतक अपने इलाकेकी सैर करनेके बाद लखनऊ जा पहुंचा। दो महीनेतक वहाँ भी अपने गाँवोंका दौरा करता रहा। प्रति दिन जो कुछ देखता अपनी डायरीमें लिख लेता। कृषकोंकी दशाका खूब अध्ययन किया। दोनों इलाकोंके किसान उसके प्रजा-प्रेम, विनय और शिष्टतापर मुग्ध हो गये। उसने उनके दिलोंमें घर कर लिया। भयकी जगह प्रेमका विकास हो गया। लोग उसे अपना सच्चा हितैषी समझनेलगे। उनके पास आकर अपनी विपत्ति कथा सुनाते। उसे उनकी वास्तविक दशाका ऐसा परिचय किसी अन्य रीतिसे न मिल सकता था। चारों तरफ तबाही छायी हुई थी, ऐसा विरला ही कोई घर था, जिसमें धातुके बर्तन दिखायी देते हों। कितने घरोंमें लोहेके तवेतक न थे। मिट्टीके बर्तनोंको छोड़कर झोंपड़ेमें और कुछ दिखायी ही न देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहाँतक कि बहुतसे घरोंमें खाटेंतक न थीं और वह घर ही क्या थे? एक-एक, दो दो छोटी, तँग कोठरियाँ थीं। एक मनुष्योंके लिये, एक पशुओं-के लिये। उसी एक कोठरामें खाना, सोना, उठना, बैठना — सब कुछ होता था। बस्तियाँ इतनी घनी थीं कि गाँवमें खुली हुई जगह दिखायी ही नहीं देती थी, किसीके द्वारपर सहन नहीं

हवा और प्रकाशका शहरोंकी घनी बस्तियोंमें भी इतना अभाव न होगा। जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे, उनके बदन-पर साबित कपड़े न थे उन्हें भी एक जून चबेनापर ही काटना पड़ता था। वह भी ऋणके बोझसे दबे हुए थे। अच्छे जानवरों-के देखनेको आँखे तरस जाती थीं। जहाँ देखो छोटे-छोटे मरि-यल, दुर्बल बैल दिखायी देते थे और खेतोंमें रेंगते और चर-नियोंपर औंघते थे। कितने ही ऐसे गाँव थे, जहाँ दूधतक न मयस्सर होता था। इस व्यापक दरिद्रता और दीनताको देखकर मायाका कोमल हृदय तड़प जाता था। वह स्वभावसे ही भावुक था—बहुत नम्र, उदार और सहृदय। शिक्षा और संगतिने इन भावोंको और भी चमका दिया था। प्रेमाश्रममें नित्य सेवा और प्रजाहितकी चर्चा रहती थी। मायाका सरल हृदय उसी रङ्गमें रङ्ग गया था। वह इन दृश्योंसे दुःखित होकर प्रेमशङ्करको बार-बार पत्र लिखता, अपनी अनुभूत घटनाओंका उल्लेख करता और इस कष्टका निवारण करनेका उपाय पूछता, किन्तु प्रेम-शङ्कर या तो उनका कुछ उत्तर ही न देते या किसानोंकी मूर्खता आलस्य आदि दुःस्वभावोंकी गाथा ले बैठते।

माया तो अपने इलाकोंकी सैर कर रहा था, इधर स्थानीय राजसभाके सदस्योंका चुनाव होने लगा। ज्ञानशङ्कर इस सम्मान्यपदके पुराने अभिलाषी थे। बड़े उत्साहसे मैदानमें उतरे। यद्यपि यह ताल्लुकेदार सभाके मन्त्री थे, पर ताल्लुकेदारोंकी सहायतापर उन्हें भरोसा न था। कई बड़े-बड़े ताल्लुकेदार अपने गाँवोंके प्रतिनिधि बननेके लिये तत्पर थे। उनके सामने ज्ञानशङ्करको अपनी सफलताकी कोई आशा न थी। इसलिये उन्होंने गोरखपूरके किसानोंकी ओरसे खड़े होनेका निश्चय किया। वहाँ संग्राम इतना भीषण न था। उनके गोइन्दे देहातोंमें घूम-घूमकर उनका गुणगान करने लगे। बाबूसाहब कितने दयालु, कितने ईश्वरभक्त हैं,, उन्हें चुनकर तुम कृतार्थ हो जाओगे। वह

राजसभामें तुम्हारी उन्नति और उपकारके लिये जान लड़ा देंगे, लगान घटवायेंगे, प्रत्येक गाँवमें गोचर भूमिकी व्यवस्था करेंगे, नजराने उठवा देंगे, इजाफा लगानका विरोध करेंगे और इखराज को समूल उखाड़ देंगे। सारे प्रान्तमें धूम मची हुई थी। जैसे सहालगके दिनोंमें ढोल और नगाड़ोंका नाद गूँजने लगता है, उसी भाँति इस समय जिधर देखिये, जाति-प्रेमकी चर्चा सुनाई देती थी। डाक्टर इर्फान अली बनारस महाविद्यालयकी तरफसे खड़े हुए, बाबू प्रियनाथने बनारस म्युनिसिपैल्टीका दामन पकड़ा। ज्वालासिंह इटावेके रईस थे। उन्होंने इटावेके कृषकोंका आश्रय लिया। सैयद ईजाद हुसेनको भी जोश आया। वह मुसलिम स्वत्वकी रक्षाके लिये उठ खड़े हुए। प्रेमशङ्कर इस क्षेत्रमें न आना चाहते थे; पर भवानीसिंह, बलराज और कादिरखाँने बनारसके कृषकों-पर उनका मन्त्र चलाना शुरू किया। तीन-चार महीनों तक बाजार खूब गर्म रहा, छापेखानेको ट्रैक्टोंके छापनेसे सिर उठाने-का अवकाश न मिलता था। कहीं दावतें होती थीं, कहीं नाटक दिखाये जाते थे। प्रत्येक उम्मेदवार अपनी-अपनी ढोल पीट रहा था, मानों संसारके कल्याणका उसीने बीड़ा उठाया है।

अन्तमें चुनावका दिन आ पहुँचा। उस दिन नेताओंका सदुत्साह, उनकी तत्परता, उनकी शीलता और विनय दर्शनीय थी और राय देनेवालोंका तो मानों सौभाग्यसूर्य्य उदय हो गया था। मोहनभोग तथा मेवे खाते थे और मोटरोंपर सैर करते थे। सुबहसे पहर राततक रायोंकी चिट्ठियाँ पढ़ी जाती रहीं।

इसके बादके सात दिन बड़ी बेचैनीके दिन थे। ज्यों-त्यों करके कटे। आठवें दिन राजपत्रमें नतीजे निकल गये। आज कितने ही घरोंमें घीके चिराग जले, कितनोंने मातम मनाया। ज्ञानशंकरने मैदान मार लिया; लेकिन प्रेमाश्रम निवासियोंको जो सफलता प्राप्त हुई, वह आश्चर्यजनक थी, इस अखाड़ेके सभी योद्धा विजयपताका फहराते हुए निकले। सबसे बड़ी फतह

प्रेमशङ्करकी थी। वह बिना उद्योग और इच्छाके इस उच्चासन-पर पहुँच गये थे। ज्ञानशङ्करने यह खबर सुनी, तो उनका उत्साह भङ्ग हो गया। राजसभामें बैठनेका उतना शौक न रहा। बहुधा वृक्षपुञ्जोंमें सन्ध्या समय पक्षियोंके कलरवसे कान पड़ी आवाज नहीं सुनाई देती; लेकिन ज्योंही अन्धेरा हो जाता है और चिड़ियाँ अपने-अपने घोंसलोंमें जा बैठती हैं, वहाँ नीरवता छा जाती है, उसी भाँति जातिके प्रतिनिधिगण राजसभाके सु-सज्जित सुविशाल भवनमें पहुँचकर शान्तिमें मग्न हो गये। वे लम्बे चौड़े वादे, वे बड़ी-बड़ी बातें सब भूल गयीं। कोई मुव-क्किलोंके सेवा-सत्कारमें लिप्त हुआ, कोई अपने बहीखातेकी देख-भालमें, कोई अपने सैर और शिकारमें। जातिहितका वह उमङ्ग शांत हो गया। लोग मनोविनोदकी रीतिसे राज सभामें आते और कुछ निरर्थक प्रश्न पूछकर, या अपने वाक्यनैपुण्यका परि-चय देकर विदा हो जाते। वह कौनसी प्रेरक शक्तियाँ थीं, जिन्होंने लोगोंको इस अधिकारपर आसक्त कर रखा था, 'इसका निर्णय करना कठिन है, पर उनमें सेवाभावका जरा भी लगाव न था—यह निर्भ्रान्त है। कारण और कार्य्य, साधन और फल, दोनों उसी अधिकारमें विलीन हो गये।

किन्तु प्रेमाश्रममें यह शिथिलता न थी। यहाँ लोग पहलेसे ही सेवाधर्मके अनुगामी थे, अब उन्हें अपने कार्य्यक्षेत्रको और विस्तृत करनेका सुअवसर मिला। ये लोग नये-नये सुधारके प्रस्ताव सोचते, राजकीय प्रस्तावोंके गुण-दोषकी मीमांसा करते, सरकारी रिपोर्टोंका निरीक्षण करते। प्रश्नों द्वारा अधिकारियोंके अत्याचारोंका पता देते, जहाँ कहीं न्यायका खून होते देखते, तुरत सभाका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते और ये लोग केवल प्रश्नोंसे ही सन्तुष्ट न हो जाते थे, वरन् प्रस्तुत विषयोंके मर्मतक पहुँचनेकी चेष्टा करते। विरोधके लिये विरोध न करते, बल्कि शोधके लिये। इस सदुद्योग और कर्त्तव्यपरायणताने शीघ्र ही राज-

सभामें इस मित्र-मंडलका सिक्का जमा दिया। उनकी शंकाएँ, उनके प्रस्ताव, उनके प्रतिवाद, आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे। अधिकारि-वर्ग उनकी बातोंको चुटकियोंमें न उड़ा सकते थे। यद्यपि डाक्टर इर्फानअली इस मंडलके मुखपात्र थे; पर यह खुला हुआ भेद था, कि प्रेमशङ्कर ही उसके कर्णधार हैं।

इस तरह दो साल बात गये और यद्यपि मित्रमंडलने सभाको मुग्ध कर लिया था; पर अभीतक प्रेमशङ्करको अपना यह प्रस्ताव सभामें पेश करनेका साहस न हुआ, जो बहुत दिनोंसे उनके मनमें समाया हुआ था और जिसका उद्देश्य यह था, कि जमींदारोंसे असामियोंको बेदखल करनेका अधिकार ले लिया जाय। वह स्वयं जमींदार घरानेके थे, माया जिसे वह पुत्रवत् प्यार करते थे, एक बड़ा ताल्लुकेदार हो गया था। ज्वालासिंह भी जमींदार थे। लाला प्रभाशङ्कर जिनको वह पिता तुल्य समझते थे, अपने अधिकारोंमें जौभरकी कमी भी न सह सकते थे; इन कारणोंसे वह इस प्रस्तावको सभाके सम्मुख लाते हुए सकुचाते थे। यद्यपि सभामें भूपतियोंकी संख्या काफी थी और संख्याके देखते, दबाव और भी ज्यादा था;पर प्रेमशङ्करको सभाका इतना भय न था, जितना अपने सम्बन्धियोंका। इसके साथ ही अपने कर्त्तव्य-मार्गसे विचलित होते हुए उनकी आत्माको दुःख होता था।

एक दिन वह इसी दुविधामें उदास बैठे हुए थे, कि माया-शङ्कर एक पत्र लिये हुए आया और बोला—देखिये,बाबू दीपक-सिंह सभामें कितना घोर अनर्थ करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। वह सभामें इस आशयका प्रस्ताव लानेवाले हैं कि जमींदारोंको असामियोंसे लगान वसूल करनेके लिये ऐसे अधिकार मिलने चाहिये, कि वे अपनी इच्छासे जिस असामीको चाहें बेदखल कर दें। उनके विचारमें जमींदारोंको यह अधिकार मिलनेसे रुपये वसूल करनेमें बड़ी सुविधा हो जायेगी। प्रेमशङ्करने उदासीन भावसे कहा—मैं यह पत्र देख चुका हूँ।

माया—पर आपने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया ?

प्रेमशङ्करने आकाशकी ओर ताकते हुए कहा—अभी तो नहीं दिया।

माया—आप समझते हैं कि सभामें यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा ?

प्रेम—हाँ, संभव है।

माया—तब तो जमींदार लोग असामियोंको कुचलही डालेंगे।

प्रेम—हाँ, और क्या ?

माया—अभीसे इस आन्दोलनकी जड़ काट देनी चाहिये। आप इस पत्रका जवाब दे दें, तो बाबू दीपकसिंहको अपना प्रस्ताव सभामें पेश करनेका साहस न हो।

प्रेम—ज्ञानशङ्कर क्या कहेंगे ?

माया—मैं जहाँतक समझता हूँ, वह इस प्रस्तावका समर्थन न करेंगे।

प्रेम—हाँ, मुझे भी ऐसी ही आशा है।

मायाशङ्कर चचाकी बातोंसे उनकी चित्तवृत्तिको ताड़ गया।

वह जबसे अपने इलाकेका दौरा करके लौटा था, अक्सर कृषकोंकी सुदशाके उपाय सोचा करता। इस विषयकी कई किताब पढ़ी थीं और डाक्टर इर्फानअलीसे भी जिज्ञासा करता रहता था। प्रेमशङ्करको असमंजसमें देखकर उसे बहुत खेद हुआ। वह उनसे तो और कुछ न कह सका; पर उस पत्रका प्रतिवाद करनेके लिये उसका मन अधीर हो गया। आजतक उसने कभी समाचारपत्रों-के लिये कोई लेख न लिखा था, डरता था, लिखते बने या न बने, सम्पादक छापे या न छापे। दो-तीन दिन वह इसी आगा-पीछा-में पड़ा रहा। अन्तमें उसने उत्तर लिखा और कुछ सकुचाते, कुछ डरते डाक्टर इर्फानअलीको दिखाने ले गया। डाक्टर महोदयने लेख पढ़ा तो चकित होकर पूछा—यह सब तुम्हींने लिखा है ?

माया—जी हाँ, लिखा तो है; पर बना नहीं।

इर्फान—वाह ! इससे अच्छा तो मैं नहीं लिख सकता। यह सिफत तुम्हें बाबू ज्ञानशङ्करसे विरासतमें मिली है।

माया—तो भेज दूँ, छप जायेगा ?

इर्फान—छपेगा क्यों नहीं ? मैं खुद भेज देता हूँ।

प्रेमशङ्कर रोज पत्रोंको ध्यानसे देखते कि दीपकसिंहके पत्रका किसीने उत्तर दिया या नहीं; पर ८, १० दिन बीत गये और आशा न पूरी हुई। कई बार उनकी इच्छा हुई, कि कल्पित नाम से इस लेखका उत्तर दूँ; लेकिन कुछ तो अवकाश न मिला, कुछ चित्तकी दशा अनिश्चित रही, न लिख सके। बारहवें दिन उन्होंने पत्र खोला तो मायाशङ्करका लेख नजर आया। आद्यो-पान्त पढ़ गये। हृदयमें एक गौरवपूर्ण उल्लासका आवेग हुआ। तुरन्त श्रद्धाके पास गये और लेख पढ़ सुनाया। फिर इर्फान-अलीके पास गये। उन्होंने पूछा, "कोई नई खबर है क्या ?"

प्रेम—आपने देखा नहीं, मायाने दीपकसिंहके पत्रका कैसा युक्तिपूर्ण उत्तर दिया है ?

इर्फान—जी हाँ, देखा। मैं तो आपसे पूछने आ रहा था कि यह मायाने ही लिखा है या आपने कुछ मदद की है।

प्रेम—मुझे तो खबर भी नहीं, उसीने लिखा होगा।

इर्फान—तो उसको मुबारकबाद देनी चाहिये, बुलाऊँ ?

प्रेम—जी नहीं, उसके इस जोशको दबानेकी जरूरत है। ज्ञानशङ्कर यह लेख देखकर रोवेंगे। सारा इलजाम मेरे ऊपर आयेगा। कहेंगे कि आपने लड़केको बहका दिया; पर मैं आपको यकीन दिलाता हूँ, कि मैंने उसे यह पत्र लिखनेके लिये इशारा-तक नहीं किया। इसी बदनामीके डरसे मैंने खुद नहीं लिखा।

इर्फान—आप यह इल्जाम मेरे सिर रख दीजियेगा। मैं बड़ी खुशीसे इसे ले लूँगा।

प्रेम—कल उनका कोप-पत्र आ जायगा। मायाने मेरे साथ अच्छा सलूक नहीं किया।

इर्फान—भाभी साहिबाका क्या ख्याल है ?

प्रेम—उनकी कुछ न पूछिये। वह तो इस खुशीमें दावत करना चाहती हैं।

प्रेमशङ्करका अनुमान अक्षरशः सत्य निकला। तीसरे दिन ज्ञानशङ्करका कोप-पत्र आ पहुँचा। आशय भी यही था—मुझे आपसे ऐसी आशा नहीं थी। साम्यवादके पाठ पढ़ाकर आपने सरल बालकपर घोर अत्याचार किया है, उसका अठारहवाँ वर्ष पूरा हो रहा है, उसे शीघ्र ही अपने इलाकेका शासनाधिकार मिलनेवाला है; मैं इस महीनेके अन्ततक इन्हीं तैयारियोंके लिये आनेवाला हूँ, हिज एक्सलेन्सी गवर्नर महोदय स्वयं उसे राज्य-तिलक देनेके लिये पधारनेवाले हैं। उस मृदुसंगीतको इस बेसुरे रागने चौपट कर दिया। आपको अपने प्रजावादका बीज किसी और खेतमें बोना चाहिये था। आपने अपने शिक्षाधिकारका खेदजनक दुरुपयोग किया है। अब मुझपर दयाकर मायाको मेरे पास भेज दीजिये। मैं नहीं चाहता, कि अब वह एक क्षण भी वहाँ और रहे। अभिषेकतक मैं उसे अपने साथ रखूँगा। मुझे भय है कि वहाँ रहकर वह कोई और उपद्रव न कर बैठे……अस्तु।

संध्याकी गाड़ीसे मायाशङ्करने लखनऊको प्रस्थान किया।

६५

महाशय ज्ञानशङ्करका भवन आज किसी कविकल्पनाकी भाँति अलंकृत हो रहा है। आज वह दिन आ गया है, जिसके इन्तजारमें एक युग बीत गया। प्रभुत्व और ऐश्वर्यका मनोहर स्वप्न पूरा हो गया है, मायाशङ्करके तिलकोत्सवका शुभमुहूर्त्त आ पहुँचा है। बंगलेके सामने एक विशाल प्रशस्त मण्डप तना हुआ है। उसकी सजावटके लिये लखनऊके चतुर फर्राश बुलाये गये हैं। मंच गंगा-जमुनी कुरसियोंसे जगमगा रहा है। चारों तरफ अनुपम शोभा है। गोरखपूर, लखनऊ और बनारसके मान्य पुरुष

उपस्थित हैं। दीवान-खाना, मकान, बंगला सब मेहमानोंसे भरा हुआ है। एक ओर फौजी बाजा है, दूसरी ओर बनारसके कुशल शहनाईवाले बैठे हैं। एक दूसरे शामियानेमें नाटक खेलनेकी तैयारियाँ हो रही हैं। मित्रभवनके छात्र अपना अभिनय-कौशल दिखायेंगे। डाक्टर प्रियनाथका संगीत-समाज अपने जौहर दिखायेगा। लाला प्रभाशंकर मेहमानोंके आदर-सत्कारमें प्रवृत्त हैं। दोनों रियासतोंके देहातोंसे सैकड़ों नम्बरदार और मुखिया आये हुए हैं। लखनपूरने भी अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। ये सब ग्रामीण सज्जन प्रेमशङ्करके मेहमान हैं। कादिरखाँ, दुखरन भगत, डपटसिंह सब आज केसरिया बाना धारण किये हुए हैं। वे आज अपने कारावास-जीवनपर एक नक्र करेंगे। सैयद ईजाद हुसेनने एक जोरदार कसीदा लिखा है। इत्तहादी यतीमखानेके लड़के हरी-हरी झंडियाँ लिये मायाशंकरका स्वागत करनेके लिये खड़े हैं। अंग्रेज मेहमानोंका स्थान अलग है। वे भी एक-एक करके आते जाते हैं। उनके सेवा-सत्कारका भार डाक्टर ईर्फान अलीने लिया है। उन लोगोंके मनोरञ्जनके लिये प्रोफेसर रिचर्डसन कलकत्तेसे बुलाये गये हैं, जिनका गानविद्यामें कोई सानी नहीं है। बाबू ज्ञानशङ्कर गवर्नर महोदयके स्वागतकी तैयारियोंमें मग्न हैं।

सन्ध्याका समय था। बसन्तकी शुभ्र, सुखद समीर चल रही थी। लोग गवर्नरका स्वागत करनेके लिये स्टेशनकी तरफ चले। ज्ञानशङ्करका हाथी सबसे आगे था। पीछे-पीछे बैण्ड बजता जा रहा था। स्टेशनपर पहलेसे ही फूलोंका ढेर लगा दिया गया था। ज्योंही गवर्नरकी स्पेशल आयी और वह गाड़ीसे उतरे, उनपर फूलोंकी वर्षा हुई। उन्हें एक सुसज्जित फिटनपर बिठाया गया। जलूस चला। आगे-आगे हाथियोंकी माला थी। उसके पीछे राजपूतोंकी एक रेजीमेंट थी। फौजके बाद गवर्नर महोदयकी फिटन थी, जिसपर कारचोबीका छत्र लगा

हुआ था। फिटनके पीछे शहरके रईसोंकी सवारियाँ थीं। उनके बाद पुलिसके सवारोंकी एक टोली थी। सबके पीछे बाजे थे। यह जलूस नगरकी मुख्य सड़कोंपर होता हुआ, चिराग जलते-जलते ज्ञानशङ्करके मकानपर आ पहुँचा। हिज एक्सेलेन्सी महाराज गुरुदत्तराय चौधरी फिटनसे उतरे और मंचपर आकर अपनी निर्दिष्ट कुरसीपर विराजमान हो गये। विद्युत्के उज्वल प्रकाशमें उनकी विशाल, प्रतिभासम्पन्न मूर्त्ति, गम्भीर, तेजमय, ऐसी मालूम होती थी, मानों स्वर्गसे कोई दिव्य आत्मा उतर आयी हो। केसरिया साफा और सादे श्वेत-वस्त्र उनकी प्रतिभाको और भी चमकाते थे। रईस लोग कुरसियोंपर बैठे। देहाती मेहमानोंके लिये एक तरफ उज्वल फर्श बिछा हुआ था। प्रेमशंकरने उन्हें वहाँ पहलेसे ही बिठा रखा था। सब लोगोंके यथास्थान बैठ जानेके बाद मायाशंकर, रेशम और रत्नोंसे चमकता हुआ, दीवानखानेसे निकला और मित्र-भवनके छात्रोंके साथ पंडालमें आया। बन्दूकोंकी सलामी हुई; ब्राह्मण-समाजने मङ्गलाचरण गान शुरू किया। सब लोगोंने खड़े होकर उसका अभिवादन किया। महाराज गुरुदत्तरायने नीचे उतरकर उसे आलिंगन किया और उसे लाकर उसके सिंहासनपर बैठा दिया। मायाशंकरके मुखमण्डलपर इस समय हर्ष या उल्लासका कोई चिह्न न था। वह चिन्ता और विचारमें डूबा हुआ नजर आता था। विवाहके समय मण्डपके नीचे वर-की जो दशा होती है, वही दशा इस समय उसकी थी। उसके ऊपर कितना उत्तरदायित्वका भार रखा जाता था, आजसे उसे कितने प्राणियोंके पालनका, कल्याणका, रक्षाका कर्तव्यपालन करना पड़ेगा, सोते, जागते, उठते, बैठते, न्याय और धर्मपर निगाह रखनी पड़ेगी। उसके कर्मचारी प्रजापर जो-जो अत्याचार करेंगे, उन सबका दोष उसके सिरपर होगा, दीनोंकी हाय और दुर्बलोंके आँसुओंसे उसे कितना सशंक रहना पड़ेगा। इन

आंतरिक भावोंके अतिरिक्त ऐसी भद्र मण्डलीके सामने खड़े होने और हजारों नेत्रोंके केन्द्र बननेका संकोच कुछ कम अशान्ति-कारक न था।

कार्य्यवाही आरम्भ हुई। मङ्गलगानके बाद पण्डित श्रीनिवास वेदाचार्य्यने ईश्वर-प्रार्थना की। तब सैयद ईजाद हुसेनने अपना जोरदार कसीदा पढ़ा, जिसकी श्रोताओंने खूब प्रशंसा की। उनके बैठते ही यतीमखानेके बालकोंने गवर्नर महोदयका गुणानुवाद गाया। उनके स्वर लालित्यपर लोग मुग्ध हो गये। तब बाबू ज्ञानशङ्कर उठे और अपना प्रभावशाली अभिनन्दन-पत्र पढ़ सुनाया। उसकी भाषा और भाव दोनों ही निर्दोष थे। डाक्टर इर्फानअलीने हिन्दुस्थानी भाषामें उसका अनुवाद किया। तब महाराज साहब उसका उत्तर देनेके लिये खड़े हुए। उन्होंने पहले ज्ञानशङ्कर और अन्य रईसोंको धन्यवाद दिया, दो-चार मार्मिक वाक्योंमें ज्ञानशङ्करकी काव्यपटुता और योग्यता-की प्रशंसा की, राय कमलानन्द और रानी गायत्रीके सुयश और सुकीर्ति, प्रजारञ्जन और आत्मोत्सर्गका उल्लेख किया। तब माया-शङ्करको सम्बोधित करके उसके सौभाग्यपर हर्ष प्रकट किया। वक्तृताके शेषभागमें मायाशङ्करको कर्तव्य और सुनीतिका उपदेश दिया। अन्तमें आशा प्रकट की कि वह अपने देश, जाति और राज्यका भक्त और समाजका भूषण बनेगा।

तब मायाशङ्कर उत्तर देनेके लिये उठा। उसके पैर काँप रहे थे और छातीमें जोरकी धड़कन हो रही थी। उसे भय होता था कि कहीं मैं घबराकर बैठ न जाऊँ। उसका दिल बैठा जाता था। ज्ञानशङ्करने पहलेसे ही उसे तैयार कर रखा था। उत्तर लिख कर याद करा दिया था; पर मायाशङ्करके मनमें कुछ और ही भाव थे। उसने अपने विचारोंका जो क्रम स्थिर कर रखा था, वह छिन्न-भिन्न हो गया था। एक क्षणतक वह हतबुद्धि बना अपने विचारोंको सम्भालता रहा, कैसे शुरू करूँ, क्या कहूँ?

प्रेमशङ्कर सामने बैठे हुए उसके सङ्कटपर अधीर हो रहे थे। सहसा मायाशङ्करकी निगाह उनपर पड़ गयी। इस निगाहने उसपर वही काम किया, जो रुकी हुई गाड़ीपर ललकार करती है। उसकी वाणी जाग्रत हो गयी। ईश्वर-प्रार्थना और उपस्थित महानुभावोंको धन्यवाद देनेके बाद बोला :—

महाराजा साहब, मैं उन अमूल्य उपदेशोंके लिये अन्तःकरण से आपका अनुगृहीत हूँ, जो आपने मेरे आनेवाले कर्त्तव्योंके विषयमें प्रदान किये हैं और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं यथासाध्य उन्हें कार्य्यमें परिणत करूँगा। महोदयने कहा है कि ताल्लुकेदार अपनी प्रजाका मित्र, गुरु और सहायक है। बड़ी विनयके साथ निवेदन करूँगा, कि वह इतना ही नहीं, कुछ और भी है, वह अपनी प्रजाका सेवक भी है। यही उसके अस्तित्वका उद्देश्य और हेतु है, अन्यथा संसारमें उसकी कोई जरूरत न थी, उसके बिना समाजके संगठनमें कोई बाधा न पड़ती। वह इस-लिये नहीं है, कि प्रजाके पसीनेकी कमाईको विलास और विषय भोगमें उड़ाये, उनके टूटे-फूटे झोंपड़ोंके सामने अपना ऊंचा महल खड़ा करे, उनकी नग्नताको अपने रत्नजटित वस्त्रोंसे अप-मानित करे, उनकी संतोषमय सरलताको अपने पार्थिव वैभव-से लज्जित करे, अपनी स्वादलिप्सासे उनकी क्षुधा पीड़ाका उपहास करे। अपने स्वत्वोंपर जान देता हो; पर अपने कर्त्तव्य-से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरङ्कुश प्राणियोंसे प्रजाकी जितनी जल्द मुक्ति हो, उनका भार प्रजाके सिरसे जितनी ही जल्द दूर हो, उतना ही अच्छा हो।

विज्ञ सज्जनो, मुझे यह मिथ्याभिमान नहीं है, कि मैं इन इलाकोंका मालिक हूँ। पूर्व संस्कार और सौभाग्यने मुझे ऐसी पवित्र, उन्नत; दिव्य आत्माओंकी सत्संगतिसे उपकृत होनेका अवसर दिया है कि अगर यह भ्रम, यह ममत्व एक क्षणके लिये भी मेरे मनमें आता, तो मैं अपनेको अधम और अक्षम्य समझता।

भूमि या तो ईश्वरकी है, जिसने इसकी सृष्टि की, या किसानकी जो ईश्वरीय इच्छाके अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देशकी रक्षा करता है, इसलिये उसे किसानोंसे कर लेनेका अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूपमें ले, या कोई इससे कम आपत्ति जनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणीके मीरास, मिल्कियत, जायदाद, अधिकारके नामपर किसानोंको अपना भोग्यपदार्थ बनानेकी स्वच्छन्दता दी जाती है, तो इस प्रथाको वर्तमान समाज व्यवस्थाका कलङ्क चिह्न समझना चाहिये।

ज्ञानशङ्करके मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। गवर्नर साहबने भी अनिच्छा भावसे पहलू बदला। रईसोंमें इशारे होने लगे लोग चकित थे, कि इन बातोंका अभिप्राय क्या है? प्रेमशङ्कर तो मारे शर्मके गड़े जाते थे, हाँ डाक्टर इर्फानअली और ज्वाला सिंहके चेहरे खिले पड़ते थे।

मायाशङ्करने जरा दम लेकर फिर कहा—

मुझे भय है कि मेरी बातें कहीं तो अनुपयुक्त और समय विरुद्ध और कहीं क्रांतिकारी और विद्रोहमय समझी जायेंगी लेकिन यह भय मुझे उन विचारोंके प्रकट करनेसे रोक नहीं सकता, जो मेरे अनुभवके फल हैं और जिन्हें कार्य्यरूपमें लाने का मुझे सुअवसर मिला है। मेरी धारणा है कि मुझे किसानों की गर्दनोंपर अपना जुआ रखनेका कोई अधिकार नहीं है। यह मेरी नैतिक दुर्बलता और भीरुता होगी, अगर मैं अपने सिद्धांत का भोगलिप्सापर बलिदान कर दूँ। अपनी ही दृष्टिमें पतित होकर कौन जीना पसन्द करेगा? मैं आप सब सज्जनोंके सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वोंका त्याग करता हूँ, जो प्रथा, नियम और समाज व्यवस्थाने मुझे दिये हैं। मैं अपनी प्रजाको अपने अधिकारोंके बन्धनसे मुक्त करता हूँ। वह न मेरे आसामी हैं, न मैं उनका ताल्लुकेदार हूँ। वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं, मेरे भा

हैं। आजसे वह अपनी जोतके स्वयं जमींदार हैं। अब उन्हें मेरे कारिन्दोंके अन्याय और मेरी स्वार्थ-भक्तिकी यन्त्रणाएँ न सहनी पड़ेंगी। वह इजाफे एखराज, बेगारकी विडम्बनाओंसे निवृत्त हो गये। यह न समझिये, कि मैंने किसी आवेगके वशीभूत होकर यह निश्चय किया है। नहीं, मैंने उसी समय यह संकल्प किया, जब अपने इलाकोंका दौरा पूरा कर चुका। आपको मुक्त करके मैं स्वयं मुक्त हो गया, अब मैं अपना स्वामी हूँ, मेरी आत्मा स्वच्छन्द है। अब मुझे किसीके सामने घुटने टेकनेकी जरूरत नहीं। इस दलालोंकी बदौलत मुझे अपनी आत्मापर कितने अन्याय करने पड़ते, इसका मुझे कुछ थोड़ा अनुभव हो चुका है। मैं ईश्वरको धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे इस आत्मपतन-से बचा लिया। मेरा अपने समस्त भाइयोंसे निवेदन है कि वह एक महीनेके अन्दर मेरे मुख्तारके पास आकर अपने-अपने हिस्सेका सरकारी लगान पूछ लें और वह रकम खजानेमें जमा कर दें। मैं श्रद्धेय डाक्टर इर्फानअलीसे प्रार्थना करता हूँ, कि वह इस विषयमें मेरी सहायता करें और जाब्ते और कानूनकी जटिल समस्याओंको तै करनेकी व्यवस्था करें। मुझे आशा है कि मेरे समस्त भ्रातृवर्ग आपसमें प्रेमसे रहेंगे और जरा-जरासी बातोंके लिये अदालतकी शरण न लेंगे। परमात्मा आपके हृदय-में सहिष्णुता, सद्भाव और सुविचार उत्पन्न करे और आपको अपने नये कर्त्तव्योंका पालन करनेकी क्षमता प्रदान करे। हाँ, मैं यह जता देना चाहता हूँ, कि आप अपनी जमीन असामियोंको नफेपर न उठा सकेंगे। यदि आप ऐसा करेंगे, तो मेरे साथ घोर अन्याय होगा; क्योंकि जिन बुराइयोंको मैं मिटाना चाहता हूँ, आप उन्हींका प्रचार करेंगे। आपको प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि आप किसी दशामें भी इस व्यवहारसे लाभ न उठायेंगे, असा-मियोंसे नफा लेना हराम समझेंगे।

मायाशङ्कर ज्योंही अपना कथन समाप्त करके अपनी जगह

बैठा कि हजारों आदमी चारों तरफसे आ-आकर उसके इर्द-गिर्द जमा हो गये, कोई उसके पैरोंपर गिरा पड़ता था, कोई रोता था, कोई दुआएँ देता था, कोई आनन्दसे विह्वल होकर उछल रहा था। आज उन्हें वह अमूल्य वस्तु मिल गयी थी, जिसकी वह स्वप्नमें भी कल्पना न कर सकते थे। दीन किसानको जमींदार बननेका हौसला कहाँ? सैकड़ों आदमी गवर्नर महोदयके पैरोंपर गिर पड़े, कितने ही लोग बाबू ज्ञानशङ्करके पैरोंसे लिपट गये। शामियानेमें हलचल मच गयी, लोग आपसमें एक-दूसरेसे गले मिलते थे और अपने भाग्यको सराहते थे। प्रेमशङ्कर सिर झुकाये चुपचाप खड़े थे, मानों किसी गहरे विचारमें डूबे हुए हों; लेकिन उनके अन्य मित्र खुशीसे फूले न समाते थे। उनकी सगर्व आँखें कह रही थीं, कि यह हमारी संगति और शिक्षाका फल है, हमको भी इसका कुछ श्रेय मिलना चाहिये। रईसोंके प्राण संकटमें पड़े हुए थे। आश्चर्य्यसे एक दूसरेका मुँह ताकते थे, मानों अपने कानों और आँखोंपर विश्वास न आता हो। कई विद्वान इस प्रश्नपर अपने विचार प्रकट करनेके लिये आतुर हो रहे थे; पर यहाँ उसका अवसर न था।

गवर्नर महोदय बड़े असमंजसमें पड़े हुए थे कि इस कथनका किन शब्दोंमें उत्तर दूँ। वह दिलमें मायाशङ्करके महान् त्याग की प्रशंसा कर रहे थे; पर उसे प्रकट करते हुए उन्हें भय होता था, कि अन्य ताल्लुकेदारों और रईसोंको बुरा न लगे। इसके साथ ही चुप रहना मायाशङ्करके इस महान् यज्ञका अपमान करना था। उन्हें मायाशङ्करसे वह प्रेममय श्रद्धा हो गयी थी, जो पुनीत आत्माओंका भाग है। खड़े होकर मृदु-स्वरमें बोले—

बाबू मायाशङ्कर! यद्यपि हममेंसे अधिकांश सज्जन उन सिद्धान्तोंके कायल न होंगे, जिनसे प्रेरित होकर आपने यह अलौकिक संतोष-व्रत धारण किया है; पर जो पुरुष सर्वथा हृदयशून्य नहीं है, वह अवश्य आपको देवतुल्य समझेगा। सम्भव है कि

जीवन-पर्यन्त सुख भोगनेके बाद किसीको वैराग्य हो जाय; किन्तु जिस युवकने अभी प्रभुत्व और वैभवके मनोहर, सुखद उपवनमें प्रवेश किया, उसका यह त्याग आश्चर्यजनक है। पर यदि बाबू साहबको बुरा न लगे, तो मैं कहूँगा कि समाजकी कोई व्यवस्था केवल सिद्धान्तोंके आधारपर निर्दोष नहीं हो सकती, चाहे वे सिद्धान्त कितने ही उच्च और पवित्र हों। उसकी उन्नति मानवचरित्रके अधीन है। एकाधिपतियोंमें देवता हो गये हैं और प्रजावादियोंमें भयंकर राक्षस। आप जैसे उदार, विवेकशील, दयालु स्वामीकी जातसे प्रजाका कितना उपकार हो सकता था, आप उनके पथदर्शक बन सकते थे। अब वह प्रजा आपके प्रजाहित-साधनोंसे वंचित हो जायेगी; लेकिन मैं इन कुत्सित विचारोंसे आपको भ्रममें नहीं डालना चाहता। शुभ-कार्य्य सदैव ईश्वरकी ओरसे होते हैं। यह भी ईश्वरीय इच्छा है और हमें आशा करना चाहिये कि इसका फल अनुकूल होगा। मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि वह इन नये जमींदारोंका कल्याण करे और आपकी कीर्त्ति अमर हो।

इधर तो मित्रभवनकी मण्डली नाटक खेल रही थी, मस्तानेकी तानें और प्रियनाथकी सरोद-ध्वनि रङ्ग-भवनमें गूंज रही थी, उधर बाबू ज्ञानशङ्कर नैराश्यके उन्मत्त आवेशमें गंगातटकी ओर लपके चले जाते थे; जैसे कोई टूटी हुई नौका जल तरंगोंमें बहती चली जाती हो। आज प्रारब्धने उन्हें परास्त कर दिया। अबतक उन्होंने सदैव प्रारब्धपर विजय पायी थी। आज पासा पलट गया और ऐसा पलटा कि अब संभलनेकी कोई आशा न थी। अभी एक क्षण पहले उनका भाग्य-भवन जगमगाते हुए दीपकोंसे प्रदीप्त हो रहा था; पर वायुके एक प्रचण्ड झोंकेने उन दीपकोंको बुझा दिया। अब उनके चारों तरफ गहरा, घना, भयावह अन्धेरा था, जहाँ कुछ न सूझता था।

वह सोचते चले जाते थे, क्या इसी उद्देश्यके लिये मैंने

अपना जीवन समर्पण किया ? क्या अपनी नाव इसीलिये बोझी थी, कि वह जलमग्न हो जाय ?

हा वैभव लालसा ! तेरी बलिवेदीपर मैंने क्या नहीं चढ़ाया ? अपना धर्म, अपनी आत्मातक भेंट कर दी। हा ! तेरे भाड़में मैंने क्या नहीं झोंका ? अपना मन, वचन, कर्म सब कुछ आहुति कर दी। क्या इसीलिये कि कालिमाके सिवा और कुछ हाथ न लगे ?

मायाशङ्करका कसूर नहीं, प्रेमशङ्करका दोष नहीं, यह सब मेरे प्रारब्धकी कूट-लीला है। मैं समझता था, मैं स्वयं अपना विधाता हूँ। विद्वानोंने भी ऐसा ही कहा है; पर आज मालूम हुआ कि मैं इसके हाथोंका खिलौना था। उसके इशारोंपर नाचनेवाली कठपुतली था। जैसे बिल्ली चूहेको खेलाती है, जैसे मछुआ मछलीको खेलाता है, उसी भाँति इसने मुझे अबतक खेलाया। कभी पंजेमें धीरेसे पकड़ लेता था, कभी छोड़ देता था, जरा देरके लिये उसके पँजेसे छूटकर मैं सोचता था, उसपर विजय पायी ; पर आज उस खेलका अन्त हो गया, बिल्लीने गर्दन दबा दी, मछुएने बंसी खींच ली। मनुष्य कितना दीन, कितना परवश है ! भावी कितनी प्रबल ! कितनी कठोर !

जो तिमंजिला भवन मैंने एक युगमें अविश्रान्त उद्योगसे खड़ा किया, वह क्षणमात्रमें इस भाँति भूमिस्थ हो गया, मानों उसका अस्तित्व न था, उसका चिह्नतक नहीं दिखाई देता। क्या वह विशाल अट्टालिका भावीकी केवल माया रचना थी ?

हा ! जीवन कितना निरर्थक सिद्ध हुआ। विषयलिप्सा तूने मुझे कहींका न रखा। मैं आँख तेज करके तेरे पीछे-पीछे चला, और तूने मुझे इस घातक भँवरमें डाल दिया।

मैं अब किसीको मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा। सम्पत्ति, मान, अधिकार किसीका शौक नहीं। इनके बिना भी आदमी सुखी रह सकता है; बल्कि सच पूछो तो सुख इनसे मुक्त रहनेमें

ही है। शोक यह है कि मैं अल्पांशमें भी इस यशका भागी नहीं बन सकता। लोग इसे मेरे विषयप्रेमकी यंत्रणा समझेंगे। कहेंगे, बेटेने बापका कैसा मान-मर्दन किया, कैसी फटकार बतायी। यह व्यङ्ग, यह अपमान कौन सहेगा? हा! मुझे पहलेसे इस अन्तका ज्ञान हो जाता, तो आज मैं पूज्य समझा जाता, त्यागी पुत्रका धर्मज्ञ पिता कहलानेका गौरव प्राप्त करता। प्रारब्धने कैसा गुप्ताघात किया! अब क्यों जिन्दा रहूँ? इसलिये कि तू मेरी दुर्गति और उपहासपर खुश हो, मेरी प्राणपीड़ापर तालियाँ बजाये। नहीं, अभी इतना लज्जाहीन, इतना बेहया नहीं हूँ।

हा! विद्या! मैंने तेरे साथ कितना अत्याचार किया! तू सती थी, मैंने तुझे पैरोंतले रौंदा। मेरी बुद्धि कितनी भ्रष्ट हो गयी थी! देवी, इस पतित आत्मापर दयाकर।

इन्हीं दुखमय भावोंमें डूबे हुए ज्ञानशङ्कर नदीके किनारे आ पहुँचे। घाटोंपर इधर-उधर साँड़ बैठे हुए थे। नदीका मलिन मध्यमस्वर नीरवताको और भी नीरव बना रहा था।

ज्ञानशङ्करने नदीको कातर नेत्रोंसे देखा। उनका शरीर काँप उठा। वह रोने लगे। उनका दुःख नदीसे कहीं अपार था।

जीवनकी घटनाएँ सिनेमा चित्रोंके सदृश उनके सामने मूर्तिमान हो गयीं। उनकी कुटिलताएँ आकाशके तारागणसे भी उज्ज्वल थीं। उनके मनने प्रश्न किया, क्या मरनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है?

नैराश्यने कहा, नहीं, कोई उपाय नहीं। वह घाटके एक पीले पायेपर जाकर खड़े हो गये। दोनों हाथ तौले, जैसे चिड़िया पर तौलती है; पर पैर न उठे।

मनने कहा, तुम भी प्रेमाश्रममें क्यों नहीं चले जाते? ग्लानिने जवाब दिया, कौन मुँह लेकर जाऊँ, मरना तो नहीं चाहता; पर जीऊँ कैसे? हाय! मैं जबरन् मारा जा रहा हूँ। यह सोचकर ज्ञानशङ्कर जोरसे रो उठे। आँसूकी झड़ी लग गयी।

शोक और भी अथाह हो गया। चित्तकी समस्त वृत्तियाँ इस अथाह शोकमें निमग्न हो गयीं। धर्ती और आकाश, जल और थल सब इसी शोक-सागरमें समा गये।

वह एक अचेत, शून्य दशामें उठे और गङ्गामें कूद पड़े। शीतल जलने हृदय-दाहको शान्त कर दिया।



उपसंहार

दो साल हो गये हैं। सन्ध्याका समय है। बाबू मायाशङ्कर घोड़ेपर सवार लखनपूरमें दाखिल हुए। उन्हें वहाँ बड़ी रौनक और सफाई दिखाई दी। प्रायः सभी द्वारोंपर सायबान थे, उनमें बड़े-बड़े तख्ते बिछे हुए थे। अधिकांश घरोंपर सुफेदी हो गयी थी। फूसके झोंपड़े गायब हो गये थे, अब सब घरोंपर खपरैल थे। द्वारोंपर बैलोंके लिये पक्की चरनियाँ बनी हुई थीं और कई द्वारोंपर घोड़े बँधे हुए नजर आते थे। पुराने चौपालमें पाठशाला थी और उसके सामने एक पक्का कुआँ और धर्मशाला थी। मायाशङ्करको देखते ही लोग अपने-अपने काम छोड़कर दौड़े और एक क्षणमें सैकड़ों आदमी जमा हो गये। मायाशङ्कर सुक्खू चौधरीके मन्दिरपर रुके। वहाँ इस वक्त बड़ी बहार थी। मन्दिर के सामने सहनमें भाँति-भाँतिके फूल खिले हुए थे। चबूतरेपर चौधरी बैठे हुए रामायण पढ़ रहे थे और कई स्त्रियाँ बैठी हुई सुन रही थीं। मायाशङ्कर घोड़ेपरसे उतरकर चबूतरेपर जा बैठे।

सुखदास हकबकाकर खड़े हो गये और पूछा—सब कुशल है न? क्या अभी चले आ रहे हैं?

माया—हाँ, मैंने कहा चलूँ, तुम लोगोंसे भेंट-भाँट करता आऊँ।

सुख—बड़ी कृपा की। हमारे धन्य भाग्य कि घर बैठे स्वामी के दर्शन होते हैं। यह कहकर वह लपके हुए घरमें गये, एक ऊनी कालीन लाकर बिछा दी, कलसेमें पानी खींचा और शरबत घोलने लगे। मायाशङ्करने मुँह हाथ धोया, शर्बत पीया, घोड़े की लगाम उतार रहे थे, कि कादिरखाँने आकर सलाम किया। मायाने कहा, कहिये खाँसाहब, मिजाज तो अच्छा है?

कादिर—सब अल्लाताला का फजल है। तुम्हारे जानमालकी खैर मनाया करते हैं। आज तो रहना होगा न ?

माया—यही इरादा करके तो चला हूँ।

थोड़ी देरमें यहाँ गाँवके सब छोटे-बड़े आ पहुँचे। इधर-उधरकी बातें होने लगीं। कादिरने पूछा—बेटा, आजकल कौंसिलमें क्या हो रहा है ? असामियोंपर कुछ निगाह होनेकी आशा है या नहीं ?

माया—हाँ, है! चचा साहब और उनके मित्र लोग बड़ा जोर लगा रहे हैं। आशा है कि जल्द ही कुछ-न-कुछ नतीजा होगा।

कादिर—अल्लाह उनकी मेहनत सुफल करे, और क्या दुआ द। रोयें-रोयेंसे तो दुआ निकल रही है। काश्तकारोंकी दशा बहुत कुछ सुधरी है। बेटा, मुझीको देखो, पहले २० बीघेका काश्तकार था, १००) लगान देने पड़ते थे। दस-बीस रुपये साल नजरानेमें निकल जाते थे। अब जुमला २०) लगान है और नजराना नहीं लगता। पहले अनाज खलिहानसे घरतक न आता था। आपके चपरासी, कारिन्दे वहीं गला दबाकर तुलवा लेते थे; अब अनाज घरमें भरते हैं और सुभीतेसे बेचते हैं। दो सालमें कुछ नहीं, तो तीन-चार सौ बचे होंगे। डेढ़ सौकी एक जोड़ी बैल लाये, घरकी मरम्मत करायी, सायबान डाला, हाँड़ियोंकी जगह ताँबे और पीतलके बर्तन लिये और सबसे बड़ी बात यह है, कि अब किसीकी धौंस नहीं, मालगुजारी दाखिल करके चुपके घर चले आते हैं। नहीं तो हरदम जान सूलीपर चढ़ी रहती थी। अब अल्लाहकी इबादतमें भी जी लगता है, नहीं तो नमाज भी बोझ मालूम होती थी।

माया—तुम्हारा क्या हाल है दुखरन भगत ?

दुखरन—भैया, अब तुम्हारे अकबालसे सब तरह कुशल है। अब जान पड़ता है, कि हम भी आदमी हैं, नहीं तो पहले बैलोंसे

भी गये बीते थे। बैल तो हरसे आता है, तो आरामसे अपना भोजन करके सो जाता है। यहाँ हरसे आकर बैलकी फिकिर करनी पड़ती थी। उससे छुट्टी मिली तो कारिन्दे साहबकी खुशामद करने जाते। वहाँसे दस-ग्यारह बजे लौटते, तो भोजन मिलता। १५ बीघेका काश्तकार था। १० बीघे मौरूसी थे। उनके ५०) लगान देता था। ५ बीघे सिकमी जोतते थे। उनके ६०) देने पड़ते थे। अब १५ बीघेके कुल ३०) देने पड़ते हैं। हरी-बेगारी, नजर-नियाज सबसे गला छूटा। दो सालमें तीन-चार सौ हाथमें हो गये। १००) की एक पछाहीं भैंस लाया हूँ, कुछ करजा था, वह चुका दिया।

सुखदास—और तबला, हारमोनियम लिया है, वह क्यों नहीं कहते? एक पक्का कुआँ बनवाया है, उसे क्यों छिपाते हो? भैया, यह पहले ठाकुरजीके बड़े भगत थे। एक बार बेगारमें पकड़े गये तो आकर ठाकुरजीपर क्रोध उतारा। उनकी प्रतिमाको तोड़-ताड़ कर फेंक दिया। अब फिर ठाकुरजीके चरणोंमें इनकी श्रद्धा हुई है। भजन-कीर्त्तनका सब सामान इन्होंने मँगाया है।

दुखरन—छिपाऊँ क्यों? मालिकसे कौन परदा? यह सब उन्हींका अकबाल तो है?

माया—यह बातें चचाजी सुनते, तो फूले न समाते।

कल्लू—भैया, जो सच पूछो तो चाँदी मेरी है, रंकसे राजा हो गया। पहले ६ बीघेका असामी था, सब सिकमी। ७२) लगानके देने पड़ते थे, उसपर हरदम गौस मियाँकी चिरौरी किया करता था, कि कहीं खेत छीन न लें। ५०) खाली नजराना लगता था। पियादोंकी पूजा अलग करनी पड़ती थी। अब कुल ६) लगान देता हूँ। दो सालमें आदमी बन गया। फूसके झोंपड़ेमें रहता था, अबकी मकान बनवा लिया है। पहले हरदम धड़का लगा रहता था, कि कोई कारिन्देसे मेरी चुगली न कर आया हो। अब आनन्दसे मीठी नींद सोता हूँ और तुम्हारा जस गाता हूँ।